B-1

।। श्रीः ।।

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

२८

महर्षिपाणिनिप्रणीतः

अष्टाध्यायीसूत्रपाठः

'आभा' – नामकभाषावृत्त्युपस्कृतः

हिन्दीवृत्तियुतपाणिनीय – शिक्षा – गणपाठ – लिङ्गानुशासनसहितश्च

वृत्तिकार :

श्रीनारायण मिश्रः

काशीस्थहिन्दुविश्वविद्यालयीय – संस्कृत – पालि – विभागे – संस्कृताध्यापकः

चौखम्भा पब्लिशर्स

प्राच्य – विद्या, आयुर्वेद एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

वाराणसी

SCANNED

।। श्रीः ।।

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

२८

महर्षिपाणिनिप्रणीतः

अष्टाध्यायीसूत्रपाठः

'आभा'–नामकभाषावृत्त्युपस्कृतः

हिन्दीवृत्तियुतपाणिनीय-शिक्षा-गणपाठ-लिङ्गानुशासनसहितश्च

वृत्तिकार :

श्रीनारायण मिश्रः

काशीस्थहिन्दुविश्वविद्यालयीय-संस्कृत-पालि-विभागे-संस्कृताध्यापकः

चौखम्भा पब्लिशर्स

प्राच्य-विद्या, आयुर्वेद एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

वाराणसी

प्रकाशक :

चौखम्भा पब्लिशर्स

गोकुल भवन, के-37/109, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी-221001 (भारत)

शाखा :

चौखम्भा ओरियन्टालिया

पोस्ट बॉक्स नं. 2206
बंग्लो रोड, 9-यू.बी., जवाहर नगर
(करोड़ीमल कालेज के पास)
दिल्ली - 110 007 (भारत)
फोन : 2911617, 238790

© चौखम्भा पब्लिशर्स

द्वितीय संस्करण : 1998
मूल्य : रु. ~~60.00~~ 75/-

GOKULDAS SANSKRIT SERIES
No. 28

The

AṢṬĀDHYĀYĪSŪTRAPĀṬHA

By

MAHARṢI PĀṆINI

With

The 'Ābhā' Hindi Commentary
along with
Pāṇinīyaśikṣā Gāṇapāṭha and Liṅgānuśāsana

Commentator
ŚRĪNĀRĀYAṆA MIŚRA
Deptt. of Sanskrit and Pali,
B.H.U., Varanasi.

CHAUKHAMBHA PUBLISHERS
A House of Ayurvedic and Indological Books
VARANASI (INDIA)

Publishers :
CHAUKHAMBHA PUBLISHERS
Gokul Bhawan, K-37/109, Gopal Mandir Lane,
Varanasi-221001 (India)

Branch :
CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
Post Box No. : 2206
Bungalow Road, 9-U.B., Jawahar Nagar,
(Near Kirorimal College)
Delhi-110007 (India)
Phone : 2911617, 238790

© CHAUKHAMBHA PUBLISHERS
Second Edition : 1998

सम्वर्धितं गरलमूलमपि प्रमादाल्-
लोकः स्वयं नहि विनाशयितुं समर्थः ।
छिन्दन् पुनः स्वरचितं विकसत्सरोजं
व्यक्तीकरोति भुवि यः स्वमलौकिकत्वम् ॥ १ ॥

आभावियोगजनिताश्रुपयःप्रवाहैः
स्नातस्तदङ्गभवभूतिविभूषितोऽपि ।
लज्जामुपैति नहि यः किल लेशतोऽपि
तस्मै हराय शबराय समर्पितेयम् ॥ २ ॥

आत्मनिवेदन

'आभा'–नामक (संक्षिप्त) भाषावृत्ति से उपस्कृत पाणिनीय अष्टाध्यायी विद्वानों की सेवा में समर्पित है। कुछ वर्ष पूर्व काशिका (काशी सं० ग्र० माला–३५) का सम्पादन करते समय सूत्रों और वार्त्तिकों का हिन्दी-रूपान्तर प्रकाशित किया जा चुका है। उस कार्य के आरम्भ के कुछ ही दिन बाद प्रातःस्मरणीय पूज्य पितृचरण की परलोकयात्रा के कारण कार्य समुचितरूप से सम्पन्न न हो सका। व्यथित होने से उस समय तो अपनी त्रुटियों का अनुभव हुआ नहीं, किन्तु पीछे चलकर उनका स्पष्ट अवबोध होने लगा। उसी अपराध के प्रायश्चित्त के लिए अष्टाध्यायी की एक स्वतन्त्र भाषा-वृत्ति लिखने में प्रवृत्ति हुई। परन्तु इस कार्य का आरम्भ भी मेरे लिये प्रतिकूल सिद्ध हुआ। कार्यारम्भ के कुछ ही दिन बाद दौर्भाग्य ने एकान्त स्निग्ध पुत्री आभा से हम सबको सर्वदा के लिए वञ्चित कर दिया। इस विपत्ति से कार्य छोड़ ही देने की इच्छा हुई और कुछ दिनों के लिए छोड़ भी दिया। किन्तु आरब्ध कार्य के समापन को उचित जान कर पश्चात् विक्षुब्धावस्था में भी यह कार्य पूरा करना पड़ा है। इस मानसिक असन्तुलन और चिरकाल से अक्षुण्ण रूप में प्रवहमान व्याख्यान-परम्परा से परिष्कृत शब्दानुशासन की गम्भीरता के कारण इसमें त्रुटियों की पूरी सम्भावना है। अतः मनीषियों से मेरा विनम्र निवेदन है कि वे इसकी त्रुटियों का उद्घाटन कर मुझे अनुगृहीत करें जिससे भावी संस्करण में उन्हें दूर किया जा सके।

इनके अतिरिक्त, मुद्रणसम्बन्धी कुछ अशुद्धियाँ भी रह गई हैं। इनमें एक तो मात्राओं का विपर्यय है। का की आदि में यह उपलब्ध है। बहुत छोटे अक्षरों में उठाये जाने के कारण प्रूफ पढ़ते समय इनका स्पष्ट आकलन नहीं किया जा सका। इन्वर्टेड कॉमा और हलन्त के चिह्नों का मुद्रण भी पूर्ण व्यवस्थित रूप में नहीं हो सका है। अध्यायान्त में समाप्तिसूचक वाक्य भी सर्वत्र नहीं छप सका है। कहीं-कहीं 'उपधा' के स्थान में 'उपधा मे' छप गया है। सूत्र २।१।२६ की वृत्ति में 'साधनविशेष' के बाद 'के प्रतिपादक शब्द' यह अंश मुद्रित नहीं हो सका है। इस प्रकार की कुछ अन्य अशुद्धियाँ भी रह गई हैं। इसका

अन्ततोगत्वा उत्तरदायित्व लेखक होने के कारण मुझ पर ही है। एतदर्थ मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

'अत्' आदि के स्थान मे 'अकार' आदि का 'और' के स्थान में 'अथवा' का, विधिसूत्रों की वृत्ति में 'हो' के स्थान में 'होता है' तथा 'हो जाता है' का, 'परे रहते' के स्थान में प्रायः 'परे' का प्रयोग तो ज्ञानपूर्वक ही किया गया है।

अष्टाध्यायी के पाठ के विषय में यत्र-तत्र मतभेद है। इसका एक विवरण मैंने काशिका की प्रस्तावना में किया है। किन्तु वह पर्याप्त नहीं है। इसकी प्रस्तावना में इसका पूर्ण विवरण देने की इच्छा तो अवश्य थी, पर परिस्थिति की प्रतिकूलता से ऐसा कर न सका। विस्तृत टिप्पणी लिखने का संकल्प भी संकल्प ही बना रह गया। यही तो मनुष्यता का अभिशाप है!

अन्त में, छात्रों की उपयोगिता की दृष्टि से पाणिनीय-शिक्षा (हिन्दी वृत्ति सहित), गणपाठ और लिङ्गानुशासन जोड़ दिया गया है। शिक्षा की बृहद्वृत्ति अपेक्षित थी, किन्तु प्रकाशक के अनुरोध से ऐसा सम्भव न हो सका।

इस प्रसङ्ग में चौखम्भा ओरियन्टालिया के प्रकाशक तथा इनके सहयोगियों को सहस्रशः साधुवाद देना चाहता हूँ जिनकी प्रेरणा से इस प्रतिकूल परिस्थिति में भी मैं यह कार्य पूरा कर सका। यदि इनका आग्रह न होता प्रायः यह कार्य पूर्ण न हो पाता। पूर्वाचार्यों के प्रति कृतज्ञताज्ञापन तो उ‸ ख की अपेक्षा नहीं रखता।

अन्त में, अपने विद्वान् पाठकों से प्रस्तुत संस्करण की अशुद्धियों के लिए पुनः क्षमा-प्रार्थी हूँ—

प्रक्रान्तमस्त्वतु कथञ्चिदपि स्वमन्त-
मित्याकुलेन मनसाऽपि समापितेयम्।
तच्चेत् किमप्यनुचितं रचितं प्रमादात्
क्षन्तव्यमेव तदपि व्यथितस्य विज्ञैः॥

भाद्रशुक्ल पञ्चमी,
१९७७ ई०

विनीत—
श्रीनारायण मिश्र

उपोद्घात

अर्थप्रवृत्तितत्त्वानां शब्दा एव निबन्धनम्।
तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते[1]॥

अभिप्राय-संक्रमण (Communication of ideas) मानवजीवन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। इसके साधनों में शब्द से बढ़कर कोई अन्य साधन नहीं। दण्डी ने सच ही कहा है—

वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्त्तते[2]॥

व्यवहारोपयोगी शब्द के भी दो रूप हैं—साधु और असाधु। इनमें साधु शब्द का प्रयोग ही शास्त्रीय और लौकिक दोनों ही दृष्टियों से प्रशस्त है[3]। प्रयोग में प्रचलित विशाल शब्द-भण्डार में साधुत्व और असाधुत्व का परिज्ञान एकमात्र व्याकरणशास्त्र की सहायता से ही हो सकता है—

साधुत्वज्ञानविषया सैषा व्याकरणस्मृतिः[4]॥

शब्द की साधुता शिष्ट-प्रयोग में ही निहित है। देशकाल-भेद से शिष्टों की असंख्यता, शब्दराशि की अपरिमेयता तथा मानव की प्रज्ञा के सीमित होने के कारण यह सम्भव नहीं कि वह एक-एक शब्द की साधुता का प्रयोग के आधार पर परिज्ञान प्राप्त कर सके -

अनभ्युपाय एष शब्दानां प्रतिपत्तौ प्रतिपदपाठः[5]॥

अतः शब्दशास्त्र के सामान्य और विशेष नियमों द्वारा शिष्टों से प्रयुक्त[6] साधु शब्दों का सरलता से व्याप्तिन्यायानुसार ज्ञान प्राप्त करने और इसके आधार पर शब्दों का प्रयोग कर हम अभ्युदय की भूमिका बनाते हैं।

इस प्रसङ्ग में यह ज्ञातव्य है कि व्याकरणशास्त्र 'पराची[7] वाक्' के स्वरूप में वास्तविक पद-पदांश--प्रकृति-प्रत्यय-आदि का उत्पादन नहीं करता, अपितु

---

१. वाक्यपदीय–१।१३ २. काव्यादर्श–३

३. यस्तु प्रयुंक्ते कुशलो विशेषे शब्दान् यथावद् व्यवहारकाले।
सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र वाग्योगविद् दुष्यति चापशब्दैः॥

४. वाक्यपदीय–१।१४२ ५. महाभाष्य-पस्पशाह्निक

६. यदि तर्हि शिष्टाः शब्देषु प्रमाणम् किमष्टाध्याय्या क्रियते? शिष्टपरिज्ञानार्थाऽष्टाध्यायी।—महाभाष्य–६।३।१०९

७. द्र०—तैत्तिरीयसंहिता–६।४।७।३

सरलता से शब्द-साधुत्व की प्रतिपत्ति के लिए अन्वयव्यतिरेकमूलक कल्पित प्रकृति-प्रत्यय-विभाजन को ही अपना विषय बनाता है। इसीलिए वैयाकरणों ने अखण्ड वाक्यस्फोट को ही पारमार्थिक माना है।

शब्द-साधुत्व-ज्ञानार्थ विरचित व्याकरणशास्त्र का इतिहास बहुत प्राचीन है। तैत्तिरीयसंहिता[१] के अध्ययन से तो यह स्पष्ट है कि उस युग में व्याकरणशास्त्र की प्रसिद्धि हो चुकी थी। 'चत्वारि[२] वाक्परिमिता पदानि' आदि ऋक् की व्याकरणशास्त्रानुगामी व्याख्या महर्षि यास्क[३] आदि ने की ही है। सम्प्रदाय में तो **महेश्वर, ब्रह्मा, बृहस्पति और इन्द्र** द्वारा निर्मित व्याकरणशास्त्र भी प्रसिद्ध हैं। इस विषय में विशेष विवरण मैंने काशिका की प्रस्तावना में प्रस्तुत किया है। इनके अतिरिक्त (**वायु, भरद्वाज,**) **भागुरि, पौष्करसादि, चारायण, काशकृत्स्न, शन्तनु, वैयाघ्रपद्य, माध्यन्दिनि, रौढ़ि, शौनकि, गौतम और व्याडि** के व्याकरणशास्त्रों का अस्तित्व पाणिनि-पूर्व युग में प्रमाणित है यद्यपि इनका उल्लेख पाणिनि ने नहीं किया है। **आपिशलि,**[४] **काश्यप,**[५] **गार्ग्य,**[६] **गालव,**[७] **चाक्रवर्मण,**[८] **भारद्वाज,**[९] **शाकटायन,**[१०] **शाकल्य,**[११] **सेनक**[१२] और **स्फोटायन**[१३] के नाम तो स्वयं पाणिनि ने ही लिए हैं। इनके साथ-साथ अष्टाध्यायी में 'उदीचाम्'[१४], 'आचार्याणाम्'[१५] 'एकेषाम्'[१६] और 'प्राचाम्'[१७] का भी उल्लेख मिलता है, किन्तु इन आचार्यों के विषय में स्पष्टतः कुछ नहीं कहा जा सकता कि ये कौन थे। उपर्युक्त आचार्यों के बाद **पाणिनि** का नाम आता है। यद्यपि कालक्रम में पाणिनि परवर्ती आचार्य हैं—तथापि महत्त्व की दृष्टि से इनका नाम अग्रगण्य है। इसकी संक्षिप्त चर्चा बाद में की जाएगी।

---

१. ऋक्संहिता-१।१६४।४५ २. तैत्तिरीय-संहिता-६।४।७।३
३. निरुक्त-१३।९।१ ४. अष्टा० ६।१।९२ ५. वही-१।२।२५, ८।४।६७
६. वही-७।३।९९, ८।३।२०, ८।४।६७
७. वही-६।३।६१, ७।१।७४, ७।३।९९, ८।४।६७ ८. वही-६।१।१३०
९. वही-७।२।६३ १०. वही-३।४।१११, ८।३।१८, ८।४।५०
११. वही-१।१।१६, ६।१।१२७, ८।३।१९, ८।४।५१
१२. वही-५।४।११२ १३. वही-६।१।१२३ १४. वही-४।१।१५३, ७।३।४६
१५. वही-७।३।४९, ८।४।५२ १६. वही-८।३।१०४
१७. वही- ४।१।१७, ४।१।४३ आदि

आचार्य पाणिनि—

पाणिनि के अनेक नाम पाए जाते हैं—पाणिन, पाणिनि, पाणिनेय, दाक्षीपुत्र, शालङ्कि, शाला(साला)तुरीय और आहिक।

पाणिनि की वंश-परम्परा के विषय में एक[1] मत निम्नलिखित है—

दक्ष

दाक्षी — दाक्षि

दाक्षीपुत्र पाणिनि[2] — दाक्षायण व्याडि

युधिष्ठिर मीमांसक[3] के अनुसार इसकी स्थिति कुछ भिन्न है—

व्यड (= दक्ष)

पणिन् दाक्षी (व्याडस्था) — दाक्षि अथवा दाक्षायण व्याडि

पाणिनि

इससे पाणिनि की माता का 'दाक्षी' यह गोत्र प्रत्ययान्त नाम सिद्ध है। इनके पिता का नाम 'शलङ्कु' माना गया है। इसी आधार पर पाणिनि को शालङ्कि कहा गया है। छन्दःशास्त्र के प्रवक्ता पिङ्गल पाणिनि के अनुज थे—ऐसा भी मत है।

पाणिनि के आचार्य का नाम कथासरित्सागर में उपाध्याय 'वर्ष' बताया गया है। महेश्वर से व्याकरणशास्त्र की प्राप्ति की कथा तो लोक-प्रसिद्ध है ही। 'कौत्स' आदि पाणिनि के शिष्यों का भी यत्र-तत्र स्पष्ट या अस्पष्ट रूप में उल्लेख मिलता है।

पञ्जाब-प्रान्त में बसने वाली वाहीक-जाति से पाणिनि का विशेष परिचय माना जाता है। इसलिए वही पाणिनि का निवास स्थान हो-- ऐसी सम्भावना

---

१. महाभाष्य-प्रस्तावना (पाणिनीयम्), पृ० १५ (नि० सा० प्रेस -१९३२)

२. काशिका की प्रस्तावना पृ० ३७ पर भ्रम से दाक्षी पुत्र का पुत्र पाणिनि छप गया है।

३. संस्कृत व्याकरण शास्त्र इतिहास भाग–१ पृष्ठ १७९

है। शलातुर अथवा सलातुर (वर्तमान लाहौर) पाणिनि के पूर्वजों का निवास-स्थान—अभिजन था। अत एव पाणिनि को शालातुरीय अथवा सालातुरीय भी कहा गया है।

पाणिनि के काल के विषय में अनेक मत हैं। कुछ प्रमुख मत निम्नलिखित हैं—

सत्यव्रत सामाश्रमी	२४०० ई० पूर्व
राजवाड़े तथा वैद्य	९००–८०० ई० पूर्व
बेलवेलकर	७००–६०० ई० पूर्व
भाण्डारकर	७०० ई० पूर्व
युधिष्ठिर मीमांसक	२९०० वि० पूर्व
डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, उपाध्याय और मैक्डॉनेल	५०० ई० पूर्व
मैक्समूलर	३५० ई० पू०
कीथ	३०० ई० पू०

इनमें ५०० ई० पूर्व वाला मत ही अधिक सङ्गत प्रतीत होता है। इस पक्ष में पाणिनि के विषय में ई० पूर्व पञ्चम शतक के जैमिनि के मीमांसा दर्शन पर वृत्ति लिखने वाले उपवर्षोपाध्याय के अग्रज वर्षोपाध्याय के शिष्य होने की परम्परा भी अनुकूल है, क्योंकि उपवर्षोपाध्याय जैमिनि से बहुत पश्चाद्वर्त्ती नहीं-- ऐसा ऐतिहासिकों का कहना है।

पाणिनि की कृतियाँ--

अष्टाध्यायी से अतिरिक्त इसी के खिल रूप में प्रसिद्ध धातुपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र एवं लिङ्गानुशासन, अष्टाध्यायीवृत्ति, शिक्षासूत्र, जाम्बवती-विजय (पातालविजय) एवं द्विरूपकोश को भी पाणिनिकृत माना गया है। इनमें अन्तिम दो ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। किन्तु पं० श्रीशचन्द्र चक्रवर्त्ती आदि विद्वानों ने जाम्बवतीविजय, गणपाठ, उणादिसूत्र और द्विरूपकोश को पाणिनिकृत स्वीकार करने में असहमति प्रकट की है।

अष्टाध्यायी—

पाणिनिप्रणीत प्रकृत व्याकरणशास्त्र का अष्टाध्यायी यह नाम सर्वविदित है। यह नाम इस शास्त्र के आठ अध्यायों में विभक्त होने के कारण ही प्रसिद्ध है। यद्यपि आपिशलव्याकरण का भी आठ अध्यायों में ही विभक्त होना प्रसिद्ध

है तथापि अष्टाध्यायी शब्द से लोग इसी व्याकरण को समझते आ रहे हैं। समान आधार पर ही 'अष्टक' शब्द का प्रयोग भी इन दोनों व्याकरण-शास्त्रों के लिए मिलता है। 'शब्दानुशासन' नाम तो महाभाष्यादि-प्रसिद्ध है ही। महाभाष्य २।१।१ तथा २।२।२४ में पाणिनि-सूत्रों को वृत्तिसूत्र कहा गया है। चीनी यात्री इत्सिङ्ग ने भी इसे वृत्तिसूत्र ही कहा है। अष्टाध्यायी २।१।१ के भाष्य प्रदीपोद्योत में नागेश भट्ट ने यह कहा है कि ऋषि-प्रणीत होने तथा सूत्रलक्षण-सम्पन्न होने से अष्टाध्यायी तथा इस पर लिखा गया वार्त्तिक दोनों ही 'सूत्र' कहलाने योग्य हैं। इनमें वार्त्तिक की वृत्ति नहीं है किन्तु अष्टाध्यायी की वृत्तियाँ विद्यमान हैं। अतः अष्टाध्यायी के अंश अथवा सूत्र को वार्त्तिकात्मक सूत्रों से भिन्न बतलाने के लिए ही अष्टाध्यायी को वृत्तिसूत्र कहा गया है। इतने नामों के विद्यमान होने पर भी इसका सबसे प्रसिद्ध नाम अष्टाध्यायी ही है।

अष्टाध्यायी का स्वरूप—

अष्टाध्यायी का मौलिक स्वरूप इस समय पूर्णतः सुरक्षित नहीं है। चिर-काल से व्यापक रूप में अध्ययनाध्यापन-परम्परा में प्रसिद्ध होने पर भी इसकी यह स्थिति कैसे हुई—यह एक आश्चर्य का ही विषय है। किन्तु यह अव्यवस्था हम सब के सौभाग्य से बहुत अधिक मात्रा में नहीं हुई है। कुछ ही सूत्रों के आंशिक या पूर्ण स्वरूप के विषय में आचार्यों की विप्रतिपत्ति है। उदाहरणार्थ 'अथ शब्दानुशासनम्' इस वाक्य को ही लिजिए। इसे कुछ लोग महा-भाष्यकार का वक्तव्य, कुछ लोग कात्यायन का प्रथम वार्त्तिक और कुछ लोग अष्टाध्यायी का ही प्रथम वाक्य (= योग) मानते हैं। इसी तरह कुछ अन्यान्य वाक्य भी हैं जिनमें पूर्णतः या अंशतः सूत्रत्व विप्रतिपन्न है[1]। इसी के कारण सभी व्याख्याओं में अष्टाध्यायी के योगों की संख्या भी समान नहीं है। काशिका वृत्ति में ३९८३ सूत्रों की व्याख्या की गई है जब कि सिद्धान्तकौमुदी में ३९७६ सूत्रों की ही। अन्यान्य व्याख्याओं में भी इसी प्रकार थोड़ा-बहुत अन्तर सूत्र-संख्या के बारे में पाया जाता है। इतना होने पर भी अष्टाध्यायी के स्वरूप में कोई बड़ी अव्यवस्था न होने के कारण इसके अध्ययनाध्यापन में अधिक कठिनाई नहीं है।

---

१. काशिका-वृत्ति की प्रस्तावना (पृ० ४४–५८) में इन पाठ-भेदों का एक सङ्कलन प्रस्तुत किया गया है, किन्तु यह सर्वथा पूर्ण नहीं है। इनके अतिरिक्त स्थलों में भी पाठ-भेद है।

अष्टाध्यायी की व्याख्यायें—

अष्टाध्यायी पर अनेक व्याख्याएँ लिखी गईं। इन्हें आकार और प्रतिपाद्य विषय की व्यापकता की दृष्टि से हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—अतिसंक्षिप्त, संक्षिप्त और विस्तृत। प्रथम वर्ग में वार्त्तिकों, द्वितीय में वृत्तियों और तृतीय में भाष्य (महाभाष्य) को रखा जाना चाहिए। एक पक्ष यह भी है कि भाष्य का साक्षात् सम्बन्ध वार्त्तिक से है, सूत्र से नहीं; इसीलिए सूत्र को वृत्तिसूत्र और वार्त्तिक को भाष्यसूत्र कहा जाता है। इस मत के अनुसार तो अष्टाध्यायी की व्याख्याओं के भाष्यरहित दो ही वर्ग होंगे।

(क) वार्त्तिक—

वार्त्तिकात्मक अतिसंक्षिप्त व्याख्यान को 'वाक्य', 'व्याख्यानसूत्र', 'भाष्यसूत्र' 'अनुतन्त्र' और 'अनुस्मृति' भी कहा जाता है। वार्त्तिककारों की संख्या, उनके नाम तथा उनके वार्त्तिकों के वास्तव स्वरूप आदि के विषय में सम्प्रति इदमित्थम् कहना प्रायः असम्भव है। अभी जो वार्त्तिक उपलब्ध हैं उन्हें साधारणतः कात्यायनीय कहते हैं, किन्तु यह भी उचित नहीं है। इनमें अन्यान्य आचार्यों के वार्त्तिकों का भी समावेश अवश्य है, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि कौन किस आचार्य का है। कात्यायनीय वार्त्तिकों की बहुलता हो सकती है। सम्प्रति विभिन्न ग्रन्थों में वार्त्तिककारों के उपलब्ध नाम निम्नलिखित हैं—

(क) कात्य, कात्यायन या वररुचि, (ख) भारद्वाज, (ग) सुनाग, (घ) क्रोष्टा और (ङ) वाडव।

इनमें सबसे प्रसिद्ध वार्त्तिककार कात्यायन ही है। जैसा पहले कहा जा चुका है, वार्त्तिक अतिसंक्षिप्त व्याख्या है। आज की प्रचलित शब्दावली में इसे पाद-टिप्पणी कहना बहुत अनुपयुक्त न होगा।

(ख) वृत्ति—

वृत्ति एक संक्षिप्त व्याख्या है—'सूत्रार्थप्रधानो ग्रन्थो वृत्तिः'। अष्टाध्यायी की वृत्तियों में सर्वप्रथम तो पाणिनि की ही वृत्ति आती है। महाभाष्य (१।४।१, ३।१।९४) और काशिका वृत्ति (४।१।१९४; ५।१।५०; ५।१।९४; ५।२।११०; ५।४।२१-२२) में कहा गया है कि आचार्य पाणिनि ने अपने शिष्यों को दोनों प्रकार के सूत्रार्थ समझाये। इससे पाणिनि-कृत वृत्ति का प्रमापण होता है। किन्तु यह वृत्ति आज उपलब्ध नहीं है। इनके अतिरिक्त श्वोभूति, कुणि,

माधुर अथवा माथुर और वररुचि ये चार अन्य पतञ्जलिपूर्ववर्त्ती वृत्तिकार प्रमाणसिद्ध हैं। पतञ्जलिपरवर्ती वृत्तिकारों में देवनन्दी, दुर्विनीत, चुल्लिभट्टि, निर्लूर, चूर्णिकार या चूर्णि तथा जयादित्य-वामन के नाम आते हैं। इनमें भी जयादित्य-वामन की काशिका-वृत्ति सुप्रतिष्ठित है। इसकी न्यास तथा पदमञ्जरी आदि टीकाएँ भी सुविख्यात हैं। इस समय तो वृत्तिकार के रूप में इन्हीं को लोग समझते हैं। इसी से इनकी महत्ता प्रमाणित है। अर्वाचीन युग के भी पुरुषोत्तम देव तथा विशेश्वर आदि वृत्तिकार हैं।

अष्टाध्यायी पर उपयोगानुसार इसके योग-क्रम में विपर्यास करके भी कुछ प्रतिष्ठित वृत्तियाँ लिखी गई हैं। इनमें धर्मकीर्त्ति का रूपावतार, विमल सरस्वती की रूपमाला, रामचन्द्र की प्रक्रियाकौमुदी और भट्टोजिदीक्षित की सिद्धान्त-कौमुदी प्रमुख हैं। इनमें भी प्रौढ़ता के कारण आज सिद्धान्तकौमुदी सर्वाधिक प्रतिष्ठित है। कुछ आर्य-समाजी विद्वान् को छोड़कर प्रायः सर्वत्र सिद्धान्त-कौमुदी का ही अध्ययन-अध्यापन प्रचलित है। इसकी टीकाओं में कौमुदीकार-कृत प्रौढमनोरमा, नागेश भट्ट का शब्देन्दुशेखर (लघु और बृहत् दोनों ही), ज्ञानेन्द्र सरस्वती की तत्त्वबोधिनी और वासुदेव दीक्षित की बाल-मनोरमा प्रमुख हैं। प्रथम दो टीकाओं का तो स्वतन्त्र ग्रन्थों की तरह अध्ययन-अध्यापन किया जाता रहा है।

अष्टाध्यायीक्रमानुरूपिणी वृत्तियों तथा क्रमविपर्ययानुसारिणी वृत्तियों में गुण-दोष का समान रूप से सम्बन्ध है। हाँ, इतना सम्भव है कि परवर्त्ती ग्रन्थों में पूर्ववर्त्ती ग्रन्थों की अपेक्षा विचारचातुरी कुछ अधिक मात्रा में पायी जाय ? किन्तु इसे ग्रन्थकार का उत्कर्ष छोड़कर परिपाटी का उत्कर्ष कथमपि नही माना जा सकता। आग्रही लोग एक परिपाटी को दूसरी परिपाटी से हीन सिद्ध करने का प्रयास आज भी कर ही रहे हैं, परन्तु तटस्थ भाव से देखने पर तो यह प्रयास कुप्रयास ही प्रतीत होता है।

(ग) भाष्य—

पाणिनीय तन्त्र में सम्प्रति एक ही भाष्य उपलब्ध है पतञ्जलि का महाभाष्य (भाष्य मूलसूत्र-वृत्तिसूत्र से साक्षात् सम्बन्ध न रखकर वार्त्तिक से ही सम्बन्ध रखता है—यह मत पहले निर्दिष्ट हो चुका है। इस दृष्टि से यहाँ इसका

उल्लेख अनावश्यक होने पर भी दृष्ट्यन्तर से तथा इसकी अनुपम महत्ता के कारण इसकी संक्षिप्त चर्चा यहाँ की गई है।) यद्यपि पतञ्जलि के महाभाष्य में दो बार भाष्य शब्द के तथा भूयो भूयः 'अपर आह' के प्रयोग से और भर्तृहरि द्वारा 'भाष्याणाम्' इस बहुवचनान्त प्रयोग से भी भाष्य की अनेकता अवश्य द्योतित है तथापि आज उपलब्ध एवं प्रतिष्ठित भाष्य एकमात्र पतञ्जलि का महाभाष्य ही है। यह अत्यन्त विस्तृत विवरण है। इसमें अत्यन्त उदार दृष्टिकोण से विचार किया गया है। इसके निर्णयों में तार्किकता की पराकाष्ठा पाई जाती है। इसकी भाषा अपने आप में विलक्षण है। यह संस्कृत गद्य का एक आदर्शभूत उदाहरण है। यत्रतत्र इस ग्रन्थ में पाणिनि के वक्तव्यों में भी परिवर्तन-परिवर्धन पूर्ण सूक्ष्मेक्षिका के साथ किया गया है। इन्हीं सब कारणों से इसे 'महाभाष्य' कहा जाता है। इसी लिए नव्य वैयाकरणों ने 'यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्' भी मान लिया है। इससे पतञ्जलि की महत्ता स्पष्टतः सिद्ध है।

पतञ्जलि के व्यक्तित्व को लेकर विशेषतः योगसूत्रकार और चरकसंहिताकार के साथ इनके भेदाभेद को लेकर बहुत विप्रतिपत्ति रही है। इनके काल के विषय में भी यही स्थिति है। साधारणतः ईसवीयपूर्व द्वितीय शतक इनका समय माना जाता है। किन्तु पं० भाष्याचार्य ने ई० पू० दशम शतक में और मीमांसक जी ने २००० वि० पू० इनकी स्थिति मानी है।

पतञ्जलि के अतिरिक्त हेलाराज, राघवसूरि तथा राजरुद्र के वार्त्तिक-भाष्य भी हैं किन्तु ये प्रतिष्ठित नहीं हो सके।

उपर्युक्त विवरण से पाणिनि-व्याकरण की गम्भीरता तथा लोकप्रियता का पर्याप्त प्रमाण मिल जाता है। यही कारण है कि आज भी इस शास्त्र पर ग्रन्थ लिखे ही जा रहे हैं। यदि यह कहा जाय कि पाणिनीय अष्टाध्यायी ही विदेशों में भारत की महनीयता को प्रमाणित करने वाले ग्रन्थों में प्रथम है तो अत्युक्ति न होगी। आज सुप्रतिष्ठित भाषाशास्त्र के मूल तत्त्व अष्टाध्यायी में सुरक्षित हैं—इस विषय में सभी प्राच्य-प्रतीच्य भाषाशास्त्री एक मत हैं। विश्व की सभी भाषा के वैयाकरणों में पाणिनि का नाम प्रथम है। भर्तृहरि ने सत्य ही कहा है—

इदमाद्यं पदस्थानं मुक्तिसोपानपर्वणाम्।
इयं सा मोक्षमाणानामजिह्मा राजपद्धतिः॥

॥ श्रीः ॥

अष्टाध्यायीसूत्रपाठः

अइउण् ॥ १ ॥ ऋलृक् ॥ २ ॥ एओङ् ॥ ३ ॥ ऐऔच् ॥ ४ ॥ हयवरट् ॥ ५ ॥ लण् ॥ ६ ॥ ञमङणनम् ॥ ७ ॥ झभञ् ॥ ८ ॥ घढधष् ॥ ९ ॥ जबगडदश् ॥ १० ॥ खफछठथचटतव् ॥ ११ ॥ कपय् ॥ १२ ॥ शषसर् ॥ १३ ॥ हल् ॥ १४ ॥

इति प्रत्याहारसूत्राणि ।

'अइउण्' आदि १४ सूत्र महेश्वर द्वारा पाणिनि के समक्ष डमरू के नाद से व्यक्त किए गए थे—ऐसा साम्प्रदायिक मत है । अतः इन्हें 'माहेश्वर-सूत्र' कहा जाता है । इनमें व्याकरणशास्त्र की प्रक्रिया को लाघवपूर्ण मार्ग से समझाने के लिए महर्षि पाणिनि द्वारा अपनाए गए संक्षिप्त प्रकार—'प्रत्याहार'[1] के निर्माणार्थ अपेक्षित वर्णमाला का निर्देश है । अतः इन्हें 'प्रत्याहार-सूत्र' भी कहते हैं । इनके अन्त में निर्दिष्ट सब व्यञ्जन 'अनुबन्ध' कहलाते हैं । इन्हें 'इत्' कहा जाता है । अतः इनका लोप हो जाने से ये प्रत्याहार के अन्तर्गत समाविष्ट नहीं होते । 'लण्' इस सूत्र के 'ल्' के उत्तर निर्दिष्ट अकार (ल्+अ) को भी प्राचीन आचार्य 'र' प्रत्याहारनिर्माणार्थ अनुबन्ध मानते हैं । प्रत्याहार बनाने के लिए उक्त सूत्रों में निर्दिष्ट अन्तिम व्यञ्जन से अतिरिक्त किसी भी वर्ण को आरम्भ में और प्रत्येक सूत्र के अन्त में निर्दिष्ट व्यञ्जन—ण्, क् आदि में से किसी एक को अन्त में रखना चाहिए । यह प्रत्याहार आरम्भगत वर्ण से लेकर अन्तनिर्दिष्ट व्यञ्जन

---

१. इन प्रत्याहारों की प्राचीनमतानुसार कुल संख्या ४२ है :—अण् (पूर्व ण् से), अक्, अच्, अट्, अण् (पर ण् से); अम्, अश्, अल्; इण्, इक् इच्; उक्; एङ्, एच्; ऐच्; खर्, खय्; ङम्; चर्; छव्; जश्; झय्, झर्, झल्; झश्, झष्; बश्; भष् ; मय्; यण्, यम्, यय्, यर्; रल्; वश् , वल्; शर्, शल्, हश्, हल् ।

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१ वृद्धिरादैच् ।
२ अदेङ् गुणः ।
३ इको गुणवृद्धी ।
४ न धातुलोप आर्धधातुके ।
५ क्ङिति च ।
६ दीधीवेवीटाम् ।
७ हलोऽनन्तराः संयोगः ।
८ मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः ।
९ तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् ।
१० नाऽऽज्झलौ ।
११ ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् ।
१२ अदसो मात् ।

से पूर्व जितने वर्ण उक्त सूत्रों मे उल्लिखित हों उन सब का संकेत है। जैसे 'अक्' यह प्रत्याहार 'अइउण्' के 'अ' और 'ऋऌक्' के 'क्' से बना है। यह अ, इ, उ, ऋ और ऌ इन सब स्वरों की एक संक्षिप्त सांकेतिक अभिव्यक्ति है।

प्रथमाध्याय का प्रथम पाद

आत् (= आ) तथा ऐच् (= ऐ एवं औ) की 'वृद्धि' संज्ञा है ॥ १ ॥ अत् (ह्रस्व अकार) तथा एङ् (= ए और ओ) की 'गुण' संज्ञा है ॥ २ ॥ 'गुण' तथा 'वृद्धि' इन दोनों शब्दों का उल्लेख कर जिन सूत्रों से गुण अथवा वृद्धि का विधान हुआ हो उन सूत्रों में 'इकः' (= 'इक्' प्रत्याहार के स्थान में) इस षष्ठीविभक्त्यन्त पद की नियमतः उपस्थिति हो जाती है ॥ ३ ॥ जिस 'आर्धधातुक'-संज्ञक शब्द को आधार मानकर धातु के अवयव का लोप हुआ हो उसी आर्धधातुक को निमित्त मान कर प्राप्त गुण तथा वृद्धि नहीं होतीं ॥ ४ ॥ कित्, गित् तथा ङित् को निमित्त मानकर भी प्राप्त गुण और वृद्धि नहीं होतीं ॥ ५ ॥ दीधीङ् तथा वेवीङ् धातुओं और आगमस्वरूप इट् के इक् के स्थान में प्राप्त गुण और वृद्धि नहीं होतीं ॥ ६ ॥ अच् (= स्वर) के व्यवधान से रहित हल् (= व्यञ्जन) के समूह की 'संयोग' संज्ञा है ॥ ७ ॥ मुख और नासिका से जिसका उच्चारण होता हो उसकी 'अनुनासिक' संज्ञा है ॥ ८ ॥ तालु आदि उच्चारण स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न जिन वर्णों के एक हों उनकी 'सवर्ण' संज्ञा, अर्थात् उन्हें 'सवर्ण' कहते हैं ॥ ९ ॥ उच्चारण-स्थान तथा आभ्यन्तर प्रयत्न में तुल्यता होने पर भी अच् और हल् परस्पर 'सवर्ण' नहीं होते ॥ १० ॥ ईदन्त, ऊदन्त और एदन्त द्विवचनान्त शब्दों की संज्ञा 'प्रगृह्य' है ॥ ११ ॥ अदस् शब्द के स्थान में हुए मकार से परवर्ती ईत्, ऊत् और एत् की संज्ञा 'प्रगृह्य' है ॥ १२ ॥

१३ शे।	२२ तरप्तमपौ घः।
१४ निपात एकाजनाङ्।	२३ बहुगणवतुडति संख्या।
१५ ओत्।	२४ ष्णान्ता षट्।
१६ सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे।	२५ डति च।
१७ उञः।	२६ क्तक्तवतू निष्ठा।
१८ ऊँ।	२७ सर्वादीनि सर्वनामानि।
१९ ईदूतौ च सप्तम्यर्थे।	२८ विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ।
२० दाधा घ्वदाप्।	२९ न बहुव्रीहौ।
२१ आद्यन्तवदेकस्मिन्।	३० तृतीयासमासे।

'शे' इस आदेश की संज्ञा 'प्रगृह्य' है ॥ १३ ॥ 'आङ्' से भिन्न एक स्वर वाले 'निपात' संज्ञक शब्दों की संज्ञा 'प्रगृह्य' है ॥ १४ ॥ ओदन्त निपात की संज्ञा 'प्रगृह्य' है ॥ १५ ॥ आचार्य शाकल्य के अनुसार, वैदिकेतर 'इति' शब्द के परे 'संबुद्धि' संज्ञा के निमित्तभूत ओकार की संज्ञा 'प्रगृह्य' है ॥ १६ ॥ पूर्वसूत्रोक्त परिस्थिति में 'उञ्' (=उ) की भी संज्ञा 'प्रगृह्य' हो जाती है ॥ १७ ॥ उक्त परिस्थिति में उञ् के स्थान में 'ऊँ' यह आदेश भी (विकल्प से) हो जाता है ॥ १८ ॥ सप्तमी के अर्थ में प्रयुक्त ईत् तथा ऊत् की भी संज्ञा 'प्रगृह्य' है ॥ १९ ॥ दाप् तथा दैप् धातुओं को छोड़कर 'दा' के रूप में प्रस्तुत होने वाली (डुदाञ्, दाण्, दो और देङ्) धातुओं और 'धा' के रूप में उपस्थित (डुधाञ एवं धेट्) धातुओं की संज्ञा 'घु' है ॥ २० ॥

जहाँ एक (= असहाय) ही वर्ण हो वहाँ आदि के स्थान में विहित कार्य भी होता है और अन्त स्थान में विहित कार्य भी ॥ २१ ॥ 'तरप्' और 'तमप्' इन दोनों प्रत्ययों की संज्ञा 'घ' है ॥ २२ ॥ बहु शब्द, गण शब्द, वति-प्रत्ययान्त तथा डति-प्रत्ययान्त शब्दों की संज्ञा 'संख्या' है ॥ २३ ॥ षकारान्त तथा णकारान्त 'संख्या'-संज्ञक शब्दों की संज्ञा 'षट्' है ॥ २४ ॥ डति-प्रत्ययान्त 'संख्या' संज्ञक शब्द भी 'षट्'-संज्ञक है ॥ २५ ॥ क्त और क्तवतु प्रत्ययों की संज्ञा 'निष्ठा' है ॥ २६ ॥ सर्व आदि शब्दों की संज्ञा 'सर्वनाम' है ॥ २७ ॥ 'दिङ्नामान्य-न्तराले' इस सूत्र से विहित बहुव्रीहि समास के अङ्गभूत सर्व आदि शब्दों की 'सर्व-नाम' संज्ञा विकल्प से होती है ॥२८॥ अन्य बहुव्रीहि समास में प्रयुक्त सर्व आदि शब्दों की 'सर्वनाम' संज्ञा नहीं होती ॥ २९ ॥ तृतीया-तत्पुरुष समास तथा इसके विग्रह-वाक्य में प्रयुक्त सर्व आदि शब्दों की 'सर्वनाम्' संज्ञा नहीं होती ॥ ३० ॥ द्वन्द्व

३१ द्वन्द्वे च ।
३२ विभाषा जसि ।
३३ प्रथमचरमतयाल्पार्धकति-
पयनेमाश्च ।
३४ पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापरा-
धराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् ।
३५ स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ।
३६ अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः ।
३७ स्वरादिनिपातमव्ययम् ।
३८ तद्धितश्चासर्वविभक्तिः ।
३९ कृन्मेजन्तः ।
४० क्त्वातोसुन्कसुनः ।
४१ अव्ययीभावश्च ।
४२ शि सर्वनामस्थानम् ।
४३ सुडनपुंसकस्य ।
४४ न वेति विभाषा ।

समास में प्रयुक्त सर्वादि शब्दों की भी 'सर्वनाम' संज्ञा नहीं होती ॥ ३१ ॥ किन्तु द्वन्द्व समास में भी जस्-विभक्ति-सम्बन्धी कार्यों के प्रसङ्ग में सर्वादि शब्दों की विकल्प से 'सर्वनाम्' संज्ञा हो जाती है ॥ ३२ ॥ जस्-सम्बन्धी कार्यों के प्रसङ्ग में प्रथम, चरम, तयप्-प्रत्ययान्त शब्द, (= द्वितय, त्रितय आदि) अल्प, अर्ध, कतिपय और नेम (= अर्ध) शब्दों को भी संज्ञा 'सर्वनाम' है ॥ ३३ ॥ संज्ञा (= नाम) से भिन्न रूप में प्रयुक्त पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर और अधर शब्दों की भी, जस्-सम्बन्धी कार्यों के प्रसङ्ग में, 'सर्वनाम्' संज्ञा विकल्प से ही होती है, नित्य नहीं ॥ ३४ ॥ ज्ञाति (= बन्धु) और धन से भिन्न अर्थों में प्रयुक्त स्व-शब्द की 'सर्वनाम' संज्ञा भी, जस्-सम्बन्धी कार्यों के प्रसङ्ग में, वैकल्पिक है ॥ ३५ ॥ बाह्यदेशीय सत्ता तथा अधोवस्त्र से भिन्न अर्थ वाले अन्तर शब्द की 'सर्वनाम' संज्ञा भी, जस्-सम्बन्धी कार्यों के प्रसङ्ग में वैकल्पिक है ॥ ३६ ॥ स्वर् आदि शब्दों और 'निपात'-संज्ञक शब्दों की संज्ञा 'अव्यय' है ॥ ३७ ॥ सब विभक्तियों में प्रयुक्त न होने वाले तद्धित-प्रत्ययान्त शब्दों की भी संज्ञा 'अव्यय' है ॥३८॥ मकारान्त तथा एजन्त कृत्प्रत्ययों से निष्पन्न शब्दों की भी संज्ञा 'अव्यय' हैं ॥ ३९ ॥ क्त्वा-प्रत्ययान्त, तोसुन्-प्रत्ययान्त और कसुन-प्रत्ययान्त शब्दों की भी संज्ञा 'अव्यय' है ॥ ४० ॥

अव्ययीभाव समास से निष्पन्न पद की भी संज्ञा 'अव्यय' है ॥ ४१ ॥ जस् तथा शस् विभक्तियों के स्थान में आदेश 'शि' की 'सर्वनामस्थान' संज्ञा है ॥ ४२ ॥ नपुंसक लिंग से अतिरिक्त लिङ्गों में 'सुट्' (सु, औ, जस् ; अम्, औट्) की 'सर्वनामस्थान' संज्ञा है ॥ ४३ ॥ 'न' (= प्रतिषेध) और 'वा' (= विकल्प-विधान) की संज्ञा 'विभाषा' है ॥ ४४ ॥ यण् प्रत्याहार

४५ इग्यणः सम्प्रसारणम्।
४६ आद्यन्तौ टकितौ।
४७ मिदचोऽन्त्यात्परः।
४८ एच इग्घ्रस्वादेशे।
४९ षष्ठी स्थानेयोगा।
५० स्थानेऽन्तरतमः।
५१ उरण् रपरः।
५२ अलोन्त्यस्य।
५३ ङिच्च।
५४ आदेः परस्य।
५५ अनेकाल्शित् सर्वस्य।
५६ स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ।
५७ अचः परस्मिन् पूर्वविधौ।
५८ न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चर्विधिषु।

के स्थान में आये या आने वाले इक् प्रत्याहार की संज्ञा 'सम्प्रसारण' है ॥ ४५ ॥ पष्ठी-निर्दिष्ट स्थानी के आगमभूत टित् और कित् क्रमशः स्थानी के आदि और अन्त में जुड़ते हैं ॥ ४६ ॥ मित्-कार्य स्थानी के अवयवभूत स्वरों में अन्तिम स्वर के बाद स्थान पाते हैं ॥ ४७ ॥ एच् प्रत्याहार के स्थान में ह्रस्व आदेश के रूप में इक् प्रत्याहार आता है ॥ ४८ ॥ जिस षष्ठी के अर्थ का सम्बन्ध किसी अन्य पदार्थ के साथ उपपन्न न हो उसका सम्बन्ध (=योग) 'स्थाने' पद के अर्थ (= स्थान में) के साथ हो जाता है—अर्थात् उस षष्ठी का अर्थ 'के स्थान में' हो जाता है ॥ ४९ ॥ किसी के स्थान में उससे सर्वाधिक समानता रखने वाला आदेश ही होता है ॥५०॥ ऋकार के स्थान में विहित अण् (प्रस्तुत में अ अथवा आ) अपने अव्यवहित उत्तरावयव के रूप में र् को प्राप्त कर लेता है—अर्थात् ऋकार के स्थान में गुणादेश 'अर्' और वृद्धि 'आर्' होता है ॥ ५१ ॥ षष्ठी-निर्दिष्ट स्थानों के स्थान में विहित आदेश स्थानी के अन्तिम अल् (= वर्ण) के स्थान में होता है ॥ ५२ ॥ ङित् आदेश अनेक अल् से घटित होने पर भी स्थानी के अन्त्य अल् के स्थान में ही होता है ॥ ५३ ॥ (पञ्चमीनिर्दिष्ट होने के कारण) परवर्ती शब्द के स्थान में विहित आदेश उस के आदि अल् के स्थान में होता है ॥ ५४ ॥ अनेक अल् से घटित तथा शित् आदेश पष्ठी-निर्दिष्ट स्थानी के सम्पूर्ण स्वरूप के स्थान में होता है ॥ ५५ ॥ अल्विधि को छोड़ कर अन्य आदेश स्थानिवत् माने जाते हैं ॥ ५६ ॥ परवर्ती शब्द को निमित्त मान कर विहित अजादेश पूर्ववर्ती शब्द के स्थान में विधीयमान कार्यों के प्रसङ्ग में स्थानिवत् हो जाता है ॥ ५७ ॥ पदान्त, द्विर्वचन (= द्वित्व), वरे, यलोप, स्वर, सवर्ण, अनुस्वार, दीर्घ, जश्त्व तथा चर्त्व इन विधियों में परवर्ती शब्द को निमित्त मान कर किया गया अजादेश पूर्ववर्ती शब्द के स्थान में विधीयमान कार्यों के प्रसङ्ग में स्थानिवत् नहीं होता है ॥ ५८ ॥ द्विर्वचननिमित्तभूत

५९ द्विर्वचनेऽचि ।
६० अदर्शनं लोपः ।
६१ प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः ।
६२ प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् ।
६३ न लुमताङ्गस्य ।
६४ अचोऽन्त्यादि टि ।
६५ अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा ।
६६ तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य ।
६७ तस्मादित्युत्तरस्य ।
६८ स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा ।
६९ अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः ।
७० तपरस्तत्कालस्य ।
७१ आदिरन्त्येन सहेता ।
७२ येन विधिस्तदन्तस्य ।

अच् (अजादि प्रत्यय) के परे विहित अजादेश केवल द्विर्वचन के प्रसङ्ग में ही स्थानिवत् होता है ॥५९॥ जिसे उपलब्ध होना चाहिए उसके अदर्शन (अनुपलब्धि=न दिखाई पड़ना) की संज्ञा 'लोप' है ॥ ६० ॥

प्रत्यय के अदर्शन की, 'लोप' से अतिरिक्त, 'लुक्', 'श्लु' और 'लुप्' ये तीन संज्ञाएँ भी हैं ॥ ६१ ॥ प्रत्यय के लुप्त हो जाने पर भी प्रत्ययनिमित्तक कार्य होते हैं ॥ ६२ ॥ 'लु'-शब्दघटित संज्ञाओं (लुक्, श्लु, लुप्) से यदि प्रत्यय के अदर्शन का सम्पादन हुआ हो तो प्रत्ययनिमित्तक कार्य नहीं होता ॥ ६३ ॥ किसी शब्द के अङ्गभूत स्वरों में अन्तिम स्वर से लेकर अवशिष्ट अंश की संज्ञा 'टि' है ॥ ६४ ॥ धात्वादि सार्थक वर्ण-समुदाय में अन्तिम अल् से पूर्व अल् की संज्ञा 'उपधा' है ॥ ६५ ॥ सप्तम्यन्त शब्द को निमित्त मानकर जिसका विधान हुआ हो वह कार्य उस सप्तम्यन्त से अव्यवहित पूर्ववर्त्ती शब्द के स्थान में समझना चाहिए ॥ ६६ ॥ पञ्चम्यन्त को निमित्त मानकर विहित कार्य उससे अव्यवहित उत्तर में वर्त्तमान शब्द के स्थान में समझना चाहिए ॥ ६७ ॥ शब्द की 'टि', 'घु' आदि संज्ञाओं को छोड़कर अन्य प्रसंगों में इस शास्त्र में निर्दिश्यमान शब्दों का स्वरूप ही लेना चाहिए, (उनके पर्याय शब्दों अथवा अर्थों को न लेना चाहिए) ॥ ६८ ॥ किन्तु प्रत्यय को छोड़कर अन्य गृह्यमाण अण् तथा उदित् स्वरूप तथा सवर्ण दोनों के बोधक हैं ॥ ६९ ॥ 'त्' का निर्देश जिस वर्ण के पूर्व अथवा पश्चात् किया गया हो वह स्वरूप और अपने उच्चारण-काल के समान काल में उच्चारणीय वर्णों—सवर्णों का भी बोधक है ॥ ७० ॥ इत्संज्ञक अन्त्य (प्रत्याहार-सूत्र-निर्दिष्ट) वर्ण के साथ उपदिश्यमान आदि वर्ण स्वरूप तथा अपने एवं अन्त्य वर्ण के मध्यस्थ (प्रत्याहारसूत्रपठित) वर्णों का भी बोधक है ॥७१॥ जिस विशेषण से किसी कार्य का विधान किया जाता है उससे तदन्तसमुदाय तथा उसके स्वरूप का भी ग्रहण होता है ॥७२॥ जिस शब्द के अवयवभूत स्वरों में आदि स्वर

७३ वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् ।
७४ त्यदादीनि च ।
७५ एङ् प्राचां देशे ।

द्वितीयः पादः

१ गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् ।
२ विज इट् ।
३ विभाषोर्णोः ।
४ सार्वधातुकमपित् ।
५ असंयोगाल्लिट् कित् ।
६ इन्धिभवतिभ्यां च ।
७ मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा ।
८ रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च ।
९ इको झल् ।
१० हलन्ताच्च ।
११ लिङ्सिचावात्मनेपदेषु ।
१२ उश्च ।

'वृद्धि'-संज्ञक हो उस शब्द की संज्ञा 'वृद्ध' है ॥ ७३ ॥ त्यत् आदि शब्दों की भी संज्ञा 'वृद्ध' है ॥ ७४ ॥ प्राच्यदेशवाचक शब्दों में जिसके अवयवभूत स्वरों के बीच आदि स्वर एङ्-प्रत्याहारान्तर्गत हो उसकी भी संज्ञा 'वृद्ध' है ॥ ७५ ॥

प्रथम अध्याय का प्रथम पाद समाप्त ॥

प्रथमाध्याय का द्वितीय पाद

'इङ्' धातु के स्थान में आदेशभूत गाङ् और 'कुट कौटिल्ये' से लेकर 'कुङ् शब्दे' तक के धातुओं से परवर्त्ती ञित् और णित् प्रत्यय ङित्प्रत्ययसदृश हो जाते हैं ॥ १ ॥ 'ओविजी भयचलनयोः' इस धातु से उत्तर विहित इडादि प्रत्यय ङित्-सदृश हो जाते हैं ॥ २ ॥ 'ऊर्णुञ् आच्छादने' इस धातु से परवर्त्ती इडादि प्रत्यय विकल्प से ङित्सदृश होते हैं ॥ ३ ॥ पित्-प्रत्ययभिन्न 'सार्वधातुक'-प्रत्यय ङित्सदृश हो जाते हैं ॥ ४ ॥ असंयोगान्त धातुओं से विहित पित्-भिन्न लिट् कित् हो जाते हैं ॥ ५ ॥ इन्ध और भू धातुओं से विहित लिट् भी कित् हो जाता है ॥ ६ ॥ मृड आदि धातुओं से विहित क्त्वा प्रत्यय कित् बना हो रहता है ॥ ७ ॥ रुद, विद आदि धातुओं से विहित क्त्वा और सन् प्रत्यय भी कित् हो जाते हैं ॥ ८ ॥ इगन्त धातु से विहित झलादि सन् प्रत्यय भी कित् हो जाता है ॥९॥ इक्-समीपस्थ हल् से पर झलादि सन् भी कित् हो जाता है ॥१०॥ इक्-समीपस्थ हल् से पर वर्त्तमान झलादि लिङ् और झलादि सिच्, आत्मनेपद में, कित् होते हैं ॥ ११ ॥ आत्मनेपद में ऋवर्णान्त धातु से विहित झलादि लिङ्-सिच् भी कित् हो जाते हैं ॥ १२ ॥ किन्तु गम् धातु से परवर्त्ती झलादि

१३ वा गमः ।
१४ हनः सिच् ।
१५ यमो गन्धने ।
१६ विभाषोपयमने ।
१७ स्थाघ्वोरिच्च ।
१८ न क्त्वा सेट् ।
१९ निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः ।
२० मृषस्तितिक्षायाम् ।
२१ उदुपधाद्भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम् ।
२२ पूङः क्त्वा च ।
२३ नोपधात्थफान्ताद्वा ।
२४ वञ्चिलुञ्च्यृतश्च ।
२५ तृषिमृषिकृषेः काश्यपस्य ।
२६ रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च ।

लिङ्-सिच्, आत्मनेपद में, विकल्प से कित् होते हैं ॥ १३ ॥ हन् धातु से विहित सिच् प्रत्यय कित् हो जाता है ॥ १४ ॥ दूसरों द्वारा छिपाए गए दोष के उद्घाटन रूप अर्थ में प्रयुक्त यम् धातु से विहित सिच्, आत्मनेपद में, कित् हो जाता है ॥ १५ ॥ किन्तु विवाहार्थक 'यम्' धातु से विहित सिच्, आत्मनेपद में भी, विकल्प से ही कित होता है ॥ १६ ॥ स्था धातु और 'घु'-संज्ञक धातुओं से विहित सिच्, आत्मनेपद में, कित् हो जाता है और इन धातुओं के अन्त्य अल् के स्थान में ह्रस्व इकारादेश भी ॥ १७ ॥ इडागमयुक्त क्त्वा प्रत्यय कित् नहीं माना जाता ॥ १८ ॥ शीङ् आदि धातुओं से विहित इडागमविशिष्ट 'निष्ठा'-संज्ञक प्रत्यय (क्त और क्तवतु प्रत्यय) भी कित् नहीं होते ॥ १९ ॥ क्षमार्थक मृष धातु से विहित इडागमयुक्त 'निष्ठा'-संज्ञक प्रत्यय भी कित् नहीं होते ॥ २० ॥

ह्रस्व उकार हो 'उपधा' में जिस धातु की उससे भाव तथा आदि[1] कर्म में विहित इडागमविशिष्ट 'निष्ठा'-संज्ञक प्रत्यय कित् नहीं होते ॥ २१ ॥ पूङ् धातु से विहित इडागमविशिष्ट क्त्वा और 'निष्ठा'-संज्ञक प्रत्यय कित् नहीं होते ॥ २२ ॥ नकार हो 'उपधा' में जिस धातु की उससे तथा थकारान्त और फकारान्त धातुओं से विहित इडागमविशिष्ट क्त्वा प्रत्यय विकल्प से कित् नहीं होता ॥ २३ ॥ वञ्चि, लुञ्चि और ऋत् धातुओं से विहित इडागमयुक्त क्त्वा प्रत्यय विकल्प से कित् नहीं होता ॥ २४ ॥ तृष्, मृष् और कृश् धातुओं से विहित इडागमविशिष्ट क्त्वा प्रत्यय, काश्यपाचार्य के मत मे, कित् नहीं होता ॥ २५ ॥ उकारोपध (= उकार हो 'उपधा' में जिस धातु की) और इकारोपध हलादि-रलन्त धातुओं से विहित इडागमविशिष्ट क्त्वा प्रत्यय एवं सन् प्रत्यय भी विकल्प से कित् हो

१. एक धात्वर्थ के अन्तर्गत अनेक व्यापारों का समावेश है। व्यापार, क्रिया, कर्म आदि पर्याय हैं। किसी भी धातु के अर्थ के अन्तर्गत प्रथम व्यापार आदि कर्म है।

२७ ऊकालोऽज्झस्वदीर्घप्लुतः।
२८ अचश्च।
२९ उच्चैरुदात्तः।
३० नीचैरनुदात्तः।
३१ समाहारः स्वरितः।
३२ तस्यादित उदात्तमर्धह्रस्वम्।
३३ एकश्रुति दूरात् सम्बुद्धौ।
३४ यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु।
३५ उच्चैस्तरां वा वषट्कारः।
३६ विभाषा छन्दसि।
३७ न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः।
३८ देवब्रह्मणोरनुदात्तः।
३९ स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम्।
४० उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः।
४१ अपृक्त एकाल्प्रत्ययः।
४२ तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः।
४३ प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्।

जाते हैं ॥ २६ ॥ उ, ऊ और उ-३ इनमें से एक-एक के उच्चारण में जितना समय लगता है उतने समय में उच्चारण किए गए वर्णों की क्रमशः संज्ञाएँ हैं—'ह्रस्व', 'दीर्घ' और 'प्लुत' ॥ २७ ॥ 'ह्रस्व' आदि तीन संज्ञाएं स्वर की ही होती हैं ॥ २८ ॥ उच्चारण-स्थान के ऊर्ध्वभाग से उच्चारण जिन स्वरों का हो उनकी संज्ञा 'उदात्त' है ॥ २९ ॥ उच्चारण-स्थान के अधोभाग से उच्चार्यमाण स्वरों की संज्ञा 'अनुदात्त' है ॥ ३० ॥ जिस स्वर में उदात्तत्व और अनुदात्तत्व इन दोनों धर्मों का समावेश हो उसकी संज्ञा 'स्वरित' है ॥ ३१ ॥ स्वरित स्वर में प्रारम्भ की आधी मात्रा ह्रस्व होती है और अवशिष्ट अनुदात्त ॥ ३२ ॥ दूर से सम्बोधन के लिए प्रयुक्त वाक्य के सभी स्वरों की एकश्रुति (= एक-सा उच्चारण) हो जाती है ॥ ३३ ॥ जप, न्यूङ्ख तथा साम के क्षेत्रों को छोड़कर अन्यत्र यज्ञकर्म में भी सब स्वरों की एकश्रुति ही होती है ॥ ३४ ॥ यज्ञकर्म से 'वौषट्' शब्द विकल्प से उदात्ततर हो जाता है और पक्षान्तर में एकश्रुति भी ॥ ३५ ॥ वेद में विकल्प से तीनों स्वरों की एकश्रुति भी होती है और त्रैस्वर्य भी ॥ ३६ ॥ 'सुब्रह्मण्या' नाम के निगद में एकश्रुति तो नहीं होती परन्तु स्वरित के स्थान में उदात्त आदेश हो जाता है ॥ ३७ ॥ 'सुब्रह्मण्या' नामक निगद के अन्दर आए देव शब्द और ब्रह्मन् शब्द के स्वरित के स्थान में अनुदात्त हो जाता है ॥ ३८ ॥ संहिता में स्वरितोत्तरवर्ती अनुदात्तों की एकश्रुति हो जाती है ॥ ३९ ॥ उदात्तपूर्ववर्ती और स्वरितपूर्ववर्ती अनुदात्त (सन्नतर = अनुदात्ततर) हो जाता है ॥ ४० ॥

एक अल् से निष्पन्न प्रत्यय की संज्ञा 'अपृक्त' है ॥ ४१ ॥ समानाधिकरण पदों में होने वाले तत्पुरुष समास को 'कर्मधारय' कहते हैं ॥ ४२ ॥ समास-विधायक सूत्रों में प्रथमा विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट पद 'उपसर्जन' कहलाता है ॥४३॥

४४ एकविभक्ति चापूर्वनिपाते ।
४५ अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् ।
४६ कृत्तद्धितसमासाश्च ।
४७ ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य ।
४८ गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य ।
४९ लुक्तद्धितलुकि ।
५० इद् गोण्याः ।
५१ लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने ।
५२ विशेषणानां चाजातेः ।
५३ तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात् ।
५४ लुब्योगाप्रख्यानात् ।
५५ योगप्रमाणे च तदभावेऽदर्शनं स्यात् ।
५६ प्रधानप्रत्ययार्थवचनमर्थस्यान्यप्रमाणत्वात् ।
५७ कालोपसर्जने च तुल्यम् ।

विग्रहावस्था में नियमतः एकविभक्तियुक्त पद भी, पूर्वनिपात कार्य के विषय को छोड़कर, 'उपसर्जन' कहलाता है ॥ ४४ ॥ धातुभिन्न, प्रत्ययभिन्न और प्रत्ययान्ततदादिभिन्न अर्थवान् शब्द की संज्ञा 'प्रातिपदिक' है ॥ ४५ ॥ कृदन्त, तद्धितान्त और समस्त शब्दों की भी संज्ञा 'प्रातिपदिक' है ॥४६॥ नपुंसकलिङ्ग में प्रातिपदिक का अन्तिम स्वर ह्रस्व हो जाता है ॥ ४७ ॥ उपसर्जनीभूत-गोशब्दान्त तथा उपसर्जन-स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों के अन्तिम स्वर ह्रस्व हो जाते हैं ॥ ४८ ॥ तद्धित प्रत्यय का लुक् होने पर उपसर्जनीभूत स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् हो जाता है ॥ ४९ ॥ तद्धित प्रत्यय का लुक् होने पर गोणी शब्द के स्त्रीप्रत्यय के स्थान में ह्रस्व इकार आदेश हो जाता है ॥ ५० ॥ तद्धित प्रत्यय का लुप् हो जाने पर भी उस शब्द की लिङ्ग-संख्या तद्धितान्त शब्द के समान ही होती है ॥ ५१ ॥ लुप्ततद्धितान्त शब्द के जातिवाचक-भिन्न विशेषण शब्दों की लिङ्ग-संख्या भी प्रकृतिभूत शब्द के समान ही बनी रहती है ॥ ५२ ॥ परन्तु उक्त नियम का पालन पूर्णतः नहीं किया जा सकता, क्योंकि लोकव्यवहार में अनेक लिङ्ग-संख्या वाले संज्ञा-शब्द प्रामाणिक रूप में प्रचलित हैं ॥ ५३ ॥ 'जनपदे लुप्' और 'वरणादिभ्यश्च' इन सूत्रों से लुप् का विधान भी कर्त्तव्य नहीं है, क्योंकि इन शब्दों से निवासादि सम्बन्ध की प्रतीति नहीं होती ॥ ५४ ॥ उक्त नियम अवश्य-मन्तव्य है, क्योंकि यदि इन पञ्चाल आदि शब्दों से सम्बन्ध का प्रतिपादन होता तो सम्बन्ध न रहने पर इन शब्दों का प्रयोग न होता ॥ ५५ ॥ समास में किसी पद की प्रधानता का प्रतिपादक वचन और प्रत्ययार्थप्रतिपादक वचन भी उपदेश-योग्य नहीं है क्योंकि प्रधानता आदि का निर्णय अन्य प्रमाण—लोकव्यवहार—से ही होता है ॥ ५६ ॥ काल तथा उपसर्जन की व्याख्या भी शास्त्र में नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इसका निर्धारण भी लोकव्यवहाराधीन है ॥ ५७ ॥

५८ जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम् ।
५९ अस्मदो द्वयोश्च ।
६० फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे ।
६१ छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम् ।
६२ विशाखयोश्च ।
६३ तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम् ।
६४ सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ ।
६५ वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः ।
६६ स्त्री पुंवच्च ।
६७ पुमान् स्त्रिया ।
६८ भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम् ।
६९ नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम् ।
७० पिता मात्रा ।

जाति-विवक्षा में एकवचन के स्थान में विकल्प से बहुवचन भी हो सकता है ॥ ५८ ॥ अस्मद् शब्द के एकवचन और द्विवचन के स्थान में भी विकल्प से बहुवचन का प्रयोग हो सकता है ॥ ५९ ॥ फल्गुनी-द्वय (पूर्व तथा उत्तर फल्गुनी नक्षत्र) और प्रोष्ठपद-द्वय (पूर्व तथा उत्तर भाद्रपद नक्षत्र) के द्विवचन के बदले भी विकल्प से बहुवचन का प्रयोग हो सकता है ॥ ६० ॥

वैदिक प्रयोग में पुनर्वसु शब्द के द्विवचन के स्थान में विकल्प से एकवचन भी होता है ॥ ६१ ॥ नक्षत्रवाचक विशाखा शब्द के द्विवचन के स्थान में भी एकवचन का वैकल्पिक प्रयोग होता है ॥ ६२ ॥ नक्षत्रार्थ में प्रयुक्त तिष्य और पुनर्वसु पदों के बीच यदि द्वन्द्व समास किया गया हो तो प्राप्त बहुवचन के स्थान में द्विवचन ही होता है ॥ ६३ ॥ एक विभक्ति में समान स्वरूपवाले पदों के बीच द्वन्द्व समास होने पर एक बचा रहता है और अन्य विलुप्त हो जाते हैं ॥ ६४ ॥ समान प्रकृति वाले वृद्ध-(गोत्र-) प्रत्ययान्त और युव-प्रत्ययान्त शब्दों का सहप्रयोग होने पर वृद्ध-प्रत्ययान्त शब्द ही अवशिष्ट रहता है और युव प्रत्ययान्त का लोप हो जाता है ॥ ६५ ॥ यदि समान प्रकृतिवाले वृद्ध-प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग तथा युव-प्रत्ययान्त शब्दों का सहप्रयोग हुआ हो तो वृद्ध-प्रत्ययान्त शब्द अवशिष्ट रहने के साथ-साथ पुल्लिङ्गवत् भी हो जाता है ॥ ६६ ॥ स्त्रीलिङ्ग और पुलिङ्ग शब्दों का यदि सहप्रयोग हुआ हो तो पुल्लिङ्ग शब्द ही अवशिष्ट रहता है ॥ ६७ ॥ स्वसृ और भ्रातृ शब्दों के सहप्रयोग में भ्रातृ शब्द और दुहितृ एवं पुत्र शब्दों के सहप्रयोग में पुत्र शब्द ही अवशिष्ट रह जाते हैं ॥ ६८ ॥ समान प्रकृति वाले नपुंसक तथा अनपुंसक शब्दों का सहप्रयोग होने पर नपुंसक शब्द ही अवशिष्ट रहता है और विकल्प से उसका प्रयोग भी एकवचन में होता है ॥ ६९ ॥ मातृ तथा पितृ शब्द के सहप्रयोग में पितृ शब्द ही, विकल्प से,

७१ श्वशुरः श्वश्र्वा ।
७२ त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् ।
७३ ग्राम्यपशुसङ्घेष्वतरुणेषु स्त्री ।

तृतीयः पादः

१ भूवादयो धातवः ।
२ उपदेशेऽजनुनासिक इत् ।
३ हलन्त्यम् ।
४ न विभक्तौ तुस्माः ।
५ आदिर्ञिटुडवः ।
६ षः प्रत्ययस्य ।
७ चुटू ।
८ लशक्वतद्धिते ।
९ तस्य लोपः ।
१० यथासंख्यमनुदेशः समानाम् ।
११ स्वरितेनाधिकारः ।
१२ अनुदात्तङित आत्मनेपदम् ।
१३ भावकर्मणोः ।

अवशिष्ट रह जाता है ॥ ७० ॥ श्वश्रू तथा श्वशुर शब्दों के सहप्रयोग में श्वशुर शब्द ही, विकल्प से, अवशिष्ट रहता है ॥ ७१ ॥ त्यत् आदि शब्दों का किसी भी शब्द के साथ प्रयोग होने पर त्यत् आदि शब्द ही सर्वदा अवशिष्ट रहते हैं ॥ ७२ ॥ ग्रामीण-पशुओं के तरुण, अर्थात् बच्चे, न हों जिसमें ऐसे समूह के वाचक शब्दों का सहप्रयोग होने पर स्त्रीलिङ्ग शब्द ही अवशिष्ट रहता है ॥ ७३ ॥

प्रथमाध्याय का द्वितीयपाद समाप्त ।

प्रथम अध्याय का तृतीय पाद

'भू' आदि क्रियावाचक शब्दों की संज्ञा 'धातु' है ॥ १ ॥ उपदेशावस्था में अनुनासिक अच् की 'इत्' संज्ञा है ॥२॥ उपदेश में अन्त्य हल की भी 'इत्' संज्ञा है ॥ ३ ॥ विभक्तिस्थ सकार, तवर्ग और मकार इन अन्त्य हलों की 'इत्' संज्ञा नहीं होती ॥४॥ शब्द के आदि में वर्त्तमान् 'ञि', 'टु' (= टवर्ग) तथा 'डु' की भी संज्ञा 'इत्' है ॥ ५ ॥ प्रत्यय के आदि में आये 'ष्' की भी भी 'इत्' संज्ञा है ॥६॥ प्रत्यय के आदि में आए चवर्ग और टवर्ग की भी 'इत्' संज्ञा है ॥७॥ तद्धितभिन्न प्रत्ययों के आदि में आए लकार, शकार और कवर्ग की भी 'इत्' संज्ञा है ॥ ८ ॥ जिनकी संज्ञा 'इत्' हो उनका लोप हो जाता है ॥ ९ ॥ समसंख्यक स्थानी तथा आदेश यथासंख्य (अर्थात् स्थानि-वर्ग के प्रथम के स्थान में आदेश-वर्ग का प्रथम द्वितीय के स्थान पर द्वितीय········) होते हैं ॥ १० ॥ स्वरित का चिह्न अधिकार का ज्ञापक है ॥ ११ ॥ जिन धातुओं के अनुदात्त स्वर अथवा ङ् की 'इत्' संज्ञा हुई हो उनका प्रयोग आत्मनेपद में होता है ॥ १२ ॥ यदि लकार भाववाचक या कर्मवाचक हो तो भी आत्मनेपद में ही धातु का प्रयोग होता है

१४ कर्तरि कर्मव्यतिहारे।
१५ न गतिहिंसार्थेभ्यः।
१६ इतरेतरान्योन्योपपदाच्च।
१७ नेर्विशः।
१८ परिव्यवेभ्यः क्रियः।
१९ विपराभ्यां जेः।
२० आङो दोऽनास्यविहरणे।
२१ क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च।
२२ समवप्रविभ्यः स्थः।
२३ प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च।
२४ उदोऽनूर्ध्वकर्मणि।
२५ उपान्मन्त्रकरणे।
२६ अकर्मकाच्च।
२७ उद्विभ्यां तपः।
२८ आङो यमहनः।
२९ समो गम्यृच्छिभ्याम्।
३० निसमुपविभ्यो ह्वः।

॥ १३ ॥ क्रिया का यदि परस्पर विनिमय द्योतित होता हो तो धातु आत्मनेपदी होता है ॥ १४ ॥ गत्यर्थक तथा हिंसार्थक धातुओं से क्रिया-विनिमय द्योतित होने पर भी आत्मनेपद नहीं होता ॥ १५ ॥ इतरेतर तथा अन्योन्य पदों के उपपद होने पर भी धातु से आत्मनेपद नहीं होता है ॥ १६ ॥ 'नि' उपसर्ग-विशिष्ट विश् धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥ १७ ॥ 'परि', 'वि' तथा 'अव' उपसर्गों में अन्यतम से विशिष्ट क्री धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥ १८ ॥ 'वि' अथवा 'परा' उपसर्ग से युक्त जि धातु से आत्पनेपद हो जाता है ॥ १९ ॥ यदि क्रिया का फल कर्तृवृत्ती न हो तो मुख-विकास से भिन्न अर्थ में प्रयुज्यमान 'आङ्'-पूर्वक दा धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥ २० ॥

'अनु', 'सम्' अथवा 'परि' उपसर्ग से विशिष्ट क्रीड धातु से भी आत्मनेपद हो जाता है ॥ २१ ॥ 'सम्', 'अव', 'प्र' अथवा 'वि' उपसर्ग से विशिष्ट स्था धातु से भी अत्मनेपद हो जाता है ॥ २२ ॥ अपने अभिप्राय और विवाद-निर्णायक की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त स्था धातु से भी आत्मनेपद ही होता है ॥ २३ ॥ ऊर्ध्वगमन (= उत्थान) से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होने पर 'उत्' उपसर्ग से विशिष्ट स्था धातु से भी आत्मनेपद हो जाता है ॥ २४ ॥ मन्त्रकरण (= स्तुति) अर्थ में प्रयुज्यमान 'उत्-' पूर्वक स्था धातु से भी आत्मनेपद हो जाता है ॥ २५ ॥ अकर्मक होने पर भी 'उत्' पूर्वक स्था धातु में आत्मनेपद हो जाता है ॥ २६ ॥ 'उत्' अथवा 'वि' उपसर्ग से युक्त तप धातु से आत्मनेपद हो जाता ॥ २७ ॥ 'आङ्' उपसर्ग से विशिष्ट यम तथा हन धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥ २८ ॥ 'सम्' उपसर्ग से विशिष्ट अकर्मक गम् और ऋच्छ धातुओं से आत्मनेपद हो जाता है ॥ २२ ॥ 'नि', 'सम्', 'उप' अथवा 'वि' से विशिष्ट ह्वेञ्.

३१ स्पर्धायामाङः ।
३२ गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः ।
३३ अधेः प्रसहने ।
३४ वेः शब्दकर्मणः ।
३५ अकर्मकाच्च ।
३६ संमाननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः ।
३७ कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि ।
३८ वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः ।
३९ उपपराभ्याम् ।
४० आङ उद्गमने ।
४१ वेः पादविहरणे ।
४२ प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् ।
४३ अनुपसर्गाद्वा ।
४४ अपह्नवे ज्ञः ।
४५ अकर्मकाच्च ।

धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥ ३० ॥ स्पर्धा अर्थ में 'आङ्' उपसर्गयुक्त ह्वेञ् धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥ ३१ ॥ गन्धन (= अपकारक की ओर संकेत), भर्त्सना, सेवन, साहसिक कार्य, गुणाधान और प्रशंसा अर्थों में कृ धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥ ३२ ॥ 'अधि' उपसर्ग से युक्त कृ धातु से (पर का) अभिभव अर्थ में आत्मनेपद हो जाता है ॥ ३३ ॥ कर्मकारक के स्थान में किसी प्रकार का शब्द आने पर 'वि' उपसर्ग से युक्त कृ धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥ ३४ ॥ 'वि' उपसर्ग से युक्त अकर्मक कृ धातु से भी आत्मनेपद हो जाता है ॥३५॥ पूजन, उत्क्षेण, आचार्य-करण ज्ञान, भृति (=सेवक-वेतन), ऋण आदि की समाप्ति (= चुकती) और धर्मार्थ विनियोग इन अर्थों में नी धातु से आत्मनेपद होता है ॥ ३६ ॥ शरीरभिन्न-तत्त्व के कर्म (कारक) होने पर नी धातु से कर्तृवाच्य में भी आत्मनेपद हो जाता है ॥ ३७ ॥ अप्रतिरोध, उत्साह तथा तायन (= विस्तार) अर्थों में क्रम धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥ ३८ ॥ 'उप' अथवा 'परा' उपसर्ग से विशिष्ट क्रम धातु से भी आत्मनेपद हो जाता है ॥ ३९ ॥ उद्गमन अर्थ में 'आङ्'-पूर्वक क्रम धातु से भी आत्मनेपद हो जाता है ॥ ४० ॥

'वि' उपसर्ग से विशिष्ट क्रम धातु से पाद-विशेष अर्थ में आत्मनेपद हो जाता है ॥ ४१ । 'प्र' और 'उप' उपसर्ग यदि समान अर्थ के द्योतक हों तो इनमें से अन्यतर से विशिष्ट क्रम धातु से भी आत्मनेपद हो जाता है ॥ ४२ ॥ उपसर्गरहित क्रम धातु से विकल्प से आत्मनेपद होता है ॥ ४३ ॥ अपलाप अर्थ में ज्ञा धातु से भी आत्मनेपद हो जाता है ॥४४॥ अकर्मक ज्ञा धातु से भी आत्मनेपद हो जाता है यदि क्रिया का फल कर्तृगामी न हो तो ॥ ४५ ॥

४६ सम्प्रतिभ्यामनाध्याने ।	५४ समस्तृतीयायुक्तात् ।
४७ भासनोपसंभाषाज्ञानयत्न-विमत्युपमन्त्रणेषु वदः ।	५५ दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे ।
	५६ उपाद्यमः स्वकरणे ।
४८ व्यक्तवाचां समुच्चारणे ।	५७ ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः ।
४९ अनोरकर्मकात् ।	५८ नानोर्ज्ञः ।
५० विभाषा विप्रलापे ।	५९ प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः ।
५१ अवाद् ग्रः ।	६० शदेः शितः ।
५२ समः प्रतिज्ञाने ।	६१ म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च ।
५३ उदश्चरः सकर्मकात् ।	६२ पूर्ववत् सनः ।

'सम्' अथवा 'प्रति' उपसर्ग से विशिष्ट ज्ञा धातु से भी आत्मनेपद हो जाता है यदि धात्वर्थ उत्कण्ठापूर्वक स्मरण न हो तो ॥ ४६ ॥ दीप्ति, उपसान्त्वन, ज्ञान, उत्साह, विमति और उपमन्त्रण इन अर्थों में वर्त्तमान वद धातु से भी आत्मनेपद हो जाता है ॥ ४७ ॥ व्यक्त शब्द बोलनेवाले जीवों के सहोच्चारण के प्रतिपादक वद धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥४८॥ व्यक्तवाणी बोलनेवालों के प्रसङ्ग में प्रयुक्त 'अनु'-पूर्वक अकर्मक वद धातु से भी आत्मनेपद हो जाता है ॥ ४९ ॥ विप्रलाप-प्रतिपादक व्यक्त वचन बोलने वालों के सहोचारण में वद धातु से विकल्प से आत्मनेपद होता है ॥ ५० ॥ 'अव' पूर्वक गृ धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥५१॥ सम्-पूर्वक गृ धातु से भी स्वीकार अर्थ में आत्मनेपद हो जाता है ॥ ५२ ॥ सकर्मक 'उत्'-पूर्वक चर धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥ ५३ ॥ तृतीया-विभक्ति से अर्थतः सम्बद्ध 'सम्'-पूर्वक चर धातु से भी आत्मनेपद हो जाता है ॥५४॥ चतुर्थी के अर्थ में विहित तृतीया से अर्थतः सम्बद्ध 'सम्' पूर्वक दाण् धातु से भी आत्मनेपद हो जाता है ॥ ५५ ॥ 'उप'-पूर्वक यम् धातु से पाणिग्रहण अर्थ में आत्मनेपद हो जाता है ॥ ५६ ॥ सम्-प्रत्ययान्त ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृश् धातुओं से भी आत्मनेपद हो जाता है ॥५७॥ किन्तु सन्नन्त होने पर भी ज्ञा धातु से आत्मनेपद नहीं होता है यदि धातु 'अनु'-पूर्वक हो तो ॥ ५८ ॥ 'प्रति' अथवा 'आङ्' से विषिष्ट श्रु धातु से भी आत्मनेपद नहीं होता ॥ ५९ ॥ शिद्भावी अथवा शितसम्बद्ध शद् धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥ ६० ॥

लुङ् तथा लिङ् लकारों में प्रयुक्त और शित्सम्बन्धी मृ धातु से भी आत्मनेपद हो जाता है ॥ ६१ ॥ सनप्रत्यय के पूर्व यदि कोई धातु आत्मनेपदी रहा हो तो सन्प्रत्यय के बाद भी उससे आत्भनेपद ही होता है ॥ ६२ ॥ जिस

६३ आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य ।

६४ प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु ।

६५ समः क्ष्णुवः ।

६६ भुजोऽनवने ।

६७ णेरणौ यत्कर्म णौ चेत्स कर्ताऽनाध्याने ।

६८ भीस्म्योर्हेतुभये ।

६९ गृधिवञ्च्योः प्रलम्भने ।

७० लियः संमाननशालिनीकरणयोश्च ।

७१ मिथ्योपपदात् कृञोऽभ्यासे

७२ स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले ।

७३ अपाद्वदः ।

७४ णिचश्च ।

७५ समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे ।

७६ अनुपसर्गाज्ज्ञः ।

७७ विभाषोपपदेन प्रतीयमाने ।

धातु से आम्-प्रत्यय का विधान हुआ हो उसके समान अनुप्रयुज्यमान कृ धातु से भी आत्मनेपद ही होता है ॥ ६३ ॥ यज्ञ-पात्र से भिन्न तत्त्व के विषय में प्रयुज्यमा 'प्र'-पूर्वक तथा 'उप'-पूर्वक युज् धातु से, क्रियाफल के अकर्तृगामी होने पर, आत्मनेपद हो जाता है ॥ ६४ ॥ 'सम्' उपसर्ग से विशिष्ट क्ष्णु धातु मे आत्मनेपद हो जाता है ॥ ६५ ॥ अवन (= पालन) से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त भुज् धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥ ६६ ॥ यदि अण्यन्तावस्था की क्रिया ण्यन्तावस्था में भी हो और अण्यन्तावस्था का कर्मकारक ण्यन्तावस्था में कर्त्ता हो तो अनाध्यान (= अस्मरण) अर्थ में ण्यन्त धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥ ६७ ॥ लकारवाच्य कर्त्ता से भय होने पर ण्यन्त 'भी' धातु तथा स्मि धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥ ६८ ॥ प्रलम्भन (= मिथ्याफलकथन) अर्थ में ण्यन्त गृध् तथा वञ्च् धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥ ६९ ॥ ण्यन्त ली धातु से पूजन, तिरस्कार तथा प्रलम्भन अर्थों में आत्मनेपद हो जाता है ॥ ७० ॥ 'मिथ्या' शब्द यदि उपपद हो तो अभ्यासार्थक ण्यन्त कृ धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥ ७१ ॥ स्वरितेत् तथा ञित् धातुओं से कर्तृगामी क्रियाफल होने पर आत्मनेपद हो जाता है ॥ ७२ ॥ 'अप-'-पूर्वक वद् धातु से कर्तृगामी क्रियाफल होनेपर आत्मनेपद हो जाता है ॥ ७३ ॥ कर्तृगामी क्रियाफल होने पर णिजन्त धातु से आत्मनेपद हो जाता है ॥ ७४ ॥ यदि ग्रन्थ-विषयक प्रयोग न हो तो 'सम्', 'उत्' अथवा 'आङ्' उपसर्ग से विशिष्ट यम् धातु से कर्तृगामी क्रियाफल होने पर आत्मनेपद हो जाता है ॥ ७५ ॥ उपसर्ग-रहित ज्ञा धातु से कर्तृगामी क्रियाफल होने पर आत्मनेपद हो जाता है ॥ ७६ ॥ क्रियाफल की कर्तृगामिता यदि उपपद द्वारा प्रतीत हो रही हो तो उपर्युक्त आत्मनेपद विकल्प से होता है ॥ ७७ ॥ पूर्ववर्णित

७८ शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्।	८७ निगरणचलनार्थेभ्यश्च।
७९ अनुपराभ्यां कृञः।	८८ अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्।
८० अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः।	८९ न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः।
८१ प्राद्वहः।	९० वा क्यषः।
८२ परेर्मृषः।	९१ द्युद्भ्यो लुङि।
८३ व्याङ्परिभ्यो रमः।	९२ वृद्भ्यः स्यसनोः।
८४ उपाच्च।	९३ लुटि च क्लृपः।
८५ विभाषाऽकर्मकात्।	
८६ बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः।	

परिस्थितियों से सम्पन्न पूर्वनिर्दिष्ट धातुओं से कर्तृगामी क्रियाफल होने पर परस्मैपद हो जाता है ॥ ७८ ॥ 'अनु' अथवा 'परा' उपसर्ग से विशिष्ट कृ धातु से परस्मैपद हो जाता है ॥ ७९ ॥ 'अभि', 'प्रति' अथवा 'अति' उपसर्ग से विशिष्ट क्षिप् धातु से परस्मैपद हो जाता है ॥ ८० ॥

'प्र' पूर्वक वह धातु मे परस्मैपद हो जाता है ॥ ८१ ॥ 'परि' उपसर्ग से विशिष्ट मृष् धातु से परस्मैपद हो जाता है ॥ ८२ ॥ 'वि', 'आङ्' अथवा 'परि' उपसर्ग से विशिष्ट रम् धातु से परस्मैपद हो जाता है ॥ ८३ ॥ 'उप' उपसर्ग से युक्त रम् धातु से भी परस्मैपद हो जाता है ॥ ८४ ॥ किन्तु 'उप'-पूर्वक रम् धातु यदि अकर्मक हो तो उक्त परस्मैपद विकल्प से होता है ॥ ८५ ॥ ण्यन्त बुध्, युध्, णश्, जन्, इङ्, प्रु, द्रु और स्रु धातुओं से कर्तृगामी क्रियाफल होने पर भी परस्मैपद ही होता है ॥ ८६ ॥ निगरण (= निगलना) तथा चलन अर्थ वाले धातुओं से भी ण्यन्तावस्था में परस्मैपद ही होता है ॥८७॥ अण्यन्तावस्था में अकर्मक तथा चेतनकर्त्तृक धातु से भी ण्यन्तावस्था में परस्मैपद हो जाता है ॥८८॥ पा, दम्, 'आङ्'-पूर्वक यम्, 'आङ्'-पूर्वक यस, 'परि'-पूर्वक मुह, रुच, नृत, वद और वस धातुओं से ण्यन्तावस्था में कर्तृगामी क्रियाफल होने पर परस्मैपद नहीं होता है ॥ ८९ ॥ क्यष्प्रत्ययान्त ण्यन्त धातु से कर्तृगामी क्रियाफल होने पर विकल्प से परस्मैपद नहीं होता ॥९०॥ द्युत् आदि धातुओं से लुङ् लकार में विकल्प से परस्मैपद हो जाता है ॥ ९१ ॥ स्य और सन् प्रत्ययों के परे वृत् आदि धातुओं से विकल्प से परस्मैपद हो जाता है ॥ ९२ ॥ क्लृप् धातु से तो लुट् लकार में भी (तथा स्य और सन् प्रत्ययों के परे भी) विकल्प से ही परस्मैपद होता है ॥९३॥

प्रथमाध्याय का तृतीय पाद समाप्त।

चतुर्थः पादः

१ आकडारादेका संज्ञा ।
२ विप्रतिषेधे परं कार्यम् ।
३ यू स्त्र्याख्यौ नदी ।
४ नेयङुवङ्स्थानावस्त्री ।
५ वामि ।
६ ङिति ह्रस्वश्च ।
७ शेषो घ्यसखि ।
८ पतिः समास एव ।
९ षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा ।
१० ह्रस्वं लघु ।
११ संयोगे गुरु ।
१२ दीर्घं च ।
१३ यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् ।
१४ सुप्तिङन्तं पदम् ।
१५ नः क्ये ।
१६ सिति च ।
१७ स्वादिष्वसर्वनामस्थाने ।

प्रथमाध्याय का चतुर्थ पाद

यहाँ से लेकर 'कडाराः कर्मधारये' सूत्र तक कोई एक ही संज्ञा विहित हो सकती है ॥ १ ॥ तुल्य बल वाले विरोधियों का विरोध प्रस्तुत होने पर परवर्त्ती विधि की ही प्रवृत्ति होती है ॥ २ ॥ ईकारान्त और ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों की संज्ञा 'नदी' है ॥ ३ ॥ इयङ् तथा उवङ् आदेशों के स्थानी शब्दों में 'स्त्री' शब्द से भिन्न शब्दों की संज्ञा 'नदी' नहीं होती ॥ ४ ॥ उपर्युक्त प्रतिषेध आम् प्रत्यय (षष्ठी ब० व०) के परे विकल्प से होता है ॥५॥ ङित् प्रत्यय के परे ह्रस्व इकारान्त एवम् ह्रस्वोकारान्त स्त्रीवाचक शब्दों तथा इयङ् एवम् उवङ् प्रत्ययों के 'स्त्री'-शब्दातिरिक्त स्थानिभूत शब्दों की विकल्प से 'नदी' संज्ञा होती है ॥ ६ ॥ उपर्युक्त शब्दों में सखि शब्द को छोड़ कर ह्रस्वेकारान्त तथा ह्रस्वोकारान्त शब्दों से अतिरिक्त शब्दों की संज्ञा 'घि' है ॥ ७ ॥ पति शब्द की 'घि' यह संज्ञा समास में ही होती है ॥ ८ ॥ षष्ठ्यन्त पद से अर्थतः सम्बद्ध पति शब्द की, वैदिक प्रयोग में, समास न होने पर भी, विकल्प से 'घि' संज्ञा है ॥ ९ ॥ ह्रस्व स्वर की संज्ञा 'लघु' है ॥ १० ॥ संयोग के परवर्त्ती होने पर पूर्ववर्त्ती ह्रस्व स्वर की संज्ञा 'गुरु' हो जाती है ॥ ११ ॥ दीर्घ स्वर की भी संज्ञा 'गुरु' है ॥ १२ ॥ जिस धातु या प्रातिपदिक से प्रत्यय का विधान हुआ हो तदादि शब्दस्वरूप की उस प्रत्यय के परे संज्ञा 'अङ्ग' है ॥ १३ ॥ सुबन्त अथवा तिङन्त शब्दों की संज्ञा 'पद' है ॥ १४ ॥ नकारान्त शब्दों को क्यच्, क्यङ् और क्यष् प्रत्ययों के परे 'पद' संज्ञा है ॥ १५ ॥ सित् प्रत्यय के परे भी पूर्ववर्ती शब्दों की 'पद' संज्ञा हो जाती है ॥ १६ ॥ 'सर्व-नामस्थान' से भिन्न सु आदि प्रत्ययों के परे पूर्ववर्ती शब्दों की संज्ञा 'पद' है

१८ यचि भम्।
१९ तसौ मत्वर्थे।
२० अयस्मयादीनि च्छन्दसि।
२१ बहुषु बहुवचनम्।
२२ द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने।
२३ कारके।
२४ ध्रुवमपायेऽपादानम्।
२५ भीत्रार्थानां भयहेतुः।
२६ पराजेरसोढः।
२७ वारणार्थानामीप्सितः।
२८ अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति।
२९ आख्यातोपयोगे।
३० जनिकर्तुः प्रकृतिः।
३१ भुवः प्रभवः।
३२ कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्।

॥ १७ ॥ 'सर्वनामस्थान' से भिन्न यकारादि अथवा अजादि सु आदि प्रत्ययों के परे पूर्ववर्ती शब्दों की संज्ञा 'भ' है ॥ १८ ॥ मत्वर्थक प्रत्ययों के परे तकारान्त तथा सकारान्त शब्दों की संज्ञा 'भ' है ॥ १९ ॥ वैदिक संस्कृत में अयस्मय आदि शब्दों की शुद्धता के निमित्त आवश्यकतानुसार 'पद' संज्ञा या 'भ' संज्ञा अथवा दोनों संज्ञाएं हो सकती हैं ॥ २० ॥

बहुत्व संख्या की अभिव्यक्ति के लिए बहुवचन का प्रयोग होता है ॥ २१ ॥ द्वित्व तथा एकत्व संख्या की अभिव्यक्ति के लिए क्रमशः द्विवचन तथा एकवचन का प्रयोग होता है ॥ २२ ॥ अब 'कारक' का अधिकार है ॥ २३ ॥ अपाय, अर्थात् विभाग होने पर अवधि (= जिससे विभाग हुआ हो) की संज्ञा 'अपादान' है ॥ २४ ॥ भयार्थक और त्राणार्थक धातुओं का प्रयोग होने पर भय के हेतुभूत कारक की भी 'अपदान' संज्ञा हो जाती है ॥ २५ ॥ 'परा'-पूर्वक जि धातु का प्रयोग यदि हो तो असह्य अर्थ की 'अपादान' संज्ञा हो जाती है ॥ २६ ॥ वारणार्थक धातुओं का प्रयोग होने पर ईप्सित पदार्थ की 'अपादान' संज्ञा हो जाती है ॥ २७ ॥ जिस व्यक्ति से अन्तर्धि (= छिपना) के लिए अपना अदर्शन अभिप्रेत हो उसकी 'अपादान' संज्ञा हो जाती है ॥ २८ ॥ नियम-पूर्वक विद्या-ग्रहण यदि हो तो आख्याता (= अर्थप्रतिपादक = अध्यापक) की 'अपादान' संज्ञा हो जाती है ॥ २९ ॥ जन् धातु के कर्त्ता की जो प्रकृति (= कारण) हो, उसकी 'अपादान' संज्ञा हो जाती है ॥ ३० ॥ भू धातु के कर्त्ता (= उत्पन्न होने वाले) के प्रभव (= प्रकाशन स्थान) की 'अपादान' संज्ञा हो जाती है ॥ ३१ ॥ दान क्रिया के कर्मकारक (= दी जानेवाली वस्तु) से कर्त्ता को जो अभिप्रेत हो (= जिसे कुछ देना हो) उसकी संज्ञा सम्प्रदान है ॥ ३२ ॥ रुच्यर्थक धातुओं

३३ रुच्यर्थानां प्रीयमाणः ।
३४ श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः ।
३५ धारेरुत्तमर्णः ।
३६ स्पृहेरीप्सितः ।
३७ क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः ।
३८ क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म ।
३९ राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः ।
४० प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता ।
४१ अनुप्रतिगृणश्च ।
४२ साधकतमं करणम् ।
४३ दिवः कर्म च ।
४४ परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् ।
४५ आधारोऽधिकरणम् ।
४६ अधिशीङ्स्थासां कर्म ।
४७ अभिनिविशश्च ।

के योग में प्रीयमाण पदार्थ की भी 'सम्प्रदान' संज्ञा है ॥ ३३ ॥ श्लाघ, ह्नु, स्था और शप धातुओं के योग में जिसके प्रति उक्त धातु के अर्थभूत श्लाघा आदि का विज्ञापन करना हो उसकी भी संज्ञा 'सम्प्रदान' है ॥ ३४ ॥ धृ धातु के प्रयोग में उत्तमर्ण (=ऋण देने वाला) की भी 'सम्प्रदान' संज्ञा है ॥ ३५ ॥ स्पृह धातु के प्रयोग में ईप्सित पदार्थ की भी 'संप्रदान' संज्ञा है ॥ ३६ ॥ क्रुध, द्रुह, ईर्ष्या तथा असूया के अर्थ में प्रयुज्यमान धातुओं का प्रयोग होने पर जिसके प्रति कोप व्यक्त किया गया हो उस पदार्थ की भी सम्प्रदान' संज्ञा है ॥ ३७ ॥ किन्तु उपसर्गविशिष्ट क्रुध तथा द्रुह धातु के प्रयोग में जिसके प्रति कोप किया गया हो उस पदार्थ की 'कर्म' संज्ञा हो जाती है ॥३८॥ राध तथा ईक्ष धातु के कारक, जिसके बारे में विविध प्रश्न किये गये हों, की भी 'सम्प्रदान' संज्ञा है ॥ ३९ ॥ 'प्रति' अथवा 'आङ्' उपसर्ग से विशिष्ट (अत एव प्रतिज्ञार्थक) श्रु धातु की पूर्व-क्रिया —अभ्युपगम क्रिया के कर्त्ता कारक की भी 'सम्प्रदान' संज्ञा है ॥ ४० ॥

'अनु' अथवा 'प्रति' उपसर्ग से विशिष्ट गृ धातु की पूर्व-क्रिया के कर्त्ता कारक की भी 'सम्प्रदान' संज्ञा है ॥ ४१ ॥ क्रिया-सिद्धि के लिए कर्त्ता के सर्वाधिक उपकारक कारक की 'करण' संज्ञा है ॥ ४२ ॥ दिव्-धात्वर्थभूत क्रिया के साधकतम कारक की 'कर्म' तथा 'करण' ये दोनों संज्ञाएं हैं ॥ ४३ ॥ परिक्रयण के साधकतम कारक की विकल्प से 'सम्प्रदान' संज्ञा भी है ॥ ४४ ॥ आधारभूत कारक की संज्ञा 'अधिकरण' है ॥ ४५ ॥ 'अधि' उपसर्ग से विशिष्ट शीङ्, स्था तथा आस् धातुओं के आधारभूत कारक की 'कर्म' संज्ञा है ॥ ४६ ॥ 'अभि' अथवा 'नि' उपसर्ग से विशिष्ट विश् धातु के आधारभूत कारक की भी

४८ उपान्वध्याङ्वसः ।
४९ कर्तुरीप्सिततमं कर्म ।
५० तथायुक्तं चानीप्सितम् ।
५१ अकथितं च ।
५२ गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्द-
कर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ ।
५३ हृक्रोरन्यतरस्याम् ।
५४ स्वतन्त्रः कर्ता ।
५५ तत्प्रयोजको हेतुश्च ।
५६ प्राग्रीश्वरान्निपाताः ।
५७ चादयोऽसत्त्वे ।
५८ प्रादयः ।
५९ उपसर्गाः क्रियायोगे ।
६० गतिश्च ।
६१ ऊर्यादिच्विडाचश्च ।
६२ अनुकरणं चानितिपरम् ।
६३ आदरानादरयोः सदसती ।
६४ भूषणेऽलम् ।
६५ अन्तरपरिग्रहे ।
६६ कणेमनसी श्रद्धाप्रतीघाते ।

'कर्म' संज्ञा है ॥ ४७ ॥ 'उप', 'अनु', 'अधि' या 'आङ्' उपसर्ग से विशिष्ट वस धातु के आधारभूत कारक की भी 'कर्म' संज्ञा है ॥ ४८ ॥ कर्त्ता अपनी क्रिया द्वारा जिसे इष्टतम मानता हो उस कारक को 'कर्म' संज्ञा है ॥ ४९ ॥ इष्टतम तत्त्व के समान हीं क्रिया से सम्बद्ध अनीप्सित कारक की भी 'कर्म' संज्ञा है ॥५०॥ जिस कारक का आपादानत्वादि विवक्षित न हो उसकी भी संज्ञा 'कर्म' है ॥५१॥ गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक, भक्षणार्थक, शब्दकर्मक तथा अकर्मक धातुओं के अण्यन्तावस्था के कर्त्ताओं की ण्यन्तावस्था में 'कर्म' संज्ञा हो जाती है ॥ ५२ ॥ हृ धातु तथा कृ धातु के अण्यन्तावस्था के कर्त्ता कारक की भी, विकल्प से, 'कर्म' संज्ञा हो जाती है ॥ ५३ ॥ क्रिया की सिद्धि में जिसे वक्ता 'स्वतन्त्र' तत्त्व के रूप में प्रस्तुत करता हो उसकी संज्ञा 'कर्त्ता' है ॥ ५४ ॥ कर्त्ता के प्रयोजक कारक की 'कर्त्ता' तथा 'हेतु' ये दो संज्ञाएँ हैं ॥ ५५ ॥ "अधिरीश्वरे" से पूर्व परिगणित शब्दों की संज्ञा 'निपात' है ॥ ५६ ॥ द्रव्यार्थकभिन्न 'च' आदि शब्दों की भी संज्ञा 'निपात' ही है ॥ ५७ ॥ अद्रव्यार्थक प्र आदि शब्दों की संज्ञा 'निपात' है ॥ ५८ ॥ किन्तु क्रिया के साथ सम्बद्ध प्र आदि शब्दों की संज्ञा 'उपसर्ग' हो जाती है ॥ ५९ ॥ उक्त परिस्थिति में प्र आदि शब्दों की 'गति' यह संज्ञा भी हो जाती है ॥ ६० ॥

उरी आदि, च्वि-प्रत्ययान्त तथा डाच्-प्रत्ययान्त शब्दों की भी 'गति' यह संज्ञा है ॥ ६१ ॥ 'इति' यह शब्द जिसके बाद न जुड़ा हो ऐसे अनुकरण-भूत शब्द की 'गति' यह संज्ञा है ॥ ६२ ॥ आदरार्थक सत् शब्द और अनादरार्थक असत् शब्द की 'गति' यह संज्ञा है ॥ ६३ ॥ भूषणार्थक अलम् शब्द की भी 'गति' संज्ञा है ॥ ६४ ॥ अपरिग्रहार्थक अन्तः शब्द की 'गति' संज्ञा है ॥ ६५ ॥ श्रद्धाप्रतिघातार्थ मे कणे शब्द तथा मनस् शब्द की भी 'गति' यह

६७ पुरोऽव्ययम् ।
६८ अस्तं च ।
६९ अच्छ गत्यर्थवदेषु ।
७० अदोऽनुपदेशे ।
७१ तिरोऽन्तर्धौ ।
७२ विभाषा कृञि ।
७३ उपाजेऽन्वाजे ।
७४ साक्षात्प्रभृतीनि च ।
७५ अनत्याधान उरसिमनसी ।
७६ मध्ये पदे निवचने च ।
७७ नित्यं हस्ते पाणावुपयमने ।
७८ प्राध्वं बन्धने ।
७९ जीविकोपनिषदावौपम्ये ।
८० ते प्राग्धातोः ।
८१ छन्दसि परेऽपि ।
८२ व्यवहिताश्च ।
८३ कर्मप्रवचनीयाः ।
८४ अनुर्लक्षणे ।
८५ तृतीयार्थे ।

संज्ञा है ॥ ६६ ॥ 'अव्यय'-संज्ञक पुरस् शब्द की भी संज्ञा 'गति' है ॥ ६७ ॥ अनुपलब्ध्यर्थक अस्तम् शब्द की भी संज्ञा 'गति' है ॥ ६८ ॥ गत्यर्थक धातुओं तथा वद धातु के परे अच्छ शब्द की भी 'गति' यह संज्ञा है ॥ ६९ ॥ उपदेशभिन्नार्थक अदस् शब्द की संज्ञा 'गति' है ॥ ७० ॥ व्यवधानार्थक तिरस् शब्द की भी 'गति' यह संज्ञा है ॥ ७१ ॥ किन्तु धातु के परे, व्यवधानार्थक होने पर भी, तिरस् शब्द की 'गति' संज्ञा विकल्प से होती है ॥ ७२ ॥ कृ धातु के परे उपाजे और अन्वाजे शब्दों को भी विकल्प से 'गति' यह संज्ञा हो जाती है ॥ ७३ ॥ कृ धातु के परे साक्षात् आदि शब्दों की भी विकल्प से 'गति' संज्ञा हो जाती है ॥ ७४ ॥ उपश्लेषण का अभाव होने पर कृ धातु के परे उरसि तथा मनस् शब्द की भी 'गति' संज्ञा हो जाती है ॥ ७५ ॥ उपश्लेषणाभाव में कृ धातु के परे मध्ये, पदे और निवचने इन शब्दों की भी 'गति' संज्ञा हो जाती है ॥७६॥ किन्तु विवाह अर्थ में हस्ते और पाणौ शब्दों की 'गति' यह संज्ञा नित्य है ॥ ७७ ॥ बन्धन के निमित्त हुए आनुकूल्य के वाचक प्राध्वम् शब्द की भी कृ धातु के परे 'गति' संज्ञा नित्य है ॥ ७८ ॥ औपम्य के प्रतीयमान होने पर कृ धातु के परे जीविका और उपनिषद् इन दोनों शब्दों की भी नित्य 'गति' संज्ञा हो जाती है ॥७९॥ 'गति'-संज्ञक तथा 'उपसर्ग'-संज्ञक शब्दों का प्रयोग धातु से अव्यवहित पूर्व में करना चाहिए ॥ ८० ॥

वेद में इनका प्रयोग धातु के बाद में भी होता है ॥ ८१ ॥ वेद में इनका व्यवहित प्रयोग भी देखा जाता है ॥ ८२ ॥ यहाँ से आगे 'कर्मप्रवचनीय' संज्ञा का अधिकार है ॥ ८३ ॥ लक्षण के द्योतित होने पर अनु इस शब्द की संज्ञा 'कर्मप्रवचनीय' है ॥८४॥ तृतीया का अर्थ द्योतित होने पर भी अनु शब्द की संज्ञा

८६ हीने।
८७ उपोऽधिके च।
८८ अपपरी वर्जने।
८९ आङ् मर्यादावचने।
९० लक्षणेत्थंभूताख्यानभाग-
वीप्सासु प्रतिपर्यनवः।
९१ अभिरभागे।
९२ प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः।
९३ अधिपरी अनर्थकौ।
९४ सुः पूजायाम्।
९५ अतिरतिक्रमणे च।
९६ अपिः पदार्थसम्भावनान्वव-
सर्गगर्हासमुच्चयेषु।
९७ अधिरीश्वरे।
९८ विभाषा कृञि।
९९ लः परस्मैपदम्।
१०० तङानावात्मनेपदम्।
१०१ तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्य-
मोत्तमाः।

'कर्मप्रवचनीय' हो जाती है ॥ ८५ ॥ हीनता के द्योतित होने पर भी अनु शब्द की उक्त संज्ञा है ॥ ८६ ॥ अधिकता अथवा हीनता के द्योतित होने पर उप शब्द की संज्ञा 'कर्मप्रवचनीय' हो जाती है ॥ ८७ ॥ वर्जन अर्थ के द्योतित होने पर अप और परि शब्दों की संज्ञा 'कर्मप्रवचनीय' है ॥ ८८ ॥ मर्यादा और अभिविधि के द्योतित होने पर आङ् शब्द की भी संज्ञा 'कर्मप्रवचनीय' हो जाती है ॥ ८९ ॥ लक्षण, इत्थम्भूताख्यान, भाग एवम् वीप्सा के द्योतनार्थ प्रयुज्यमान प्रति, परि और अनु शब्दों को भी 'कर्मप्रवचनीय' यह संज्ञा है ॥९०॥ भाग को छोड़कर अन्य उपर्युक्त अर्थों के द्योतित होने पर अभि शब्द की भी 'कर्मप्रवचनीय' संज्ञा हो जाती है ॥ ९१ ॥ प्रतिनिधि और प्रतिदान अर्थों के द्योतित होने पर प्रति इस शब्द को भी 'कर्मप्रवचनीय' संज्ञा हो जाती है ॥ ९२ ॥ अनर्थक अधि और परि शब्द की भी संज्ञा 'कर्मप्रवचनीय' है ॥९३॥ पूजा अर्थ में सु शब्द की भी संज्ञा 'कर्मप्रवचनीय' है ॥ ९४ ॥ अति शब्द की 'कर्मप्रवचनीय' संज्ञा अतिक्रमण अर्थ में भी है और पूजा अर्थ में भी ॥ ९५ ॥ पदार्थ, सम्भावना, अन्ववसर्ग, गर्हा अथवा समुच्चय अर्थों में वर्तमान अपि शब्द की भी 'कर्म-प्रवचनीय' संज्ञा है ॥ ९६ ॥ स्वस्वाभिभाव-सम्बन्ध-प्रतिपादक अधि शब्द की भी संज्ञा 'कर्मप्रवचनीय' है ॥ ९७ ॥ किन्तु कृ धातु के परे अधि शब्द की उक्त संज्ञा विकल्प से होती है ॥ ९८ ॥ लकार के स्थान में विहित आदेशों की संज्ञा 'परस्मैपद' है ॥ ९९ ॥ किन्तु तङ् प्रत्याहार (=त—महिङ्) तथा शानच् और कानच् इन प्रत्ययों की संज्ञा 'आत्मनेपद' है ॥ १०० ॥

परस्मैपदी एवम् आत्मनेपदी तिङ् (=तिप्—महिङ्) के प्रत्येक त्रिक

१०२ तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः ।
१०३ सुपः ।
१०४ विभक्तिश्च ।
१०५ युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः ।
१०६ प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एकवच्च ।
१०७ अस्मद्युत्तमः ।
१०८ शेषे प्रथमः ।
१०९ परः सन्निकर्षः संहिता ।
११० विरामोऽवसानम् ।

इति प्रथमोध्यायः ॥

(= तीन प्रत्ययों का समूह) की क्रमशः 'प्रथम', 'मध्यम' और 'उत्तम' ये संज्ञाएँ हैं ॥ १०१ ॥ प्रत्येक त्रिक के प्रथम, द्वितीय और तृतीय प्रत्ययों की क्रमशः 'एकवचन', 'द्विवचन' और 'बहुवचन' ये संज्ञाएं हैं ॥ १०२ ॥ सुप् (= सु—सुप्) प्रत्ययों के प्रत्येक त्रिक के प्रथम, द्वितीय और तृतीय प्रत्ययों की भी क्रमशः 'एकवचन', 'द्विवचन' और 'बहुवचन' संज्ञाएं हैं ॥ १०३ ॥ सुप् और तिङ् प्रत्ययों के सब त्रिकों की 'विभक्ति' यह संज्ञा भी है ॥ १०४ ॥ तिङ्समानाधिकरण युष्मत् शब्द के, व्यवहित या अव्यवहित रूप में, प्रयुज्यमान होने पर भी मध्यम पुरुष होता है और अप्रयुज्यमान होने पर भी ॥ १०५ ॥ परिहास यदि गम्यमान हो तो मन् धातु के उपपद होने पर धातु से मध्यम पुरुष और उपपदीभूत मन् धातु से उत्तमपुरुषीय एकवचन हो जाता है ॥ १०६ ॥ किन्तु तिङ्समानाधिकरण अस्मद् शब्द के, व्यवहित या अव्यवहित रूप में प्रयुज्यमान होने पर भी उत्तम पुरुष होता है एवम् अप्रयुज्यमान होने पर भी (उत्तम पुरुष हो जाता है) ॥ १०७ ॥ मध्यम और उत्तम पुरुषों में से किसी की सम्भावना जहाँ न हो वहाँ प्रथम पुरुष हो जाता है ॥ १०८ ॥ वर्णों के परम सन्निकर्ष को 'संहिता' कहते हैं ॥ १०९ ॥ वर्णों के अभाव (= अन्त) की संज्ञा 'अवसान' है ॥११०॥

प्रथमाध्याय का चतुर्थ पाद समाप्त ।

प्रथमाध्याय समाप्त ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१ समर्थः पदविधिः ।
२ सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे ।
३ प्राक्कडारात् समासः ।
४ सह सुपा ।
५ अव्ययीभावः ।
६ अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासंप्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसंपत्तिसाकल्यान्तवचनेषु ।
७ यथाऽसादृश्ये ।
८ यावदवधारणे ।
९ सुप्प्रतिना मात्रार्थे ।
१० अक्षशलाकासंख्याः परिणा ।
११ विभाषा ।
१२ अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या ।
१३ आङ् मर्यादाभिविध्योः ।
१४ लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये ।

द्वितीयाध्याय का प्रथम पाद

पदसम्बन्धी विधि समर्थाश्रित होती है ॥ १ ॥ यदि स्वरविधान कर्त्तव्य हो तो 'आमन्त्रित'-संज्ञक शब्द के परे रहते पूर्ववर्ती सुबन्त पद परवर्त्ती आमन्त्रित पद के अङ्ग के समान कार्यभागी होता है ॥ २ ॥ 'कडाराः कर्मधारये' इस सूत्र तक निर्दिष्ट विधियों की संज्ञा 'समास' है ॥ ३ ॥ समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है ॥४॥ आगे विहित होने वाले समासों की संज्ञा 'अव्ययीभाव' है ॥५॥ विभक्ति तथा समीप आदि अर्थों में वर्तमान अव्यय का सुबन्त पद के साथ अव्ययीभाव समास हो जाता है ॥ ६ ॥ सादृश्यभिन्न अर्थ में वर्तमान 'यथा' इस अव्यय का सुबन्त पद के साथ अव्ययीभाव समास हो जाता है ॥ ७ ॥ अवधारणार्थक 'यावत्' शब्द का सुबन्त पद के साथ अव्ययीभाव समास हो जाता है ॥ ८ ॥ अल्पार्थक 'प्रति' शब्द का सुबन्त पद के साथ अव्ययीभाव समास हो जाता है ॥ ९ ॥ अक्ष शब्द, शलाका शब्द और संख्यावाचक शब्दों का 'परि' इस अव्यय के साथ अव्ययीभाव समास हो जाता है ॥१०॥ यहाँ से 'विभाषा' (= विकल्प से) का अधिकार है ॥ ११ ॥ अप, परि, बहिस् एवम् अञ्चु इन शब्दों का पञ्चम्यन्त पद के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास होता है ॥ १२ ॥ मर्यादा और अभिविधि अर्थों में वर्तमान 'आङ्' इस अव्यय का पञ्चम्यन्त पद के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास हो जाता है ॥ १३ ॥ चिह्नार्थक सुबन्त पद के साथ आभिमुख्यार्थक 'अभि' और 'प्रति' शब्दों का विकल्प से

१५ अनुर्यत्समया।
१६ यस्य चायामः।
१७ तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च।
१८ पारे मध्ये षष्ठ्या वा।
१९ संख्या वंश्येन।
२० नदीभिश्च।
२१ अन्यपदार्थे च संज्ञायाम्।
२२ तत्पुरुषः।
२३ द्विगुश्च।
२४ द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः।
२५ स्वयं क्तेन।
२६ खट्वा क्षेपे।
२७ सामि।
२८ कालाः।

अव्ययीभाव समास हो जाता है ॥ १४ ॥ जिस लक्षण के सामीप्य का अभिधान 'अनु' शब्द करता हो उस लक्षण के वाचक सुबन्त पद के साथ 'अनु' शब्द का विकल्प से अव्ययीभाव समास हो जाता है ॥ १५ ॥ जिस लक्षण का आयाम (=दीर्घता) का अभिधान 'अनु' शब्द से हुआ हो उस लक्षण के वाचक सुबन्त के साथ भी 'अनु' शब्द का विकल्प से अव्ययीभाव समास हो जाता है ॥ १६ ॥ अव्ययीभावसमास-निष्पन्न तिष्ठद्गु आदि शब्दों का निपातन है ॥ १७ ॥ पारे तथा मध्ये शब्दों का षष्ठ्यन्त पद के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास हो जाता है ॥ १८ ॥ विद्याप्रयुक्त अथवा जन्मप्रयुक्त वंश में उत्पन्न व्यक्ति के वाचक सुबन्त पद के साथ संख्यावाचक पद का विकल्प से अव्ययीभाव समास हो जाता है ॥ १९ ॥ नदियों के वाचक पदों के साथ भी संख्यावाचक पद का विकल्प से अव्ययीभाव समास हो जाता है ॥ २० ॥

समस्त पद यदि किसी अन्य पदार्थ की संज्ञा हो तो नदीवाचक पदों के साथ सुबन्त पद का (नित्य) अव्ययीभाव समास होता है ॥ २१ ॥ 'बहुव्रीहि' इस संज्ञा के अधिकार से पूर्व 'तत्पुरुष' संज्ञा का अधिकार समझना चाहिए ॥२२॥ द्विगु समास की भी संज्ञा 'तत्पुरुष' है ॥ २३ ॥ द्वितीयान्त पद का श्रित आदि शब्दों के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ २४ ॥ स्वयम् इस पद का क्त-प्रत्ययान्त पद के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ २५ ॥ यदि समस्त पद से निन्दा गम्यमान हो तो द्वितीयान्त खट्वा शब्द का क्त-प्रत्ययान्त शब्द के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ २६ ॥ 'सामि' इस अव्यय शब्द का क्त-प्रत्ययान्त पद के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ २७ ॥ कालवाचक द्वितीयान्त शब्दों का क्त-प्रत्ययान्त पद के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ २८ ॥ अत्यन्त-

२९ अत्यन्तसंयोगे च।

३० तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन।

३१ पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुण-मिश्रश्लक्ष्णैः।

३२ कर्तृकरणे कृता बहुलम्।

३३ कृत्यैरधिकार्थवचने।

३४ अन्नेन व्यञ्जनम्।

३५ भक्ष्येण मिश्रीकरणम्।

३६ चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुख-रक्षितैः।

३७ पञ्चमी भयेन।

३८ अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तै-रल्पशः।

३९ स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन

४० सप्तमी शौण्डैः।

४१ सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च।

संयोग यदि गम्यमान हो तो कालवाचक द्वितीयान्त पद का सुबन्त पद के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ २९ ॥ तृतीयान्त शब्द का अर्थ शब्द और उस गुण के वाचक सुबन्त पद के साथ भी विकल्प से तत्पुरुष समास हो जाता है जिस गुण का सम्पादन तृतीयान्त पदार्थ द्वारा ही हुआ हो ॥ ३० ॥ पूर्व, सदृश, सम, न्यूनार्थक शब्द, कलह, निपुण, मिश्र और श्लक्ष्ण शब्दों के साथ तृतीयान्त शब्द का विकल्प से तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ३१ ॥ कर्तृतृतीयान्त तथा करणतृतीयान्त पदों का कृदन्त पद के साथ बाहुल्येन तत्पुरुष समास होता है ॥ ३२ ॥ यदि अधिकार्थवचन (=व्याजस्तुति) गम्यमान हो तो कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों के साथ कर्तृतृतीयान्त और करणतृतीयान्त पदों का विकल्प से तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ३३ ॥ व्यञ्जनवाचक शब्द का अन्न-वाचक सुबन्त पद के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ३४ ॥ मिश्रीकरणवाचक तृतीयान्त पद का भक्ष्यार्थक सुबन्त पद के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ३५ ॥ तदर्थ (= किसी पदार्थ के लिए अपेक्षित साधनविशेष) एवं अर्थ शब्द, बलि शब्द, हित शब्द, सुख शब्द और रक्षित शब्द के साथ चतुर्थीविभक्त्यन्त पद का विकल्प से तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ३६ ॥ पञ्चम्यन्त सुबन्त का भय शब्द के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ३७ ॥ कुछ विशेष प्रकार के पञ्चम्यन्त पदों का अपेत, अपोढ, मुक्त, पतित और अपत्रस्त पदों के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास हो जाता है ॥३८॥ स्तोकार्थक, अन्तिकार्थक, दूरार्थक शब्दों और कृच्छ्र शब्द यदि पञ्चम्यन्त हों तो इनका क्त-प्रत्ययान्त शब्द के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ३९ ॥ सप्तम्यन्त पद का शौण्ड आदि सुबन्तों के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥४०॥

सप्तम्यन्त पद का सिद्ध, शुष्क, पक्व और बन्ध शब्दों के साथ भी तत्पुरुष

४२ ध्वाङ्क्षेण क्षेपे ।
४३ कृत्यैर्ऋणे ।
४४ संज्ञायाम् ।
४५ क्तेनाहोरात्रावयवाः ।
४६ तत्र ।
४७ क्षेपे ।
४८ पात्रेसमितादयश्च ।
४९ पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनव-केवलाः समानाधिकरणेन ।
५० दिक्संख्ये संज्ञायाम् ।
५१ तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च ।
५२ संख्यापूर्वो द्विगुः ।
५३ कुत्सितानि कुत्सनैः ।
५४ पापाणके कुत्सितैः ।
५५ उपमानानि सामान्यवचनैः ।
५६ उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ।

समास हो जाता है ॥ ४१ ॥ यदि समस्त पद से निन्दा प्रतीत होती हो तो ध्वांक्ष-(=काक-) वाचक पदों के साथ सप्तम्यन्त पद का तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ४२ ॥ समस्त पद से ऋण गम्यमान होने पर कृत्यप्रत्ययान्त पदों के साथ सप्तम्यन्त पद का तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ४३ ॥ समस्तपद यदि संज्ञा हो तो भी सप्तम्यन्त पद का सुबन्त पद के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ४४ ॥ सदनावयववाचक तथा रात्र्यवयववाचक सप्तम्यन्त पदों का क्त-प्रत्ययान्त पद साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ४५ ॥ 'तत्र' इस सप्तम्यन्त पद का भी क्त-प्रत्ययान्त सुबन्त के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ४६ ॥ समस्त पद से निन्दा यदि गम्यमान हो तो भी सप्तम्यन्त पद का क्त-प्रत्ययान्त शब्द के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ४७ ॥ तत्पुरुष समास से व्युत्पन्न पात्रेसमित आदि पदों का निपातन है ॥ ४८ ॥ पूर्वकालार्थक शब्द, एक, सर्व, जरत्, पुराण, नव और केवल इन शब्दों का समानाधिकरण सुबन्त के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ४९ ॥ दिग्वाचक तथा संख्यावाचक शब्दों का, यदि समस्त पद संज्ञा हो तो, समानाधिकरण सुबन्त के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ५० ॥ तद्धितार्थविषय मे, उत्तरपद के परे और समाहार-प्रतिपादन के लिए दिग्वाचक तथा संख्यावाचक शब्दों का सुबन्त पद के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ५१ ॥ संख्यावाची पूर्वपद वाले तत्पुरुष समास की संज्ञा 'द्विगु' है ॥ ५२ ॥ कुत्सित-पदार्थवाची सुबन्त का कुत्सावाचक सुबन्त के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ५३ ॥ कुत्सितवाचक सुबन्त पद के साथ पाप तथा अणक शब्दों का तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ५४ ॥ उपमानवाचक सुबन्त पदों का साधारण-धर्मवाचक सुबन्त पद के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ५५ ॥ उपमेय-वाचक पद का व्याघ्र आदि उपमानवाचक सुबन्त के साथ तत्पुरुष समास हो

५७ विशेषणं विशेष्येण बहुलम्।

५८ पूर्वापरप्रथमचरमजघन्य-
समानमध्यमध्यमवीराश्च।

५९ श्रेण्यादयः कृतादिभिः।

६० क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ्।

६१ सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः

६२ वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानम्

६३ कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने।

६४ किं क्षेपे।

६५ पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टि-
धेनुवशावेहद्बष्कयणीप्रवक्तृ-
श्रोत्रियाध्यापकधूर्तैर्जातिः।

६६ प्रशंसावचनैश्च।

६७ युवा खलतिपलितवलिन-
जरतीभिः।

६८ कृत्यतुल्याख्या अजात्या।

६९ वर्णो वर्णेन।

जाता है यदि साधारणधर्मवाचक पद का प्रयोग न हुआ हो तो ॥ ५६ ॥ विशेषणवाचक सुबन्त पद का विशेष्यवाचक समानाधिकरण पद के साथ बाहुल्येन तत्पुरुष समास (=कर्मधारय) हो जाता है ॥ ५७ ॥ पूर्व, अपर आदि शब्दों का भी समानाधिकरण सुबन्त पद के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ५८ ॥ श्रेणी आदि सुबन्त पदों का कृत आदि समानाधिकरण सुबन्तों के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ५९ ॥ नञ्‌युक्त क्त-प्रत्ययान्त पद के साथ नञ्-रहित क्त-प्रत्ययान्त पद का तत्पुरुष समास हो जाता है यदि नञ् से अतिरिक्त क्त-प्रत्ययान्त शब्द अभिन्न हों तो ॥ ६० ॥

सत्, महत्, परम, उत्तम और उत्कृष्ट शब्दों का पूज्यमानवाचक सुबन्त पदों के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ६१ ॥ पूज्यमानवाचक सुबन्त पद का वृन्दारक, नाग और कुञ्जर शब्दों के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ६२ ॥ जातिविषयक परिप्रश्न के प्रतिपादक कतर और कतम शब्दों का समर्थ सुबन्त पद के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ६३ ॥ समस्त पद से निन्दा गम्यमान होने पर किं शब्द का समर्थ सुबन्त पद के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ६४ ॥ पोटा आदि शब्दों के साथ जातिवाचक सुबन्त पद का तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ६५ ॥ प्रशंसावाची सुबन्त पदों के साथ भी जातिवाचक सुबन्त पद का तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ६६ ॥ समानाधिकरण खलति आदि सुबन्त पदों के साथ युवन् शब्द का तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ६७ ॥ कृत्यप्रत्ययान्त तथा तुल्यशब्दपर्याय सुबन्त पदों का जातिवाचकभिन्न समानाधिकरण सुबन्त के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ६८ ॥ वर्णविशेष-वाचक सुबन्त का अन्य वर्णविशेष के वाचक सुबन्त के साथ तत्पुरुष समास हो

७० कुमारः श्रमणादिभिः ।
७१ चतुष्पादो गर्भिण्या । ।
७२ मयूरव्यंसकादयश्च ।

द्वितीयः पादः

१ पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे ।
२ अर्धं नपुंसकम् ।
३ द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम् ।
४ प्राप्तापन्ने च द्वितीयया ।
५ कालाः परिमाणिना ।
६ नञ् ।
७ ईषदकृता ।
८ षष्ठी ।
९ याजकादिभिश्च ।
१० न निर्धारणे ।
११ पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन ।

जाता है ॥ ६९ ॥ श्रमण आदि सुबन्तपदों के साथ कुमार शब्द का तत्पुरुष समास हो जाता है ॥७०॥ चतुष्पाद्वाचक सुबन्त का गर्भिणीवाचक सुबन्त के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ७१ ॥ मयूरव्यंसक आदि पदों में तत्पुरुष समास का निपातन है ॥ ७२ ॥

द्वितीयाध्याय का प्रथम पाद समाप्त ।

द्वितीयाध्याय का द्वितीय पाद

अवयवी यदि एकत्वसंख्यायुक्त हो तो उसके वाचक सुबन्त के साथ अवयवार्थक पूर्व, अपर, अधर और उत्तर इन शब्दों का तत्पुरुष समास हो जाता है ॥१॥ समानांशवाचक नपुंसकलिङ्ग अर्ध शब्द का भी अवयविवाचक सुबन्त पद के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ २ ॥ एकत्वसंख्यायुक्त अवयवि-वाचक पद के साथ द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और तुर्य शब्दों का विकल्प से तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ३ ॥ प्राप्त तथा आपन्न शब्दों का द्वितीयान्त पद के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥४॥ परिमाणयुक्त द्रव्य के वाचक सुबन्त के साथ परिमाणवाचक काल शब्द का तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ५ ॥ समर्थ सुबन्त के साथ नञ् इस अव्यय का तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ६ ॥ कृदन्तभिन्न सुबन्त के साथ ईषत् शब्द का तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ७ ॥ षष्ठ्यन्त पद का समर्थ सुबन्त के साथ तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ८ ॥ षष्ठ्यन्त पद का याजक आदि सुबन्त के साथ भी तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ ९ ॥ निर्धारण अर्थ मे विहित षष्ठी से युक्त पद का सुबन्त पद के साथ तत्पुरुष समास नहीं होता ॥ १० ॥ पूरणार्थक-प्रत्यययुक्त, गुणार्थक, सत्-(= शतृ और शानच्) प्रत्ययान्त शब्द, अव्ययसंज्ञक, तव्यप्रत्ययान्त और समानाधिकरण (= भिन्नप्रवृ-

१२ क्तेन च पूजायाम्।
१३ अधिकरणवाचिना च।
१४ कर्मणि च।
१५ तृजकाभ्यां कर्तरि।
१६ कर्तरि च।
१७ नित्यं क्रीडाजीविकयोः।
१८ कुगतिप्रादयः।
१९ उपपदमतिङ्।
२० अमैवाव्ययेन।
२१ तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्।
२२ क्त्वा च।
२३ शेषो बहुव्रीहिः।
२४ अनेकमन्यपदार्थे।
२५ सङ्ख्ययाव्ययासन्नादूराधिकसङ्ख्याः संख्येये।

तिनिमित्तक होकर भी एक पदार्थ के तात्पर्यतः प्रतिपादक) शब्दों के साथ भी षष्ठ्यन्त पद का तत्पुरुष समास नहीं होता ॥ ११ ॥ पूजार्थकक्त-प्रत्ययान्त सुबन्त के साथ भी षष्ठ्यन्त पद का तत्पुरुष समास नही होता ॥ १२ ॥ अधिकरणार्थकक्त-प्रत्ययान्त सुबन्त के साथ भी षष्ठ्यन्त पद का तत्पुरुष समास नही होता ॥ १३ ॥ कर्मविहितषष्ठ्यन्त पद का भी समर्थ सुबन्त के साथ तत्पुरुष समास नहीं होता ॥ १४ ॥ तृच्प्रत्ययान्त तथा अकप्रत्ययान्त (ण्वुल् >अक) सुबन्त के साथ भी कर्तृविहितषष्ठ्यन्त पद का तत्पुरुष समास नहीं होता ॥ १५ ॥ कर्त्ता मे विहित तृच् तथा अक प्रत्यों से विशिष्ट सुबन्त के साथ भी षष्ठ्यन्त पद का तत्पुरुष समास नहीं होता १६॥ क्रीडा तथा जीविका अर्थों मैं प्रयुज्यमान अक-प्रत्ययान्त सुबन्त के साथ षष्ठ्यन्त पद का नित्य तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ १७ ॥ 'कु' शब्द, 'गति-संज्ञक शब्द तथा प्र आदि शब्दों का समर्थ सुबन्त के साथ नित्य तत्पुरुष समास होता है ॥ १८ ॥ तिङन्तभिन्न उपपद का समर्थ शब्दान्तर के साथ नित्य तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ १९ ॥ तिङन्तभिन्न उपपद का यदि अव्यय के साथ तत्पुरुष समास होता है तो केवल अमन्त अव्यय के साथ ही ॥ २० ॥

" उपदंशस्तृतीयायाम्" इस सूत्र से लेकर आगे जितने उपपद हैं उनका भी मात्र अमन्त अव्यय के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास होता है ॥ २१ ॥ तृतीया-प्रभृति उपपदों का क्त्वाप्रत्ययान्त पद के साथ भी विकल्प से तत्पुरुष समास हो जाता है ॥ २२ ॥ अवशिष्ट समासों की संज्ञा 'बहुव्रीहि' है ॥ २३ ॥ अन्य पदार्थ के प्रतिपाद अनेक समानाधिकरण सुबन्त पदों का परस्पर बहुव्रोहि समास हो जाता है ॥२४॥ संख्याविशिष्ट पदार्थ की अभिव्यक्ति के लिए औपचारिक रूप मे प्रयुक्त संख्यावाचक शब्द के साथ अव्ययसंज्ञक शब्द, आसन्न, अदूर,

२६ दिङ्नामान्यन्तराले ।
२७ तत्र तेनेदमिति सरूपे ।
२८ तेन सहेति तुल्ययोगे ।
२९ चार्थे द्वन्द्वः ।
३० उपसर्जनं पूर्वम् ।
३१ राजदन्तादिषु परम् ।
३२ द्वन्द्वे घि ।
३३ अजाद्यदन्तम् ।
३४ अल्पाच्तरम् ।
३५ सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ ।
३६ निष्ठा ।
३७ वाहिताग्न्यादिषु ।
३८ कडाराः कर्मधारये ।

तृतीयः पादः

१ अनभिहिते ।
२ कर्मणि द्वितीया ।

अधिक और संख्यावाचक शब्दों का बहुव्रीहिं समास हो जाता है ॥ २५ ॥ समस्त पद द्वारा यदि दिशाओं का अन्तराल (=मध्यभाग) प्रतिपाद्य हो तो दिग्वाचक सुबन्त पदों का परस्पर बहुव्रीहि समास हो जाता है ॥ २६ ॥ 'इदम्' (=यह) इस अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए समान स्वरूप वाले सप्तम्यन्त पदों मे और समान स्वरूप के तृतीयान्त पदों मे भी परस्पर बहुव्रीहि समास हो जाता है ॥ २७ ॥ तुल्ययोगार्थक सह शब्द का तृतीयान्त सुबन्त के साथ बहुव्रीहि समास हो जाता है ॥ २८ ॥ 'च' इस निपात के अर्थ मे वर्त्तमान अनेक सुबन्त पदों मे परस्पर द्वन्द्व समास हो जाता है ॥ २९ ॥ समास मे 'उपसर्जन'-संज्ञक शब्द का प्रयोग पहले करना चाहिए ॥ ३० ॥ किन्तु राजदन्त आदि समस्त पदों मे पूर्व-प्रयोगार्ह उपसर्जनीभूत पदों का परप्रयोग हो जाता है ॥ ३१ ॥ द्वन्द्व समास मे 'घि'-संज्ञक शब्द का पूर्वप्रयोग होता है ॥ ३२ ॥ द्वन्द्व समास में अजादि एवं ह्रस्व अकारान्त शब्द का पूर्वप्रयोग होता है ॥ ३३ ॥ द्वन्द्व समास मे उस शब्द का पूर्वप्रयोग होता है जिसमे स्वरों की संख्या न्यूनतर हो ॥ ३४ ॥ बहुव्रीहि समास मे सप्तम्यन्त पद तथा विशेषणवाचक पद का पूर्वप्रयोग होता है ॥ ३५ ॥ बहुव्रीहि समास मे 'निष्ठा'-संज्ञकप्रत्ययान्त पदों का भी पूर्वप्रयोग हो जाता है ॥ ३६ ॥ आहिताग्नि आदि बहुव्रीहि समास मे 'निष्ठा'-प्रत्ययान्त पदों पूर्वप्रयोग वैकल्पिक है ॥ ३७ ॥ कर्मधारय समास मे कडार आदि शब्दों का पूर्वप्रयोग भी वैकल्पिक है ॥ ३८ ॥

द्वितीयाध्याय का द्वितीय पाद समाप्त ।

द्वितीयाध्याय का तृतीय पाद

यहाँ से आगे "अनभिहिते" (=अनुक्त होने पर) का अधिकार है ॥ १ ॥ कर्म के अनुक्त होने पर द्वितीया होती है ॥ २ ॥ वैदिक क्षेत्र मे हु धातु

३ तृतीया च होश्छन्दसि।
४ अन्तरान्तरेणयुक्ते।
५ कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे।
६ अपवर्गे तृतीया।
७ सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये।
८ कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया।
९ यस्मादधिकं यस्य चेश्वर-वचनं तत्र सप्तमी।
१० पञ्चम्यपाङ्परिभिः।
११ प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्।
१२ गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि।
१३ चतुर्थी सम्प्रदाने।
१४ क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः।
१५ तुमर्थाच्च भाववचनात्।
१६ नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालं-वषड्योगाच्च।

के कर्म कारक से तृतीया भी होती है और द्वितीया भी ॥ ३ ॥ अन्तरा और अन्तरेण शब्दों के योग मे द्वितीया विभक्ति हो जाती है ॥ ४ ॥ अत्यन्तसंयोग की प्रतीति होने पर कालवाचक और मार्गवाचक शब्दों से द्वितीया हो जाती है ॥ ५ ॥ किन्तु फलप्राप्ति के बाद क्रिया समाप्त होने पर कालवाचक और मार्ग-वाचक शब्दों से तृतीया हो जाती है यदि अत्यन्तसंयोग गम्यमान हो तो ॥ ६ ॥ दो कारकों के मध्य वर्त्तमान कालवाचक और मार्गवाचक शब्दों से सप्तमी भी होती है और पञ्चमी भी ॥ ७ ॥ 'कर्मप्रवचनीय'-संज्ञक शब्द से युक्त शब्द से द्वितीया होती है ॥ ८ ॥ 'कर्मप्रवचनीय'-संज्ञक शब्द से युक्त होने पर जिससे किसी तत्त्व को अधिक तथा जिसे ईश्वर अथवा जिसके ईश्वरत्व का प्रतिपादन किया गया हो तद्वाचक शब्दों से सप्तमी विभक्ति हो जाती है ॥ ९ ॥ 'अप', 'आङ्' और 'परि' इनमे से अन्यतम 'कर्मप्रवचनीय' का यदि योग हो तो पञ्चमी हो जाती है ॥ १० ॥ 'कर्म-प्रवचनीय' से युक्त होने पर जिससे प्रतिनिधित्व किया गया हो तथा जिसके बदले कुछ दिया जा रहा हो तद्वाचक पदों से भी पञ्चमी हो जाती है ॥ ११ ॥ जिन गमनार्थक धातुओं की क्रिया चेष्टात्मक हो उनके मार्ग-भिन्न कर्मकारक से द्वितीया और चतुर्थी विभक्तियाँ हो जाती है ॥ १२ ॥ सम्प्रदान कारक से चतुर्थी विभक्ति होती है ॥ १३ ॥ एक क्रिया के लिए की गई अन्य क्रिया का वाचक पद हो उपपद के रूप मे जिसके ऐसे अप्रयुज्यमान धातु के अनुक्त कर्म कारक से भी चतुर्थी विभक्ति हो जाती है ॥ १४ ॥ तुमुन्प्रत्ययसमानार्थक भाववचन प्रत्यय (= "भाव-वचनाश्च" सूत्र से विहित प्रत्यय) से युक्त प्रातिपदिक से भी चतुर्थी विभक्ति हो जाती है ॥ १५ ॥ नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् तथा इसके पर्याप्ति-स्वरूप अर्थ के प्रतिपादक शब्दों और वषट् शब्द के योग मे भी चतुर्थी विभक्ति

१७ मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु ।
१८ कर्तृकरणयोस्तृतीया ।
१९ सहयुक्तेऽप्रधाने ।
२० येनाङ्गविकारः ।
२१ इत्थम्भूतलक्षणे ।
२२ संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि ।
२३ हेतौ ।
२४ अकर्तर्यृणे पञ्चमी ।
२५ विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् ।
२६ षष्ठी हेतुप्रयोगे ।
२७ सर्वनाम्नस्तृतीया च ।
२८ अपादाने पञ्चमी ।
२९ अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ।
३० षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन ।
३१ एनपा द्वितीया ।
३२ पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् ।

हो जाती है ॥ १६ ॥ अनादर यदि गम्यमान हो तो मन् धातु के प्राणिभिन्न कर्म कारक से विकल्प से चतुर्थी विभक्ति हो जाती है ॥ १७ ॥ अनुक्त कर्ता और करण कारकों से तृतीया विभक्ति होती है ॥ १८ ॥ सह शब्द तथा इसके पर्याय से युक्त अप्रधान (कर्ता कारक) से तृतीया होती है ॥ १९ ॥ जिस विकृत अङ्ग से अङ्गी का विकार लक्षित होता हो उस अङ्ग के वाचक शब्द से तृतीया होती है ॥२०॥इत्थम्भूत (= इस प्रकार का है) के लक्षण से—जिस लक्षण से किसी व्यक्ति की कोई विशेष अवस्था ज्ञात होती हो उस लक्षण के वाचक शब्द से—तृतीया विभक्ति होती है ॥ २१ ॥ सम्-पूर्वक ज्ञा धातु के कर्मकारक मे प्राप्त द्वितीया के स्थान मे विकल्प से तृतीया विभक्ति भी हो जाती है ॥ २२ ॥

हेतुभूतार्थ-वाचक शब्द से तृतीया विभक्ति हो जाती है ॥ २३ ॥ कर्ता से भिन्न हेतुभूत ऋण के वाचक शब्द से पञ्चमी हो जाती है ॥ २४ ॥ गुणस्वरूप हेतु के वाचक स्त्रीलिङ्ग-भिन्न शब्द से विकल्प से पञ्चमी विभक्ति होती है ॥ २५ ॥ 'हेतु' इस शब्द का प्रयोग होने पर हेतु शब्द और हेतुभूतार्थवाचक शब्द से भी षष्ठी विभक्ति हो जाती है ॥ २६ ॥ सर्वनाम शब्द और हेतु शब्द का यदि प्रयोग हुआ हो तो सर्वनाम और हेतु इन दोनों शब्दों से तृतीया भी हो सकती है, षष्ठी भी ॥ २७ ॥ अपादान कारक से पञ्चमी विभक्ति होती है ॥ २८ ॥ अन्य शब्द तथा इसके पर्याय, आरात्, इतर, ऋते, दिग्वाचक शब्द, अञ्चूत्तरपद, आच् और आहि प्रत्ययों से युक्त शब्दों के योग में भी पञ्चमी विभक्ति हो जाती है ॥२९॥ किन्तु अतसुच् तथा इसके समानार्थक प्रत्यय से युक्त शब्द के योग मे तो षष्ठी विभक्ति ही होती है ॥३०॥ एनप्-प्रत्ययान्त शब्द के योग मे द्वितीया हो जाती है ॥३१॥ पृथक्, विना और नाना शब्दों के योग मे विकल्प से तृतीया,

३३ करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य ।
३४ दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् ।
३५ दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च ।
३६ सप्तम्यधिकरणे च ।
३७ यस्य च भावेन भावलक्षणम् ।
३८ षष्ठी चानादरे ।
३९ स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च ।
४० आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् ।
४१ यतश्च निर्धारणम् ।
४२ पञ्चमी विभक्ते ।
४३ साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः ।
४४ प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च ।
४५ नक्षत्रे च लुपि ।

पञ्चमी और द्वितीया भी हो जाती है ॥ ३२ ॥ असत्त्ववाचक स्तोक, अल्प, कृच्छ्र और कतिपय इन शब्दों से करण कारक मे तृतीया तथा पञ्चमी विभक्तियाँ विकल्प से होती हैं ॥ ३३ ॥ दूरार्थक तथा अन्तिकार्थक (=समीपार्थक) शब्दों के योग मे विकल्प से षष्ठी और पञ्चमी विभक्तियाँ होती हैं ॥ ३४ ॥ दूरार्थक और अन्तिकार्थक शब्दों से विकल्प से द्वितीया, पञ्चमी और तृतीया विभक्तियाँ होती हैं ॥ ३५ ॥ दूरार्थक तथा अन्तिकार्थक शब्दों और अधिकरण कारक से सप्तमी विभक्ति भी हो जाती है ॥ ३६ ॥ जिसके सम्बन्ध मे की जाने वाली एक क्रिया से दूसरी क्रिया लक्षित हो रही हो उस क्रियावान् पदार्थ के वाचक शब्द से भी सप्तमी हो जाती है ॥ ३७ ॥ परन्तु अनादर गम्यमान होने पर उक्त परिस्थिति मे क्रियावान् के वाचक शब्द से षष्ठी भी होती है ॥ ३८ ॥ स्वामिन्, ईश्वर आदि शब्दों के योग मे विकल्प से षष्ठी और सप्तमी ये दोनों विभक्तियाँ होती हैं ॥ ३९ ॥ यदि तत्परता गम्यमान हो तो आयुक्त और कुशल शब्दों के योग मे विकल्प से षष्ठी और सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं ॥ ४० ॥

जहाँ से निर्धारण हो उसके वाचक शब्द से भी विकल्प से षष्ठी-सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं ॥ ४१ ॥ जिससे निर्धारण किया गया हो ऐसे निर्धारणाश्रय का यदि उससे सर्वथा भेद हो बना हो जिसका निर्धारण किया जा रहा हो तो उक्त निर्धारणाश्रय के वाचक शब्द से पञ्चमी हो जाती है ॥ ४२ ॥ यदि अर्चा गम्यमान हो और 'प्रति' इस शब्द का प्रयोग न हुआ हो तो साधु और निपुण शब्दों के योग मे सप्तमी हो जाती है ॥ ४३ ॥ प्रसित और उत्सुक शब्दों के योग मे विकल्प से तृतीया और सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं ॥ ४४ ॥ लुबन्त नक्षत्रवाचक शब्दों से विकल्प से तृतीया और सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं ॥ ४५ ॥

४६ प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाण-वचनमात्रे प्रथमा।
४७ सम्बोधने च।
४८ सामन्त्रितम्।
४९ एकवचनं सम्बुद्धिः।
५० षष्ठी शेषे।
५१ ज्ञोऽविदर्थस्य करणे।
५२ अधीगर्थदयेशां कर्मणि।
५३ कृञः प्रतियत्ने।
५४ रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः।
५५ आशिषि नाथः।
५६ जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम्।
५७ व्यवह्रीपणोः समर्थयोः।
५८ दिवस्तदर्थस्य।
५९ विभाषोपसर्गे।
६० द्वितीया ब्राह्मणे।
६१ प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासंप्रदाने।

प्रातिपदिकार्थमात्र, लिङ्गमात्र, परिमाणमात्र और वचन-(= संख्या) मात्र मे प्रथमा विभक्ति होती है ॥ ४६ ॥ सम्बोधन मे भी प्रथमा विभक्ति होती है ॥ ४७ ॥ सम्बोधन मे विहित प्रथमा विभक्ति से विशिष्ट शब्द-स्वरूप की संज्ञा 'आमन्त्रित' है ॥ ४८ ॥ सम्बोधन-विहित प्रथमा के एकवचन की संज्ञा 'सम्बुद्धि' है ॥ ४९ ॥ शेष— कर्मत्वादि से भिन्न— अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए षष्ठी विभक्ति हो जाती है ॥ ५० ॥ ज्ञानभिन्नार्थक ज्ञा धातु के करण कारक से षष्ठी विभक्ति हो जाती है ॥ ५१ ॥ स्मरणार्थक धातु, दय धातु और ईश धातु के कर्मकारक से भी षष्ठी विभक्ति होती है ॥ ४२ ॥ गुणाधान की प्रतीति यदि हो तो कृ धातु के कर्मकारक से भी षष्ठी हो जाती है ॥ ५३ ॥ भाववाचक घञादि-प्रत्ययान्त शब्द हों कर्त्ता जिनके ऐसे ज्वर-धातुभिन्न रोगार्थक धातुओं के कर्मकारक से, शेषत्व की विवक्षा होने पर, षष्ठी विभक्ति हो जाती है ॥ ५४ ॥ आशीरर्थक नाथ् धातु के कर्मकारक से, शेषत्व की विवक्षा मे, षष्ठी हो जाती है ॥ ५५ ॥ जासि, 'नि' एवं 'प्र' उपसर्गों से विशिष्ट हन्, नाटि, क्राथि और पिष् धातु यदि हिंसार्थक हों तो इनके कर्मकारक से भी षष्ठी विभक्ति हो जातो है ॥५६॥ समानार्थक 'वि' और 'अव' इन दोनों उपसर्गों से विशिष्ट हृ धातु और पण धातु के कर्मकारक से भी षष्ठी विभक्ति हो जाती है ॥५७॥ उपर्युक्त दोनो धातुओं के समानार्थक दिव् धातु के कर्मकारक से भी षष्ठी विभक्ति हो जाती है ॥५८॥ किन्तु यदि उक्त दिव् धातु उपसर्गविशिष्ट हो तो यह षष्ठी विभक्ति विकल्प से होती है॥५९॥ किन्तु यदि (अनुपसर्गक) दिव् धातु का प्रयोग किसी ब्राह्मण ग्रन्थ मे हुआ हो तो इसके कर्मकारक से द्वितीया ही होती है ॥६०॥ यदि सम्प्रदान कारक देवता हो तो लोट् लकार के मध्यम पुरुष एकवचन मे प्रयुक्त 'प्र' पूर्वक (दिवादिगणपठित) इष् धातु और ब्रू धातु के हविवार्चक

६२ चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि ।
६३ यजेश्च करणे ।
६४ कृत्वोर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे ।
६५ कर्तृकर्मणोः कृति ।
६६ उभयप्राप्तौ कर्मणि ।
६७ क्तस्य च वर्तमाने ।
६८ अधिकरणवाचिनश्च ।
६९ न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्
७० अनेकोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः ।
७१ कृत्यानां कर्तरि वा ।
७२ तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् ।
७३ चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः ।

कर्मकारक से, शेषत्व की विवक्षा मे, षष्ठी विभक्ति हो जाती है ॥ ६१ । वैदिक संस्कृत मे चतुर्थी के अर्थ मे बाहुल्येन षष्ठी विभक्ति भी होती है ॥ ६२ ॥ यज् धातु के करण कारक से भी वैदिक प्रयोग मे बाहुल्येन षष्ठी हो जाती है ॥ ६३ ॥ कृत्वसुच् प्रत्यय अथवा इसके समानार्थक प्रत्यय का प्रयोग यदि हो तो कालवाचक अधिकरण कारक से भी षष्ठी विभक्ति हो जाती है ॥६४॥ कृत्प्रत्यय का प्रयोग होने पर कर्त्ता और कम कारकों से भी षष्ठी हो जाती है ॥६५॥ कृत्प्रत्यय के प्रयोग के कारण यदि पूर्वसूत्र से कर्त्ता तथा कर्म इन दोनों से षष्ठी की प्राप्ति हो तो मात्र कर्म कारक से ही षष्ठी होती है ॥ ६६ ॥ वर्तमानकाल-विहित क्त प्रत्यय का प्रयोग होने पर भी षष्ठी हो जाती है ॥ ६७ ॥ अधिकरणार्थक क्त प्रत्यय से विशिष्ट शब्द का प्रयोग होने पर भी षष्ठी हो जाती है ॥ ६८ ॥ लकार के स्थान मे विहित आदेश, उ प्रत्यय, उक प्रत्यय, अव्यय, 'निष्ठा'-संज्ञक प्रत्यय, खल् तथा इसके समानार्थक प्रत्यय और तृन् प्रत्यय का प्रयोग यदि हो तो "कर्तृकर्मणोः कृति" सूत्र द्वारा बिहित षष्ठी विभक्ति नहीं होती है ॥ ६९ ॥ भविष्यदर्थक अक प्रत्यय और भविष्यत् तथा अधमर्णता अर्थों मे विहित इन् प्रत्यय का प्रयोग होने पर षष्ठी नही होती ॥ ७० ॥ 'कृत्य'-संज्ञक प्रत्ययों का प्रयोग होने पर कर्त्ता कारक मात्र से विकल्प से षष्ठी होती है, कर्म कारक से तो विकल्प से भी नहीं ॥७१॥ तुला और उपमा शब्दों से भिन्न तुल्य-शब्दार्थ के वाचक शब्दों का यदि प्रयोग हुआ हो तो विकल्प से तृतीया तथा षष्ठी विभक्तियाँ हो जाती हैं ॥ ७२ ॥ यदि आशीर्वाद की प्रतीति हो रही हो तो आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख और इसके समानार्थक शब्दों और हित शब्द के प्रयोग मे विकल्प से चतुर्थी और षष्ठी विभक्तियाँ हो जाती हैं ॥ ७३ ॥

द्वितीयाध्याय का तृतीयपाद समाप्त ।

चतुर्थः पादः

१ द्विगुरेकवचनम् ।
२ द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् ।
३ अनुवादे चरणानाम् ।
४ अध्वर्युक्रतुरनपुंसकम् ।
५ अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाख्यानाम् ।
६ जातिरप्राणिनाम् ।
७ विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः ।
८ क्षुद्रजन्तवः ।
९ येषां च विरोधः शाश्वतिकः ।
१० शूद्राणामनिरवसितानाम् ।
११ गवाश्वप्रभृतीनि च ।
१२ विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम् ।
१३ विप्रतिषिद्धं चानधिकरणवाचि ।
१४ न दधिपय आदीनि ।
१५ अधिकरणैतावत्त्वे च ।

द्वितीयाध्याय का चतुर्थ पाद

'द्विगु'-समास-विशिष्ट शब्द का प्रयोग एकवचन मे होता है ॥ १ ॥ प्राण्यङ्ग-वाचक, वाद्ययन्त्राङ्गवाचक, सेनाङ्गवाचक शब्दों मे विहित द्वन्द्वसमास से निष्पन्न शब्द का भी एकवचन मे ही प्रयोग— एकवद्भाव—होता है ॥ २ ॥ अनुवाद यदि गम्यमान हो तो चरणवाची शब्दों मे विहित द्वन्द्व समास से निष्पन्न शब्द का भी एकवद्भाव हो जाता है ॥ ३ ॥ यजुर्वेद-विहित क्रतुओं के वाचक नपुंसकलिङ्ग-भिन्न शब्दों के बीच किए गए द्वन्द्व का भी एकवद्भाव हो जाता है ॥ ४ ॥ अध्ययन की दृष्टि से समीपस्थ पदार्थों के वाचक शब्दों मे विहित द्वन्द्व का भी एकवद्भाव हो जाता है ॥ ५ ॥ प्राणिभिन्नार्थक जातिवाचक शब्दों मे विहित द्वन्द्व का भी एकवद्भाव हो जाता है ॥ ६ ॥ नदीवाचक शब्दों मे और ग्राम से भिन्न देश (= स्थान) के वाचक शब्दों मे विहित द्वन्द्व समास का भी एकवद्भाव हो जाता है ॥ ७ ॥ क्षुद्र जन्तुओं के वाचक शब्दों मे विहित द्वन्द्व का भी एकवद्भाव हो जाता है ॥ ८ ॥ जिनमे शाश्वत पारस्परिक विरोध हो ऐसे तत्त्वों के वाचक पदों मे विहित द्वन्द्व का भी एकवद्भाव हो जाता है ॥ ९ ॥ जिनके भोजन कर लेने पर पात्र का शोधन भी सम्भव नहीं ऐसे शूद्रों से भिन्न शूद्रों के वाचक शब्दों मे विहित द्वन्द्व का भी एकवद्भाव हो जाता है ॥ १० ॥ एकवद्भाव-विशिष्ट द्वन्द्व समास से व्युत्पन्न गवाश्व आदि शब्द साधु हैं ॥ ११ ॥ वृक्षवाचक, मृगवाचक, तृणवाचक, धान्यवाचक, व्यञ्जनवाचक, पशुवाचक, शकुनिवाचक, अश्ववडव, पूर्वापर और अधरोत्तर—इन द्वन्द्वनिष्पन्न पदों का एकवद्भाव विकल्प से होता है ॥ १२ ॥ द्रव्यवाचकभिन्न अनधिकरणवाची (= अद्रव्यवाची) परस्परविरुद्धार्थक पदों का द्वन्द्व भी विकल्प से एकवत् हो जाता है ॥१३॥ दधिपयस् आदि द्वन्द्व एकवत् नही होते ॥ १४ ॥ अधिकरण का परिमाण गम्यमान होने पर द्वन्द्व

१६ विभाषा समीपे।
१७ स नपुंसकम्।
१८ अव्ययीभावश्च।
१९ तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः।
२० संज्ञायां कन्थोशीनरेषु।
उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम्।
२२ छाया बाहुल्ये।
२३ सभा राजाऽमनुष्यपूर्वा।
२४ अशाला च।
२५ विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्।
२६ परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः।
२७ पूर्ववदश्ववडवौ।
२८ हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च च्छन्दसि।

समास एकवत नहीं होता ॥ १५ ॥ किन्तु अधिकरण के परिमाण की समीपता के वाच्य होने पर द्वन्द्व विकल्प से एकवत् हो जाता है ॥१६॥ एकवद्भावयुक्त (समाहार-विहित) द्वन्द्व और द्विगुसमास से व्युत्पन्न पद नपुंसकलिङ्ग हो जाते हैं ॥१७॥ अव्ययीभाव समास से निष्पन्न शब्द भी नपुंसक हो जाते हैं ॥ १८ ॥ नञ्-समास और कर्मधारय को छोड़कर आगे विधीयमान तत्पुरुष समास से निष्पन्न शब्द भी नपुंसक हो जाते हैं (यह अधिकार सूत्र है) ॥ १९ ॥ संज्ञा-विषय मे कन्था-शब्दान्त तत्पुरुष नपुंसक हो जाता है यदि वह कन्था उशीनर-देश-सम्बन्धी हो तो ॥ २० ॥

यदि उपज्ञेय और उपक्रम्य के प्रथम कर्त्ता (=आदि कर्त्ता) का अभिधान अभिप्रेत हो तो उपज्ञाशब्दान्त और उपक्रमशब्दान्त तत्पुरुष नपुंसकलिङ्ग हो जाते हैं ॥२१॥ यदि बहुत्व गम्यमान हो तो छायाशब्दान्त तत्पुरुष भी नपुंसकलिङ्ग हो जाता है ॥ २२ ॥ राजा के पर्याय शब्द अथवा मनुष्य-भिन्न (=राक्षस-पिशाचादि) के वाचक शब्द जिनके पूर्वपद हों ऐसे सभाशब्दान्त तत्पुरुष भी नपुंसक हो जाते हैं ॥ २३ ॥ शालार्थक सभा शब्द से भिन्न (=समूहार्थक) सभा शब्द हो अन्त मे जिसके वह तत्पुरुष भी नपुंसक हो जाता है ॥२४॥ सेना, सुरा, छाया, शाला या निशा शब्द हो अन्त मे जिसके ऐसा तत्पुरुष भी नपुंसक हो जाता है[1] ॥२५॥ इतरेतरयोग-विहित द्वन्द्व और तत्पुरुष समास से व्युत्पन्न शब्दों का लिङ्ग समासावयवभूत अन्त्य शब्द के लिङ्ग के समान होता है ॥ २६ ॥ एकवद्भाव के अभाव से अश्ववडव इस द्वन्द्व-समासनिष्पन्न शब्द का लिङ्ग पूर्व शब्द—अश्व शब्द—के लिङ्ग के समान (पुंलिङ्ग) ही होता है ॥ २७ ॥ वैदिक प्रयोग मे हेमन्त-शिशिर और अहोरात्र इन द्वन्द्वों का लिङ्ग भी पूर्वपदलिङ्गतुल्य

१. २।४।१९ सूत्र का अधिकार यहीं तक है।

२९ रात्राह्नाहाः पुंसि ।
३० अपथं नपुंसकम् ।
३१ अर्धर्चाः पुंसि च ।
३२ इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ ।
३३ एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ ।
३४ द्वितीयाटौस्स्वेनः ।
३५ आर्धधातुके ।
३६ अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति ।
३७ लुङ्सनोर्घस्लृ ।
३८ घञपोश्च ।
३९ बहुलं छन्दसि ।
४० लिट्यन्यतरस्याम् ।
४१ वेञो वयिः ।
४२ हनो वध लिङि ।
४३ लुङि च ।
४४ आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ।
४५ इणो गा लुङि ।

होता है ॥ २८ ॥ रात्र, अह्न और अह ये समासान्तप्रत्ययुक्त शब्द पुंलिङ्ग हैं ॥ २९ ॥ अपथ शब्द नपुंसक लिङ्ग है ॥ ३० ॥ अर्धर्च आदि शब्द नपुंसकलिङ्ग भी हैं और पुंलिङ्ग भी ॥ ३१ ॥ तृतीया आदि विभक्तियों के परे अन्वादेश में वर्तमान इदम् शब्द के स्थान में अनुदात्त अश् आदेश हो जाता है ॥३२॥ त्र और तस् प्रत्ययों के परे अन्वादेश में वर्तमान एतत् शब्द के स्थान में भी अनुदात अश् आदेश हो जाता है और त्र एवं तस् प्रत्यय भी अनुदात हो जाते हैं ॥३३॥ द्वितीया, टा तथा ओस् विभक्तियों के परे अन्वादेश में वर्तमान इदम् और एतद् शब्दों के स्थान में अनुदात्त एन आदेश हो जाता है ॥३४॥ अब से "ण्यक्षत्रियार्ष०" सूत्र-पर्यन्त "आर्धधातुके" (= आर्धधातुक विषय में) का अधिकार है ॥ ३५ ॥ ल्यप् तथा तकारादि कित् प्रत्ययों के परे अद् धातु के स्थान में जग्धि आदेश हो जाता है ॥ ३६ ॥ लुङ् लकार और सन् प्रत्ययों के परे अद् धातु के स्थान में घस्लृ आदेश हो जाता है ॥ ४७ ॥ घञ् और अप् प्रत्ययों के परे भी उक्त आदेश हो जाता है ॥ ३८ ॥ वैदिक प्रयोग में अद् के स्थान में घस्लृ आदेश बाहुल्येन होता है–होता भी है, नहीं भी ॥ ३९ ॥ लिट् के परे अद् के स्थान में विकल्प से घस्लृ आदेश हो जाता है ॥ ४० ॥

लिट् के परे वेञ् धातु के स्थान में विकल्प से वयि (=वय्) आदेश हो जाता है ॥४१॥ लिङ् के परे आर्धधातुक विषय में (अर्थात् आशीर्लिङ् लकार के परे) हन् धातु के स्थान में वध आदेश हो जाता है ॥ ४२ ॥ लुङ् लकार के परे भी हन् के स्थान मे वध आदेश हो जाता है ॥ ४३ ॥ किन्तु आत्मनेपद में लुङ् लकार के परे हन् के स्थान मे विकल्प से ही वध आदेश होता है ॥ ४४ ॥ लुङ् के परे इण् धातु के स्थान मे गा आदेश हो जाता है ॥ ४५ ॥ णिच् प्रत्यय के परे बोधन-भिन्न

४६ णौ गमिरबोधने ।
४७ सनि च ।
४८ इङश्च ।
४६ गाङ् लिटि ।
५० विभाषा लुङ्लृङोः ।
५१ णौ च संश्चङोः ।
५२ अस्तेर्भूः ।
५३ ब्रुवो वचिः ।
५४ चक्षिङः ख्याञ् ।
५५ वा लिटि ।
५६ अजेर्व्यघञपोः ।
५७ वा यौ ।
५८ ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः ।
५६ पैलादिभ्यश्च ।
६० इञः प्राचाम् ।
६१ न तौल्वलिभ्यः ।
६२ तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् ।

अर्थों में वर्तमान इण् धातु के स्थान मे गमि (=गम्) आदेश हो जाता है ॥४६॥
सन् प्रत्यय के परे भी बोधन-भिन्नार्थक इण् धातु के स्थान मे गमि आदेश हो जाता
है ॥ ४७ ॥ सन् के परे इङ् धातु के स्थान मे भी गमि आदेश हो जाता
है ॥४८॥ किन्तु लिट् के परे इङ् धातु के स्थान मे गाङ् आदेश हो जाता है ॥४९॥
परन्तु लुङ् अथवा लृङ् लकारों के परे इङ् धातु के स्थान मे विकल्प से ही गाङ् आदेश
होता है ॥५०॥ सन् प्रत्यय अथवा चङ् प्रत्यय हो पर मे जिसके ऐसे णिच् प्रत्यय के
परे भी इङ् धातु के स्थान में विकल्प से गाङ् आदेश हो जाता है ॥ ॥ ५१ ॥
आर्धधातुक प्रत्ययों के परे अस् धातु के स्थान मे भू आदेश हो जाता है ॥ ५२ ॥
आर्धधातुक विषय मे ब्रूञ् धातु के स्थान मे वच् आदेश हो जाता है ॥५३॥ आर्ध-
धातुक-विषय में चक्षिङ् धातु के स्थान मे ख्याञ् आदेश हो जाता है ॥५४॥ किन्तु
लिट् के परे चक्षिङ् धातु के स्थान मे ख्याञ् आदेश विकल्प से होता है ॥ ५५ ॥
घञ् तथा अप् प्रत्ययों को छोड़कर अन्य आर्धधातुक प्रत्ययों के परे अज धातु के
स्थान मे वी आदेश हो जाता है ॥५६॥ परन्तु ल्युट् प्रत्यय के परे अज धातु के स्थान
मे वी आदेश विकल्प से होता है ॥ ५७ ॥ गोत्रार्थक-ण्य-प्रत्ययान्त, क्षत्रियवाचक-
गोत्रप्रत्ययान्त शब्दों से विहित युवापत्यार्थक अण् और इञ् प्रत्ययों का लुक् हो
जाता है ॥ ५८ ॥ पैल आदि शब्दों से विहित युवापत्यार्थक प्रत्ययों का भी लुक्
हो जाता है ॥ ५९ ॥ गोत्रार्थक-इञ्-प्रत्ययान्त शब्द से विहित युवापत्यार्थक
प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है ॥ ६० ॥

किन्तु तौल्वलि आदि शब्दों से विहित युवापत्यार्थक प्रत्यय का लुक् नही होता
॥६१॥ बहुत्वार्थक 'तद्राज'-संज्ञक स्त्रीलिङ्गभिन्न-पदार्थवाचक प्रत्यय का भी लुक् हो
जाता है यदि बहुत्व 'तद्राज'-संज्ञक-प्रत्यय-प्रयुक्त ही हो तो ॥६२॥ बहुत्वार्थक स्त्री-

६३ यस्कादिभ्यो गोत्रे ।
६४ यञञोश्च ।
६५ अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च ।
६६ बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु ।
६७ न गोपवनादिभ्यः ।
६८ तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे ।
६९ उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे ।
७० आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच् ।
७१ सुपो धातुप्रातिपदिकयोः ।
७२ अदिप्रभृतिभ्यः शपः ।
७३ बहुलं छन्दसि ।
७४ यङोऽचि च ।
७५ जुहोत्यादिभ्यः श्लुः ।
७६ बहुलं छन्दसि ।
७७ गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु ।

लिङ्गभिन्न गोत्र-प्रत्यय का भी यस्क आदि शब्दों से उत्तरवर्ती (= विहित) होने पर लुक् हो जाता है यदि बहुत्व गोत्र-प्रत्यय-प्रयुक्त ही हो तो ॥ ६३ ॥ गोत्र-विहित, बहुत्वार्थक एवं स्त्रीलिङ्गभिन्न-वाचक यञ् और अञ् प्रत्ययों का भी लुक् हो जाता है यदि बहुत्व उन्हीं प्रत्ययों के कारण हो तो ॥ ६४ ॥ अत्रि, भृगु, कुत्स, वशिष्ठ, गोतम और अङ्गिरस् शब्दों से विहित बहुत्वार्थक गोत्र प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है यदि बहुत्व गोत्र-प्रत्यय-प्रयुक्त हो तो ॥ ६५ ॥ अनेक स्वरों से सम्पन्न प्रातिपदिक से प्राच्यगोत्र अथवा भरतगोत्र अर्थ में विहित बहुत्वार्थक इञ् प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है यदि बहुत्व इञ्-प्रत्यय-प्रयुक्त हो तो ॥६६॥ किन्तु गोपवन आदि शब्दों से विहित प्रत्यय का लुक् नहीं होता ॥ ६७ ॥ तिककितव आदि द्वन्द्व-समास-निष्पन्न शब्दों से विहित बहुत्वार्थक गोत्र-प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है यदि बहुत्व गोत्र-प्रत्यय-प्रयुक्त हो तो ॥ ६८ ॥ उपक आदि शब्दों से विहित बहुत्वार्थक गोत्र-प्रत्यय का, द्वन्द्व समास अथवा इसके अभाव में भी, विकल्प से लुक् हो जाता है यदि बहुत्व गोत्र-प्रत्यय-कृत हो तो ॥ ६९ ॥ आगस्त्य और कौण्डिन्य शब्दों से विहित अण् और यञ् प्रत्ययों का लुक् और प्रकृतिभूत शब्दों के स्थान मे क्रमशः अगस्त्य और कुण्डिनच् आदेश भी हो जाते हैं ॥ ७० ॥ धातु-संज्ञक तथा प्रातिपदिक-संज्ञक शब्दों के अवयवभूत सुप् प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है ॥७१॥ अद् आदि धातुओं से विहित शप् का लुक् हो जाता है ॥ ७२ ॥ किन्तु वैदिक प्रयोग में शप् का लुक् बहुल रूप से होता है ॥७३॥ अच् प्रत्यय के परे यङ् प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है ॥७४॥ हु आदि धातुओं से विहित शप् का श्लु हो जाता है ॥ ७५ ॥ वैदिक प्रयोग में शप् का श्लु बहुल रूप से होता है ॥ ७६ ॥ गा, स्था, 'घु'-संज्ञक धातु, पा और भू धातुओं से परवर्ती सिच् का परस्मैपद मे

७८ विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः ।
७९ तनादिभ्यस्तथासोः ।
८० मन्त्रे घसह्वरणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः ।
८१ आमः ।
८२ अव्ययादाप्सुपः ।
८३ नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः ।
८४ तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् ।
८५ लुटः प्रथमस्य डारौरसः ।

इति द्वितीयोऽध्याय ।

लुक् हो जाता है ॥ ७७ ॥ किन्तु घ्रा, धेट्, शा, छा एवम् सा धातुओं से परवर्ती सिच् का विकल्प से लुक् होता है ॥ ७८ ॥ तन् आदि धातुओं से उत्तरवर्ती सिच् का त और थास् प्रत्ययों के परे विकल्प से लुक् हो जाता है ॥७९॥ मन्त्रविषयक प्रयोग में घस, ह्वर, णश, वृ, दह, आदन्त धातु, वृच्, कृ, गम् और जन् धातुओं से विहित च्लि प्रत्यय का लुक् हो जाता है ॥ ८० ॥ आमन्त धातु से विहित च्लि प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है ॥ ८१ ॥ 'अव्यय'-संज्ञक शब्द से विहित आप् तथा सुप् प्रत्ययों का भी लुक् हो जाता है ॥ ८२ ॥ किन्तु अदन्त अव्ययीभाव से परवर्ती सुप् प्रत्यय का लुक् नही होता अपितु पञ्चमी-भिन्न सुप् प्रत्यय के स्थान में विकल्प से अम् आदेश हो जाता है ॥ ८३ ॥ उपर्युक्त अम् आदेश तृतीया और सप्तमी के सुप् के स्थान में बहुल रूप से होता है ॥ ८४ ॥ लुट् के प्रथम पुरुष के तिङ् प्रत्यय के स्थान मे क्रमशः डा (ति > डा), रौ (तस् > रौ) और रस् (झि > रस्) आदेश हो जाते हैं ॥ ८५ ॥

द्वितीयाध्याय का चतुर्थपाद समाप्त ।

द्वितीयाध्याय समाप्त

अथ तृतीयोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१ प्रत्ययः ।
२ परश्च ।
३ आद्युदात्तश्च ।
४ अनुदात्तौ सुप्पितौ ।
५ गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ।
६ मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य ।
७ धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ।
८ सुप आत्मनः क्यच् ।
९ काम्यच्च ।
१० उपमानादाचारे ।
११ कर्तुः क्यङ् सलोपश्च ।
१२ भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः
१३ लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् ।

तृतीयाध्याय का प्रथम पाद

अब 'प्रत्यय' संज्ञा का अधिकार है ॥ १ ॥ प्रत्यय धातु अथवा प्रातिपदिक से अव्यवहित उत्तर में जुड़ता है ॥ २ ॥ प्रत्यय का आद्य स्वर उदात्त होता है ॥ ३ ॥ किन्तु सुप् (सु से सुप् तक) तथा पित् प्रत्यय अनुदात्त होते हैं ॥ ४ ॥ गुप्, तिज् तथा कित् धातु से सन् प्रत्यय होता है ॥ ५ ॥ मान्, बध, दान् और शान् धातुओं से सन् प्रत्यय तथा इनके अभ्याससंज्ञक इकार के स्थान में दीर्घ-आदेश भी हो जाता है ॥ ६ ॥ इष् धातु के कर्मकारक के स्थान में आए धातु से इच्छा अर्थ में विकल्प से सन् प्रत्यय हो जाता है यदि इष् तथा इसके कर्म-कारकस्थानीय धातु का कर्त्ता एक हो तो ॥७॥ इष् धातु के कर्मकारक के स्थान में आए और इच्छा करने वाले व्यक्ति के आत्मीय—सम्बन्धी—के वाचक सुबन्त से इच्छा अर्थ में विकल्प से क्यच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ८ ॥ उक्त परिस्थिति में क्यच् के स्थान में काम्यच् प्रत्यय भी होता है ॥९॥ कर्मकारकस्थानीय[1] उपमानभूत पदार्थ के वाचक सुबन्त पद से आचार (= करना) अर्थ में विकल्प से क्यच् प्रत्यय होता है ॥१०॥ किन्तु उपमानभूत कर्तृकारकस्थानीय सुबन्त से आचार अर्थ में विकल्प से क्यङ् प्रत्यय भी हो जाता है और सकार का लोप भी ॥११॥ च्वि-प्रत्ययान्त-भिन्न भृश आदि प्रातिपदिकों से 'भवति' (= होता है) इस अर्थ में विकल्प से क्यङ् प्रत्यय भी होता है और हल् का लोप भी ॥ १२ ॥ लोहित आदि शब्दों और डाच्-प्रत्ययान्त शब्दों से 'भवति' अर्थ में विकल्प से क्यष् प्रत्यय

---

१. इन सूत्रों से जिन अर्थों में प्रत्यय का विधान होता है उन्हीं अर्थों के वाचक धातुओं के कर्मकारकारकस्थानापन्न प्रकृतिभूत शब्दों को होना चाहिए ।

१४ कष्टाय क्रमणे।
१५ कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः।
१६ बाष्पोष्मभ्यामुद्वमने।
१७ शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे।
१८ सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम्।
१९ नमोवरिवश्चित्रङः क्यच्।
२० पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ्।
२१ मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच्।
२२ धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्।
२३ नित्यं कौटिल्ये गतौ।
२४ लुपसदचरजपजभदहदशगॄभ्यो भावगर्हायाम्।
२५ सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच्।

होता है ॥ १३ ॥ चतुर्थीसमर्थ कष्ट शब्द से कुटिलतापूर्ण क्रमण (= चलना) अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है ॥ १४ ॥ कर्मकारकस्थानापन्न रोमन्थशब्द से वर्तन (= सम्पादन) अर्थ में और तपस् शब्द से आचरण अर्थ में विकल्प से से क्यङ् प्रत्यय होता है ॥ १५ ॥ कर्मकारकस्थानापन्न बाष्प तथा उष्मन् शब्दों से उद्वमन (= उछालना) अर्थ में विकल्प से क्यङ् प्रत्यय होता है ॥ १६ ॥ कर्मकारस्थानापन्न 'शब्द', वैर, कलह, अभ्र, कण्व और मेघ शब्दों से करण (= करना) अर्थ में विकल्प से क्यङ् प्रत्यय होता है ॥ १७ ॥ कर्मकारकस्थानीय सुख आदि शब्दों से अनुभव करने के अर्थ में विकल्प से क्यङ् प्रत्यय होता है यदि सुख आदि अनुभव करने वाले की आत्मा में उत्पन्न हुए हों तो ॥ १८ ॥ नमस्, वरिवस् और चित्रङ् शब्दों से विकल्प से क्यच् प्रत्यय होता है ॥ १९ ॥ पुच्छ, भाण्ड और चीवर शब्दों से करण (= करना) अर्थ में णिङ् प्रत्यय होता है ॥ २० ॥

मुण्ड, मिश्र, श्लक्ष्ण, लवण, व्रत, वस्त्र, हल, कल, कृत और तूस्त शब्दों से करण अर्थ में णिच् प्रत्यय होता है ॥ २१ ॥ हलादि तथा एक स्वर से घटित धातु से क्रियासमभिहार (= पुनःपुनः अथवा अत्यधिक) अर्थ में विकल्प से यङ् प्रत्यय होता है ॥ २२ ॥ गतिवाचक धातु से नित्य यङ् प्रत्यय होता है यदि गति कुटिलतापूर्ण हो तो ॥ २३ ॥ लुप, सद, चर, जप, जभ, दह, दश और गॄ धातुओं से यङ् प्रत्यत होता है यदि धातुओं के अर्थ में गर्हा (= निन्दा) निहित हो ॥ २४ ॥ सत्याप् (सत्य + णिच्, आपुक् का आगम), पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोम, त्वच्, वर्मन्, वर्ण, चूर्ण और चुर् आदि धातुओं

२६ हेतुमति च ।
२७ कण्ड्वादिभ्यो यक् ।
२८ गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्यआयः ।
२९ ऋतेरीयङ् ।
३० कमेर्णिङ् ।
३१ आयादय आर्धधातुके वा ।
३२ सनाद्यन्ता धातवः ।
३३ स्यतासी लृलुटोः ।
३४ सिब्बहुलं लेटि ।
३५ कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि ।
३६ इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ।
३७ दयायासश्च ।
३८ उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् ।
३९ भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ।

से णिच् प्रत्यय होता है ॥ २५ ॥ प्रयोजक कर्त्ता द्वारा दी जाने वाली प्रेरणा आदि को प्रकट करने हेतु प्रयोज्य-क्रियावाचक धातु से णिच् प्रत्यय होता है ॥ २६ ॥ कण्डूय् आदि धातुओं से यक् प्रत्यय होता है ॥ २७ ॥ गुपू, धूप, विच्छ, पण और पन धातुओं से आय प्रत्यय होता है ॥ २८ ॥ ऋत्[1] धातु से ईयङ् प्रत्यय होता है ॥ २९ ॥ कम् धातु से णिङ् प्रत्यय होता है ॥ ३० ॥ यदि धातु का प्रयोग आर्धधातुकसंज्ञक प्रत्यय के साथ करना हो तो उपर्युक्त आय आदि प्रत्यय विकल्प से होते हैं ॥ ३१ ॥ सन् आदि प्रत्ययों से युक्त शब्दों की 'धातु' संज्ञा है ॥३२॥ लृट् और लुट् लकारों के परे रहते धातु से क्रमशः स्य और तास् प्रत्यय होते हैं ॥ ३३ ॥ लेट् लकार के परे रहते धातु से बहुल[2] (=अव्यवस्थित) रूप में सिप् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३४ ॥ किसी मन्त्र (=संहिता) के अन्तर्गत प्रयोग यदि न हुआ हो तो लिट् लकार के परे रहते कास् धातु और प्रत्ययान्त धातुओं से भी आम् प्रत्यय हो जाता है ॥३५॥ इच्प्रत्याहारान्तर्गत स्वर जिनके आदि में हो ऐसे दीर्घस्वरसम्पन्न धातुओं से भी लिट् लकार के परे रहते आम् प्रत्यय हो जाता है, किन्तु ऋच्छ धातु से यह प्रत्यय नहीं होता ॥ ३६ ॥ दय, अय और आस् धातुओं से भी लिट् प्रत्यय के परे रहते आम् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३७ ॥ उष्, विद्, जागृ धातुओं से, लिट् लकार के परे रहते, विकल्प से आम् प्रत्यय होता है ॥ ३८ ॥ भी, ह्री, भृ, और हु धातुओं से, लिट् लकार के परे रहते, आम् प्रत्यय होता है और इस प्रत्यय का विधान होने पर 'श्लु' होने से जैसे द्वित्वादि कार्य होते है वैसे द्वित्वादि कार्य भी होते हैं ॥ ३९ ॥ आम् प्रत्यय

१. यह सूत्रपठित धातु है। इसका अर्थ 'घृणा करना' है।
२. बाहुल्य के प्रयोगानुसारी चार प्रकार हैं:—

कचित्प्रवृत्तिः, कचिदप्रवृत्तिः, कचिद्वि भाषा, कचिदन्यमेव ।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥

४० कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ।
४१ विदांकुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ।
४२ अभ्युत्सादयांप्रजनयांचिकयांरमयामकः पावयांक्रियाद्विदामक्रन्निति च्छन्दसि ।
४३ च्लि लुङि ।
४४ च्लेः सिच् ।
४५ शल इगुपधादनिटः क्सः ।
४६ श्लिष आलिङ्गने ।
४७ न दृशः ।
४८ णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ् ।
४९ विभाषा धेट्श्व्योः ।
५० गुपेश्छन्दसि ।
५१ नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः ।
५२ अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ।

के बाद लिट् के परे रहते कृ, भू, और अस् धातुओं में से किसी एक धातु का अनुप्रयोग भी हो जाता है ॥ ४० ॥

विद धातु से, लोट् के परे रहते, आम् प्रत्यय, गुणाभाव, लोट् लकार का लुक् और लोट्-लकारविशिष्ट कृ धातु का अनुप्रयोग भी निपातनीय है ॥ ४१ ॥ वैदिक-साहित्य में अभ्युत्सादयामकः, प्रजनयामकः, चिकयामकः, रमयामकः, पावयाङ्क्रियात् और विदामक्रन् इन पदों का निपातन किया जाता है ॥ ४२ ॥ लुङ् लकार के परे रहते धातु से च्लि प्रत्यय होता है ॥ ४३ ॥ च्लि के स्थान में सिच् आदेश हो जाता है ॥ ४४ ॥ किन्तु यदि च्लि-प्रत्यय इडागमयुक्त न हो और उस धातु से विहित हो जिसके अन्त में शल् प्रत्याहार का कोई वर्ण हो और उपधा में इक् प्रत्याहारस्थ स्वर हो तो इसके (= च्लि के) स्थान में क्स आदेश हो जाता है ॥ ४५ ॥ आलिङ्गनार्थक श्लिष धातु से विहित च्लि के स्थान में भी क्स आदेश हो जाता है ॥ ४६ ॥ किन्तु दृश् धातु से विहित च्लि के स्थान में क्स आदेश नहीं होता ॥ ४७ ॥ ण्यन्त धातु, श्रि, द्रु और स्रु धातुओं से विहित च्लि के स्थान में, यदि लुङ् लकार कर्तृवाचक हो तो, चङ् आदेश हो जाता है ॥ ४८ ॥ 'धेट्' तथा श्वि (= टुओश्वि) धातुओं से विहित च्लि के स्थान में भी विकल्प से चङ् आदेश हो जाता है ॥ ४९ ॥ आयप्रत्यय-रहित गुप् धातु से विहित च्लि-प्रत्यय के स्थान में भी, यदि प्रयोग वैदिक वाङ्मय का हो तो, विकल्प से चङ् आदेश हो जाता है ॥ ५० ॥ ऊन, ध्वन, इल और अर्द्द धातुओं से विहित च्लि के स्थान में, यदि प्रयोग वैदिक वाङ्मय का हो तो, चङ् आदेश नहीं होता ॥ ५१ ॥ किन्तु असु, वच और ख्या धातुओं से विहित च्लि प्रत्यय के स्थान में, यदि कर्तृवाचक लुङ् लकार का प्रयोग हुआ हो तो, अङ् आदेश हो जाता है

५३ लिपिसिचिह्वश्च ।
५४ आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ।
५५ पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु ।
५६ सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च ।
५७ इरितो वा ।
५८ जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ।
५९ कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि ।
६० चिण् ते पदः ।
६१ दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ।
६२ अचः कर्मकर्तरि ।
६३ दुहश्च ।
६४ न रुधः ।
६५ तपोऽनुतापे च ।

॥ ५२ ॥ लिप् , सिच् और ह्वेञ् धातुओं से विहित च्लि के स्थान में भी अङ् आदेश हो जाता है ॥ ५३ ॥ किन्तु यदि लिप् आदि धातुओं का प्रयोग आत्मनेपद में हुआ हो तो उक्त अङ् आदेश विकल्प से होता है ॥ ५४ ॥ पुष् आदि, द्युत् आदि और जिनके अवयवभूत ॡकार की इत्संज्ञा हुई हो ऐसे (= ॡदित्) धातुओं से विहित च्लि प्रत्यय के स्थान में भी, परस्मैपद में, अङ् आदेश हो जाता है ॥ ५५ ॥ सृ, शास् और ऋ धातुओं से विहित च्लि के स्थान में भी अङ् आदेश हो जाता ॥ ५६ ॥ जिसके 'इर्' इस अंश की इत्संज्ञा हुई हो उससे विहित च्लि के स्थान में भी विकल्प से अङ् आदेश हो जाता है ॥ ५७ ॥ जॄ, स्तम्भ् , म्रुच् , म्लुच् , ग्रुच् , ग्लुच् , ग्लुञ्च् और श्वि धातुओं से विहित च्लि प्रत्यय के स्थान में भी अङ् आदेश हो जाता है ॥ ५८ ॥ यदि प्रयोग वैदिक हो तो कृ, मृ, दृ और रुह धातुओं से विहित च्लि प्रत्यय के स्थान में भी अङ् आदेश हो जाता है ॥ ५९ ॥ किन्तु 'त' के परे रहते पद धातु से विहित च्लि के स्थान में चिण् आदेश हो जाता है ॥ ६० ॥

दीप् , जन् , बुध, पूर, ताय् और प्याय् धातुओं से विहित च्लि के स्थान में, 'त' के परे रहते, विकल्प से चिण् आदेश हो जाता है ॥ ६१ ॥ कर्मकर्त्ता में विहित 'त' शब्द के परे रहते अजन्त धातु से विहित च्लि के स्थान में भी विकल्प से चिण् आदेश हो जाता है ॥ ६२ ॥ कर्मकर्त्ता में विहित 'त' के परे रहते दुह् धातु से विहित च्लि के स्थान में भी विकल्प से चिण् आदेश हो जाता है ॥६३॥ किन्तु कर्मकर्त्ता में विहित 'त' के परे रहते (आवरणार्थक) रुध् धातु से विहित च्लि के स्थान में चिण् आदेश नहीं होता ॥ ६४ ॥ कर्मकर्त्ता में अर्थ में भी विहित 'त' के परे रहते और पश्चात्तापार्थक होने पर कर्मकर्त्ता से भिन्न तप् धातु से विहित च्लि के स्थान में चिण् आदेश नहीं होता है ॥ ६५ ॥ भाव अथवा कर्म

६६ चिण् भावकर्मणोः ।
६७ सार्वधातुके यक् ।
६८ कर्त्तरि शप् ।
६९ दिवादिभ्यः श्यन् ।
७० वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमु-
क्लमुत्रसित्रुटिलषः ।
७१ यसोऽनुपसर्गात् ।
७२ संयसश्च ।
७३ स्वादिभ्यः श्नुः ।
७४ श्रुवः शृ च ।
७५ अक्षोऽन्यतरस्याम् ।
७६ तनूकरणे तक्षः ।
७७ तुदादिभ्यः शः ।
७८ रुधादिभ्यः श्नम् ।
७९ तनादिकृञ्भ्य उः ।
८० धिन्विकृण्व्योर च ।
८१ क्र्यादिभ्यः श्ना ।
८२ स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्तुम्भु-
स्कुञ्भ्यः श्नुश्च ।

में विहित 'त' शब्द के परे रहते धातुमात्र से विहित च्लि के स्थान में चिण् आदेश हो जाता है ॥ ६६ ॥ भावार्थक तथा कर्मार्थक सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहते धातु से यक् प्रत्यय होता है ॥ ६७ ॥ किन्तु कर्तृवाचक सार्वधातुक के परे रहते धातु से शप् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६८ ॥ कर्तृवाचक सार्वधातुक के परे रहते दिव् आदि धातुओं से श्यन् प्रत्यय होता है ॥ ६९ ॥ किन्तु कर्तृवाचक सार्वधातुक के परे रहते भ्राश, भ्लाश, भ्रम, क्लम्, त्रस्, त्रुट्, और लष् धातुओं से विकल्प से श्यन् प्रत्यय होता है ॥ ७० ॥ उपसर्गशून्य यस् धातु से भी विकल्प से ही श्यन् प्रत्यय होता है ॥ ७१ ॥ सम्-उपसर्ग-विशिष्ट यस् धातु से भी विकल्प से ही श्यन् प्रत्यय होता है ॥ ७२ ॥ किन्तु (अभिषवार्थक) सुञ् आदि धातुओं से कर्तृवाचक सार्वधातुक् प्रत्यय के परे रहते श्नु प्रत्यय हो जाता है ॥ ७३ ॥ श्रु धातु से भी श्नु प्रत्यय और उसके साथ-साथ श्रु के स्थान में शृ आदेश भी हो जाते हैं ॥ ७४ ॥ (व्याप्त्यर्थक) अक्ष् धातु से भी विकल्प से श्नु प्रत्यय होता है ॥ ७५ ॥ तनूकरण (= छिलना) अर्थ में वर्तमान तक्ष् धातु से भी विकल्प से श्नु प्रत्यय होता है ॥ ७६ ॥ तुद् आदि धातुओं से श प्रत्यय होता है ॥ ७७ ॥ (आवरणार्थक) रुध् आदि धातुओं से श्नम् प्रत्यय होता है ॥ ७८ ॥ (विस्तारार्थक) तनु आदि धातुओं और कृ धातु से उ प्रत्यय होता है ॥ ७९ ॥ धिवि और कृवि धातुओं से उ प्रत्यय भी होता है और अन्त में अकारादेश भी ॥ ८० ॥

क्री आदि धातुओं से श्ना प्रत्यय होता है ॥ ८१ ॥ स्तम्भ्, स्तुम्भ्, स्कम्भ्, और स्कुम्भ् इन चार सूत्रपठित धातुओं और स्कु धातु से विकल्प से

८३ हलः श्नः शानज्झौ ।
८४ छन्दसि शायजपि ।
८५ व्यत्ययो बहुलम् ।
८६ लिङ्याशिष्यङ् ।
८७ कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः ।
८८ तपस्तपःकर्मकस्यैव ।
८९ न दुहस्नुनमां यक्चिणौ ।
९० कुषिरजोः प्राचां श्यन् परस्मैपदं च ।
९१ धातोः ।
९२ तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ।
९३ कृदतिङ् ।
९४ वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ।
९५ कृत्याः ।
९६ तव्यत्तव्यानीयरः ।
९७ अचो यत् ।
९८ पोरदुपधात् ।
९९ शकिसहोश्च ।

श्ना प्रत्यय भी होता है, श्नु प्रत्यय भी ॥ ८२ ॥ हि (लोट् > सिप् > हि) प्रत्यय के परे रहते हल् से परवर्त्ती श्ना के स्थान में शानच् आदेश हो जाता है ॥ ८३ ॥ वैदिक प्रयोग में श्ना के स्थान में शानच् आदेश भी होता है और शायच् आदेश भी ॥ ८४ ॥ वैदिक प्रयोग में शप् आदि प्रत्ययों का बहुल रूप से विपर्यय (= व्यत्यय) हो जाता है ॥ ८५ ॥ आर्शीवादार्थक लिङ् प्रत्यय के परे रहते, वैदिक वाङ्मय में, धातु से शप् के बदले अङ् प्रत्यय हो जाता है ॥ ८६ ॥ कर्मस्थ क्रिया से तुल्य क्रिया वाला कर्त्ता कर्मवत् हो जाता है ॥ ८७ ॥ तप् धातु का कर्त्ता कर्मवत् तभी होता है यदि तप ही उस धातु का कर्मकारक हो ॥ ८८ ॥ दुह् , स्नु और नम् धातुओं से कर्मकर्त्ता में कर्मवद्भाव-प्रयुक्त यक् प्रत्यय भी नहीं होता और च्लि के स्थान में चिण् आदेश भी नहीं ॥ ८९ ॥ प्राग्देशवर्त्ती आचार्यों के मतानुसार कुष और रञ्ज धातुओं से कर्मकर्त्ता में श्यन् प्रत्यय भी होता है और परस्मैपद भी ॥ ९० ॥ अब तृतीयाध्याय के अन्त तक 'धातोः' (= धातु से) का अधिकार ज्ञातव्य है ॥ ९१ ॥ धात्वधिकार के बीच सूत्र में सप्तमी विभक्ति के साथ प्रयुक्त पद की 'उपपद' संज्ञा है ॥ ९२ ॥ धात्वधिकार में विहित प्रत्ययों में तिङ् से भिन्न प्रत्ययों की 'कृत्' संज्ञा है ॥ ९३ ॥ इस धात्वधिकार के अन्तःपाती स्त्र्यधिकारस्थ प्रत्ययों से भिन्न असमानरूप अपवादभूत प्रत्यय उत्सर्गभूत (सामान्यनियम-विहित) प्रत्ययों के विकल्प से बाधक होते हैं ॥ ९४ ॥ यहाँ से लेकर 'ण्वुल्तृचौ' सूत्र तक निर्दिष्ट प्रत्ययों की 'कृत्य' संज्ञा है ॥ ९५ ॥ धातु से तव्यत्, तव्य और अनीयर् प्रत्यय होते हैं ॥ ९६ ॥ अजन्त धातु से यत् प्रत्ययय होता है ॥ ९७ ॥ अकार जिसकी उपधा हो ऐसे पवर्गान्त धातु से यत् प्रत्यय हाता है ॥ ९८ ॥ शक् और सह धातुओं से

१०० गदमदचरयमश्चानुपसर्गे ।
१०१ अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु ।
१०२ वह्यं करणम् ।
१०३ अर्यः स्वामिवैश्ययोः ।
१०४ उपसर्या काल्या प्रजने ।
१०५ अजर्यं संगतम् ।
१०६ वदः सुपि क्यप् च ।
१०७ भुवो भावे ।
१०८ हनस्त च ।
१०९ एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् ।
११० ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः ।
१११ ई च खनः ।
११२ भृञोऽसंज्ञायाम् ।
११३ मृजेर्विभाषा ।
११४ राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः ।
११५ भिद्योद्ध्यौ नदे ।
११६ पुष्यसिद्ध्यौ नक्षत्रे ।

गर्ह्य (=निन्द्य) अर्थ में अवद्य, पणितव्य (=क्रय-विक्रय-योग्य) अर्थ में पण्य और अनिरोध अर्थ मे वर्य इन यत्प्रत्ययान्त शब्दों का निपातन है ॥१०१॥ वह धातु से करणकारक का वाचक यत् प्रत्यय होता है ॥ १०२ ॥ स्वामी तथा वैश्य अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए ऋ धातु से यत् प्रत्यय का निपातन है ॥ १०३॥ जिसके गर्भग्रहण काल की सम्प्राप्ति हो चुकी हो उसके अभिधानार्थ यत्प्रत्ययान्त उपसर्या शब्द का निपातन है ॥ १०४ ॥ मैत्री के वाचक यत्प्रत्ययान्त अजर्य शब्द का भी निपातन है ॥ १०५ ॥ सुबन्त के उपपद होने पर उपसर्ग-रहित वद धातु से क्यप् अथवा यत् प्रत्यय होता है ॥ १०६ ॥ सुबन्तोपपदक उपसर्ग-रहित भू धातु से भावार्थक क्यप् प्रत्यय होता है ॥ १०७ ॥ सुबन्तोपपदक उपसर्ग-रहित हन् धातु से भावार्थक क्यप् प्रत्यय भी होता है और अन्त में तकारादेश (=न >त्) भी ॥१०८॥ इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ, और जुष् धातुओं से क्यप् प्रत्यय होता है ॥ १०९ ॥ क्लृप् और चृत् धातुओं से अतिरिक्त ऋकारोपध धातुओं से भी क्यप् प्रत्यय होता है ॥ ११० ॥ खन धातु से क्यप् प्रत्यय भी होता है और अन्त मे ईकारादेश भी ॥ १११ ॥ भृ धातु से भी, यदि प्रत्ययान्त शब्द संज्ञा-शब्द न हो तो, क्यप् प्रत्यय हो जाता है ॥ ११२ ॥ मृज् धातु से विकल्प से क्यप् प्रत्यय होता है ॥ ११३ ॥ राजसूय, सूर्य, मृषोद्य, रुच्य, कुप्य, कृष्टपच्य और अव्यथ्य इन क्यबन्त शब्दों का निपातन है ॥ ११४ ॥ नद अर्थ के अभिधानार्थ भिद् धातु से क्यप् प्रत्यय और उज्झ धातु से क्यप् प्रत्यय एवम् झ् के स्थान में ध् इस आदेश का भी निपातन है ॥ ११५ ॥ नक्षत्रविशेष के अभिधानार्थ पुष और सिध धातुओं से अधिकारणार्थक क्यप् प्रत्यय का निपातन है

११७ विपूयविनीयजित्या मुञ्ज-
कल्कहलिषु ।
११८ प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः ।
११९ पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च ।
१२० विभाषा कृवृषोः ।
१२१ युग्यं च पत्रे ।
१२२ अमावस्यदन्यतरस्याम् ।
१२३ छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणी-
योन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्या-
ध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्या-
पृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्य-
भाव्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि ।
१२४ ऋहलोर्ण्यत् ।
१२५ ओरावश्यके ।
१२६ आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च ।
१२७ आनाय्योऽनित्ये ।
१२८ प्रणाय्योऽसम्मतौ ।
१२९ पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या
मानहविर्निवाससामिधेनीषु ।
१३० क्रतौ कुण्डपाय्यसञ्चाय्यौ ।

॥ ११६ ॥ मुञ्ज, कल्क (=तेल अथवा घी से सम्पन्न होनेवाली त्रिफला आदि से बनी ओषधि) और हलि (=विशाल हल) के अभिधानार्थ क्रमशः क्यप्प्रत्ययान्त विपूय, विनीय और जित्य शब्दों का निपातन है ॥ ११७ ॥ वैदिक भाषा में प्रति अथवा अपि उपसर्ग से युक्त ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय होता है ॥ ११८ ॥ पद, अस्वैरी (= परतन्त्र), बाह्य (= बहिर्भूता) तथा पक्ष्य (= पक्ष—दल में वर्त-मान) अर्थों में भी ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय हो जाता है ॥ ११९ ॥ कृ तथा वृष धातुओं से विकल्प से क्यप् प्रत्यय होता है ॥ १२० ॥

वाहन अर्थ के अभिधानार्थ क्यप्-प्रत्ययान्त युग्य शब्द का निपातन है ॥ १२१ ॥ 'अमा' शब्दोपपदक वस् धातु से कालस्वरूप अधिकरण अर्थ मे ण्यत् प्रत्यय तथा वैकल्पिक वृद्ध्यभाव का निपातन है ॥ १२२ ॥ वैदिक भाषा में निष्टर्क्य, देवहूय, प्रणीय, उन्नीय, उच्छिष्य, मर्य, स्तर्य, अध्वर्य, खन्य, खान्य, देवयज्या, पृच्छ्य, प्रतिषीव्य, ब्रह्मवाद्य, भाव्य, स्ताव्य, उपचाय्य और पृड शब्दों का निपातन है ॥१२३॥ ऋकारान्त और हलन्त धातुओं से भी ण्यत् प्रत्यय होता है ॥ १२४ ॥ आवश्यकता के अभिधानार्थ उवर्णान्त धातु से ण्यत् प्रत्यय होता है ॥१२५॥ आङ्पूर्वक सु धातु, यु, वप्, रप्, लप्, त्रप् और चम् धातुओं से भी ण्यत् प्रत्यय होता है ॥ १२६ ॥ अनित्य अर्थ में आनाय्य शब्द का निपातन है ॥ १२७ ॥ असम्मति (= अनादर) अर्थ मे प्रणाय्य शब्द का निपातन है ॥ १२८ ॥ मान, हविस्, निवास तथा सामिधेनी (= ऋग्विशेष) अर्थों में क्रमशः पाय्य, सान्नाय्य, निकाय्य और धाय्य शब्दों का निपातन है ॥ १२९ ॥ क्रतु अर्थ में कुण्डपाय्य और संचाय्य शब्दों का निपातन है ॥ १३० ॥

१३१ अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः ।

१३२ चित्याग्निचित्ये च ।

१३३ ण्वुल्तृचौ ।

१३४ नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ।

१३५ इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ।

१३६ आतश्चोपसर्गे ।

१३७ पाघ्राध्माधेट्दृशः शः ।

१३८ अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसातिसाहिभ्यश्च ।

१३९ ददातिदधात्योर्विभाषा ।

१४० ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः ।

१४१ श्याद्व्यधास्रुसंस्र्वतीणवसावहृलिहश्लिषश्वसश्च ।

१४२ दुन्योरनुपसर्गे ।

१४३ विभाषा ग्रहः ।

१४४ गेहे कः ।

१४५ शिल्पिनि ष्वुन् ।

१४६ गस्थकन् ।

अग्नि अर्थ मे परिचाय्य, उपचाय्य और समूह्य शब्दों का निपातन है ॥ १३१ ॥ अग्नि के अभिधानार्थ ही चित्य तथा अग्निचित्या शब्दों का निपातन है ॥१३२॥ धातु से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय होते हैं ॥१३३॥ नन्द आदि धातुओं से ल्यु, ग्रह आदि धातुओं से णिनि और पच आदि धातुओं से अच् प्रत्यय होते हैं ॥१३४॥ जिन धातुओं की उपधा इक्-प्रत्याहारस्थ कोई स्वर हो उनसे और ज्ञा, प्री तथा किर धातुओं से 'क' प्रत्यय होता है ॥ १३५ ॥ उपसर्गविशिष्ट, अकारान्त धातुओं से भी 'क' प्रत्यय होता है ॥ १३६ ॥ उपसर्गविशिष्ट पा, घ्रा, ध्मा, धेट् और दृश् धातुओं से 'श' प्रत्यय होता है ॥ १३७ ॥ उपसर्गरहित लिम्प्, विन्द धारि,[1] पारि, वेदि उत् उपसर्ग से युक्त एजि, चेति, साति और साहि धातुओं से भी 'श' प्रत्यय होता है ॥ १३८ ॥ दाञ् और धाञ् धातुओं से विकल्प से 'श' प्रत्यय होता है ॥ १३९ ॥ ज्वल से लेकर कस पर्यन्त धातुओं से विकल्प से 'ण' प्रत्यय होता है ॥१४०॥ श्यैङ्, आकारान्त धातु, व्यध्, आ[2] + स्रु, सम् + स्रु, अति + इण्, अव + सा, अव + हृ, लिह, श्लिष और श्वस धातुओं से भी 'ण' प्रत्यय हो जाता है ॥१४१॥ उपसर्गशून्य दु और नी धातुओं से भी 'ण' प्रत्यय होता है ॥ १४२ ॥ ग्रह धातु से विकल्प से 'ण' प्रत्यय होता है ॥ १४३ ॥ समुदाय से यदि कर्तृभूत गेह का अभिधान होता हो तो ग्रह धातु से भी 'क' प्रत्यय हो जाता है ॥ १४४ ॥ शिल्पिस्वरूप कर्ता यदि समुदाय का अर्थ हो तो (नृत्, खन और रज) धातुओं से ष्वुन् प्रत्यय होता है ॥ १४५ ॥ शिल्पिस्वरूप कर्त्ता के वाच्य

१. ये सब णिजन्त धातु हैं ।
२. आ, सम् आदि उपसर्ग हैं । उनसे विशिष्ट स्रु आदि धातुओं से प्रत्यय का विधान है ।

१४७ ण्युट् च ।
१४८ हश्च व्रीहिकालयोः ।
१४९ प्रसृल्वः समभिहारे वुन् ।
१५० आशिषि च ।

द्वितीयः पादः

१ कर्मण्यण् ।
२ ह्वावामश्च ।
३ आतोऽनुपसर्गे कः ।
४ सुपि स्थः ।
५ तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः ।
६ प्रे दाज्ञः ।
७ समि ख्यः ।
८ गापोष्टक् ।
९ हरतेरनुद्यमनेऽच् ।
१० वयसि च ।
११ आङि ताच्छील्ये ।
१२ अर्हः ।

होने पर गै धातु से थकन् प्रत्यय होता है ॥ १४६ ॥ उक्त अर्थ में गै धातु से ण्युट् प्रत्यय भी होता है ॥ १४७ ॥ व्रीहिस्वरूप तथा कालात्मक कर्त्ता के समुदाय-वाच्य होनेपर क्रमशः ओहाक् तथा ओहाङ् धातुओं से भी ण्युट् प्रत्यय हो जाता है ॥ १४८ ॥ समुदाय से समभिहार (=साधुकारिता) गम्यमान होने पर प्रु, सृ और लू धातुओं से वुन प्रत्यय हो जाता है ॥ १४९ ॥ आशीः गम्यमान होने पर धातु मात्र से वुन् प्रत्यय होता है ॥ १५० ॥

तृतीय अध्याय का प्रथम पाद समाप्त ।

तृतीय अध्याय का द्वितीय पाद

कर्मसंज्ञक पद यदि उपपद हो तो धातु मात्र से अण् प्रत्यय होता है ॥ १ ॥ ह्वेञ्, वेञ् तथा माङ् धातुओं से भी कर्मसंज्ञक पद के उपपद होने पर अण् प्रत्यय ही होता है ॥ २ ॥ किन्तु उपसर्गयुक्त आकारान्त धातुओं से कर्मसंज्ञक पद के उपपद होने पर 'क' प्रत्यय हो जाता है ॥ ३ ॥ सुबन्त उपपद होने पर स्था धातु से 'क' प्रत्यय होता है ॥ ४ ॥ कर्मसंज्ञक तुन्द शब्द तथा शोक शब्द यदि उपपद हों तो क्रमशः परि + मृज् तथा अप+नुद् धातुओं से 'क' प्रत्यय होता है ॥५॥ कर्मसंज्ञक पद के उपपद होने पर प्र+दा और प्र+ज्ञा धातुओं से भी 'क' प्रत्यय होता है ॥६॥ कर्मोपपदक सम् + ख्या धातु से 'क' प्रत्यय होता है ॥ ७ ॥ कर्मोपपदक उपसर्ग-रहित गा तथा पा धातुओं से टक् प्रत्यय होता है ॥ ८ ॥ उत्क्षेपण से भिन्न अर्थ के वाचक कर्मोपपदक हृ धातु से अच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९ ॥ वयस् (= उम्र) गम्यमान होने पर भी कर्मोपपदक हृ धातु से अच् प्रत्यय होता है ॥ १० ॥ ताच्छील्य (= तत्स्वभावता) गम्यमान होनेपर कर्मोपपदक आङ् + हृ धातु से भी अच् प्रत्यय होता है ॥ ११ ॥ कर्मोपपदक अर्ह धातु से अच् प्रत्यय होता

१३ स्तम्बकर्णयो रमिजपोः ।
१४ शमिधातोः संज्ञायाम् ।
१५ अधिकरणे शेतेः ।
१६ चरेष्टः ।
१७ भिक्षासेनादायेषु च ।
१८ पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः ।
१९ पूर्वे कर्तरि ।
२० कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ।
२१ दिवाविभानिशाप्रभाभास्करा-
न्तानन्तादिबहुनान्दीकिंलिपि-
लिबिबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्र-
संख्याजङ्घाबाह्वहर्यत्तद्धनुररुःषु।
२२ कर्मणि भृतौ ।
२३ न शब्दश्लोककलहगाथावैर-
चाटुसूत्रमन्त्रपदेषु ।
२४ स्तम्बशकृतोरिन् ।
२५ हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ ।
२६ फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च ।
२७ छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् ।
२८ एजेः खश् ।

है ॥१२॥ 'स्तम्बे' शब्द के उपपद होने पर रम धातु और 'कर्णे' शब्द के उपपद
होने पर जप धातु से भी अच् प्रत्यय होता है ॥१३॥ समुदाय यदि संज्ञा-शब्द हो
तो 'शम्' उपपदयुक्त धातु मात्र से अच् प्रत्यय होता है ॥ १४ ॥ अधिकरणभूत
पदार्थवाचक सुबन्त उपपद होने पर शी धातु से भी अच् प्रत्यय हो जाता है ॥१५॥
अधिकरणभूत पदार्थ के वाचक सुबन्त के उपपद होने पर चर धातु से 'ट' प्रत्यय
होता है ॥१६॥ भिक्षा, सेना अथवा आदाय पद यदि उपपद हो तो भी चर धातु
से 'ट' प्रत्यय हो जाता है ॥ १७ ॥ 'पुरस्', 'अग्रतस्' अथवा 'अग्र' उपपद होने
पर सृ धातु से 'ट' प्रत्यय होता है ॥ १८ ॥ कर्तृवाचक पूर्व पद यदि उपपद हो
तो सृ धातु से भी 'ट' प्रत्यय होता है ॥ १९ ॥ हेतु, ताच्छील्य अथवा अनुकूलता
गम्यमान होने पर कर्मोपपदक कृ धातु से भी 'ट' प्रत्यय होता है ॥ २० ॥

यथासम्भव सुबन्त अथवा कर्मसंज्ञक दिवा, विभा आदि शब्द यदि उपपद
हों तो भी कृ धातु से 'ट' प्रत्यय होता है ॥ २१ ॥ क्रियार्थक कर्म शब्द यदि
उपपद हो तो भी कृ धातु से 'ट' प्रत्यय होता है, (प्रत्ययान्त से) भृति (=वेतन)
गम्यमान होने पर ॥ २२ ॥ कर्मसंज्ञक 'शब्द', श्लोक, कलह, गाथा, वर, चाटु,
सूत्र, मन्त्र और 'पद' शब्दों के उपपद होने पर कृ धातु से 'ट' प्रत्यय नहीं
होता ॥ २३ ॥ कर्मसंज्ञक स्तम्ब तथा शकृत् शब्दों के उपपद होने पर कृ धातु
से इन् प्रत्यय होता है ॥ २४ ॥ कर्मसंज्ञक दृति तथा नाथ शब्दों के उपपद होने
पर पशुकर्तृक हृ धातु से इन् प्रत्यय होता है ॥ २५ ॥ इन्-प्रत्ययान्त फलेग्रहि
और आत्मम्भरि शब्दों का निपातन है ॥ २६ ॥ वैदिक भाषा मे कर्मोपपदक वन,
सन, रक्ष और मथ् धातुओं से इन् प्रत्यय होता है ॥ २७ ॥ कर्मोपपदक णिजन्त

२९ नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः ।
३० नाडीमुष्ट्योश्च ।
३१ उदिकूले रुजिवहोः ।
३२ वहाभ्रे लिहः ।
३३ परिमाणे पचः ।
३४ मितनखे च ।
३५ विध्वरुषोस्तुदः ।
३६ असूर्यललाटयोर्दृशितपोः ।
३७ उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च ।
३८ प्रियवशे वदः खच् ।
३९ द्विषत्परयोस्तापेः ।
४० वाचि यमो व्रते ।
४१ पूःसर्वयोर्दारिसहोः ।
४२ सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः ।
४३ मेघर्तिभयेषु कृञः
४४ क्षेमप्रियमद्रेऽण् च ।

एज् (=एजि) धातु से खश् प्रत्यय होता है ॥ २८ ॥ कर्मसंज्ञक नासिका और स्तन शब्दों के उपपद होने पर क्रमशः ध्मा और धेट् धातु से खश् प्रत्यय होता है ॥ २९ ॥ कर्मसंज्ञक नाडी तथा मुष्टि शब्दों के उपपद होने पर भी क्रमशः ध्मा तथा धेट् धातु से खश् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३० ॥ कर्मसंज्ञक कूल (=तट) शब्द यदि उपपद हो तो उत् + रुज् और उत् + वह धातुओं से खश् प्रत्यय होता है ॥ ३१ ॥ कर्मसंज्ञक वह और अभ्र शब्दों के उपपद होने पर लिह धातु से भी खश् प्रत्यय होता है ॥ ३२ ॥ कर्मसंज्ञक परिमाणवाचक शब्द यदि उपपद हो तो पच् धातु से भी खश् प्रत्यय होता है ॥३३॥ कर्मसंज्ञक मित तथा नख शब्दों के उपपद होने पर भी पच् धातु से खश् प्रत्यय होता है ॥ ३४ ॥ कर्मसंज्ञक विधु तथा अरुस् शब्दों के उपपद होने पर तुद धातु से भी खश् प्रत्यय होता है ॥ ३५ ॥ कर्मसंज्ञक असूर्य तथा ललाट शब्दों के उपपद होने पर क्रमशः दृश् तथा तप धातु से भी खश् प्रत्यय होता है ॥३६॥ उग्रम्पश्य, इरम्मद और पाणिन्धम इन शब्दों का निपातन है ॥ ३७ ॥ कर्मसंज्ञक प्रिय तथा वश शब्दों के उपपद होने पर वद धातु से खच् प्रत्यय होता है ॥ ३८ ॥ कर्मसंज्ञक द्विषत् तथा पर शब्दों के उपपद होने पर तप धातु से भी खच् प्रत्यय होता है ॥ ३९ ॥ कर्मसंज्ञक वाच् शब्द यदि उपपद हो तो, समुदाय से व्रत गम्यमान होने पर, यम् धातु से भी खच् प्रत्यय होता है ॥ ४० ॥

कर्मसंज्ञक पुर् तथा सर्व शब्दों के उपपद होने पर क्रमशः णिजन्त दृ (=दारि) धातु तथा सह धातु से खच् प्रत्यय होता है ॥ ४१ ॥ कर्मसंज्ञक सर्व, कूल, अभ्र और करीष शब्दों के उपपद होने पर कष धातु से भी खच् प्रत्यय होता है ॥ ४२ ॥ कर्मसंज्ञक मेघ, ऋति तथा भय शब्दों के उपपद होने पर कृ धातु से भी खच् प्रत्यय होता है ॥ ४३ ॥ किन्तु कर्मसंज्ञक क्षेम, प्रिय और मद्र शब्दों

४५ आशिते भुवः करणभावयोः।
४६ संज्ञायां भृतॄवृजिधारिसहितपिदमः।
४७ गमश्च।
४८ अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः।
४९ आशिषि हनः।
५० अपे क्लेशतमसोः।
५१ कुमारशीर्षयोर्णिनिः।
५२ लक्षणे जायापत्योष्टक्।
५३ अमनुष्यकर्तृके च।
५४ शक्तौ हस्तिकपाटयोः।
५५ पाणिघताडघौ शिल्पिनि।
५६ आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन्।

के उपपद होने पर कृ धातुसे विकल्प से अण् तथा खच् प्रत्यय होते हैं ॥ ४४ ॥ सुबन्त आशित शब्द यदि उपपद हो तो भू धातु से भी करण कारक अथवा भाव की अभिव्यक्ति के लिए खच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ४५ ॥ प्रत्ययान्त शब्द यदि संज्ञा-शब्द हो तो यथासम्भव कर्मसंज्ञक या अन्य सुबन्त के उपपद होने पर भृ, तृ, वृ, जि, धारि, सहि, तपि तथा दम धातुओं से भी खच् प्रत्यय होता है ॥४६॥ प्रत्ययान्त के संज्ञा-शब्द होने पर सुबन्तोपपदक गम् धातु से भी खच् प्रत्यय हो जाता है ॥४७॥ कर्मसंज्ञक अन्त, अत्यन्त, अध्वन्, दूर, पार, सर्व और अनन्त शब्दों के उपपद होने पर गम् धातु से 'ड' प्रत्यय होता है ॥ ४८ ॥ प्रत्ययान्त शब्द से आशीः गम्यमान होने पर कर्मोपपदक हन् धातु से भी 'ड' प्रत्यय होता है ॥ ४९ ॥ कर्मसंज्ञक क्लेश तथा तमस् शब्दों के उपपद होने पर अप+हन् धातु से भी 'ड' प्रत्यय होता है ॥ ५० ॥ कर्मसंज्ञक कुमार और शीर्षन् शब्दों के उपपद होने पर हन् धातु से णिनि प्रत्यय होता है ॥ ५१ ॥ कर्मसंज्ञक जाया तथा पति शब्दों के उपपद होने पर हन् धातु से टक् प्रत्यय होता है यदि प्रत्ययान्त शब्द लक्षण-विशिष्ट कर्त्ता का वाचक हो तो ॥ ५२ ॥ यदि (हन् धातु का) कर्त्ता मनुष्यभिन्न तत्त्व हो तो कर्मोपपदक हन धातु से भी टक् प्रत्यय हो जाता है ॥५३॥ प्रत्ययान्त शब्द से शक्ति गम्यमान होने पर कर्मसंज्ञक हस्तिन् अथवा कपाट शब्द-स्वरूप उपपद से विशिष्ट हन् धातु से भी टक् प्रत्यय हो जाता है ॥५४॥ शिल्पि-स्वरूप कर्त्ता के अभिधानार्थ पाणिघ तथा ताडघ शब्दों का निपातन (अर्थात् कर्मसंज्ञक पाणि अथवा ताड शब्दों के उपपद होने पर हन् धातु से 'क' प्रत्यय और इसके परे हन् धातु के 'टि' का लोप और 'ह' के स्थान में 'घ' आदेश हो जाता) है ॥ ५५ ॥ च्वि-प्रत्ययान्त शब्द के अर्थ को प्रकट करने वाले च्विप्रत्यय-

५७ कर्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ ।
५८ स्पृशोऽनुदके क्विन् ।
५९ ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च ।
६० त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च
६१ सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप् ।
६२ भजो ण्विः ।
६३ छन्दसि सहः ।
६४ वहश्च ।
६५ कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट् ।
६६ हव्येऽनन्तः पादम् ।
६७ जनसनखनक्रमगमो विट् ।
६८ अदोऽनन्ने ।
६९ क्रव्ये च ।

रहित कर्मत्वयुक्त आढ्य, सुभग, स्थूल, पतित, नग्न, अन्ध तथा प्रिय शब्दों में अन्यतम के उपपद होने से कृ धातु से करण कारक के अर्थ में ख्युन् प्रत्यय होता है ॥ ५६ ॥ च्व्यर्थ में वर्तमान किन्तु च्वि-प्रत्यय-रहित सुबन्त आढ्य आदि शब्दों के उपपद होने पर भू धातु से कर्ता अर्थ में (विकल्प से) खिष्णुच् और खुकञ् प्रत्यय होते हैं ॥५७॥ उदक शब्द से भिन्न सुबन्त पद के उपपद होने पर स्पृश् धातु से क्विन् प्रत्यय होता है । ५८ ॥ क्विन्-प्रत्ययान्त ऋत्विक्, दधृक्, स्रक्, दिक् और उष्णिक् इन पाँच शब्दों का निपातन और सुबन्तोपपदक अञ्च् धातु तथा उपपद-रहित युज् एवम् क्रुञ्च् धातुओं से क्विन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ५९ ॥ त्यत् आदि शब्दों के उपपद होने पर आलोचन-भिन्न अर्थ मे प्रयुज्यमान दृश् धातु से कञ् प्रत्यय भी होता है तथा क्विन् प्रत्यय भी ॥ ६० ॥

उपसर्गात्मक अथवा उपसर्गेतर सुबन्त के उपपद होने पर सद्, सू, द्विष, द्रुह, दुह, युज्, विद्, भिद्, छिद्, जि, नी, एवं राज् धातुओं से क्विप् प्रत्यय होता है ॥६१॥ उपसर्गात्मक अथवा उपसर्गेतर सुबन्त उपपद होने पर भज धातु से ण्वि प्रत्यय होता है ॥ ६२ ॥ सुबन्त उपपद होने पर वैदिक प्रयोग में सह धातु से भी ण्वि प्रत्यय होता है ॥ ६३ ॥ उक्त स्थिति में वह धातु से भी ण्वि प्रत्यय होता है ॥ ६४ ॥ वैदिक प्रयोग मे कव्य, पुरीष अथवा पुरीष्य शब्द के उपपद होने पर वह धातु से ञ्युट् प्रत्यय होता है ॥६५॥ वैदिक प्रयोग में यदि वह धातु किसी पाद के अन्त में न आया हो तो हव्य शब्दके उपपद होने पर भी उससे ञ्युट् प्रत्यय होता है ॥ ६६ ॥ वैदिक प्रयोग में सुबन्तोपपदक जन्, सन, खन, क्रम् और गम् धातुओं से विट् प्रत्यय होता है ॥ ६७ ॥ अन्नशब्दभिन्न सुबन्त के उपपदत्व मे अद् धातु से विट् प्रत्यय होता है ॥ ६८ ॥ सुबन्त क्रव्य शब्द के उपपद होने

७० दुहः कब्घश्च ।
७१ मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन् ।
७२ अवे यजः ।
७३ विजुपे छन्दसि ।
७४ आतो मनिन्क्वनिपश्च ।
७५ अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ।
७६ क्विप् च ।
७७ स्थः क च ।
७८ सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ।
७९ कर्तर्युपमाने ।
८० व्रते ।
८१ बहुलमाभीक्ष्ण्ये ।
८२ मनः ।
८३ आत्ममाने खश्च ।
८४ भूते ।

पर भी अद् धातु से विट् प्रत्यय होता है ॥ ६९ ॥ सुबन्तोपपदक दुह धातु से कप् प्रत्यय भी होता है और ह के स्थान मे घ आदेश भी ॥ ७० ॥ मन्त्रगत प्रयोग में सुबन्त-श्वेतशब्दोपपदक वह धातु, उक्थशब्दोपपदक शस् धातु और पुरस्-उपपदक दाश् धातु से ण्विन् प्रत्यय का विधान और अन्यान्य आवश्यक कार्यों का निपातन होता है ॥ ७१ ॥ मन्त्रगत प्रयोग में अव+यज् धातु से ण्विन् प्रत्यय होता है ॥ ७२ ॥ वैदिक प्रयोग मे उप+यज् धातु से विच् प्रत्यय होता है ॥ ७३ ॥ वैदिक प्रयोग मे सुबन्त—चाहे उपसर्ग हो या उपसर्गेतर—के उपपद होने पर आकारान्त धातु से मनिन्, क्वनिप् और वनिप् प्रत्यय होते हैं ॥ ७४ ॥ किन्तु आकारान्तेतर धातुओं से तो वैदिकेतर प्रयोग मे भी मनिन्, क्वनिप्, वनिप् और विच् प्रत्ययों का सम्बन्ध देखा जाता है ॥ ७५ ॥ उपपदयुक्त अथवा उपपद-रहित होने पर भी धातुमात्र से लोक तथा वेद में क्विप् प्रत्यय होता है ॥ ७६ ॥ सुबन्त उपपद होने पर स्था धातु से क्विप् तथा 'कि' ये दोनों प्रत्यय, विकल्प से, होते हैं ॥ ७७ ॥ जातिवाचक-भिन्न सुबन्त के उपपदत्व में ताच्छील्य यदि गम्यमान हो तो धातु-मात्र से णिनि प्रत्यय हो जाता है ॥ ७८ ॥ प्रत्ययार्थ कर्ता का उपमानभूत सुबन्त यदि उपपद हो तो भी धातु से णिनि प्रत्यय होता है ॥७९॥ यदि समुदाय से व्रत (= शास्त्रीय नियम) की प्रतीति होती हो तो भी सुबन्तोप-पदक धातु से णिनि प्रत्यय होता है ॥ ८० ॥

अभीक्ष्णता (= पुनः पुनः होना) गम्यमान होने पर धातु से बहुल रूप में णिनि प्रत्यय होता है ॥ ८१ ॥ सुबन्तोपपदक मन धातु से भी णिनि प्रत्यय होता है ॥ ८२ ॥ यदि कर्ता उपपदभूत सुबन्त पद द्वारा प्रतिपाद्यमान वैशिष्ट्य का अपने ही साथ सम्बन्ध मानने वाला हो तो सुबन्तोपपदक मन धातु से, विकल्प से, खश् और णिनि प्रत्यय होते हैं ॥ ८३ ॥ यहाँ से लेकर "वर्तमाने लट्" सूत्र से

८५ करणे यजः ।
८६ कर्मणि हनः ।
८७ ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् ।
८८ बहुलं छन्दसि ।
८९ सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः ।
९० सोमे सुञः ।
९१ अग्नौ चेः ।
९२ कर्मण्यग्न्याख्यायाम् ।
९३ कर्मणीनिविक्रियः ।
९४ दृशेः क्वनिप् ।
९५ राजनि युधि कृञः ।
९६ सहे च ।
९७ सप्तम्यां जनेर्डः ।
९८ पञ्चम्यामजातौ ।
९९ उपसर्गे च संज्ञायाम् ।
१०० अनौ कर्मणि ।

पहले तक 'भूते' (=भूत काल में) का अधिकार समझना चाहिए ॥ ८६ ॥ कर्मकारक के उपपद होनेपर हन् धातु से भूतकालार्थक णिनि प्रत्यय होता है ॥ ८६ ॥ कर्मत्वविशिष्ट, ब्रह्मन्, भ्रूण और वृत्र शब्द के उपपद होने पर हन् धातु से भूतकालार्थक क्विप् प्रत्यय होता है ॥ ८७ ॥ किन्तु वैदिक वाङ्मय में अन्य उपपदों के होने पर भी हन् धातु से बहुल रूप में ही क्विप् प्रत्यय होता है ॥ ८८ ॥ सु, कर्मत्वविशिष्ट कर्मन्, पाप, मन्त्र और पुण्य शब्दों के उपपदत्व में कृ धातु से भी क्विप् प्रत्यय होता है ॥ ८९ ॥ कर्मत्वयुक्त सोम शब्द यदि उपपद हो तो सु धातु से भी क्विप् प्रत्यय होता है ॥९०॥ कर्मत्वयुक्त अग्नि शब्द यदि उपपद हो तो चि धातु से भी क्विप् प्रत्यय होता है ॥ ९१ ॥ किन्तु यदि समुदाय से अग्नि का हीं प्रतिपादन होता हो तो कर्मत्व-युक्त सुबन्त के उपपदत्व मे चि धातु से कर्मकारक के अभिधानार्थ ही क्विप् प्रत्यय होता है ॥ ९२ ॥ कर्मत्व-विशिष्ट सुबन्त के उपपदत्व में वि + क्री धातु से इनि प्रत्यय होता है ॥ ९३ ॥ कर्मकारक के उपपदत्व मे दृश् धातु से क्वनिप् प्रत्यय होता है ॥ ९४ ॥ कर्मत्व-विशिष्ट राजन् शब्द यदि उपपद हो तो युध तथा कृ धातुओं से भी भूतकालार्थक क्वनिप् प्रत्यय होता है ॥ ९५ ॥ 'सह' शब्द के उपपद होने पर भी युध तथा कृ धातुओं से क्वनिप् प्रत्यय होता है ॥ ९६ ॥ सप्तम्यन्त पद के उपपद होने पर जन् धातु से 'ड' प्रत्यय होता है ॥ ९७ ॥ जातिवाचक शब्द से भिन्न पञ्चम्यन्त शब्द के उपपद होने पर भी जन् धातु से 'ड' प्रत्यय होता है ॥९८॥ यदि समुदाय (प्रत्ययान्त शब्द) संज्ञा-शब्द हो तो उपसर्ग विशिष्ट जन् धातु से भी 'ड' प्रत्यय होता है ॥ ९९ ॥ कर्मत्वविशिष्ट सुबन्त यदि उपपद हो तो अनु + जन् धातु से भी 'ड' प्रत्यय होता है ॥ १०० ॥

१०१ अन्येष्वपि दृश्यते।
१०२ निष्ठा।
१०३ सुयजोर्ङ्वनिप्।
१०४ जीर्यतेरतृन्।
१०५ छन्दसि लिट्।
१०६ लिटः कानज्वा।
१०७ क्वसुश्च।
१०८ भाषायां सदवसश्रुवः।
१०९ उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च।
११० लुङ्।
१११ अनद्यतने लङ्।
११२ अभिज्ञावचने लृट्।
११३ न यदि।
११४ विभाषा साकाङ्क्षे।
११५ परोक्षे लिट्।
११६ हशश्वतोर्लङ् च।

अन्य कारक में वर्त्तमान उपपदों के रहने पर भी जन् धातु से 'ड' प्रत्यय देखा जाता है ॥ १०१ ॥ 'निष्ठा' संज्ञक प्रत्यय (=क्त तथा क्तवतु) भूतकालार्थक[1] ही होते हैं ॥ १०२ ॥ सु धातु तथा यज् धातु से ङ्वनिप् प्रत्यय होता है ॥ १०३ ॥ जृष् धातु से अतृन् प्रत्यय होता है ॥ १०४ ॥ वैदिक प्रयोग में धातु से भूतकालार्थक लिट् लकार होता है ॥ १०५ ॥ वैदिक प्रयोग में लिट् के स्थान मे विकल्प से कानच् आदेश हो जाता है ॥ १०६ ॥ उक्त परिस्थिति में हीं क्वसु आदेश भी होता है ॥ १०७ ॥ लौकिक प्रयोग (= भाषा) में भी सद्, वस और श्रु धातुओं से विहित लिट् के स्थान मे विकल्प से क्वसु आदेश हो जाता है ॥ १०८ ॥ उपेयिवान्, अनाश्वान् और अनूचान इन क्वसु-प्रत्ययान्त शब्दों का निपातन है ॥ १०९ ॥ धात्वर्थ क्रिया यदि अतीतकालिक हो तो धातु से लुङ् लकार होता है ॥ ११० ॥ किन्तु आज से पहले ही यदि क्रिया सम्पन्न हो चुकी हो (= अनद्यतन भूत) तो लङ् लकार हो जाता है ॥ १११ ॥ स्मरणार्थक शब्द यदि उपपद हो तो अनद्यतनभूतकालिक क्रिया के वाचक धातु से लृट् लकार हो जाता है ॥ ११२ ॥ किन्तु यदि स्मरणार्थक उपपद यत् शब्द से युक्त हो तो उक्त लृट् लकार नहीं होता ॥ ११३ ॥ यदि वक्ता साकांक्ष हो तो स्मरणार्थक उपपद—चाहे वह यत् शब्द से युक्त हो अथवा वियुक्त—से विशिष्ट धातु से विकल्प से लृट् प्रत्यय हो जाता है ॥ ११४ ॥ अनद्यतनभूतकालिक परोक्ष क्रिया के वाचक धातु से लिट् लकार हो जाता है ॥ ११५ ॥ किन्तु ह अथवा शश्वत् शब्द यदि उपपद हो तो अनद्यतनभूतकालिक परोक्ष क्रिया के वाचक धातु से विकल्प से लङ् प्रत्यय भी होता है और लिट् प्रत्यय भी ॥ ११६ ॥ यदि समीपकालिक प्रश्न

१. स्वसमभिव्याहृत धात्वर्थ में भूतकालिकत्व का प्रतिपादन ही प्रत्यय का भूतकालार्थकत्व है।

११७ प्रश्ने चासन्नकाले।
११८ लट् स्मे।
११९ अपरोक्षे च।
१२० ननौ पृष्टप्रतिवचने।
१२१ नन्वोर्विभाषा।
१२२ पुरि लुङ् चास्मे।
१२३ वर्तमाने लट्।
१२४ लटः शतृशानचावप्रथमा-
समानाधिकरणे।
१२५ संबोधने च।
१२६ लक्षणहेत्वोः क्रियायाः।
१२७ तौ सत्।
१२८ पूङ्यजोः शानन्।
१२९ ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु
चानश्।
१३० इङ्धार्योः शत्रकृच्छ्रिणि।
१३१ द्विषोऽमित्रे।

गम्यमान हो तो भी अनद्यतनभूतकालिक परोक्ष क्रिया के वाचक धातु से लङ् और लिट् प्रत्यय होते हैं ॥ ११७ ॥ किन्तु यदि स्म शब्द उपपद हो तो परोक्षानद्यतनभूतकाल मे धातु से लट् प्रत्यय हो जाता है ॥ ११८ ॥ स्म शब्द के उपपद होने पर अपरोक्ष अनद्यतन भूतकाल में भी धातु से लट् प्रत्यय होता है ॥ ११९ ॥ किसी प्रश्न के उत्तरवाक्य मे यदि 'ननु' शब्द उपपद हो तो भी धातु से भूत-काल मे लट् प्रत्यय होता है ॥ १२० ॥

किन्तु उक्त परिस्थिति में यदि 'न' शब्द या 'नु' शब्द उपपद हो तो लट् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥ १२१ ॥ यदि 'स्म' शब्द से रहित 'पुरा' शब्द मात्र उपपद हो तो अनद्यतनभूतकालिक क्रिया के वाचक धातु से विकल्प से लुङ् तथा लट् दोनो प्रत्यय होते हैं ॥ १२२ ॥ वर्तमान-क्रियावाचक धातु से लट् प्रत्यय होता है ॥ १२३ ॥ यदि लट् प्रत्यय का सामानाधिकरण्य किसी प्रथमान्त पद के साथ न हो तो लट् के स्थान में (परस्मैपद मे) शतृ और (आत्मनेपद मे) शानच् आदेश हो जाते हैं ॥ १२४ ॥ सम्बोधन मे विहित प्रथमा से युक्त शब्द के साथ सामानाधिकरण्य होने पर भी लट् के स्थान में शतृ और शानच् आदेश होते हैं ॥ १२५ ॥ क्रियाविषयक लक्षण (=परिचायक साधन) तथा हेतु (=जनक) अर्थ के प्रतिपादक धातुओं से विहित लट् के स्थान मे भी शतृ और शानच् आदेश होते हैं ॥ १२६ ॥ शतृ तथा शानच् को 'सत्' कहते हैं ॥ १२७ ॥ पूङ् तथा यज् धातुओं से शानन् प्रत्यय होता है ॥ १२८ ॥ ताच्छील्य, वयस् तथा शक्ति के प्रतिपादक धातुओं से भी चानश् प्रत्यय होता है ॥ १२९ ॥ यदि धात्वर्थ क्रिया का कर्त्ता क्रिया का सुखपूर्वक सम्पादन करने वाला हो तो इङ् तथा धारि (= धृङ् + णिच्) धातुओं से शतृ प्रत्यय होता है ॥१३०॥ धात्वर्थ का कर्त्ता

१३२ सुञो यज्ञसंयोगे ।
१३३ अर्हः प्रशंसायाम् ।
१३४ आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ।
१३५ तृन्
१३६ अलंकृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतुवृधुसहचर इष्णुच् ।
१३७ णेश्छन्दसि ।
१३८ भुवश्च ।
१३९ ग्लाजिस्थश्च क्स्नुः ।
१४० त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः ।
१४१ शमित्यष्टाभ्यो घिनुण् ।
१४२ संपृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेविसंज्वरपरिक्षिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीडविविचत्यजरजभजातिचरापचरामुषाभ्याहनश्च ।
१४३ वौ कषलसकत्थस्रम्भः ।
१४४ अपे च लषः ।
१४५ प्रे लपसृद्रुमथवदवसः ।

यदि शत्रु हो तो द्विष् धातु से भी शतृ प्रत्यय होता है ॥१३१॥ यज्ञसम्बद्ध अभिषव अर्थ के वाचक सु धातु से भी शतृ प्रत्यय होता है ॥१३२॥ प्रशंसा गम्यमान होने पर अर्ह धातु से भी शतृ प्रत्यय होता है ॥ १३३ ॥ अब से 'भ्राजभास' सूत्र द्वारा विधीयमान क्विप् प्रत्यय तक के प्रत्ययों का विधान तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी कर्त्ता के अर्थ में ही होगा ॥ १३४ ॥ यदि कर्त्ता तच्छील आदि हो तो धातुमात्र से वर्त्तमान काल में तृन प्रत्यय होता है ॥ १३५ ॥ अलम् + कृञ्, निरा + कृञ्, प्र + जन्, उत् + पच्, उत् + पत, उत् + मद्, रुच्, अप + त्रप्, वृत्, वृध्, सह एवं चर धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता होने पर इष्णुच् प्रत्यय होता है ॥ १३६ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर वैदिक प्रयोग में ण्यन्त धातुओं से भी इष्णुच् प्रत्यय हो जाता है ॥ १३७ ॥ कर्त्ता के तच्छीलादि होने पर वैदिक प्रयोग मे भू धातु से भी इष्णुच् प्रत्यय होता है ॥ १३८ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर ग्ला, जि, स्था और भू धातु से क्स्नु प्रत्यय भी होता है ॥ १३९ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर त्रस, गृध्, धृष और क्षिप धातुओं से क्नु प्रत्यय होता है ॥ १४० ॥

तच्छीलादि कर्त्ता होने पर शम् आदि आठ धातुओं से घिनुण् प्रत्यय होता है ॥ १४१ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर सम् + पृच्, अनु + रुध् आदि धातुओं से भी घिनुण् प्रत्यय होता है ॥ १४२ ॥ वि उपसर्ग से विशिष्ट कष, लस, कत्थ और स्रम्भ् धातुओं से भी घिनुण् प्रत्यय होता है ॥ १४३ ॥ वि या अप उपसर्ग से विशिष्ट होने पर लष धातु से भी घिनुण् प्रत्यय होता है ॥ १४४ ॥ प्र उपसर्ग

१४६ निन्दहिंसक्लिशखादविनाश-परिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूञो वुञ् ।
१४७ देविक्रुशोश्चोपसर्गे ।
१४८ चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् ।
१४९ अनुदात्तेतश्च हलादेः ।
१५० जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः ।
१५१ क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च ।
१५२ न यः ।
१५३ सूददीपदीक्षश्च ।
१५४ लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशॄभ्य उकञ् ।
१५५ जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन्
१५६ प्रजोरिनिः ।
१५७ जिदृक्षिविश्रीण्वमा०यथाभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च ।
१५८ स्पृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच् ।
१५९ दाधेट्सिशदसदो रुः ।

से युक्त लप, सृ, द्रु, मथ, वद् और वस धातुओं से भी घिनुण् प्रत्यय होता है ॥ १४५ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर निन्द्, हिंस्, क्लिश्, खाद, वि + नाशि, (नश + णिच्) परि + क्षिप, परि + रट, परि + वादि (= वद + णिच्), वि + आङ् + भाष और असूय धातुओं से वुञ् प्रत्यय होता है ॥ १४६ ॥ उपसर्गपूर्वक देव् तथा क्रुश् धातुओं से भी वुञ् प्रत्यय होता है ॥ १४७ ॥ चलनार्थक तथा शब्दार्थक अकर्मक धातुओं से, तच्छीलादि कर्त्ता होने पर, युच् प्रत्यय होता है ॥ १४८ ॥ हलादि अकर्मक अनुदात्तेत् धातुओं से भी युच् प्रत्यथ होता है ॥ १४९ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर जु, यङन्त चङ्क्रम्य तथा दन्द्रम्य, सृ, गृध् , ज्वल, शुच, लष, पत तथा पद धातुओं से भी युच् प्रत्यय होता है ॥ १५० ॥ क्रोधार्थक तथा मण्डनार्थक धातुओं से भी युच् प्रत्यय होता है ॥ १५१ ॥ किन्तु यकारान्त धातु से युच् प्रत्यय नहीं होता ॥ १५२ ॥ सूद, दीप तथा दीक्ष धातुओं से भी युच् प्रत्यय नही होता ॥ १५३ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर लष, पत, पद, स्था, भू, वृष, हन, कम्, गम् और शॄ धातुओं से उकञ् प्रत्यय होता है ॥ १५४ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर जल्प, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ठ और वृङ् धातुओं से षाकन् प्रत्यय होता है ॥ १५५ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर जु धातु से इनि प्रत्यय होता है ॥ १५६ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर जि, दृङ्, क्षि, वि + श्रिञ्, इण्, वम्, नञ् + व्यथ, अभि + अम, परि + भू, तथा प्र + सू धातुओं से भी इनि प्रत्यय होता है ॥ १५७ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर स्पृह, गृह, पत, दय, नि + द्रा, तत् + द्रा और श्रत् + धा धातुओं से आलुच् प्रत्यय होता है ॥ १५८ ॥ दा, धेट्, सि, शद्, और सद् धातुओं से रु प्रत्यय होता

१६० सृघस्यदः क्मरच्।
१६१ भञ्जभासभिदो घुरच्।
१६२ विदिभिदिच्छिदेः कुरच्।
१६३ इण्नशजिसर्तिभ्यः क्वरप्।
१६४ गत्वरश्च।
१६५ जागुरूकः।
१६६ यजजपदशां यङः।
१६७ नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंस-
दीपो रः।
१६८ सनाशंसभिक्ष उः।
१६९ बिन्दुरिच्छुः।
१७० क्याच्छन्दसि।
१७१ आदृगमहनजनः किकिनौ
लिट् च।
१७२ स्वपितृषोर्नजिङ्।
१७३ शृवन्द्योरारुः।
१७४ भियः क्रुक्लुकनौ।
१७५ स्थेशभासपिसकसो वरच्

है ॥ १५९ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर सृ, घस् और अद् धातुओं से क्मरच् प्रत्यय होता है ॥ १६० ॥

तच्छीलादि कर्त्ता होने पर भञ्ज, भास और भिद् धातुओं से घुरच् प्रत्यय होता है ॥ १६१ ॥ (ज्ञानार्थक) विद, भिद् और छिद् धातुओं से, तच्छीलादि कर्त्ता होने पर, कुरच् प्रत्यय हो जाता है ॥ १६२ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर इण्, नश, जि और सृ धातुओं से क्वरप् प्रत्यय होता है ॥ १६३ ॥ गत्वर शब्द का निपातन है ॥ १६४ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर जागृ धातु से ऊक प्रत्यय होता है ॥ १६५ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर यङ्-प्रत्ययान्त यज, जप औ दंश धातुओं से भी ऊक प्रत्यय होता है ॥ १६६ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर नम्, कम्प, स्मि, अजस् (नञ् + जस्), कम, हिंस और दीप धातुओं से 'र' प्रत्यय होता है ॥ १६७ ॥ सन्-प्रत्ययान्त, आ + शंस और भिक्ष धातुओं से 'उ' प्रत्यय होता है ॥ १६८ ॥ बिन्दु तथा इच्छु इन दो उ-प्रत्ययान्त शब्दों का निपातन है ॥ १६९ ॥ क्य-प्रत्ययान्त धातुओं से भी वैदिक प्रयोग में, 'उ' प्रत्यय होता है ॥ १७० ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर वैदिक प्रयोग में आकारान्त, ऋकारान्त, गम्, हन तथा जन धातुओं से कि तथा किन् प्रत्यय तथा ये लिड्वत्[1] भी हो जाते हैं ॥ १७१ ॥ स्वप् तथा तृष धातुओं से नजिङ् प्रत्यय होता है ॥१७२॥ शृ तथा वन्द् धातुओं से आरु प्रत्यय होता है ॥ १७३ ॥ भी धातु से क्रुक् तथा लुकन् प्रत्यय होते हैं ॥ १७४ ॥ स्था, ईश, भास, पिश और कस धातुओं से वरच्

१. लिट् लकार को निमित्त मान कर प्रवृत्त कार्य के आश्रय हो जाते हैं—यह तात्पर्य है।

१६६ यश्च यङः ।
१७७ भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप् ।
१७८ अन्येभ्योऽपि दृश्यते ।
१७९ भुवः संज्ञान्तरयोः ।
१८० विप्रसम्भ्यो ड्वसंज्ञायाम् ।
१८१ धः कर्मणि ष्ट्रन् ।
१८२ दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ।
१८३ हलसूकरयोः पुवः ।
१८४ अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः ।
१८५ पुवः संज्ञायाम् ।
१८६ कर्तरि चर्षिदेवतयोः ।
१८७ ञीतः क्तः ।
१८८ मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च ।

प्रत्यय होता है ॥ १७५ ॥ यङ्प्रत्ययान्त या धातु (= याया) से भी वरच् प्रत्यय होता है ॥ १७६ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर भ्राज्, भास्, धुर्, वि + द्युत, ऊर्ज, पृ, जु, ग्राव + स्तु धातुओं से क्विप् प्रत्यय होता है ॥ १७७ ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होने पर अन्य धातुओं से भी क्विप् प्रत्यय देखा जाता है ॥ १७८ ॥ समुदाय के संज्ञावाचक अथवा अन्तर(= मध्यवर्ती)वाचक होने पर भू धातु से भी क्विप् प्रत्यय होता है ॥ १७९ ॥ समुदाय यदि संज्ञावाचक न हो तो वि, प्र अथवा सम् उपसर्ग से विशिष्ट भू धातु से 'डु' प्रत्यय होता है ॥ १८० ॥

कर्मकारक में धा धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय होता है ॥ १८१ ॥ करण कारक में दाप्, नी, शसु, यु, युजिर्, ष्टुञ् (=स्तु), तुद, षिञ्, षिचिर्, (=सिच) मिह, पत्लृ (=पत्) दंश और णह धातुओं से ष्ट्रन्प्रत्यय होता है ॥ १८२ ॥ यदि प्रत्ययवाच्य करण कारक हल अथवा सूकर के अवयव का वाचक हो तो पू धातु से भी ष्ट्रन् प्रत्यय होता है ॥१८३॥ करण कारक में ऋ, लू, धू, सू, खन्, सह और चर धातुओं से इत्र प्रत्यय होता है ॥ १८४ ॥ यदि प्रत्ययान्त शब्द संज्ञा-वाचक हो तो करण कारक मे पू धातु से भी इत्र प्रत्यय होता है ॥ १८५ ॥ ऋषि-स्वरूप करण कारक तथा देवनात्मक कर्त्ता कारक में भी पू धातु से इत्र प्रत्यय होता है ॥ १८६ ॥ जिन धातुओं के अवयवभूत ञ् की इत्संज्ञा हुई हो उन (= ञीत्) धातुओं से वर्त्तमान काल मे क्त प्रत्यय होता है ॥ १८७ ॥ इच्छार्थक, ज्ञानार्थक तथा पूजार्थक (= सत्कारार्थक) धातुओं से भी वर्त्तमान काल मे क्त प्रत्यय होता है ॥ १८८ ॥

तृतीय अध्याय का द्वितीय पाद समाप्त ।

तृतीयः पादः

१ उणादयो बहुलम्।
२ भूतेऽपि दृश्यन्ते।
३ भविष्यति गम्यादयः।
४ यावत्पुरानिपातयोर्लट्।
५ विभाषा कदाकर्ह्योः।
६ किंवृत्ते लिप्सायाम्।
७ लिप्स्यमानसिद्धौ च।
८ लोडर्थलक्षणे च।
९ लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके।
१० तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्।
११ भाववचनाश्च।
१२ अण् कर्मणि च।

तृतीय अध्याय का तृतीय पाद

समुदाय के संज्ञा-वाचक होने पर धातु-मात्र से वर्तमान-क्रियार्थक उण् आदि प्रत्यय बहुल रूप में होते हैं ॥ १ ॥ उण् आदि प्रत्यय भूतकाल में भी देखे जाते हैं ॥ २ ॥ भविष्यत् काल को व्यक्त करने वाले प्रत्ययों से युक्त गमी आदि शब्द साधु हैं ॥ ३ ॥ यावत् अथवा पुरा इनमे से कोई निपात यदि उपपद हो तो धातु से भविष्यत्कालार्थक लट् प्रत्यय होता है ॥ ४ ॥ किन्तु कदा अथवा कर्हि शब्द यदि उपपद हो तो लट् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥ ५ ॥ सुप् प्रत्यय अथवा डतर या डतम प्रत्यय से युक्त किम् शब्द यदि उपपद हो तो धातु से, लिप्सा गम्यमान होने पर, भविष्यत्कालार्थक लट् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥ ६ ॥ लिप्स्यमान-प्रयुक्त फल-सिद्धि यदि हो तो भी धातु से विकल्प से भविष्यदर्थक लट् प्रत्यय होता है ॥ ७ ॥ प्रेषणा आदि लोट् प्रत्यय के अर्थ के लक्षक धातु से भी विकल्प से भविष्यत्कालार्थक लट् प्रत्यय होता है ॥ ८ ॥ यदि एक मुहूर्त (= ४८ मिनट) के बाद के भविष्यत्काल की क्रिया को प्रकट करना हो तो प्रेषणा आदि लोट् के अर्थों के लक्षक धातु से लिङ् (तथा लट्) प्रत्यय भी होते हैं ॥ ९ ॥ यदि एक क्रिया के निमित्त की जाने वाली दूसरी क्रिया (= क्रियार्था क्रिया) का वाचक पद उपपद हो तो नैमित्तिक-क्रिया-वाचक[1] धातु से भविष्यत्कालार्थक तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय होते हैं ॥ १० ॥ क्रियार्था क्रिया के वाचक पद के उपपदत्व में नैमित्तिक-क्रिया-वाचक धातु से भावार्थक प्रत्यय भी भविष्यत्काल में होते हैं ॥ ११ ॥ क्रियार्था क्रिया और कर्मकारक ये दोनों यदि उपपद हों तो नैमित्तिक

१. जिस क्रिया के लिए कोई अन्य क्रिया की जाती है वह क्रिया नैमित्तिक क्रिया है।

१३ लृट् शेषे च ।
१४ लृटः सद्वा ।
१५ अनद्यतने लुट् ।
१६ पदरुजविशस्पृशो घञ् ।
१७ सृ स्थिरे ।
१८ भावे ।
१९ अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ।
२० परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः ।
२१ इङश्च ।
२२ उपसर्गे रुवः ।
२३ समि युद्रुदुवः ।
२४ श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे ।
२५ वौ क्षुश्रुवः ।
२६ अवोदोर्नियः ।
२७ प्रे द्रुस्तुस्रुवः ।
२८ निरभ्योः पूल्वोः ।
२९ उन्न्योर्ग्रः ।
३० कृ धान्ये ।

क्रियावाचक धातु से भविष्यत् काल में अण् प्रत्यय होता है ॥ १२ ॥ क्रियार्था क्रिया के उपपद होने या न होने पर भी (= शेषे) भी धातु से भविष्यत्कालार्थक लृट् प्रत्यय होता है ॥ १३ ॥ लृट् के स्थान में विकल्प से शतृ और शानच् आदेश हो जाते हैं ॥१४॥ अनद्यतन भविष्यत् काल मे होने वाली क्रिया के वाचक धातु से लुट् प्रत्यय होता है ॥१५॥ पद, रुज, विश और स्पृश धातुओं से तीनों कालों में घञ् प्रत्यय होता है ॥ सृ धातु से स्थिरत्वविशिष्ट कर्त्ता को बतलाने वाला घञ् प्रत्यय होता है ॥ १७ ॥ धातु मात्र से भाव (= सिद्धावस्थापन्न धात्वर्थ) को प्रकट करने वाला घञ् प्रत्यय होता है ॥ १८ ॥ प्रत्ययान्त यदि संज्ञाशब्द हो तो कर्त्ता से भिन्न कारकों को प्रकट करने हेतु भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ १९ ॥ परिमाणार्थक संज्ञाशब्द यदि प्रत्ययान्त शब्द हो तो भी धातु-मात्र से घञ् प्रत्यय होता है ॥ २० ॥ इङ् धातु से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ २१ ॥ उपसर्गविशिष्ट रु धातु से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ २२ ॥ सम् उपसर्ग से युक्त यु, द्रु तथा दु धातुओं से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ २३ ॥ उपसर्गरहित श्रि, नी और भू धातुओं से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ २४ ॥ वि उपसर्ग से युक्त क्षु और श्रु धातुओं से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ २५ ॥ अव अथवा उत् उपसर्ग से विशिष्ट नी धातु से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ २६ ॥ प्र उपसर्ग से विशिष्ट द्रु, स्तु और स्रु धातुओं से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥२७॥ निर् + पू और अभि + लू धातुओं से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ २८ ॥ उत् अथवा नि उपसर्ग से युक्त ग्र धातु से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ २९ ॥ उत् अथवा नि उपसर्ग से युक्त कृ धातु से भी, यदि धात्वर्थ का सम्बन्ध धान्य के साथ हो तो, घञ् प्रत्यय होता है ॥ ३० ॥

३१ यज्ञे समि स्तुवः ।
३२ प्रे स्त्रोऽयज्ञे ।
३३ प्रथने वावशब्दे ।
३४ छन्दोनाम्नि च ।
३५ उदि ग्रहः ।
३६ समि मुष्टौ ।
३७ परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः ।
३८ परावनुपात्यय इणः ।
३९ व्युपयोः शेतेः पर्याये ।
४० हस्तादाने चेरस्तेये ।
४१ निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ।
४२ सङ्घे चानौत्तराधर्ये ।
४३ कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम् ।
४४ अभिविधौ भाव इनुण् ।
४५ आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः ।

यज्ञविषयक प्रयोग होने पर सम् + स्तु धातु से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ ३१ ॥ यदि यज्ञविषयक प्रयोग न हो तो प्र + स्तु धातु से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ ३२ ॥ प्रत्ययान्त यदि छन्दस् (आर्या, अनुष्टुप् आदि) की संज्ञा हो तो वि + स्तृ धातु से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ ३३ ॥ उत् उपसर्ग से युक्त ग्रह धातु से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ ३४ ॥ यदि धात्वर्थ का सम्बन्ध मुष्टि के साथ हो तो सम् + ग्रह धातु से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥२५॥ यदि धात्वर्थ का सम्बन्ध क्रमशः द्यूत (= जूआ) तथा अभ्रेष से हो तो क्रमशः परि + नी तथा नि + इण् धातुओं से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ ३७ ॥ यदि क्रमप्राप्त स्थिति का विपर्यय न (= अनुपात्यय = पर्याय) हो तो परि + इण् धातु से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ ३८ ॥ पर्याय गम्यमान होने पर वि + शी तथा उप + शी धातुओं से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ ३९ ॥ यदि चोरी न की जाती हो तो हस्तादान (= हाथ से ग्रहण करना) अर्थ में चि धातु से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ ४० ॥

निवास, चिति (= चयन), शरीर तथा उपसमाधान (= एकत्रीकरण) अर्थों में चि धातु से घञ् प्रत्यय होता है और आद्य चकार के स्थान में ककारादेश भी ॥४१॥ यदि औत्तराधर्य (= दूध पीने आदि के समय एक के शरीर पर दूसरे का बैठना) न हो तो भी प्राणि-समूह अर्थ में (नि उपसर्ग से युक्त) चिं धातु से घञ् प्रत्यय होता है ॥ ४२ ॥ स्त्रीत्वविशिष्ट भावार्थ में, क्रियाविनिमय गम्यमान होने पर, धातु से णच् प्रत्यय होता है ॥४२॥ यदि अभिविधि (= क्रिया तथा गुण से पूर्ण सम्बन्ध) गम्यमान हो तो धातु से भावार्थक इनुण् प्रत्यय होता है ॥ ४४ ॥ आक्रोश गम्यमान होने पर अव + ग्रह और नि + ग्रह धातु से भी इनुण् प्रत्यय

४६ प्रे लिप्सायाम् ।

४७ परौ यज्ञे ।

४८ नौ वृ धान्ये ।

४९ उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः ।

५० विभाषाङि रुप्लुवोः ।

५१ अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे ।

५२ प्रे वणिजाम् ।

५३ रश्मौ च ।

५४ वृणोतेराच्छादने ।

५५ परौ भुवोऽवज्ञाने ।

५६ एरच् ।

५७ ऋदोरप् ।

५८ ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च ।

५९ उपसर्गेऽदः ।

६० नौ ण च ।

६१ व्यधजपोरनुपसर्गे ।

६२ स्वनहसोर्वा ।

होता है ॥ ४५ ॥ लिप्सा गम्यमान होने पर प्र + ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय होता है ॥ ४६ ॥ यदि प्रत्ययान्त का अर्थ यज्ञ से सम्बद्ध हो तो परि + ग्रह धातु से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ ४७ ॥ धान्यविशेष के प्रत्ययान्त-वाच्य होने पर नि उपसर्ग से युक्त वृ धातु से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ ४८ ॥ उत् उपसर्ग से विशिष्ट श्रि, यु, पू और द्रु धातुओं से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ ४९ ॥ आङ् उपसर्ग से युक्त रु और प्लु धातुओं से भी विकल्प से घञ् प्रत्यय होता है ॥ ५० ॥ यदि वर्षा का अवरोध प्रत्ययान्त-वाच्य हो तो अव + ग्रह धातु से भी विकल्प से घञ् प्रत्यय होता है ॥ ५१ ॥ वणिक्सम्बन्धी तत्त्व यदि प्रत्ययान्त का वाच्य हो तो प्र + ग्रह धातु से भी विकल्प से घञ् प्रत्यय होता है ॥ ५२ ॥ रश्मि (= रस्सी) के प्रत्ययान्तवाच्य होने पर भी प्र + ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय होता है ॥ ५३ ॥ यदि प्रत्ययान्त का अर्थ आच्छादन हो तो प्र + वृ धातु से घञ् प्रत्यय होता है ॥ ५४ ॥ तिरस्कार यदि प्रत्ययान्त का अर्थ हो तो परि + भू धातु से भी घञ् प्रत्यय होता है ॥ ५५ ॥ प्रत्ययान्त यदि संज्ञाशब्द हो तो इवर्णान्त धातुओं से अच् प्रत्यय होता है ॥ ५६ ॥ ह्रस्वऋकारान्त और उकारान्त धातुओं से अप् प्रत्यय होता है ॥ ५७ ॥ ग्रह, वृ, दृ, निस् + चि और गम् धातुओं से भी अप् प्रत्यय होता है ॥ ५८ ॥ उपसर्गयुक्त अद् धातु से भी अप् प्रत्यय होता है ॥ ५९ ॥ किन्तु यदि अद् धातु नि उपसर्ग से युक्त हो तो इससे ण प्रत्यय (और अप् प्रत्यय) भी होता है ॥ ६० ॥

उपसर्गरहित व्यध तथा जप धातुओं से अप् प्रत्यय होता है ॥ ६१ ॥ किन्तु उपसर्गशून्य स्वन और हस धातुओं से विकल्प से अप् प्रत्यय होता है

६३ यमः समुपनिविषु ।
६४ नौ गदनदपठस्वनः ।
६५ क्वणो वीणायां च ।
६६ नित्यं पणः परिमाणे ।
६७ मदोऽनुपसर्गे ।
६८ प्रमदसंमदौ हर्षे ।
६९ समुदोरजः पशुषु ।
७० अक्षेषु ग्लहः ।
७१ प्रजने सर्तेः ।
७२ ह्वः सम्प्रसारणं च न्यभ्युपविषु ।
७३ आङि युद्धे ।
७४ निपानमाहावः ।
७५ भावेऽनुपसर्गस्य ।
७६ हनश्च वधः ।
७७ मूर्तौ घनः ।
७८ अन्तर्घनो देशे ।

॥ ६२ ॥ सम्, उप, नि अथवा वि उपसर्ग से युक्त अथवा उपसर्गशून्य यम धातु से भी विकल्प से अप् प्रत्यय होता है ॥ ६३ ॥ नि उपसर्ग से युक्त गद, नद, पठ और स्वन धातुओं से भी विकल्प से अप् प्रत्यय होता है ॥६४॥ 'नि' पूर्वक अथवा उपसर्गरहित क्वण् धातु से भी, प्रत्ययान्त का यदि वीणा अर्थ हो तो, विकल्प से अप् प्रत्यय होता है ॥६५॥ समुदाय से परिमाण गम्यमान होने पर पण धातु से नित्य अप् प्रत्यय होता है ॥ ६६ ॥ उपसर्गरहित मद् धातु से भी अप् प्रत्यय होता है ॥ ६७ ॥ हर्ष अर्थ में अप्-प्रत्ययान्त प्रमद और सम्मद शब्दों का निपातन है ॥ ६८ ॥ यदि प्रत्ययान्त पशुसम्बद्ध अर्थ का वाचक हो तो सम् अथवा उद् उपसर्ग से युक्त अज धातु से भी अप् प्रत्यय होता है ॥ ६९ ॥ अक्षसम्बन्धी अर्थ के वाचक अप्प्रत्ययान्त ग्लह शब्द का निपातन है ॥ ७० ॥ प्रथमगर्भग्रहण (= प्रजन) से सम्बद्ध अर्थ का वाचक होने पर सृ धातु से भी अप् प्रत्यय होता है ॥ ७१ ॥ नि, अभि, उप अथवा वि उपसर्ग से विशिष्ट ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय तथा व् के स्थान मे सम्प्रसारण (= 'उ' आदेश) भी हो जाता है ॥ ७२ ॥ यदि प्रत्ययान्त का वाच्य युद्ध हो तो आङ् + ह्वेञ् धातु से भी अप् प्रत्यय तथा सम्प्रसारण कार्य होते हैं ॥ ७३ ॥ निपान (= पशुओं को जल पिलाने के लिए कुवें आदि के पास खुदी हुई खाई) के अभिधान के लिए अप्प्रत्ययान्त आहाव शब्द का निपातन है ॥ ७४ ॥ भाव (= सिद्धावस्थापन्न धात्वर्थ) के अभिधानार्थ अनुपसर्गक ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय तथा सम्प्रसारण होते हैं ॥ ७५ ॥ भाव के अभिधानार्थ उपसर्गरहित हन धातु से भी अप् प्रत्यय और हन के स्थान मे अन्तोदात्त वध आदेश हो जाते हैं ॥ ७६ ॥ कठिनता के अभिधानार्थ हन धातु से अप् प्रत्यय तथा हन के स्थान मे घन आदेश हो जाता है ॥ ७७ ॥ घर के एकदेश के अभिधानार्थ अन्तः पूर्वक धातु से अघण और प्रघाण शब्दों का

७९ अगारैकदेशे प्रघणः प्रघाणश्च ।
८० उद्घनोऽत्याधानम् ।
८१ अपघनोऽङ्गम् ।
८२ करणेऽयोविद्रुषु ।
८३ स्तम्बे क च ।
८४ परौ घः ।
८५ उपघ्न आश्रये ।
८६ सङ्घोद्घौ गणप्रशंसयोः ।
८७ निघो निमितम् ।
८८ ड्वितः क्त्रिः ।
८९ ट्वितोऽथुच् ।
९० यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्
९१ स्वपो नन् ।
९२ उपसर्गे घोः किः ।
९३ कर्मण्यधिकरणे च ।
९४ स्त्रियां क्तिन् ।

निपातन किया जाता है ॥ ७९ ॥ छिलने के आधारभूत काष्ठ के अभिधानार्थ उत् + हन धातु से भी अप्प्रत्यय और घन आदेश का निपातन किया जाता है ॥ ८० ॥

अङ्ग के अभिधानार्थ अप + हन धातु से अप्प्रत्यय और घन आदेश का निपातन किया जाता है ॥ ८१ ॥ करणकारकभूत पदार्थ के अभिधानार्थ अयस्, वि अथवा द्रु उपपद से विशिष्ट हन धातु से अप् प्रत्यय भी होता है और हन के स्थान मे घन आदेश भी ॥ ८२ ॥ स्तम्ब शब्द के उपपद होने पर करण कारक मे, हन धातु से 'क' (और अप्) प्रत्यय भी होते हैं और घन आदेश भी ॥ ८३ ॥ करण कारक में हीं परि + हन धातु से अप् प्रत्यय भी होता है और हन के स्थान मे घन आदेश भी ॥ ८४ ॥ सामीप्य के प्रतिपादनार्थ उप + हन धातु से अप् प्रत्यय तथा उपधालोप का निपातन किया जाता है ॥ ८५ ॥ समूह (= गण) और प्रशंसा की अभिव्यक्ति के लिए क्रमशः सम् + हन तथा उत्+हन धातु से अप् प्रत्यय, 'टि' का लोप, और घन आदेश भी निपातित किए जाते हैं ॥ ८६ ॥ निमित (= सब तरफ से बराबर) के अभिधानार्थ नि + हन धातु से अप् प्रत्यय, 'टि' के लोप और घन आदेश का निपातन किया जाता है ॥ ८७ ॥ जिस धातु के अङ्गभूत 'डु' की इत्संज्ञा हुई हो उससे क्त्रि प्रत्यय होता है ॥ ८८ ॥ जिसके अङ्गभूत टवर्ग की इत्संज्ञा हुई हो उस धातु से अथुच् प्रत्यय होता है ॥ ८९ ॥ यज, याच्, यत, विच्छ, प्रच्छ और रक्ष धातुओं से नङ् प्रत्यय होता है ॥ ९० ॥ स्वप् धातु से नन् प्रत्यय होता है ॥ ९१ ॥ उपसर्गयुक्त 'घु'-संज्ञक धातुओं से 'कि' प्रत्यय होता है ॥९२॥ कर्मत्वविशिष्ट शब्द यदि उपपद हो तो भी, अधिकरण कारक मे, 'घु'-संज्ञक धातुओं से 'कि' प्रत्यय होता है ॥ ९३ ॥ स्त्रीत्वविशिष्ट भावादि के अभिधानार्थ धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है

६५ स्थागापापचो भावे ।	१०१ इच्छा ।
६६ मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः ।	१०२ अ प्रत्ययात् ।
६७ ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्त-यश्च ।	१०३ गुरोश्च हलः ।
६८ व्रजयजोर्भावे क्यप् ।	१०४ षिद्भिदादिभ्योऽङ् ।
६६ संज्ञायां समजनिषदनिपत-मनविदषुञ्शीङ्भृञिणः ।	१०५ चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च
१०० कृञः श च ।	१०६ आतश्चोपसर्गे ।
	१०७ ण्यासश्रन्था युच् ।
	१०८ रोगाख्यायां ण्वुल बहुलम् ।
	१०६ संज्ञायाम् ।

॥ ९४ ॥ स्त्रीत्वविशिष्ट भावार्थ मे स्था, गा, पा और पच् धातुओं से भी क्तिन् प्रत्यय होता है ॥ ९५ ॥ मन्त्रविषयक प्रयोग में वृष, इष, पच् , मन, विद, भू, वी और रा धातुओं मे भी स्त्रीत्वयुक्त भावार्थ मे उदात्तत्वयुक्त क्तिन् प्रत्यय होता है ॥ ९६ ॥ क्तिन्-प्रत्ययान्त ऊति, यूति, जूति, साति, हेति, और कीर्त्ति शब्दों का निपातन किया जाता है ॥ ९७ ॥ स्त्रीत्वविशिष्ट भाव के अभिधानार्थ व्रज और यज धातुओं मे उदात्तत्वयुक्त क्यप् प्रत्यय होता है ॥ ९८ ॥ प्रत्ययान्त यदि संज्ञाशब्द हो तो सम् + अज, नि + सद, नि + पत, मन, विद, षुञ्, शीङ्, भृञ् और इण् धातुओं से भी स्त्रीत्वविशिष्ट भावार्थक उदात्तत्वयुक्त क्यप् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९९ ॥ स्त्रीत्वयुक्त भावार्थ मे कृ धातु से 'श' और क्यप् प्रत्यय भी होते हैं ॥ १०० ॥

इष धातु से 'श' प्रत्यय तथा यक् के आगम के अभाव का भी निपातन किया जाता है ॥ १०१ ॥ प्रत्ययान्त धातुओं से स्त्रीत्वयुक्त भावार्थ में 'अ' प्रत्यय होता है ॥ १०२ ॥ हलन्त किन्तु दीर्घस्वर-विशिष्ट धातुओं से भी स्त्रीत्वविशिष्ट भावार्थ मे 'अ' प्रत्यय होता है ॥ १०३ ॥ जिनके अङ्गभूत ष की इत्संज्ञा हुई हो उनसे और भिद् आदि धातुओं से स्त्रीत्वविशिष्ट भावार्थ मे अङ् प्रत्यय होता है ॥१०४॥ चिति, पूज, कथ, कुम्बि और चर्च धातुओं से भी अङ् प्रत्यय होता है ॥ १०५ ॥ उपसर्गयुक्त आकारान्त धातु से भी अङ् प्रत्यय होता है ॥ १०६ ॥ णिजन्त धातु, आस और श्रन्थ धातुओं से स्त्रीत्वविशिष्ट भावार्थ मे युच् प्रत्यय होता है ॥१०७॥ यदि प्रत्ययान्त शब्द से किसी रोग का अभिधान हो तो धातु से बहुल रूप मे ण्वुल् प्रत्यय होता है ॥ १०८ ॥ प्रत्ययान्त के संज्ञाशब्द होने पर भी धातुमात्र

११० विभाषाख्यानपरिप्रश्नयोरिञ्च ।
१११ पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच् ।
११२ आक्रोशे नञ्यनिः ।
११३ कृत्यल्युटो बहुलम् ।
११४ नपुंसके भावे क्तः ।
११५ ल्युट् च ।
११६ कर्मणि च येन संस्पर्शात् कर्तुः शरीरसुखम् ।
११७ करणाधिकरणयोश्च ।
११८ पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ।
११९ गोचरसञ्चरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च ।
१२० अवे तॄस्त्रोर्घञ् ।
१२१ हलश्च ।
१२२ अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च ।
१२३ उदङ्कोऽनुदके ।

से ण्वुल् प्रत्यय होता है ॥ १०९ ॥ प्रश्न एवम् उत्तर गम्यमान होने पर धातुमात्र में इञ् और ण्वुल् प्रत्यय भी होते हैं ॥ ११० ॥ पर्याय (= क्रम), योग्यता (= अर्ह), ऋण और उत्पत्ति अर्थों में धातु से विकल्प से ण्वुच् प्रत्यय होता है ॥ १११ ॥ आक्रोश गम्यमान होने पर नञ्-विशिष्ट धातु से अनि प्रत्यय होता है ॥ ११२ ॥ 'कृत्य'-संज्ञक तथा ल्युट् प्रत्यय बहुल (= उक्त अर्थों से भिन्न अर्थों में भी) रूप में भी होते हैं ॥ ११३ ॥ नपुंसकत्वविशिष्ट भाव के अभिधानार्थ धातु से क्त प्रत्यय होता है ॥ ११४ ॥ उक्त अर्थ में धातु से ल्युट् प्रत्यय भी होता है ॥ ११५ ॥ जिस कर्म कारक के स्पर्श से कर्त्ता के शरीर में सुख की उत्पत्ति होती हो उस कर्म कारक के उपपद होने पर भी नपुंसकत्वविशिष्ट भावार्थ में धातु से ल्युट् प्रत्यय होता है ॥ ११६ ॥ करण और अधिकरण कारकों के अभिधानार्थ भी धातु से ल्युट् प्रत्यय होता है ॥ ११७ ॥ यदि समुदाय संज्ञाशब्द हो तो पुंस्त्वविशिष्ट करण तथा अधिकरण कारकों के अभिधानार्थ धातु से बहुधा 'घ' प्रत्यय ही होता है ॥ ११८ ॥ पूर्वसूत्रोक्त अर्थ में ही गोचर, सञ्चर, वह, व्रज, व्यज, आपण और निगम शब्दों का निपातन किया जाता है ॥ ११९ ॥ अव उपसर्ग से युक्त तॄ तथा स्तॄ धातुओं से, यदि समुदाय पुंस्त्वयुक्त संज्ञा का वाचक शब्द हो, तो करण तथा अधिकरण कारकों में घञ् प्रत्यय होता है ॥ १२० ॥

हलन्त धातुओं से भी, समुदाय के पुंस्त्वयुक्त पदार्थ की संज्ञा होने पर, करण तथा अधिकरण में घञ् प्रत्यय होता है ॥ १२१ ॥ समुदाय के पुंस्त्वविशिष्ट पदार्थ की संज्ञा होने पर घञ्-प्रत्ययान्त अध्याय, न्याय, उद्याव, संहार आधार और आवाय शब्दों का निपातन किया जाता है ॥ १२२ ॥ यदि धात्वर्थ उदक-सम्बन्धी न हो तो उत् + अञ्च् धातु से घञ् प्रत्यय का निपातन किया जाता है ॥ १२३ ॥

१२४ जालमानायः।
१२५ खनो घ च।
१२६ ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्।
१२७ कर्तृकर्मणोश्च भूकृञोः।
१२८ आतो युच्।
१२९ छन्दसि गत्यर्थेभ्यः।
१३० अन्येभ्योऽपि दृश्यते।
१३१ वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा
१३२ आशंसायां भूतवच्च।
१३३ क्षिप्रवचने लृट्।
१३४ आशंसावचने लिङ्।
१३५ नानद्यतनवत्क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः।
१३६ भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन्।
१३७ कालविभागे चानहोरात्राणाम्

जाल अर्थ मे आङ्+नी धातु से भी घञ् प्रत्यय का निपातन किया जाता है ॥ १२४ ॥ करण तथा अधिकरण अर्थों मे खन धातु से 'घ' तथा घञ् प्रत्यय होते हैं ॥ १२५ ॥ ईषत्, दुस् अथवा सु के उपपद होने पर यथासम्भव दुःख अथवा सुख अर्थ मे धातु से खल् प्रत्यय होता है ॥ १२६ ॥ कर्त्ताकारक, एवम् ईषदादि शब्दों के उपपद होने पर भू धातु से और कर्मकारक तथा ईषदादि के उपपद होने पर कृ धातु से भी खल् प्रत्यय होता है ॥ १२७ ॥ ईषद् आदि के उपपदत्व मे यथासम्भव दुःख अथवा सुख अर्थ मे आकारान्त धातुओं से युच् प्रत्यय होता है ॥ १२८ ॥ वैदिक प्रयोग मे ईषदादि के उपपद होने पर यथासम्भव दुःख अथवा सुख अर्थ मे गत्यर्थक धातुओं से भी युच् प्रत्यय होता है ॥ १२९ ॥ अन्य धातुओं से भी वैदिक प्रयोग मे उक्त परिस्थिति मे युच् प्रत्यय देखा जाता है ॥ १३० ॥ वर्त्तमान-समीपवर्ती भूत और भविष्यत् काल मे सम्पन्न हुई या होने वाली क्रिया के वाचक धातुओं से विकल्प से वर्तमानार्थक प्रत्यय होते हैं ॥ १३१ ॥ अप्राप्त इष्टवस्तु की प्राप्ति की इच्छा (= आशंसा) यदि गम्यमान हो तो धातु से भूत तथा वर्तमान काल के प्रत्यय भी होते हैं ॥ १३२ ॥ क्षिप्र (= शीघ्र) तथा इसके पर्याय शब्दों के उपपद होने पर यदि आशंसा गम्यमान हो तो धातु से लृट् प्रत्यय होता है ॥ १३३ ॥ आशंसावाची शब्द यदि उपपद हो तो धातु से लिङ् प्रत्यय भी होता है ॥१३४॥ क्रिया-प्रबन्ध अथवा सामीप्य यदि गम्यमान हो तो अनद्यतनकालिक (लुङ् तथा लृट्) प्रत्यय नही होते ॥ १३५ ॥ अवर भाग को लेकर यदि सीमा का निर्देश करना हो तो धातु से भविष्यत काल मे अनद्यतनवत् प्रत्यय नहीं होता ॥ १३६ ॥ यदि अहोरात्र से भिन्न अवर भाग को लेकर

१३८ परस्मिन् विभाषा ।
१३९ लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ।
१४० भूते च ।
१४१ वोताप्योः ।
१४२ गर्हायां लडपिजात्वोः ।
१४३ विभाषा कथमि लिङ् च ।
१४४ किंवृत्ते लिङ्लृटौ ।
१४५ अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि
१४६ किंकिलास्त्यर्थेषु लृट् ।
१४७ जातुयदोर्लिङ् ।
१४८ यच्चयत्रयोः
१४९ गर्हायां च ।
१५० चित्रीकरणे च ।

कालकृत सीमा का उल्लेख करना हो तो भी धातु से भविष्यत् काल मे अनद्यतनवत् प्रत्यय नही होता ॥ १३७ ॥ किन्तु यदि अहोरात्र से भिन्न पर भाग को लेकर कालकृत सीमा का उल्लेख कर्त्तव्य हो तब तो भविष्यत काल मे धातु से अनद्यतनवत् प्रत्यय विकल्प से ही नही होता ॥ १३८ ॥ लिङ् के निमित्तभूत हेतुहेतुमद्भावादि के वर्त्तमान होने पर भविष्यत् काल मे धातु मे लृङ् प्रत्यय हो जाता है यदि (किसी कारण से) क्रिया की सिद्धि न हुई हो तो ॥ १३९ ॥ उक्त परिस्थिति मे भूत काल मे भी धातु से लृङ् प्रत्यय होता है ॥ १४० ॥

'उताप्योः समर्थयोः' सूत्र से पूर्व जितने लकारों का विधान किया जाएगा उनके साथ-साथ उक्त परिस्थिति मे विकल्प से लिङ् लकार भी समझना चाहिए ॥ १४१ ॥ गर्हा (= निन्दा) गम्यमान होने पर अपि अथवा जातु शब्द के उपपदत्व मे धातु से लट् प्रत्यय होता है ॥ १४२ ॥ किन्तु यदि कथम् शब्द उपपद हो तो उक्त स्थिति मे विकल्प से लिङ् प्रत्यय भी होता है ॥ १४३ ॥ यदि किम् शब्द से निष्पन्न शब्द उपपद हो तो उक्त परिस्थिति मे धातु से लिङ् और लृट् प्रत्यय होते हैं ॥ १४४ ॥ किन्तु यदि असम्भावना या अक्षमा का प्रतिपादन कर्त्तव्य हो तो अन्य शब्दों के उपपद होने पर भी धातु से लिङ् तथा लृट् प्रत्यय होते हैं ॥ १४५ ॥ असम्भावना या अक्षमा के प्रतिपादनार्थ 'किं किल', अस्ति, भवति अथवा विद्यते पद के उपपद होने पर भी धातु से लृट् प्रत्यय होता है ॥१४६॥ असम्भावना या अक्षमा गम्यमान होने पर जातु अथवा यत् के उपपदत्व में भी धातु से लिङ् प्रत्यय होता है ॥ १४७ ॥ यच्च अथवा यत्र शब्द के उपपद होने पर भी लिङ् प्रत्यय ही होता है ॥ १४८ ॥ गर्हा अर्थ मे भी यच्च अथवा यत्र शब्द के उपपदत्व मे धातु से लिङ् लकार होता है ॥ १४९ ॥ आश्चर्य गम्यमान होने पर भी यच्च अथवा यत्र के उपपद होने पर धातु से लिङ् प्रत्यय होता है ॥१५०॥

१५१ शेषे लृडयदौ ।
१५२ उताप्योः समर्थयोर्लिङ्
१५३ कामप्रवेदनेऽकच्चिति ।
१५४ सम्भावनेऽलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगे ।
१५५ विभाषा धातौ सम्भावनवचनेऽयदि
१५६ हेतुहेतुमतोर्लिङ् ।
१५७ इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ
१५८ समानकर्तृकेषु तुमुन् ।
१५९ लिङ् च ।
१६० इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्तमाने
१६१ विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ।
१६२ लोट् च
१६३ प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च
१६४ लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके ।

किन्तु यदि यच्च तथा यत्र से भिन्न शब्द उपपद हो, आश्चर्य गम्यमान हो और 'यदि' शब्द का प्रयोग न हुआ हो तो धातु से लृट् प्रत्यय ही होता है ॥ १५१ ॥ समानार्थक उत या अपि शब्द यदि उपपद हो तो धातु से लिङ् लकार होता है ॥ १५२ ॥ कच्चित् शब्द से भिन्न कोई शब्द यदि उपपद हो और स्वेच्छा-प्रकाशन गम्यमान हो तो भी धातु से लिङ् लकार होता है ॥ १५३ ॥ 'अलम्' (अथवा तत्समानार्थक) शब्द के प्रयोग के विना ही यदि उसका अर्थ प्रतीत हो रहा हो तो सम्भावना अर्थ में धातु से लिङ् लकार होता है ॥ १५४ ॥ सम्भावनार्थक धातु के उपपद होने पर धातु से सम्भावना अर्थ में विकल्प से लिङ् प्रत्यय होता है यदि 'यत्' शब्द का प्रयोग न हुआ हो और 'अलम्' शब्द के प्रयोग के विना ही उसके अर्थ की प्रतीति हो रही हो तो ॥ १५५ ॥ हेतु तथा हेतुमान् (= फल) को प्रकट करने वाले धातुओं से लिङ् प्रत्यय होता है ॥ १५६ ॥ किन्तु इच्छार्थक धातु यदि उपपद हो तो धातु से लिङ् और लोट् प्रत्यय भी होते हैं ॥ १५७ ॥ तुमुन्-प्रत्ययान्त धातु के कर्ता से अभिन्न कर्त्ता वाला इच्छार्थक धातु यदि उपपद हो तो धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है ॥ १५८ ॥ उक्त परिस्थिति मे धातु से लिङ् प्रत्यय भी होता है ॥ १५९ ॥ इच्छार्थक धातुओं से भी वर्त्तमान काल में विकल्प से लिङ् प्रत्यय होता है ॥ १६० ॥

विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, सम्प्रश्न और प्रार्थना अर्थों मे भी धातु से लिङ् प्रत्यय होता है ॥ १६१ ॥ विधि आदि अर्थों मे लोट् प्रत्यय भी होता है ॥ १६२ ॥ प्रेषणा, अतिसर्ग और अवसर-प्राप्ति अर्थों मे धातु से 'कृत्य'-संज्ञक प्रत्यय भी होते हैं और लोट् प्रत्यय भी ॥ १६३ ॥ प्रेषणा आदि यदि गम्यमान हों तो एक मुहूर्त के बाद होने वाली क्रिया के वाचक धातुओं से लिङ् प्रत्यय भी

१६५ स्मे लोट् ।
१६६ अधीष्टे च ।
१६७ कालसमयवेलासु तुमुन् ।
१६८ लिङ्यदि ।
१६९ अर्हे कृत्यतृचश्च ।
१७० आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः ।
१७१ कृत्याश्च
१७२ शकि लिङ् च ।
१७३ आशिषि लिङ्लोटौ ।
१७४ क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् ।
१७५ माङि लुङ् ।
१७६ स्मोत्तरे लङ् च ।

चतुर्थः पादः

१ धातुसंबन्धे प्रत्ययाः ।
२ क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः ।

होता है और 'कृत्य' प्रत्यय भी ॥१६४॥ परन्तु पूर्वसूत्रोक्त परिस्थिति मे यदि 'स्म' शब्द उपपद हो तो लोट् प्रत्यय हो जाता है ॥ १६५ ॥ 'स्म' शब्द के उपपद होने पर अधीष्ट अर्थ मे भी धातु से लोट् प्रत्यय होता है ॥ १६६ ॥ काल, समय या वेला शब्द के उपपद होने पर धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है ॥ १६७ ॥ किन्तु यदि काल आदि शब्दों के साथ-साथ 'यत्' शब्द भी उपपद हो तब तो लिङ् प्रत्यय हो जाता है ॥ १६८ ॥ योग्य कर्त्ता के वाच्य या गम्यमान होने पर धातु से 'कृत्य', तृच् और लिङ् प्रत्यय भी होते हैं ॥ १६९ ॥ अवश्यम्भाव-विशिष्ट अथवा अधमर्णता-विशिष्ट कर्त्ता यदि वाच्य हो तो धातु से णिनि प्रत्यय होता है ॥ १७० ॥ उपर्युक्त परिस्थिति मे 'कृत्य' प्रत्यय भी होते हैं ॥ १७१ ॥ यदि शक् धातु का अर्थ प्रकृत धात्वर्थ की उपाधि हो तो धातु से लिङ् प्रत्यय भी होता है और 'कृत्य' प्रत्यय भी ॥ १७२ ॥ आशीः (= अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति की इच्छा) अर्थ मे धातु से लिङ् और लोट् प्रत्यय होते हैं ॥ १७३ ॥ यदि प्रत्ययान्त संज्ञाशब्द हो तो आशीः अर्थ मे धातु से क्तिच् प्रत्यय और क्त प्रत्यय भी होते हैं॥१७४॥ यदि (निषेधार्थक) माङ् शब्द उपपद हो तो धातु से लुङ् प्रत्यय होता है ॥ १७५ ॥ किन्तु यदि माङ् के साथ-साथ 'स्म' शब्द भी उपपद हो तब तो लङ् प्रत्यय भी होता है और लुङ् प्रत्यय भी ॥ १७६ ॥

तृतीयाध्याय का तृतीय पाद समाप्त ।

तृतीयाध्याय का चतुर्थ पाद

यदि धातु से धात्वर्थों का पारस्परिक विशेषणविशेष्यभाव सम्बन्ध प्रकट होता हो तो एक काल मे विहित प्रत्यय कालान्तर मे भी हो सकते हैं ॥१॥ यदि क्रिया का

३ समुच्चयेऽन्यतरस्याम् ।
४ यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन् ।
५ समुच्चये सामान्यवचनस्य ।
६ छन्दसि लुङ्लङ्लिटः ।
७ लिङर्थे लेट् ।
८ उपसंवादाशङ्कयोश्च ।
९ तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेकसेन-ध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः ।
१० प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै ।
११ दृशे विख्ये च ।
१२ शकि णमुल्कमुलौ ।
१३ ईश्वरे तोसुन्कसुनौ ।
१४ कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः ।

वारम्वार होना (=समभिहार) गम्यमान हो और धात्वर्थों का पारस्परिक सम्बन्ध हो तो धातु से लोट् लकार हो जाता है और उसके स्थान मे यदि त अथवा ध्वम् आदेश होने वाला हो तो विकल्प से तथा अन्य आदेश होने वाले हों तो नित्य (परस्मैपद मे) 'हि' एवं (आत्मनेपद में) 'स्व' आदेश भी हो जाते हैं ॥ २ ॥ किन्तु यदि अनेक क्रियाओं का समुच्चय हो तब उक्त कार्य—लोट् का विधान आदि—विकल्प से होते हैं ॥ ३ ॥ 'क्रियासमभिहारे०' सूत्र से जिस धातु से लोट् का विधान किया गया हो उसी धातु का लोडन्त धातु के बाद भी प्रयोग (= अनुप्रयोग) होना चाहिए ॥ ४ ॥ परन्तु यदि लोट् का विधान 'समुच्चये०' सूत्र द्वारा किया गया हो तब सब समुच्चित क्रियाओं के अर्थ को सामान्य रूप मे प्रकट करने वाले धातु का ही अनुप्रयोग होता है ॥ ५ ॥ वैदिक प्रयोग मे तो धात्वर्थों के सम्बन्ध-बोधनार्थ लुङ्, लङ् तथा लिट् प्रत्यय भी होते हैं ॥ ६ ॥ विध्यादि अर्थों मे प्राप्त लिङ् प्रत्यय के बदले वैदिक प्रयोग मे विकल्प से लेट् प्रत्यय भी होता है ॥ ७ ॥ वैदिक प्रयोग मे धातु से लेट् प्रत्यय शर्त्त (= उपसम्वाद) अथवा कारण से कार्य की उत्प्रेक्षा (= आशंका) गम्यमान होने पर भी होता है ॥ ८ ॥ वैदिक प्रयोग मे तुमुन् के अर्थ (= क्रियार्था क्रिया आदि) मे 'से', सेन्, असे, असेन्, क्से, कसेन्, अध्यै, अध्यैन्, कध्यै, कध्यैन्, शध्यै, शध्यैन्, तवै, तवेङ् और तवेन् प्रत्यय भी होते हैं ॥ ९ ॥ वैदिक प्रयोग मे तुमुन् के अर्थ मे ही प्र + या धातु से कै प्रत्यय, रुह धातु और नञ्-पूर्वक व्यथ धातु से इष्यै प्रत्यय भी होते हैं ॥ १० ॥ वैदिक प्रयोग मे तुमर्थ मे दृश् और वि + चक्षिङ् तथा वि + ख्या धातुओं से 'के' प्रत्यय होता है ॥ ११ ॥ वैदिक प्रयोग मे यदि शक् धातु उपपद हो तो तुमुन् के अर्थ मे णमुल् तथा कमुल् प्रत्यय भी होते हैं ॥१२॥ वैदिक प्रयोग मे ईश्वर शब्द यदि उपपद हो तो धातु से तुमुन् के अर्थ मे तोसुन् तथा कसुन् प्रत्यय हो जाते हैं ॥ १३ ॥ भाव तथा कर्म (= कृत्यार्थ) मे धातु से,

१५ अवचक्षे च ।

१६ भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन् ।

१७ सृपितृदोः कसुन् ।

१८ अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ।

१९ उदीचां माङो व्यतीहारे ।

२० परावरयोगे च ।

२१ समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ।

२२ आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ।

२३ न यद्यनाकांक्षे ।

२४ विभाषाग्रेप्रथमपूर्वेषु ।

२५ कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ् ।

२६ स्वादुमि णमुल् ।

वैदिक प्रयोग मे, तवै. केन, केन्य और त्वन् प्रत्यय होते हैं ॥ १४ ॥ वैदिक प्रयोग मे अव + चक्षिङ् धातु से कृत्यार्थ मे एश् प्रत्यय का भी निपातन किया जाता है ॥ १५ ॥ भाव के लक्षक अर्थों में वर्त्तमान स्था, इण्, कृ, वद, चर, हु, तम तथा जन धातुओं से वैदिक प्रयोग मे तुमुन् के अर्थ मे तोसुन् प्रत्यय हो जाता है ॥ १६ ॥ वैदिक प्रयोग मे हों भावलक्षक अर्थो मे वर्त्तमान सृप् और तृद धातुओं से तुमर्थ मे कसुन् प्रत्यय हो जाता है ॥ १७ ॥ प्रतिषेधार्थक अलम् अथवा खलु शब्द यदि उपपद हो तो धातु से, प्राच्यदेशवर्त्ती आचार्यों के मत मे, क्त्वा प्रत्यय होता है ॥ १८ ॥ व्यतीहारार्थक मेङ् धातु से भी, उदीच्यदेशवर्त्ती आचार्यों के मत मे, क्त्वा प्रत्यय हो जाता है ॥ १९ ॥ किसी परवर्त्ती तत्त्व से पूर्ववर्त्ती तत्त्व का अथवा किसी अपरवर्त्ती (= पूर्ववर्त्ती) तत्त्व से परवर्त्ती तत्त्वका योग (= सम्बन्ध) यदि गम्यमान हो तो भी धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है ॥ २० ॥

जिन दो धातुओं का कर्त्ता एक ही हो (= समानकर्तृक) उनमे पूर्वकालिक क्रिया के वाचक धातु से भी क्त्वा प्रत्यय होता है ॥ २१ ॥ पौनःपुन्यविशिष्ट अर्थ के वाचक समानकर्तृक धातुओं मे भी पूर्वकालिक-क्रियावाचक धातु से, विकल्प से, क्त्वा तथा णमुल् प्रत्यय होते हैं ॥ २२ ॥ पूर्व तथा पर काल मे सम्पन्न होने वाली क्रियायों के वाचक पद से घटित वाक्य यदि निराकांक्ष हो और यत् शब्द उपपद हो तो समानकर्तृक धातुओं में पूर्वकालिकक्रियावाचक धातु से पूर्व-प्राप्त क्त्वा या णमुल् प्रत्यय नहो होता ॥ २३ ॥ अग्रे, प्रथम अथवा पूर्व शब्द यदि उपपद हो तो समान-कर्तृक धातुओं में पूर्व-क्रियावाचक धातु से, विकल्प से, क्त्वा तथा णमुल् प्रत्यय होते हैं ॥ २४ ॥ यदि आक्रोश गम्यमान हो तो कर्मकारक के उपपदत्व मे कृ धातु से खमुञ् प्रत्यय होता है ॥ २५ ॥ स्वादुम् अथवा एतदर्थक पद के उपपदत्व मे उत्तरक्रिया-समानकर्तृक पूर्वक्रिया के वाचक कृ

२७ अन्यथैवंकथमित्थंसुसिद्धाप्रयोगश्चेत्।
२८ यथातथयोरसूयाप्रतिवचने।
२९ कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये।
३० यावति बिन्दजीवोः।
३१ चर्मोदरयोः पूरेः।
३२ वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम्
३३ चेले क्नोपेः।
३४ निमूलसमूलयोः कषः।
३५ शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः।
३६ समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः।
३७ करणे हनः।
३८ स्नेहने पिषः।

धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ २६ ॥ अन्यथा, एवम्, कथम् अथवा इत्थम् शब्द के उपपद होनेपर भी समानकर्तृक पूर्व-क्रियावाचक कृ धातु से णमुल् प्रत्यय होता है यदि कृ धातु का अप्रयोग सिद्ध हो तो (अर्थात् कृ धातु का प्रयोग किए बिना भी उसका अर्थ निकलता हो) ॥ २७ ॥ यथा और तथा उपपद से विशिष्ट होने पर भी असूया-पूर्वक प्रतिवचन-वाक्य में प्रयुक्त सिद्धाऽप्रयोग कृ धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ २८ ॥ कर्मप्रत्ययान्त पद के अर्थ के अन्तर्गत जितने व्यक्ति या तत्त्व हों उन सबके साथ कर्मत्व प्रयोजक क्रिया का अन्वय यदि होता हो (= साकल्य) तो कर्मकारक के उपपदत्व में दृश् तथा विद् धातुओं से भी णमुल् प्रत्यय होता है ॥ २९ ॥ यावत् शब्द यदि उपपद हो तो विन्द और जीव धातुओं से भी णमुल् प्रत्यय होता है ॥ ३० ॥ कर्मविभक्त्यन्त चर्मन् अथवा उदर शब्द यदि उपपद हो तो पूर् धातु से भी णमुल् प्रत्यय होता है ॥ ३१ ॥ यदि समुदाय से वर्षा की इयत्ता (= प्रमाण) गम्यमान हो तो कर्मोपपदक पूर् धातु से णमुल् प्रत्यय भी होता है और विकल्प से अकार का लोप भी ॥ ३२ ॥ यदि समुदाय से वर्षा की इयत्ता प्रतिपादित होती हो और चेल (= वस्त्र) अथवा एतत्समानार्थक कर्मकारक उपपद हो तो णिजन्त क्नोपि (= क्नूयी+णिच्) धातु से भी णमुल् प्रत्यय हो जाता है ॥३३॥ कर्मत्वविशिष्ट निमूल अथवा समूल शब्द यदि उपपद हो तो कष धातु से भी णमुल् प्रत्यय हो जाता है ॥३४॥ कर्मत्वविशिष्ट शुष्क, चूर्ण अथवा रूक्ष शब्द यदि उपपद हो तो पिष् धातु से भी णमुल् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३५ ॥ कर्मत्वविशिष्ट समूल, अकृत अथवा जीव शब्द के उपपद होने पर क्रमशः हन, कृ तथा ग्रह धातु से भी णमुल् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३६ ॥ करण कारक के उपपद होने पर भी हन धातु से णमुल् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३७ ॥ स्नेह (= चिकनाहट) के किसी साधन के वाचक करण कारक के उप-

३९ हस्ते वर्तिग्रहोः ।
४० स्वे पुषः ।
४१ अधिकरणे बन्धः ।
४२ संज्ञायाम् ।
४३ कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः ।
४४ ऊर्ध्वे शुषिपूरोः ।
४५ उपमाने कर्मणि च ।
४६ कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ।
४७ उपदंशस्तृतीयायाम् ।
४८ हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् ।
४९ सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः ।
५० समासत्तौ ।
५१ प्रमाणे च ।
५२ अपादाने परीप्सायाम् ।

पद होने पर पिष् धातु से भी णमुल् प्रत्यय हो जाता है ॥३८॥ हस्तवाचक करण कारक यदि उपपद हो तो वृत् तथा ग्रह धातुओं से भी णमुल् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३९ ॥ करगतत्वविशिष्ट स्व शब्द अथवा इसके अर्थ का सामान्य या विशेष रूप मे वाचक शब्द यदि उपपद हो तो पुष् धातु से भी णमुल् प्रत्यय हो जाता है ॥४०॥

अधिकरण कारक के उपपद होने पर बन्ध धातु से भी णमुल् प्रत्यय हो जाता है ॥ ४१ ॥ किन्तु यदि समुदाय संज्ञाशब्द हो तो अधिकरण कारक से भिन्न शब्द के उपपदत्व मे भी बन्ध धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ ४२ ॥ कर्तृत्व-विशिष्ट जीव अथवा पुरुष शब्द के उपपद होने पर क्रमशः नश तथा वह धातु से भी णमुल् प्रत्यय होता है ॥ ४३ ॥ कर्तृवाचक ऊर्ध्व शब्द यदि उपपद हो तो शुष् और पूर धातुओं से भी णमुल् प्रत्यय होता है ॥ ४४ ॥ उपमानभूत कर्म कारक अथवा कर्ता कारक यदि उपपद हो तो धातु मात्र से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ ४५ ॥ 'निमूलसमूलयोः कषः' सूत्र तथा उसके पश्चात् जिस-जिस धातु से णमुल् प्रत्यय का विधान किया गया है उस णमुलन्त धातु के बाद (समापिका क्रिया के रूप में) उसी धातु का प्रयोग (= अनुप्रयोग) भी हो जाता है ॥ ४६ ॥ तृतीयान्त शब्द यदि उपपद हो तो 'उप' उपसर्ग से विशिष्ट दंश धातु से भी णमुल् प्रत्यय होता है ॥ ४७ ॥ तृतीयान्त उपपद से युक्त हिंसार्थक धातु से भी, यदि इसका कर्म कारक तथा इसके बाद प्रयुक्त (= अनुप्रयुक्त) धातु का कर्मकारक एक ही हो तो, णमुल् प्रत्यय हो जाता है ॥ ४८ ॥ सप्तम्यन्त अथवा तृतीयान्त यदि उपपद हो तो 'उप' उपसर्ग से विशिष्ट पीड, रुध तथा कृष धातुओं से भी णमुल् प्रत्यय होता है ॥ ४९ ॥ सन्निकर्ष गम्यमान होने पर सप्तम्यन्त अथवा तृतीयान्त उपपद से विशिष्ट धातु-मात्र से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ ५० ॥ प्रमाण (= लम्बाई) गम्यमान होने पर भी सप्तम्यन्त अथवा तृतीयान्त उपपद से युक्त धातुओं से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ ५१ ॥ यदि परीप्सा

५३ द्वितीयायां च।
५४ स्वाङ्गेऽध्रुवे।
५५ परिक्लिश्यमाने च।
५६ विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः।
५७ अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु
५८ नाम्न्या दिशिग्रहोः
५९ अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ।
६० तिर्यच्यपवर्गे।
६१ स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः।
६२ नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे।
६३ तूष्णीमि भुवः।
६४ अन्वच्यानुलोम्ये।

(=शीघ्रता) गम्यमान हो तो अपादान कारक के उपपद होने पर भी धातुओं से णमुल् प्रत्यय होता है॥ ५२॥ परीप्सा यदि गम्यमान हो तो द्वितीयान्त उपपद होने पर भी धातुओं से णमुल् प्रत्यय होता है॥ ५३॥ अध्रुव (=जिसके विच्छेद से भी प्राणी की मृत्यु न हो) स्वांग के वाचक द्वितीयान्त के उपपद होने पर भी धातुओं से णमुल् प्रत्यय होता है॥ ५४॥ परिक्लिश्यमान-स्वांगवाचक द्वितीयान्त के उपपद होने पर भी धातुओं से णमुल् प्रत्यय होता है॥ ५५॥ व्याप्यमान तथा आसेवा (= क्रिया का पौनःपुन्य = आभीक्ष्ण्य) गम्यमान होने पर द्वितीयान्त उपपद से युक्त विश्, पत्, पद और स्कन्द धातुओं से भी णमुल् प्रत्यय होता है॥ ५६॥ कालवाची द्वितीयान्त यदि उपपद हो तो क्रियाव्यवधानकारी अर्थ मे वर्त्तमान अस् तथा तृष धातुओं से भी णमुल् प्रत्यय होता है॥ ५७॥ द्वितीयान्त नामन् शब्द यदि उपपद हो तो आ + दिश् और ग्रह धातुओं से भी णमुल् प्रत्यय होता है॥ ५८॥ अयथाभिप्रेताख्यान[1] गम्यमान होने पर अव्ययकसंज्ञक उपपद से विशिष्ट कृ धातु से विकल्प से क्त्वा तथा णमुल् प्रत्यय होते हैं॥ ५९॥ तिर्यक् शब्द यदि उपपद हो और समाप्ति गम्यमान हो तो भी कृ धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं॥६०॥

तस्प्रत्ययान्त स्वाङ्गवाचक शब्द यदि उपपद हो तो कृ और भू धातुओं से भी क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं॥ ६१॥ च्वि प्रत्यय के अर्थ (= अभूततद्भाव) से सम्बद्ध 'ना' प्रत्यय, 'धा' प्रत्यय अथवा इसके समानार्थक प्रत्यय से निष्पन्न शब्द यदि उपपद हो तो भी कृ और भू धातुओं से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं॥ ६२॥ तूष्णीम् शब्द यदि उपपद हो तो भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं॥ ६३॥ अन्वक् शब्द यदि उपपद हो और अनुकूलता गम्यमान हो तो भी भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं॥ ६४॥

१. प्रिय का मन्द स्वर से और अप्रिय का उच्च स्वर से कथन अयथाभूताख्यान है।

६५ शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन्।
६६ पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु।
६७ कर्तरि कृत्।
६८ भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा।
६९ लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः
७० तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः।
७१ आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च
७२ गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च।
७३ दाशगोघ्नौ संप्रदाने।
७४ भीमादयोऽपादाने।
७५ ताभ्यामन्यत्रोणादयः।
७६ क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः।

शक्, धृष, ज्ञा, ग्ला, घट, रभ, लभ, क्रम्, सह, अर्ह धातु और अस् एवम् इसके समानार्थक भू और (दिवादिगणीय) विद् धातुओं के उपपद होने पर धातुओं से तुमुन् प्रत्यय होता है ॥ ६५ ॥ पर्याप्त्यर्थक अलम् अथवा इसके पर्याय शब्द के उपपद होने से भी धातुमात्र से तुमुन् प्रत्यय होता है ॥ ६६ ॥ जिन प्रत्ययों को 'कृत्' कहा जाता है उनका विधान कर्त्ता कारक के अभिधानार्थ (अथवा उनका अर्थ कर्ता कारक) होता है ॥ ६७ ॥ विकल्प से विहित कर्त्ता अर्थ वाले कृत्प्रत्ययों से भव्य, गेय, प्रवचनीय, उपस्थानीय, जन्य, प्लाव्य और आपात्य शब्दों का निपातन किया जाता है ॥ ६८ ॥ सकर्मक धातुओं से कर्म अथवा कर्त्ता अर्थ मे और अकर्मक धातुओं से कर्त्ता अथवा भाव अर्थ मे लकार होते हैं ॥ ६९ ॥ कृत्-प्रत्यय, क्त प्रत्यय और खल् तथा इसके समार्थक प्रत्यय भाव अथवा कर्म मे ही होते हैं ॥ ७० ॥ किन्तु आदि[1] कर्म मात्र के व्यतीत होने से उपचारतः क्रिया को अतीत मानकर भूतकाल मे विहित क्त प्रत्यय कर्त्ता मे (और भाव एवं कर्म मे) भी होता है ॥ ७१ ॥ गमनार्थक, अकर्मक, श्लिष, शीङ्, स्था, आस, वस, जन्, रुह एवम् जृ धातुओं से भी यथासम्भव कर्त्ता, भाव और कर्म अर्थों में क्त प्रत्यय होता है ॥७२॥ सम्प्रदानार्थक प्रत्यय से निष्पन्न दाश और गोघ्न शब्दों का निपातन किया जाता है ॥ ७३ ॥ अपादानार्थकप्रत्ययान्त भीम आदि शब्दों का भी निपातन किया जाता है ॥ ७४ ॥ उणादि प्रत्यय सम्प्रदान और अपादान कारकों से भिन्न अर्थों में होते हैं ॥ ७५ ॥ ध्रौव्यार्थक, गत्यर्थक और प्रत्यवसानार्थक (= भक्षणार्थक) धातुओं से अधिकरण अर्थ मे भी (और यथासम्भव स्वभावप्राप्त भावादि अर्थों में भी) क्त प्रत्यय होता है

१. क्रिया के अन्तर्गत व्यापारों में प्रथम व्यापार आदि कर्म है।

७७ लस्य ।

७८ तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ्

७९ टित आत्मनेपदानां टेरे ।

८० थासः से ।

८१ लिटस्तझयोरेशिरेच् ।

८२ परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ।

८३ विदो लटो वा ।

८४ ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः

८५ लोटो लङ्वत् ।

८६ एरुः ।

८७ सेर्ह्यपिच्च ।

८८ वा छन्दसि ।

८९ मेर्निः ।

॥ ७६ ॥ अब जितने कार्यों का विधान किया जाएगा वे लकार के स्थान में ही होंगे—ऐसा समझना चाहिए ॥ ७७ ॥ लकार के स्थान में तिप्, तस्, झि; सिप्, थस्, थ; मिप्, वस्, मस्; त, आताम्, झ; थास्, आथाम्, ध्वम्; इट्, वहिङ् और महिङ् आदेश होते हैं ॥ ७८ ॥ जिन लकारों के अङ्गभूत टकार की इत्संज्ञा हुई हो उन (= टित्) लकारों के स्थान मे हुए आत्मनेपद-संज्ञक आदेशों के 'टि' के स्थान में एकार आदेश हो जाता है ॥ ७९ ॥ टित् लकार के स्थान में आदेशभूत थास् के स्थान में 'से' आदेश हो जाता है ॥८०॥

लिट् के स्थान में आदेश भूत 'त' के स्थान में एश् और 'झ' के स्थान में इरेच् आदेश हो जाते हैं ॥ ८१ ॥ लिट् के स्थान में परस्मैपद-संज्ञक तिप् से मस् तक के आदेशों के स्थान में क्रमशः णल्, अतुस्, उस्; थल्, अथुस्, अ; णल्, व और म आदेश हो जाते हैं ॥ ८२ ॥ विद धातु से विहित लट् के स्थान में हुए परस्मैपद-संज्ञक तिप् आदि आदेशों के स्थान में भी विकल्प से उक्त णल् आदि आदेश हो जाते हैं ॥ ८३ ॥ ब्रू धातु से विहित लट् के स्थान में हुए परस्मैपद-संज्ञक तिप् आदि आदेशों मे भी प्रथम पाँच के स्थान में विकल्प से क्रमशः प्रथम पाँच णल् आदि आदेश तथा इनके साथ-साथ ब्रू के स्थान में 'आह' आदेश भी हो जाते हैं ॥ ८४ ॥ लोट् लकार लङ् लकार के समान कार्यों का आश्रय होता है ॥ ८५ ॥ लोट् के स्थान में हुए आदेश के इकार के स्थान में उकारादेश हो जाता है ॥ ८६ ॥ लोट्-स्थानिक सिप् आदेश के स्थान में 'हि' आदेश हो जाता है, किन्तु यह (स्थानिवद्भाव से) पित् नहीं माना जाता है ॥ ८७ ॥ किन्तु यदि वैदिक प्रयोग हो तब वैकल्पिक पित्त्वातिदेश[1] हो ही जाता है ॥ ८८ ॥ लोट्-स्थानिक मिप् आदेश के स्थान में 'नि' आदेश हो

१. जो स्वतः पित् नहीं है उसे पित् मान लेना ही पित्त्वातिदेश है ।

९० आमेतः ।
९१ सवाभ्यां वामौ ।
९२ आडुत्तमस्य पिच्च ।
९३ एत ऐ ।
९४ लेटोऽडाटौ ।
९५ आत ऐ ।
९६ वैतोऽन्यत्र ।
९७ इतश्च लोपः परस्मैपदेषु ।
९८ स उत्तमस्य ।
९९ नित्यं ङितः ।
१०० इतश्च ।
१०१ तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः ।
१०२ लिङः सीयुट् ।
१०३ यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ।
१०४ किदाशिषि ।
१०५ झस्य रन् ।
१०६ इटोऽत् ।

जाता है ॥ ८९ ॥ लोट्-स्थानिक एकार के स्थान में आम् आदेश हो जाता है ॥ ९० ॥ किन्तु लोट्-स्थानिक सकार तथा वकार के उत्तरवर्ती एकार के स्थान में क्रमशः 'व' और 'अम्' आदेश होते हैं ॥ ९१ ॥ लोट्-स्थानिक उत्तम-पुरुषीय आदेश को आट् का आगम हो जाता है और वह (उत्तम पुरुष) पित् भी मान लिया जाता है ॥ ९२ ॥ लोट्-स्थानिक उत्तम पुरुषीय आदेश के एकार के स्थान में ऐकारादेश हो जाता है ॥ ९३ ॥ लेट् लकार को भी अट् अथवा आट् का आगम हो जाता है ॥ ९४ ॥ लेट्-स्थानिक प्रथम तथा मध्यम पुरुषों के आत्मनेपद संज्ञक द्विवचन के आकार के स्थान में ऐकारादेश हो जाता है ॥९५॥ किन्तु अन्य लेट्-स्थानिक एकारादेश के स्थान में विकल्प से ही ऐकारादेश होता है ॥ ९६ ॥ लेट्-स्थानिक परस्मैपद-संज्ञक प्रत्ययावयव इकार का विकल्प से लोप हो जाता है ॥ ९७ ॥ लेट्-सम्बन्धी उत्तम-पुरुषीय सकार का भी विकल्प से लोप हो जाता है ॥ ९८ ॥ किन्तु ङित्-लकार-सम्बन्धी उत्तम-पुरुषीय सकार का लोप नित्य होता है ॥ ९९ ॥ ङित् लकार-सम्बन्धी ह्रस्व इकार का भी लोप हो जाता है ॥१००॥ ङित्-लकार-स्थानिक तस्, थस्, थ और मिप् आदेशों के स्थान में क्रमशः ताम् , तम् , त और अम् आदेश हो जाते हैं ॥१०१॥ लिङ् सम्बन्धी आदेशों को सीयुट् का आगम हो जाता है ॥ १०२ ॥ परन्तु यदि लिङ्-सम्बन्धी आदेश परस्मैपद-संज्ञक हों तब उन्हें यासुट् का आगम होता है जो उदात्तत्व-सम्पन्न भी होता है और ङित् भी ॥ १०३ ॥ यदि लिङ् आशीरर्थक हो तब तो उसके स्थान में हुए आदेश को कित् एवम् उदात्त यासुट् का आगम भी होता है ॥ १०४ ॥ लिङादेश झ के स्थान में रन् आदेश हो जाता है ॥ १०५ ॥ लिङादेश इट् के स्थान में अत् (=अ) आदेश हो जाता है ॥ १०६ ॥

१०७ सुट् तिथोः।
१०८ झेर्जुस्।
१०९ सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च।
११० आतः।
१११ लङः शाकटायनस्यैव।
११२ द्विषश्च।
११३ तिङ् शित् सार्वधातुकम्।
११४ आर्धधातुकं शेषः।
११५ लिट् च।
११६ लिङाशिषि।
११७ छन्दस्युभयथा।

इति तृतीयोऽध्यायः॥

लिङ्-सम्बन्धी तकार तथा थकार को सुट् का आगम हो जाता है॥१०७। लिङा-देश झि के स्थान में जुस् आदेश हो जाता है॥१०८॥ (च्लि के स्थान में हुए) सिच् आदेश, अभ्यस्तसंज्ञक धातु और विद धातु से उत्तर वर्त्तमान झि प्रत्यय के स्थान में भी जुस् आदेश हो जाता है॥ १०९॥ परन्तु यदि सिच् का लुक् हो चुका हो तब उससे उत्तर वर्त्तमान झि के स्थान में जुस् आदेश तभी हो सकता है यदि वह झि आकारान्त धातु से विहित हो॥ ११०॥ आकारान्त धातु से विहित लङ् के स्थान में हुए झि के स्थान में भी केवल शाकटायन नामक वैयाकरण के मतानुसार जुस् आदेश हो जाता है॥ १११॥ द्विष धातु से विहित लङ्स्थानिक झि के स्थान में भी शाकटायन के मत में जुस् आदेश हो जाता है॥ ११२॥ (धातु से विहित) तिङ् (= तिप्—महिङ्) और शित् (= जिनके अङ्गभूत शकार की इत्संज्ञा हुई हो) प्रत्ययों की संज्ञा 'सार्वधातुक' है॥ ११३॥ शेष धातु-विहित प्रत्ययों की संज्ञा तो 'आर्धधातुक' है॥ ११४॥ किन्तु लिट् के स्थान में हुए तिङ् आदेशों की संज्ञा तो 'आर्धधातुक' ही है॥ ११५॥ आशीरर्थ में विहित लिङ् (के स्थान में आए तिङ्) की भी संज्ञा 'आर्धधातुक' ही है॥ ११६॥ परन्तु वैदिक प्रयोग में तिङ् आदि प्रत्यय आवश्यकतानुसार सार्वधातुक भी कहलाते हैं और आर्धधातुक भी॥ ११७॥

तृतीयाध्याय का चतुर्थ पाद समाप्त।

तृतीयाध्याय समाप्त।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१ ङ्याप्प्रातिपदिकात् ।
२ स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङे-भ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसो-साम्ङ्योस्सुप् ।
३ स्त्रियाम् ।
४ अजाद्यतष्टाप् ।
५ ऋन्नेभ्यो ङीप् ।
६ उगितश्च ।
७ वनो र च ।
८ पादोऽन्यतरस्याम् ।
९ टाबृचि ।
१० न षट्स्वस्रादिभ्यः ।
११ मनः ।
१२ अनो बहुव्रीहेः ।
१३ डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्

चथुर्थ अध्याय का प्रथम पाद

यहाँ से पञ्चमाध्याय की समाप्ति तक विधीयमान कार्य ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से हीं समझना चाहिए ॥ १ ॥ ङ्यन्त, आबन्त तथा प्रातिपदिक से सु, औ, जस् ; अम् , औट् , शस् ; टा, भ्याम् , भिस् ; ङे, भ्याम् , भ्यस् ; ङसि, भ्याम् , भ्यस् ; ङस् , ओस् , आम् ; ङि, ओस् , सुप् , प्रत्यय होते हैं ॥ २ ॥ यहाँ से स्त्रियाम्' (= स्त्रीलिङ्ग में) का अधिकार है ॥ ३ ॥ अज आदि प्रातिपदिकों तथा ह्रस्व अकारान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व-विवक्षा में टाप् प्रत्यय होता है ॥ ४ ॥ ऋकारान्त तथा नकारान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व विवक्षा मे ङीप् प्रत्यय होता है ॥ ५ ॥ जिसके अङ्गभूत उक्-प्रत्याहारस्थ स्वर की इत्संज्ञा हुई हो तदन्त (= उगिदन्त) प्रातिपदिक से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है ॥ ६ ॥ वन्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीप् प्रत्यय भी होता है और न् के स्थान में र् आदेश भो ॥ ७ ॥ समासान्त-विधि-विशिष्ट पाद शब्द (= पात्) हो अन्त में जिसके ऐसे प्रातिपदिक से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है ॥ ८ ॥ परन्तु यदि उक्त प्रातिपदिक का वाच्य ऋक् हो तब टाप प्रत्यय ही होता है ॥ ९ ॥ षट्-संज्ञक और स्वसृ आदि प्रातिपदिकों से स्त्रीत्ववाचक प्रत्यय (= स्त्रीप्रत्यय) नही होते ॥ १० ॥ मन्नन्त प्रातिपदिक से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीप् प्रत्यय नही होता ॥ ११ ॥ बहुव्रीहि-समासनिष्पन्न अन्नन्त शब्दों से भी ङीप् प्रत्यय नही होता ॥ १२ ॥ किन्तु मन्नन्त

१४ अनुपसर्जनात्।
१५ टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्-तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः।
१६ यञश्च।
१७ प्राचां ष्फ तद्धितः।
१८ सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः।
१९ कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च।
२० वयसि प्रथमे।
२१ द्विगोः।
२२ अपरिमाणविस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि।
२३ काण्डान्तात् क्षेत्रे।
२४ पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम्।
२५ बहुव्रीहेरूधसो ङीष्।
२६ संख्याऽव्ययादेर्ङीप्।

तथा बहुव्रीहिसमासनिष्पन्न अन्नन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व-विवक्षा में विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है ॥१३॥ अब निर्दिष्ट होने वाली विधियाँ अनुपसर्जन—उपसर्जनसंज्ञक-भिन्न—शब्दों से हीं समझनी चाहिए ॥ १४ ॥ टित् प्रत्यय, ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नच, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ् और क्वरप् प्रत्ययों में से कोई प्रत्यय अन्त में हो जिस प्रातिपदिक के उससे स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है ॥ १५ ॥ यञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है ॥ १६ ॥ प्राच्यदेशवर्त्ती आचार्यों के मतानुसार यञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से 'तद्धित'-संज्ञक ष्फ प्रत्यय होता है ॥ १७ ॥ किन्तु (गर्गादिगणपठित) यञ्-प्रत्ययान्त लोहित (=लौहित्य) शब्द से लेकर 'कत' शब्द तक समाप्त होने वाले प्रातिपदिकों से तो सब आचार्यों के अनुसार (अर्थात् नित्य) स्त्रीत्व-विवक्षा में ष्फ प्रत्यय हो जाता है ॥ १८ ॥ कौरव्य और माण्डूक शब्दों से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ष्फ प्रत्यय होता है ॥ १९ ॥ प्रथम वयस् (= कौमारावस्था) के वाचक (अदन्त) प्रातिपदिकों से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है ॥२०॥

द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है ॥ २१ ॥ परिमाणवाचक शब्द जिसके अन्त मे न हो ऐसे द्विगुसंज्ञक और बिस्तशब्दान्त, आचितशब्दान्त तथा कम्बल्यशब्दान्त द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व-विवक्षा में भी, यदि तद्धित-प्रत्यय का लुक् हुआ हो तो, ङीप् प्रत्यय नहीं होता ॥ २२ ॥ यदि समुदाय क्षेत्रवाचक हो तो काण्डशब्दान्त द्विगु से भी तद्धित प्रत्यय का लुक् होने पर ङीप् प्रत्यय नहीं होता ॥ २३ ॥ प्रमाणवाची पुरुष शब्द जिसके अन्त में हो ऐसे द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से, तद्धित-प्रत्यय का लुक् न होने पर, विकल्प से ङीप् प्रत्यय नहीं होता ॥ २४ ॥ ऊधस्-शब्दान्त बहुव्रीहिसंज्ञक प्रातिपदिक से स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है ॥ २५ ॥ किन्तु यदि बहुव्रीहिसंज्ञक प्राति-

२७ दामहायनान्ताच्च
२८ अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्
२९ नित्यं संज्ञाछन्दसोः।
३० केवलमामकभागधेयपापापर-समानार्यकृतसुमङ्गलभेषजाच्च
३१ रात्रेश्चाजसौ।
३२ अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक्।
३३ पत्युर्नो यज्ञसंयोगे।
३४ विभाषा सपूर्वस्य
३५ नित्यं सपत्न्यादिषु।
३६ पूतक्रतोरै च
३७ वृषाकप्यग्निकुसितकुसिदानामुदात्तः।
३८ मनोरौ वा।

पदिक के आदि में संख्या-वाचक या अव्यय-संज्ञक शब्द और अन्त में ऊधस् शब्द हो तब ङीप् प्रत्यय हो जाता है॥ २६ ॥ जिन बहुव्रीहिसंज्ञक प्रातिपदिकों के आदि में संख्यावाचक या अव्यय शब्द और अन्त में दामन् या हायन शब्द हो उनमे भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है॥ २७ ॥ अन्नन्त एवम् उपधालोपी बहुव्रीहिसंज्ञक शब्द से विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है॥ २८ ॥ किन्तु यदि समुदाय संज्ञा-शब्द हो अथवा वैदिक-वाङ्मय में प्रयुक्त हो तो अन्नन्त एवम् उपधालोपी बहुव्रीहिसंज्ञक शब्द से नित्य ङीप् प्रत्यय होता है॥ २९ ॥ समुदाय यदि संज्ञा-शब्द हो या वैदिक-वाङ्मय में प्रयुक्त हो तो केवल, मामक, भागधेय, पाप, अपर, समान, आर्यकृत, सुमङ्गल और भेषज शब्दों से भी, स्त्रीत्व-विवक्षा में, ङीप् प्रत्यय होता है॥ ३० ॥ संज्ञाविषयक और वेदविषयक रात्रि शब्द से भी, जस् विभक्ति के क्षेत्र को छोड़कर, स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है॥ ३१ ॥ अन्तर्वत् और पतिवत् शब्दों (से स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीप् प्रत्यय तथा प्रकृति) को[1] नुक् का आगम हो जाता है॥ ३२ ॥ यदि यज्ञसम्बन्ध प्रतिपादित करना हो तो स्त्रीत्व-विवक्षा में पति शब्द (के अन्त्य इकार) को नकारादेश हो जाता है॥ ३३ ॥ किन्तु यदि पति शब्द के पूर्व कोई शब्द जुड़ा हो तो यज्ञ-सम्बन्ध न होने पर भी विकल्प से नकारादेश होता है॥ ३४ ॥ सपत्नी आदि शब्दों की सिद्धि के लिए पति शब्द के स्थान में नित्य नकारादेश होता है॥ ३५ ॥ पूतक्रतु शब्द के स्थान में स्त्रीत्व-विवक्षा में ऐकारादेश और ङीप् प्रत्यय भी होते हैं॥ ३६ ॥ वृषाकपि, अग्नि, कुसित और कुसिद शब्दों के स्थान में, स्त्रीत्व-विवक्षा में, उदात्तत्व विशिष्ट ऐकारादेश और ङीप् प्रत्यय होते हैं॥ ३७ ॥ मनु शब्द के स्थान में स्त्रीत्व-विवक्षा में विकल्प से औकारादेश

१. नुगागम हो जाने से 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' इस सूत्र द्वारा ङीप् प्रत्यय हो जाता है

३९ वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः।
४० अन्यतो ङीष्।
४१ षिद्गौरादिभ्यश्च।
४२ जानपदकुण्डगोणस्थलभाज-नागकालनीलकुशकामुककबराद् वृत्त्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनायोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु।
४३ शोणात् प्राचाम्।
४४ वोतो गुणवचनात्।
४५ बह्वादिभ्यश्च।
४६ नित्यं छन्दसि।
४७ भुवश्च।
४८ पुंयोगादाख्यायाम्।
४९ इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक्।

अथवा उदात्तत्व-विशिष्ट ऐकारादेश और ङीप् प्रत्यय होते हैं ॥ ३८ ॥ जिसका अन्त्य स्वर अनुदात्त हो और उपधा तकार हो ऐसे वर्ण(= रूप)वाचक प्रातिपदिक से स्त्रीत्व-विवक्षा में विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता और प्रकृति के तकार के स्थान में नकारादेश भी ॥ ३९ ॥ किन्तु जिसकी उपधा तकार न हो ऐसे अनुदात्तान्त वर्ण-वाचक प्रातिपदिक से स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है ॥ ४० ॥ जिनके अङ्गभूत षकार की इत्संज्ञा हुई हो (= षित्) उनसे और गौर आदि शब्दों से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है ॥ ४१ ॥ जानपद, कुण्ड, गोण, स्थल, भाज, नाग, काल, नील, कुश, कामुक और कबर शब्दोंसे क्रमशः वृत्ति, अमत्र (= बर्त्तन), आवपन, अकृत्रिम, श्राण (= पक्व), स्थौल्य, वर्ण (= रूप), अनाच्छादन, अयोविकार, मैथुनेच्छा और केशवेश अर्थों के गम्यमान होने पर ङीष् प्रत्यय होता है ॥ ४२ ॥ प्राच्यदेशवर्ती आचार्यों के मत में शोण शब्द से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है ॥ ४३ ॥ उकारान्त गुणवचन प्रातिपदिक से स्त्रीत्व-विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है ॥ ४४ ॥ बहु आदि शब्दों से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है ॥ ४५ ॥ किन्तु यदि बहु आदि शब्दों का प्रयोग वेदविषयक हो तो ङीष् प्रत्यय नित्य ही होता है ॥ ४६ ॥ वेदविषयक प्रयोग में भु शब्द से भी नित्य ङीष् प्रत्यय होता है ॥ ४७ ॥ पुरुष के साथ सम्बन्ध (= पुंयोग) के कारण स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होने वाले पुरुष विशेष-वाचक प्रातिपदिक से स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है ॥ ४८ ॥ इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम अरण्य, यव, यवन, मातुल और आचार्य शब्दों से स्त्रीत्व-विवक्षा मे ङीष् प्रत्यय भी होता है

५० क्रीतात् करणपूर्वात् ।
५१ क्तादल्पाख्यायाम् ।
५२ बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात् ।
५३ अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा ।
५४ स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ।
५५ नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च ।
५६ न क्रोडादिबह्वचः ।
५७ सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च ।
५८ नखमुखात् संज्ञायाम् ।
५९ दीर्घजिह्वी च च्छन्दसि ।
६० दिक्पूर्वपदान्ङीप् ।
६१ वाहः ।
६२ सख्यशिश्वीति भाषायाम् ।

और प्रकृति को आनुक् का आगम भी ॥ ४९ ॥ करणकारक-पूर्वक तथा क्रीत-शब्दान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है ॥५०॥ स्त्री-प्रत्ययान्त शब्द यदि अल्पता-प्रतिपादक हो तो करणकारक-पूर्वक तथा क्त-प्रत्ययान्त-शब्दान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है ॥ ५१ ॥ क्त-प्रत्ययान्तान्त अन्तोदात्त बहुव्रीहि[1] से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है ॥ ५२ ॥ किन्तु यदि उक्त वैशिष्ट्य से सम्पन्न बहुव्रीहि का पूर्वपद स्वाङ्गवाचक न हो तो ङीष् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥५३॥ स्वाङ्गवाचक, संयोगोपधभिन्न तथा उपसर्जनसंज्ञक शब्द जिसके अन्त में हो उससे भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है ॥५४॥ स्वाङ्ग-वाचक एवम् उपसर्जनसंज्ञक नासिका, उदर, ओष्ठ, जङ्घा, दन्त, कर्ण अथवा शृङ्ग शब्द हो अन्त में जिसके ऐसे प्रातिपदिक से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है ॥ ५५ ॥ किन्तु क्रोड आदि शब्द अथवा बहुत स्वरों से युक्त स्वाङ्गवाचक शब्द यदि अन्त में हों तो स्त्रीत्व-विवक्षा में भी ङीष् प्रत्यय नही होता ॥ ५६ ॥ सह, नञ् अथवा विद्यमान शब्द यदि पूर्व में हो तो भी स्वाङ्ग-वाचक उपसर्जन-संज्ञक प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय नहीं होता ॥ ५७ ॥ नख-शब्दान्त तथा मुखशब्दान्त प्रातिपदिक से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय नहीं होता यदि समुदाय संज्ञा-शब्द हो तो ॥ ५८ ॥ ङीष्-प्रत्ययान्त 'दीर्घजिह्वी' इस वैदिक-प्रयोग का निपातन है ॥ ५९ ॥ किन्तु यदि दिग्वाचक शब्द पूर्वपद हो तो स्वाङ्गवाचक उपसर्जन प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होता है ॥ ६० ॥

ण्वि-प्रत्ययान्त वह् धातु (= उह) जिसके अन्त में हो उस प्रातिपदिक से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है ॥ ६१ ॥ ङीष्-प्रत्ययान्त सखी और

१. बहुव्रीहि का अर्थ बहुव्रीहि समास से निष्पन्न शब्द है ।

६३ जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्।	७० संहितशफलक्षणवामादेश्च।
६४ पाककर्णपर्णपुष्पफलमूल-वालोत्तरपदाच्च।	७१ कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि।
	७२ संज्ञायाम्।
६५ इतो मनुष्यजातेः।	७३ शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्।
६६ ऊङुतः।	७४ यङश्चाप्।
६७ बाह्वन्तात्संज्ञायाम्।	७५ आवट्याच्च।
६८ पङ्गोश्च।	७६ तद्धिताः।
६९ ऊरूत्तरपदादौपम्ये।	७७ यूनस्तिः।

अशिश्वी इन दो शब्दों का लौकिक संस्कृत (= भाषा) में निपातन है ॥ ६२ ॥ स्त्रीलिङ्गमात्र में प्रयुक्त न होने वाले जातिवाचक प्रातिपदिक से, यदि यकार उपधा न हो तो, स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है ॥ ६३ ॥ जिस प्रातिपदिक के उत्तरपद के स्थान में पाक, कर्ण, पर्ण, पुष्प, फल, मूल अथवा बाल शब्द हो उससे भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ङ प्रत्यय हो जाता है ॥ ६४ ॥ मनुष्य-जातिवाचक इकारान्त प्रातिपदिक से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है ॥ ३५ ॥ किन्तु यदि मनुष्य-जातिवाचक प्रातिपदिक उकारान्त हो तो ऊङ् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६६ ॥ यदि समुदाय संज्ञा-शब्द हो तो बाहुशब्दान्त प्रातिपदिक से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होता है ॥ ६७ ॥ पङ्गु शब्द से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६८ ॥ यदि उपमा गम्यमान हो तो ऊरु शब्द जिसके उत्तरपद के स्थान में आया हो उस प्रातिपदिक से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६९ ॥ ऊरुशब्दोत्तर-पदक संहित, शफ, लक्षण और वाम आदि प्रातिपदिकों से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होता है ॥ ७० ॥ यदि वेदविषयक प्रयोग हो तो कद्रु और कमण्डलु शब्दों से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होता है ॥ ७१ ॥ यदि संज्ञा गम्यमान हो तो भाषा में भी कद्रु और कमण्डलु शब्दों से स्त्रीत्व-वव क्षा में ऊङ् प्रत्यय होता है ॥ ७२ ॥ शार्ङ्गरव आदि शब्दों और अञ्-प्रत्ययान्त शब्दों से स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीन् प्रत्यय होता है ॥ ७३ ॥ यङ् (= ञ्यङ् और ष्यङ्) प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व-विवक्षा में चाप् प्रत्यय होता है ॥७४॥ आवट्य शब्द से भी स्त्रीत्व-विवक्षा में चाप् प्रत्यय हो जाता है ॥ ७५ ॥ इसके बाद पञ्चमाध्यायसमाप्तिपर्यन्त जिनका विधान किया जाएगा उन प्रत्ययों की 'तद्धित' संज्ञा है ॥ ७६ ॥ युवन्

७८ अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे ।
७९ गोत्रावयवात् ।
८० क्रौड्यादिभ्यश्च ।
८१ दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम् ।
८२ समर्थानां प्रथमाद्वा ।
८३ प्राग्दीव्यतोऽण् ।
८४ अश्वपत्यादिभ्यश्च ।
८५ दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ।
८६ उत्सादिभ्योऽञ् ।
८७ स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ।
८८ द्विगोर्लुगनपत्ये ।

शब्द से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'तद्धित'-संज्ञक 'ति' प्रत्यय होता है ॥७७॥ जो ऋषि-भिन्न (= अनार्ष) गोत्रापत्यविहित अण् अथवा इञ् प्रत्यय से सम्पन्न (= अणन्त एवम् इञन्त) हो और जिसका उपान्त्य (= उपोत्तम) स्वर दीर्घ हो उस प्रातिपदिक से स्त्रीत्व-विवक्षा में ष्यङ् प्रत्यय हो जाता है[1] ॥ ७८ ॥ गोत्रार्थ-विहित जो अण् अथवा इञ् प्रत्यय तदन्त कुलवाचक पुणिक, मुणिक और मुखर आदि प्रातिपदिकों से (अथवा पुणिक आदि शब्दों से विहित गोत्रार्थक अण् इञ् प्रत्यय के स्थान में) भी स्त्रीत्व-विवक्षा मे ष्यङ् प्रत्यय हो जाता है ॥ ७९ ॥ कौडि आदि शब्दों के स्थान में भी स्त्रीत्व-विवक्षा में ष्यङ् प्रत्यय हो जाता है ॥८०॥

दैवयज्ञि, शौचिवृक्षि, सात्यमुग्रि और काण्ठेविद्धि इन इञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व-विवक्षा में विकल्प से ष्यङ् प्रत्यय होता है ॥ ८१ ॥ 'प्राग्दिशो विभक्तिः' सूत्र-पर्यन्त 'समर्थानाम्', (= संम्बद्धार्थक शब्दों के बीच) 'प्रथमात्' (लक्षणवाक्य अर्थात् विधिसूत्र में प्रथम निर्दिष्ट से) और 'वा' (= विकल्प से) इन तीनों का अधिकार समझना चाहिए ॥ ८२ ॥ 'तेन दीव्यति' सूत्र से पहले जिन अर्थों[2] का निर्देश किया जाने वाला है उन अर्थों में अण् प्रत्यय का विधान समझना चाहिए ॥ ८३ ॥ प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अश्वपति आदि शब्दों से भी अण् प्रत्यय होता है ॥ ८४ ॥ दिति, अदिति, आदित्य तथा पतिशब्दोत्तरपदक प्रातिपदिकों से प्राग्दीव्यतीय अर्थों मे ण्य प्रत्यय होता है ॥ ८५ ॥ उक्त अर्थों में ही उत्स आदि शब्दों से अञ् प्रत्यय होता है ॥ ८६ ॥ 'धान्यानां भवने०' सूत्र से पूर्व जिन प्रत्ययार्थों का निर्देश किया जाने वाला है उन अर्थों में स्त्री और पुंस् शब्दों से क्रमशः नञ् और स्नञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ ८७ ॥ अपत्यार्थक-भिन्न प्राग्दीव्यतीयार्थक द्विगु-संज्ञक शब्द से विहित तद्धित प्रत्ययों

१. गोत्रार्थक अण् तथा अञ् प्रत्यय के स्थान में ही यह ष्यङादेश प्रतिफलित होता है ।
२. इन अर्थों को 'प्राग्दीव्यतीय अर्थ' कहते हैं ।

८९ गोत्रे लुगचि।
९० यूनि लुक्।
९१ फक्फिञोरन्यतरस्याम्।
९२ तस्यापत्यम्।
९३ एको गोत्रे।
९४ गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्।
९५ अत इञ्।
९६ बाह्वादिभ्यश्च।
९७ सुधातुरकङ् च।
९८ गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्।
९९ नडादिभ्यः फक्।
१०० हरितादिभ्योऽञः।
१०१ यञिञोश्च।
१०२ शरद्वच्छुनकदर्भाद् भृगुवत्सा-
ग्रायणेषु।

का लुक् हो जाता है ॥ ८८ ॥ 'यस्कादिभ्यो गोत्रे' इस सूत्र से जिन गोत्र-प्रत्ययों का लुक् बतलाया जाएगा उनका प्राग्दीव्यतीयार्थक[1] अजादि प्रत्ययों का विधान कर्त्तव्य होने पर लुक् नही होता ॥ ८९ ॥ किन्तु प्राग्दीव्यतीयार्थक अजादि प्रत्ययों के विधान के बुद्धिस्थ होने पर भी युवा-प्रत्यय (= युवापत्यार्थक प्रत्यय) का तो लुक् हो हीं जाता है ॥ ९० ॥ युवापत्यविहित फक् और फिञ् प्रत्ययों का प्राग्दीव्यतीयार्थक अजादि प्रत्यय कर्त्तव्य होने पर विकल्प से लुक् होता है ॥ ९१ ॥ षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में उपर्युक्त तथा विहित होने वाले प्रत्यय होते हैं ॥ ९२ ॥ पौत्र से लेकर समस्त अपत्य (= गोत्र) के अभिधानार्थ एक ही अपत्यार्थक प्रत्यय होता है ॥ ९३ ॥ युवापत्य विवक्षित होने पर गोत्र-प्रत्ययान्त शब्द से हीं (युवापत्यार्थक) प्रत्यय होता है (गोत्रार्थक प्रत्यय के प्रकृतिभूत शब्द से नहीं ॥ ९४ ॥ अकारान्त षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय होता है ॥ ९५ ॥ अपत्य अर्थ में बाहु आदि शब्दों से भी इञ् प्रत्यय होता है ॥ ९६ ॥ अपत्य अर्थ मे सुधातृ शब्द से इञ् प्रत्यय तथा इस प्रत्यय के परे प्रकृति (= सुधातृ) के स्थान में अकङ् आदेश भी हो जाता है ॥ ९७ ॥ गोत्र-संज्ञक अपत्य के अभिधान के लिए कुञ्ज आदि शब्दों से च्फञ् प्रत्यय होता है ॥ ९८ ॥ गोत्रसंज्ञक अपत्य अर्थ में ही नड आदि शब्दों से फक् प्रत्यय होता हैं ॥ ९९ ॥ अञ्-प्रत्ययान्त हरित आदि शब्दों से अपत्य (= युवापत्य) अर्थ में फञ् प्रत्यय होता है ॥ १०० ॥

यञ्-प्रत्ययान्त एवम् इञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से भी युवापत्यार्थ में फक् प्रत्यय होता है ॥ १०१ ॥ भार्गवापत्य (= भृगुगोत्रोत्पन्न अपत्य), वात्स्या-

१. अच् = स्वर जिनके आदि में हों वे प्रत्यय विवक्षित हैं, अच् इत्यादि प्रत्यय नहीं।

१०३ द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम्
१०४ अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्
१०५ गर्गादिभ्यो यञ्।
१०६ मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मणकौशिकयोः ।
१०७ कपिबोधादाङ्गिरसे ।
१०८ वतण्डाच्च ।
१०९ लुक् स्त्रियाम् ।
११० अश्वादिभ्यः फञ् ।
१११ भर्गात् त्रैगर्ते ।
११२ शिवादिभ्योऽण् ।
११३ अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्त-न्नामिकाभ्यः ।
११४ ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ।

पत्य और आग्रायणापत्य अर्थों की अभिव्यक्ति हेतु क्रमशः शरद्वत्, शुनक और दर्भ शब्दों से (गोत्रापत्यार्थ में) फक् प्रत्यय होता है ॥ १०२ ॥ गोत्रापत्य अर्थ में द्रोण, पर्वत और जीवन्त शब्दों से विकल्प से फक् प्रत्यय होता है ॥१०३॥ गोत्रापत्यार्थ में विद आदि शब्दों से अण् प्रत्यय होता है और इस विदादि गण में जो शब्द ऋषिवाचक नहीं हैं उनसे अनन्तर[1] अपत्य अर्थ में हीं अञ् प्रत्यय होता है ॥ १०४ ॥ गर्ग आदि शब्दों से गोत्रापत्यार्थ में यञ् प्रत्यय होता है ॥ १०५ ॥ यदि समुदाय कमशः ब्राह्मण और कौशिक का वाचक हो तो गोत्रापत्यार्थ में हीं मधु शब्द और बभ्रु शब्द से यञ् प्रत्यय होता है ॥ १०६ ॥ आङ्गिरसस्वरूप गोत्रापत्य अर्थ में कपि और बोध शब्दों से यञ् प्रत्यय होता है ॥ १०७ ॥ आङ्गिरसस्वरूप विशेष गोत्रापत्यार्थ में वतण्ड शब्द से भी अञ् प्रत्यय होता है ॥ १०८ ॥ किन्तु वतण्ड शब्द से विहित यञ् प्रत्यय का लुक् भी हो जाता है यदि स्त्रीत्वविशिष्ट आङ्गिरसस्वरूप गोत्रापत्य अभिधेय हो तो ॥ १०९ ॥ गोत्रापत्य अर्थ में अश्व आदि शब्दों से फञ् प्रत्यय होता है ॥ ११० ॥

त्रैगर्तस्वरूप गोत्रापत्यविशेष अर्थ मे भर्ग शब्द से भी फञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ १११ ॥ शिव आदि शब्दों से [2]अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ॥११२॥ वृद्ध-संज्ञक-भिन्न नदीवाचक तथा मनुष्यवाचक शब्दों से भी अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ॥ ११३ ॥ ऋषि, अन्धककुलोत्पन्न, वृष्णिकुलोत्पन्न और

१. अनन्तर अपत्य का अर्थ है प्रकृतिभूत शब्द के अर्थ की साक्षात् सन्तति। जैसे पुत्र का अनन्तर अपत्य पौत्र है—दशरथ का अनन्तर अपत्य राम है, लव या कुश आदि नहीं।

२. अब अपत्य-सामान्य अर्थ में प्रत्यय का विधान किया जा रहा है।

११५ मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः ।
११६ कन्यायाः कनीन च ।
११७ विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु ।
११८ पिलाया वा ।
११९ ढक् च मण्डूकात् ।
१२० स्त्रीभ्यो ढक् ।
१२१ द्व्यचः ।
१२२ इतश्चानिञः ।
१२३ शुभ्रादिभ्यश्च ।
१२४ विकर्णकुषीतकात् काश्यपे ।
१२५ भ्रुवो वुक् च ।
१२६ कल्याण्यादीनामिनङ् ।
१२७ कुलटाया वा ।
१२८ चटकाया ऐरक् ।
१२९ गोधाया ढ्रक् ।

कुरुकुलोत्पन्न व्यक्ति के वाचक शब्दों से भी अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ॥ ११४ ॥ 'सम्'-पूर्वक संख्यावाचीशब्द-पूर्वक और भद्र-पूर्वक मातृ शब्द से भी अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय और इस प्रत्यय के परे मातृ शब्द के स्थान में उकार आदेश भी हो जाता है ॥ ११५ ॥ कन्या शब्द से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय और कन्या शब्द के स्थान में कनीन आदेश भी हो जाता है ॥ ११६ ॥ वत्स-गोत्रोत्पन्न, भरद्वाज-गोत्रोत्पन्न, और अत्रि-गोत्रोत्पन्न अपत्य-विशेष के अभिधानार्थ क्रमशः विकर्ण, शुङ्ग और छगल शब्दों से अण् प्रत्यय हो जाता है ॥ ११७ ॥ पीला शब्द से अपत्य अर्थ में विकल्प से अण् प्रत्यय होता है ॥ ११८ ॥ मण्डूक शब्द से अपत्य अर्थ में विकल्प से ढक् प्रत्यय भी होता है और (पाक्षिक) अण् एवम् इञ् प्रत्यय भी ॥ ११९ ॥ स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों से अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है ॥ १२० ॥

दो स्वरों से सम्पन्न (= द्व्यच्) स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों से भी अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है ॥ १२१ ॥ इञ् प्रत्ययान्त-भिन्न-द्व्यच् इकारान्त प्रातिपदिक से भी अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है ॥ १२२ ॥ शुभ्र आदि शब्दों से भी अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है ॥ १२३ ॥ काश्यपस्वरूप अपत्यविशेष अर्थ में विकर्ण और कुषीतक शब्दों से भी ढक् प्रत्यय हो जाता है ॥ १२४ ॥ भ्रू शब्द से अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय और इसके परे वुक् का आगम भी हो जाता है ॥ १२५ ॥ अपत्य अर्थ में कल्याणी आदि शब्दों से ढक् प्रत्यय और इसके परे इनङ् आदेश भी हो जाता है ॥ १२६ ॥ कुलटा शब्द से भी अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय और इसके परे प्रकृति को विकल्प से इनङ् आदेश हो जाता है ॥ १२७ ॥ चटका शब्द से अपत्य अर्थ में ऐरक् प्रत्यय होता है ॥ १२८ ॥ गोधा शब्द से अपत्य अर्थ में ढ्रक् प्रत्यय होता है ॥ १२९ ॥

१३० आरगुदीचाम् ।
१३१ क्षुद्राभ्यो वा ।
१३२ पितृष्वसुश्छण् ।
१३३ ढकि लोपः ।
१३४ मातृष्वसुश्च ।
१३५ चतुष्पाद्भ्यो ढञ् ।
१३६ गृष्ट्यादिभ्यश्च ।
१३७ राजश्वशुराद्यत् ।
१३८ क्षत्राद् घः ।
१३९ कुलात् खः ।
१४० अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ ।
१४१ महाकुलादञ्खञौ ।
१४२ दुष्कुलाड्ढक् ।
१४३ स्वसुश्छः ।
१४४ भ्रातुर्व्यच्च ।

किन्तु उदीच्य आचार्यों के मतानुसार गोधा शब्द से अपत्य अर्थ में आरक् प्रत्यय भी होता है ॥ १३० ॥ क्षुद्रा शब्द से अपत्य अर्थ में विकल्प से ढ्रक् प्रत्यय होता है ॥ १३१ ॥ पितृष्वसृ शब्द से अपत्य अर्थ में छण् प्रत्यय होता है ॥ १३२ ॥ किन्तु अपत्यार्थक ढक्[1] प्रत्यय के परे पितृष्वसृ शब्द (के अन्त्य-ऋकार) का लोप हो जाता है ॥ १३३ ॥ मातृष्वसृ शब्द से भी अपत्यार्थ में छण् प्रत्यय तथा (विकल्प से ढक् प्रत्यय भी और) ढक् के परे अन्त्य ऋकार का लोप भी हो जाता है ॥ १३४ ॥ चतुष्पात् प्राणी के वाचक शब्द से अपत्य अर्थ में ढञ् प्रत्यय होता है ॥ १३५ ॥ गृष्टि आदि शब्दों से भी अपत्य अर्थ में ढञ् प्रत्यय होता है ॥ १३६ ॥ अपत्य अर्थ में राजन् और श्वशुर शब्दों से यत् प्रत्यय होता है ॥ १३७ ॥ क्षत्र शब्द से अपत्य अर्थ में घ प्रत्यय होता है ॥ १३८ ॥ कुल शब्द और कुलशब्दान्त प्रातिपदिक से भी अपत्य अर्थ में ख प्रत्यय होता है ॥ १३९ ॥ समासान्तर्गत पूर्वपद से रहित कुल शब्द से अपत्य अर्थ में विकल्प से यत् एवं ढकञ् (और ख) प्रत्यय होते हैं ॥ १४० ॥

महाकुल शब्द से अपत्य अर्थ में विकल्प से अञ्, खञ् (एवं ख) प्रत्यय होते हैं ॥ १४१ ॥ दुष्कुल शब्द से अपत्य अर्थ में विकल्प से ढक् और ख प्रत्यय होते हैं ॥ १४२ ॥ स्वसृ शब्द से अपत्य अर्थ में छ प्रत्यय होता है ॥ १४३ ॥ भ्रातृ शब्द से अपत्य अर्थ में व्यत् प्रत्यय भी होता है (और छ प्रत्यय भी) ॥ १४४ ॥

---

१. यद्यपि अपत्यार्थ मे पितृष्वसृ शब्द से ढक् प्रत्यय का विधायक कोई सूत्र नहीं है तथापि इसी लोप-विधान के आधार पर अपत्यार्थ में इस शब्द से ढक् प्रत्यय का विधान भी सिद्ध हो जाता है ।

१४५ व्यन् सपत्ने ।
१४६ रेवत्यादिभ्यष्ठक् ।
१४७ गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च ।
१४८ वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम् ।
१४९ फेश्छ च ।
१५० फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ
१५१ कुर्वादिभ्यो ण्यः ।
१५२ सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च ।
१५३ उदीचामिञ् ।
१५४ तिकादिभ्यः फिञ् ।
१५५ कौसल्यकार्मार्याभ्यां च ।
१५६ अणो द्व्यचः ।
१५७ उदीचां वृद्धादगोत्रात् ।
१५८ वाकिनादीनां कुक् च ।

किन्तु भ्रातृ शब्द से हीं व्यन् प्रत्यय भी हो जाता है यदि प्रत्ययान्त का अर्थ सपत्न (= अमित्र) हो तो ॥ १४५ ॥ रेवती आदि शब्दों से अपत्य अर्थ मे ठक् प्रत्यय होता है ॥ १४६ ॥ गोत्र-संज्ञक स्त्री के वाचक शब्द से अपत्य अर्थ मे विकल्प से ण और ठक् प्रत्यय होते हैं यदि समुदाय से निन्दा गम्यमान हो तो ॥ १४७ ॥ यदि समुदाय (= प्रत्ययान्त शब्द) से निन्दा गम्यमान हो तो 'वृद्ध'-संज्ञक सौवीर-गोत्रवाचक शब्द से अपत्यार्थ मे बाहुल्येन[1] ठक् प्रत्यय होता है ॥१४८॥ फिञ्-प्रत्ययान्त सौवीर गोत्रवाचक शब्द से अपत्यार्थ मे, समुदाय से निन्दा गम्यमान होने पर विकल्प मे छ और ठक् प्रत्यय होते हैं ॥ १४९ ॥ सौवीर-गोत्रवाचक फाण्टाहृति और मिमत शब्दों से विकल्प से अपत्य अर्थ मे ण और फिञ् प्रत्यय होते हैं ॥१५०॥ कुरु आदि शब्दों से अपत्य अर्थ मे ण्य प्रत्यय होता है ॥ १५१ ॥ सेनाशब्दान्त शब्द लक्षण शब्द और शिल्पिवाचक शब्दों से भी अपत्य अर्थ मे ण्य प्रत्यय होता है ॥१५२॥ किन्तु उदीच्य आचार्य के मतानुसार उपर्युक्त सेनाशब्दान्त आदि शब्दों से अपत्य अर्थ मे इञ् प्रत्यय होता है ॥ १५३ ॥ तितक आदि शब्दों से अपत्य अर्थ मे फिञ् प्रत्यय होता है ॥ १५४ ॥ कौशल्य और कार्मार्य शब्दों से भी अपत्य अर्थ मे फिञ् प्रत्यय होता है ॥ १५५ ॥ अण्-प्रत्ययान्त द्व्यच् (= दो अच् से सम्पन्न) शब्द से भी अपत्य अर्थ मे फिञ् प्रत्यय होता है ॥ १५६ ॥ गोत्रवाचक भिन्न "वृद्ध"-संज्ञक शब्दों से भी उदीच्य आचार्यों के मत मे फिञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ १५७ ॥ उदीच्य आचार्यों के मत मे वाकिन आदि शब्दों से अपत्य अर्थ मे फिञ् प्रत्यय भी होता है और इसके परे प्रकृति को कुक् का आगम भी ॥ १५८ ॥

१. बाहुल्य के उपलब्धप्रयोगानुसार चार अर्थ होते हैं :—(१) कहीं प्रत्यय नित्यरूप में, (२) कहीं अनित्य = वैकल्पिक रूप में, (३) कहीं प्रकृत प्रत्यय का अभाव और (४) कहीं प्रकृत प्रत्यय से भिन्न प्रत्यय का विधान ।

१५९ पुत्रान्तादन्यतरस्याम् ।
१६० प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम् ।
१६१ मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च ।
१६२ अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ।
१६३ जीवति तु वंश्ये युवा ।
१६४ भ्रातरि च ज्यायसि ।
१६५ वान्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति ।
१६६ जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् ।
१६७ साल्वेयगान्धारिभ्यां च ।
१६८ द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् ।
१६९ वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ् ।
१७० कुरुनादिभ्यो ण्यः ।
१७१ साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ् ।
१७२ ते तद्राजाः ।

पुत्रशब्दान्त शब्द से विहित फिञ् प्रत्यय के परे प्रकृति—पुत्रशब्दान्त शब्द—को विकल्प से कुक् का आगम भी हो जाता ॥ १५९ ॥ 'वृद्ध'-संज्ञक से भिन्न शब्दों से अपत्य अर्थ मे प्राच्यदेशवर्त्ती आचार्यों के मतानुसार बाहुल्येन फिन् प्रत्यय होता है ॥ १६० ॥

यदि प्रत्ययान्त शब्द से जाति गम्यमान हो तो मनु शब्द से विकल्प से अञ् और यत् प्रत्यय होते हैं और इनके परे प्रकृति-मनु शब्द को षुक् का आगम भी ॥ १६१ ॥ पौत्र से लेकर उत्तरभावी सन्तति की संज्ञा 'गोत्र' है ॥१६२॥ पितामह आदि के जीवित रहने पर पौत्र से परवर्त्ती अपत्य की संज्ञा 'युवा' है ॥ १६३ ॥ पिता-पितामह के मृत हो जाने पर भी ज्येष्ठ भ्राता यदि जीवित हो तो छोटे भाई की 'युवा' यह संज्ञा है ॥ १६४ ॥ पद (= स्थान) और वयस् की दृष्टि से बड़े सपिण्ड के जीवित रहने पर भी पौत्र आदि जीवित अपत्यों की विकल्प से 'युवा' यह संज्ञा है ॥ १६५ ॥

क्षत्रियार्थक जनपदवाची शब्द से अपत्य अर्थ मे अञ् प्रत्यय होता है ॥ १६६ ॥ साल्वेय और गान्धारिन् शब्दों से भी अपत्य अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है ॥ १६७ ॥ दो अच् वाले क्षत्रियार्थक जनपदवाची शब्दों एवं मगध, कलिङ्ग, और सूरमस शब्दों से अपत्य अर्थ मे अण् प्रत्यय होता है ॥ १६८ ॥ 'वृद्ध'-संज्ञक शब्द, इकारान्त शब्द, कोशल और अजाद शब्दों से अपत्य अर्थ मे ञ्यङ् प्रत्यय होता है ॥ १६९ ॥ क्षत्रियार्थक जनपदवाची कुरु शब्द और नकारादि शब्दों से अपत्य अर्थ मे ण्य प्रत्यय होता है ॥ १७० ॥ क्षत्रियार्थक जनपदवाची साल्वावयववाचक शब्दों और प्रत्यग्र, कलकूट एवम् अश्मक शब्दों से अपत्य अर्थ मे इञ् प्रत्यय होता है ॥१७१॥ 'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्' इत्यादि सूत्रों से विहित प्रत्ययों की संज्ञा 'तद्राज' है ॥१७२॥ कम्बोज शब्द से विहित

१७३ कम्बोजाल्लुक्।
१७४ स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च ।
१७५ अतश्च।
१७६ न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः।

द्वितीयः पादः

१ तेन रक्तं रागात्।
२ लाक्षारोचनाट्ठक्।
३ नक्षत्रेण युक्तः कालः।
४ लुबविशेषे।
५ संज्ञायां श्रवणाश्वत्थाभ्याम्।
६ द्वन्द्वाच्छः।
७ दृष्टं साम।

अञ् प्रत्यय का लुक् हो जाता है॥ १७३ ॥ अवन्ति, कुन्ति और कुरु शब्दों से विहित 'तद्राज'-संज्ञक प्रत्ययों का भी स्त्री के समुदायार्थ होने पर लुक् हो जाता है॥ १७४ ॥ स्त्री के अभिधेय होने पर 'तद्राज' संज्ञक अकार-प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है॥ १७५ ॥ किन्तु प्राच्यदेशवर्त्तीक्षत्रियवाचक शब्दों, भर्ग आदि शब्दों और यौधेय आदि शब्दों से विहित 'तद्राज'-संज्ञक प्रत्ययों का स्त्री के अभिधेय होने पर भी लुक् नहीं होता॥ १७६ ॥

चतुर्थ अध्याय का प्रथम पाद समाप्त।

चतुर्थ अध्याय का द्वितीय पाद

तृतीयासमर्थ (= तृतीया के अर्थ से सम्बद्ध = तृतीयान्त) रंगने के साधन-विशेष (= राग) के वाचक शब्द से 'रक्त' (= रंगा गया) अर्थ मे यथाविहित प्रत्यय होते हैं॥ १ ॥ रागविशेषवाचक लाक्षा, रोचना, शकल और कर्दम शब्दों से 'रक्त' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है॥ २ ॥ तृतीयासमर्थ नक्षत्रविशेष-वाचक शब्दों से 'युक्त' अर्थ मे यथाविहित प्रत्यय होते हैं, यदि वह युक्तपदार्थ काल (= समय) स्वरूप हो तो॥ ३ ॥ यदि नक्षत्रविशेष से युक्त काल का रात्रि आदि विशेष रूप विवक्षित न हो तो पूर्वसूत्रविहित प्रत्यय का लुप् हो जाता है॥ ४ ॥ श्रवण और अश्वत्थ शब्दों से 'युक्त' अर्थ मे विहित प्रत्यय का संज्ञा-विषय मे हीं लुप् होता है॥ ५ ॥ नक्षत्रवाचक शब्दों मे किए गए द्वन्द्वसमास से निष्पन्न तृतीयासमर्थ शब्द से 'युक्त काल' इस अर्थ मे छ प्रत्यय होता है चाहे वह युक्त काल विशेषात्मक हो या अविशेषात्मक॥६॥ तृतीयासमर्थ शब्द से 'दृष्ट सामवेद' (= देखा गया सामवेद) इस अर्थ मे यथाविहित प्रत्यय होते हैं॥ ७ ॥

८ कलेर्ढक् ।
९ वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ ।
१० परिवृतो रथः ।
११ पाण्डुकम्बलादिनिः ।
१२ द्वैपवैयाघ्रादञ् ।
१३ कौमारापूर्ववचने ।
१४ तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ।
१५ स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते ।
१६ संस्कृतं भक्षाः ।
१७ शूलोखाद्यत् ।
१८ दध्नष्ठक् ।
१९ उदश्वितोऽन्यतरस्याम् ।
२० क्षीराड्ढञ् ।
*२१ साऽस्मिन् पौर्णमासीति ।
२२ आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक् ।

तृतीयासमर्थ कलि शब्द से 'दृष्ट साम' अर्थ मे ढक् प्रत्यय हो जाता है ॥८॥ तृतीयासमर्थ वामदेव शब्द से 'दृष्ट साम' अर्थ मे ड्यत् और ड्य प्रत्यय होते हैं ॥९॥ तृतीयासमर्थ शब्दों से 'परिवृत रथ' (= लिपटा हुआ—घिरा हुआ रथ) अर्थ मे यथाविहित प्रत्यय होने हैं ॥ १० ॥ तृतीयासमर्थ पाण्डुकम्बल शब्द से 'परिवृत रथ' अर्थ मे इनि प्रत्यय होता है ॥ ११ ॥ तृतीयासमर्थ द्वैप और वैयाघ्र शब्दों से 'परिवृत रथ' अर्थ मे अञ् प्रत्यय होता है ॥ १२ ॥ अपूर्ववचन अर्थ मे अण्-प्रत्ययान्त कौमार शब्द का निपातन किया जाता है ॥ १३ ॥ सप्तमीसमर्थ पात्र (= अमत्र)-वाचक शब्दों से 'उद्धृत' (= उठाया गया) अर्थ मे यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ १४ ॥ सप्तमीसमर्थ स्थण्डिल शब्द से 'शयितृ' (= सोने वाला) अर्थ मे यथाविहित प्रत्यय होते हैं यदि समुदाय से व्रत गम्यमान हो तो ॥१५॥ सप्तमीसमर्थ शब्दों से 'संस्कृत भक्ष' (= अच्छा बनाया गया कठिन एवं विशद भोज्य पदार्थ) अर्थ मे यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ १६ ॥ सप्तमीसमर्थ शूल एवम् उखा शब्दों से 'संस्कृत भक्ष' अर्थ मे यत् प्रत्यय होता है ॥ १७ ॥ सप्तमीसमर्थ दधि शब्द से 'संस्कृत भक्ष' अर्थ मे ठक् प्रत्यय होता है ॥ १८ ॥ सप्तमीसमर्थ उदश्वित् शब्द से 'संस्कृत भक्ष' अर्थ मे विकल्प से ठक् एवम् अण् प्रत्यय होते हैं ॥ १९ ॥ सप्तमीसमर्थ क्षीर शब्द से 'संस्कृत भक्ष' अर्थ मे ढञ् प्रत्यय होता है ॥ २० ॥

पौर्णमासी-स्वरूप अर्थ के प्रतिपादक प्रथमासमर्थ शब्दों से सप्तम्यर्थ (= अधिकरण) मे[1] यथाविहित प्रत्यय होते हैं यदि प्रत्ययान्त संज्ञा-शब्द हो तो ॥२१॥ 'यह पौर्णमासी इसमे होती है' इस अर्थ मे पौर्णमासी-प्रतिपादक प्रथमासमर्थ

१. 'यह पौर्णमासी इस (मास या वर्ष) में होती है' यह अर्थ प्रत्यय से प्रकट होता है ।

२३ विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्त्तिकीचैत्रीभ्यः।
२४ सास्य देवता।
२५ कस्येत्।
२६ शुक्राद् घन्।
२७ अपोनप्त्रपान्नप्तृभ्यां घः।
२८ छ च।
२९ महेन्द्राद् घाणौ च।
३० सोमाट्ट्यण्।
३१ वाय्वृतुपित्रुषसो यत्।
३२ द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च
३३ अग्नेर्ढक्।
३४ कलिभ्यो भववत्।
३५ महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ्।
३६ पितृव्यमातुलमातामहपितामहा

आग्रहायणी और अश्वत्थ शब्दों से ठक् प्रत्यय होता है ॥२२॥ किन्तु उपर्युक्त अर्थ मे हीं फल्गुनी, श्रवणा, कार्त्तिकी और चैत्री शब्दों से ठक् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥ २३ ॥ प्रथमासमर्थ (देवतावाचक) शब्दों से 'इसका देवता है'[1] इस अर्थ मे यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥२४॥ प्रजापतिवाचक प्रथमासमर्थ 'क' शब्द से 'इसका देवता है' इस अर्थ मे अण् प्रत्यय होने पर 'क' के स्थान मे इकारादेश हो जाता है ॥ २५ ॥ प्रथमासमर्थ शुक्र शब्द से 'इसका देवता है' इस अर्थ मे घन् प्रत्यय होता है ॥ २६ ॥ प्रथमासमर्थ अपोनप्तृ एवम् अपांनप्तृ शब्दों से 'इसका देवता है' इस अर्थ मे घ प्रत्यय होता है ॥ २७ ॥ पूर्वसूत्रोक्त शब्दों से विकल्प से उक्त अर्थ मे छ प्रत्यय भी होता है ॥ २८ ॥ 'इसका देवता है' इस अर्थ मे महेन्द्र शब्द से विकल्प से घ, अण् और छ प्रत्यय होते हैं ॥ २९ ॥ 'इसका देवता है' इस अर्थ मे प्रथमासमर्थ सोम शब्द से ट्यण् प्रत्यय होता है ॥ ३० ॥ 'इसका देवता है' इस अर्थ मे वायु, ऋतु, पितृ और उषस् शब्दों से यत् प्रत्यय होता है ॥३१॥ 'इसका देवता है' इस अर्थ मे द्यावापृथिवी, शुनासीर, मरुत्वत्, अग्नीषोम, वास्तोष्पति और गृहमेध शब्दों छ प्रत्यय भी होता है और विकल्प से यत् प्रत्यय भी ॥३२॥ 'इसका देवता है' इस अर्थ मे अग्नि शब्द से ढक् प्रत्यय होता है ॥३३॥ 'तत्र भवः' इस अर्थ मे जितने प्रत्ययों का विधान किया जाएगा वे सब प्रत्यय प्रथमासमर्थ कालवाचक शब्दों से 'इसका देवता है' इस अर्थ मे भी होते हैं ॥ ३४ ॥ 'इसका देवता है' इस अर्थ मे महाराज और प्रोष्ठपद शब्दों से ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ३५ ॥ पितृव्य,[2] मातुल, मातामह और पितामह शब्दों का

१. परिस्थितिवश एकवचन मे परिवर्तन हो सकता है।

२. पिता के भाई (= चाचा) के अर्थ मे पितृ शब्द से व्यत् प्रत्यय, माता के भाई (= मामा) के अर्थ मे मातृ शब्द से डुलच् प्रत्यय और पिता के पिता तथा माता के पिता इन अर्थों मे क्रमशः पितृ और मातृ शब्दों से डामहच् प्रत्यय का विधान अभिप्रेत है।

३७ तस्य समूहः ।
३८ भिक्षादिभ्योऽण् ।
३९ गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ् ।
४० केदाराद्यञ् च ।
४१ ठञ् कवचिनश्च ।
४२ ब्राह्मणमाणववाडवाद्यत् ।
४३ ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ।
४४ अनुदात्तादेरञ् ।
४५ खण्डिकादिभ्यश्च ।
४६ चरणेभ्यो धर्मवत् ।
४७ अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ।
४८ केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम् ।
४९ पाशादिभ्यो यः ।
५० खलगोरथात् ।
५१ इनित्रकट्यचश्च ।
५२ विषयो देशे ।

निपातन किया जाता है ॥ ३६ ॥ षष्ठी समर्थ शब्दों से (उसका) 'समूह' अर्थ मे यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ३७ ॥ 'समूह' अर्थ मे षष्ठीसमर्थ भिक्षा आदि शब्दों से अण् प्रत्यय होता है ॥ ३८ ॥ 'समूह' अर्थ मे षष्ठीसमर्थ गोत्र-प्रत्ययान्त, उक्षन, उष्ट्र, उरभ्र, राजन, राजन्य, राजपुत्र, वत्स, मनुष्य एवम् अज शब्दों से वुञ् प्रत्यय होता है ॥३९॥ 'समूह' अर्थ मे षष्ठीसमर्थ केदार शब्द से यञ् प्रत्यय भी होता है और वुञ् प्रत्यय भी ॥ ४० ॥

षष्ठीसमर्थ कवचिन् शब्द से 'समूह' अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ४१ ॥ 'समूह' अर्थ मे षष्ठीसमर्थ ब्राह्मण, माणव और वाडव शब्दों से यत् प्रत्यय होता है ॥ ४२ ॥ 'समूह' अर्थ मे ग्राम, जन और बन्धु शब्दों से तल् प्रत्यय होता है ॥ ४३ ॥ जिसका आदि स्वर अनुदात्त हो उस षष्ठीसमर्थ शब्द से 'समूह' अर्थ मे अञ् प्रत्यय होता है ॥ ४४ ॥ 'समूह' अर्थ मे षष्ठीसमर्थ खण्डिका आदि शब्दों से भी अञ् प्रत्यय होता है ॥ ४५ ॥ चरणवाचक कठ आदि शब्दों से 'धर्म' अर्थ में जिन प्रत्ययों का विधान किया जाने वाला है वे सब प्रत्यय 'समूह' अर्थ मे भी होते हैं ॥ ४६ ॥ चित्त-शून्य द्रव्य के वाचक शब्दों, हस्तिन एवम् धेनु शब्दों से 'समूह' अर्थ मे ठक् प्रत्यय होता है ॥ ४७ ॥ 'समूह' अर्थ मे केश एवम् अश्व शब्दों से क्रमशः यञ् और छ प्रत्यय विकल्प से होते हैं ॥ ४८ ॥ 'समूह' अर्थ मे पाश आदि शब्दों से य प्रत्यय होता है ॥ ४९ ॥ 'समूह' अर्थ में षष्ठीसमर्थ खल, गो और रथ शब्दों से भी य प्रत्यय होता है ॥ ५० ॥ 'समूह' अर्थ में ही खल, गो और रथ शब्दों से क्रमशः इनि, त्र और कट्यच् प्रत्यय होते हैं ॥ ५१ ॥ षष्ठीसमर्थ शब्दों से 'विषयभूत देश' इस अर्थ मे यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥५२॥

५३ राजन्यादिभ्यो वुञ्।
५४ भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ।
५५ सोऽस्यादिरिति च्छन्दसः प्रगाथेषु।
५६ संग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः।
५७ तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः
५८ घञः सास्यां क्रियेति ञः।
५९ तदधीते तद्वेद।
६० क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक्।
६१ क्रमादिभ्यो वुन्।
६२ अनुब्राह्मणादिनिः।
६३ वसन्तादिभ्यष्ठक्।
६४ प्रोक्ताल्लुक्।
६५ सूत्राच्च कोपधात्।
६६ छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि
६७ तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि।

'विषयभूत देश' अर्थ मे राजन्य आदि शब्दों से वुञ् प्रत्यय होता है ॥ ५३ ॥ 'विषयभूत देश' अर्थ मे भौरिकि आदि शब्दों से विधल् और ऐषुकारि आदि शब्दों से भक्तल् प्रत्यय होता है ॥ ५४ ॥ 'इस प्रगाथ का आदि है' इस अर्थ मे छन्दोवाचक शब्दों से यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥५५॥ 'इस संग्राम का' इस अर्थ मे प्रथमासमर्थ प्रयोजन के प्रतिपादक तथा योद्धा के प्रतिपादक शब्दों से यथा-विहित प्रत्यय होते हैं ॥ ५६ ॥ 'इस क्रीड़ा मे प्रहरण (=प्रहार का साधन) है' इस अर्थ मे प्रहरणप्रतिपादक प्रथमासमर्थ शब्दों से ण प्रत्यय होता है ॥ ५७ ॥ 'इस क्रिया मे है' इस अर्थ मे घञ्प्रत्ययान्त क्रियाप्रतिपादक प्रथमासमर्थ शब्दों से ञ प्रत्यय होता है ॥ ५८ ॥ द्वितीयासमर्थ शब्दों से 'अधीते' (= पढ़ता है) और 'वेद' (= जानता है) इन अर्थों मे यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ५९ ॥ 'अधीते' और 'वेद' अर्थों मे द्वितीयासमर्थ क्रतु-वाचक शब्दों, उक्थ आदि शब्दों और सूत्र-शब्दान्त शब्दों से ठक् प्रत्यय होता है ॥ ६० ॥ उक्त दोनों अर्थों मे द्वितीयासमर्थ क्रम आदि शब्दों से वुन् प्रत्यय होता है ॥ ६१ ॥

उक्त अर्थों मे द्वितीयासमर्थ अनुब्राह्मण (= ब्राह्मणग्रन्थसदृश ग्रन्थ) शब्द से इनि प्रत्यय होता है ॥ ६२ ॥ उक्त अर्थों में वसन्त आदि शब्दों से भी ठक् प्रत्यय होता है ॥ ६३ ॥ 'प्रोक्त' (= कहा गया) अर्थ मे विहित प्रत्यय जिसके अन्त मे हों उन द्वितीयासमर्थ शब्दों से 'अधीते' और 'वेद' अर्थों में विहित प्रत्यय का लुक् हो जाता है ॥ ६४ ॥ ककार जिसकी उपधा हो ऐसे सूत्र-वाचक शब्द से उक्त दो अर्थों मे विहित प्रत्ययों का भी लुक् हो जाता है ॥ ६५ ॥ प्रोक्तार्थकप्रत्ययान्त छन्दोवाचक एवं ब्राह्मणग्रन्थवाचक शब्दों का प्रयोग 'अधीते' अथवा 'वेद' अर्थ मे विहित प्रत्यय के विना नहीं होता ॥ ६६ ॥ 'इस देश मे है' इस

६८ तेन निर्वृत्तम्।
६९ तस्य निवासः।
७० अदूरभवश्च ।
७१ ओरञ्।
७२ मतोश्च बह्वजङ्गात्।
७३ बह्वचः कूपेषु।
७४ उदक्च विपाशः।
७५ सङ्कलादिभ्यश्च।
७६ स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु।
७७ सुवास्त्वादिभ्योऽण्।
७८ रोणी।
७९ कोपधाच्च।

अर्थ मे प्रथमासमर्थ शब्दों से यथाविहित प्रत्यय होते हैं यदि प्रत्ययान्त आधारभूत देश का नाम हो तो ॥६७॥ 'सम्पन्न' (=निर्वृत्त) अर्थ में तृतीयासमर्थ शब्दों से यथाविहित प्रत्यय होते हैं यदि प्रत्ययान्त देशनाम हो तो ॥ ६८ ॥ 'निवास' (= रहने का स्थान) अर्थ मे षष्ठीसमर्थ शब्दों से यथाविहित प्रत्यय होते हैं यदि प्रत्ययान्त देशवाचक हो तो ॥ ६९ ॥ षष्ठीसमर्थ शब्दों से 'अदूरभव' (=समीप मे वर्तमान) अर्थ मे भी यथाविहित[1] प्रत्यय होते हैं ॥७०॥ समर्थविभक्तिसम्पन्न[2] उवर्णान्त शब्दों से उक्त चार अर्थों मे अञ् प्रत्यय होता है ॥७१॥ बहुत स्वरों से जिसका अङ्ग सम्पन्न हो उस मतुप्-प्रत्यय से निष्पन्न समर्थविभक्तियुक्त शब्दों से चातुरर्थक अण् प्रत्यय होता है ॥ ७२ ॥ बहुत स्वरों से सम्पन्न समर्थविभक्तियुक्त शब्दों से चातुरर्थिक अञ् प्रत्यय होता है यदि प्रत्ययान्त कूप का वाचक हो तो ॥ ७३ ॥ विपाशा नदी के उत्तर तट पर वर्तमान कूप का अभिधान करना यदि हो तो समर्थविभक्तियुक्त शब्द से चातुरर्थिक अञ् प्रत्यय हो जाता है ॥७४॥ सङ्कल आदि शब्दों से भी भी चातुरर्थिक अञ् प्रत्यय होता है ॥ ७५ ॥ स्त्रीत्वविशिष्ट सौवीर, साल्व और प्राच्य देशों (मे वर्तमान प्रदेशों) के अभिधानार्थ समर्थविभक्तियुक्त शब्दों से चातुरर्थिक अञ् प्रत्यय होता है ॥७६॥ सुवास्तु आदि समर्थविभक्तियुक्त शब्दों से चातुरथिक अण् प्रत्यय होता है ॥ ७७ ॥ रोणी शब्द भी से चातुर्थिक अण् प्रत्यय होता है ॥७८॥ ककार जिसकी उपधा हो उससे भी

१. तदस्मिन्नस्तीति॰' सूत्र से 'अदूरभवश्च' सूत्र तक प्रत्यय के चार अर्थों का उल्लेख किया गया है। अतः अब जिन प्रत्ययों का विधान किया जायगा उनके ये चार अर्थ होते हैं। इसी लिए इन प्रत्ययों को 'चातुरर्थिक प्रत्यय' कहा जाता है।

२. पूर्वोक्त चार अर्थों के बीच प्रथम अर्थ मे प्रत्यय का विधान यदि कर्तव्य हो तो समर्थविभक्ति प्रथमा, दूसरे अर्थ मे तृतीया और तीसरे तथा चौथे अर्थों में षष्ठी है। यह प्रत्ययार्थनिर्देश सूत्रों से ही प्रमाणित है। समस्त चातुरर्थिक प्रत्ययों के लिए समर्थविभक्ति के विषय में यही सिद्धान्त अनुसरणीय है।

८० वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकोऽरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसङ्काशवलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः।
८१ जनपदे लुप्।
८२ वरणादिभ्यश्च।
८३ शर्कराया वा।
८४ ठक्छौ च।
८५ नद्यां मतुप्।
८६ मध्वादिभ्यश्च।
८७ कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्।
८८ नडशादाड् ड्वलच्।
८९ शिखाया वलच्।
९० उत्करादिभ्यश्छः।
९१ नडादीनां कुक् च।
९२ शेषे।

चातुरर्थिक अण् प्रत्यय होता है ॥७९॥ अरीहण आदि समर्थविभक्तियुक्त शब्दों से चातुरर्थिक वुञ् प्रत्यय, कृशाश्व आदि से छण्, ऋश्य आदि से 'क', कुमुद आदि से ठच्, काश आदि से इल, तृण आदि से 'स', प्रेक्षा आदि शब्दों से इनि, अश्मन् आदि शब्दों से 'र', सखि आदि से ढञ्, सङ्काश आदि से ण्य, बल आदि शब्दों से 'य', पक्ष आदि शब्दों से फक्, कर्ण से फिञ्, सुतङ्गम आदि से इञ्, प्रगदिन् आदि से ञ्य, वराह आदि से कक् और कुमुद आदि शब्दों से ठक् प्रत्यय होते हैं ॥ ८० ॥

यदि (लुप् के बाद अवशिष्ट शब्दस्वरूप) जनपद (= ग्रामसमूह) का वाचक हो तो समर्थविभक्तियुक्त शब्दों से विहित चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् हो जाता है ॥ ८१ ॥ वरण आदि शब्दों से विहित चातुरर्थिक प्रत्यय का भी लुप् हो जाता है ॥ ८२ ॥ शर्करा शब्द से विहितं चातुरर्थिक प्रत्यय का भी विकल्प से लुप् हो जाता है ॥ ८३ ॥ शर्करा शब्द से चातुरर्थिक ठक् और छ प्रत्यय भी होते हैं ॥ ८४ ॥ समर्थविभक्तियुक्त शब्द से चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय होता है यदि प्रत्ययान्त नदीवाचक हो तो ॥ ८५ ॥ मधु आदि शब्दों से भी चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय होता है ॥ ८६ ॥ कुमुद, नड और वेतस शब्दों से चातुरर्थिक ड्मतुप् प्रत्यय होता है ॥ ८७ ॥ नड और शाद शब्दों से चातुरर्थिक ड्वलच् प्रत्यय होता है ॥ ८८ ॥ शिखा शब्द से चातुरर्थिक वलच् प्रत्यय होता है ॥ ८९ ॥ उत्कर आदि शब्दों से चातुरर्थिक छ प्रत्यय होता ॥ ९० ॥ नड आदि शब्दों से चातुरर्थिक छ प्रत्यय तथा उसके परे प्रकृति को कुक् का आगम भी हो जाता है ९१॥ अब से लेकर 'तस्य विकारः' सूत्र से पूर्व तक जिन प्रत्ययों का विधान किया

९३ राष्ट्रावारपाराद्घखौ।
९४ ग्रामाद्यखञौ।
९५ कत्त्र्यादिभ्यो ढकञ्।
९६ कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलङ्कारेषु।
९७ नद्यादिभ्यो ढक्।
९८ दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्।
९९ कापिश्याः ष्फक्।
१०० रङ्कोरमनुष्येऽण् च।
१०१ द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्।
१०२ कन्थायाष्ठक्।
१०३ वर्णौ वुक्।
१०४ अव्ययात् त्यप्।
१०५ ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्।
१०६ तीररूप्योत्तरपदादञ्ञौ।
१०७ दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः।

जाएगा वे प्रत्यय शेष[1] अर्थों (= अपत्य से लेकर पूर्वोक्त चार प्रत्ययार्थों से भिन्न विशेषरूपेण भासमान अर्थों) में होते हैं ॥ ९२ ॥ राष्ट्र एवम् अवारपार शब्दों से क्रमशः घ एवं ख प्रत्यय होते हैं ॥ ९३ ॥ ग्राम शब्द से य एवं खञ् प्रत्यय होते हैं ॥ ९४ ॥ कत्त्रि आदि शब्दों से ढकञ् प्रत्यय होता है ॥ ९५ ॥ जात (= उत्पन्न) आदि अर्थों मे कुल, कुक्षि और ग्रीवा शब्दों से ढकञ् प्रत्यय होता है यदि प्रत्ययान्त शब्द क्रमशः श्वा (= कुत्ता), असि (= खड्ग) एवम् अलङ्करण के वाचक हों तो ॥ ९६ ॥ नदी आदि शब्दों से ढक् प्रत्यय होता है ॥ ९७ ॥ दक्षिणा, पश्चात् और पुरस् शब्दों से त्यक् प्रत्यय होता है ॥९८॥ कापिशी शब्द से ष्फक् प्रत्यय होता है ॥ ९९ ॥ रङ्कु शब्द से विकल्प से अण् और ष्फक् प्रत्यय होते हैं यदि प्रत्ययान्त मनुष्यार्थक न हो तो ॥ १०० ॥

दिव्, प्राच्, अपाच्, उदच् और प्रत्यच् शब्दों से शैषिकार्थ मे यत् प्रत्यय होता है ॥ १०१ ॥ समर्थविभक्तियुक्त कन्या शब्द से शैषिकार्थ मे ठक् प्रत्यय होता है ॥ १०२ ॥ किन्तु वर्णि-देशसम्बन्धी कन्या शब्द से वुक् प्रत्यय हो जाता है ॥ १०३ ॥ 'अव्यय'-संज्ञक शब्दों से शैषिकार्थ में त्यप् प्रत्यय होता है ॥१०४॥ समर्थविभक्तियुक्त ऐषमस्, ह्यस् एवं श्वस् शब्दों से शैषिकार्थ मे विकल्प से त्यप् प्रत्यय होता है ॥ १०५ ॥ तीर शब्द अथवा रूप्य शब्द जिसके अन्त मे हों ऐसे समर्थविभक्तियुक्त शब्दों से शैषिकार्थ में क्रमशः अञ् और ञ प्रत्यय होते हैं ॥ १०६ ॥ यदि समर्थविभक्तियुक्त शब्द संज्ञाशब्द न हो तथा उसका पूर्वावयवभूत पद दिग्वाचक हो तो उससे शैषिकार्थ मे ञ प्रत्यय होता है ॥ १०७ ॥

---

१. इन्हीं प्रत्ययों को 'शैषिक' (= शेष अर्थ में विहित) प्रत्यय कहा जाता है।

१०८ मद्रेभ्योऽञ्।
१०९ उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात्।
११० प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण्।
१११ कण्वादिभ्यो गोत्रे।
११२ इञश्च।
११३ न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु।
११४ वृद्धाच्छः।
११५ भवतष्ठक्छसौ।
११६ काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ।
११७ वाहीकग्रामेभ्यश्च।
११८ विभाषोशीनरेषु।
११९ ओर्देशे ठञ्।
१२० वृद्धात् प्राचाम्।
१२१ धन्वयोपधाद् वुञ्।
१२२ प्रस्थपुरवहान्ताच्च।
१२३ रोपधेतोः प्राचाम्।

किन्तु दिग्वाचक पूर्वपद से युक्त मद्र शब्द से शैषिक अर्थ में अञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ १०८ ॥ उदीच्यदेशीय ग्राम के वाचक, बहुत स्वरों से विशिष्ट, अन्तोदात्त शब्द से भी शैषिकार्थ मे अञ् प्रत्यय होता है ॥ १०९ ॥ जिस समर्थविभक्तियुक्त शब्द का उत्तरपद प्रस्थ शब्द हो उससे, पलदी आदि शब्दों से और ककार जिनकी उपधा हो उन शब्दों से शैषिक अर्थों मे अण् प्रत्यय होता है ॥ ११० ॥ गोत्रप्रत्ययान्त कण्व आदि शब्दों से भी शैषिक अर्थों मे अण् प्रत्यय होता है ॥ १११ ॥ गोत्रार्थक-इञ्-प्रत्ययान्त शब्दों से भी शैषिकार्थ मे अण् प्रत्यय होता है ॥ ११२ ॥ किन्तु दो स्वरों से विशिष्ट प्राच्यभरतगोत्रार्थक-इञ्-प्रत्ययान्त शब्दों से अण् प्रत्यय नहीं होता ॥ ११३ ॥ 'वृद्ध'-संज्ञक शब्दों (= जिसका आद्य स्वर 'वृद्धि' = संज्ञक हो) से शैषिकार्थ मे छ प्रत्यय होता है ॥ ११४ ॥ किन्तु 'वृद्ध'-संज्ञक भवत् शब्द से शैषिकार्थ मे ठक् एवं छस् प्रत्यय होते हैं ॥ ११५ ॥ काशि आदि शब्दों से शैषिकार्थ में ठञ् तथा ञिठ् प्रत्यय होते हैं ॥ ११६ ॥ वाहीक-ग्राम-वाचक 'वृद्ध'-संज्ञक शब्दों से भी शैषिकार्थ मे ठञ् और ञिठ् प्रत्यय होते हैं ॥ ११७ ॥ परन्तु उशीनर-देशस्थ वाहीक-ग्राम के वाचक 'वृद्ध'-संज्ञक शब्दों से ठञ् एवं ञिठ् प्रत्यय विकल्प से होते हैं ॥ ११८ ॥ देश-वाचक उकारान्त शब्दों से शैषिकार्थ मे ठञ् प्रत्यय होता है ॥११९॥ प्राच्य-देशवाची उकारान्त शब्दों से शैषिकार्थक ठञ् प्रत्यय होता है ॥ १२० ॥ केवल 'वृद्ध'-संज्ञक होने पर ही, धन्व (= मरुभूमि)-वाचक शब्द से एवं यकार जिसकी उपधा हो वह शब्द यदि देश-वाचक एवं 'वृद्ध'-संज्ञक हो तो उससे भी शैषिकार्थ मे वुञ् प्रत्यय होता है ॥१२१॥ 'वृद्ध'-संज्ञक, देशवाचक प्रस्थ-शब्दान्त, पुर-शब्दान्त एवं वह-शब्दान्त शब्दों से भी शैषिकार्थ मे वुञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ १२२ ॥ रेफ जिसकी उपधा हो

१२४ जनपदतदवध्योश्च ।
१२५ अवृद्धादपि बहुवचनविषयात् ।
१२६ कच्छाग्निवक्त्रगर्तोत्तरपदात् ।
१२७ धूमादिभ्यश्च ।
१२८ नगरात् कुत्सनप्रावीण्ययोः ।
१२९ अरण्यान्मनुष्ये ।
१३० विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम् ।
१३१ मद्रवृज्योः कन् ।
१३२ कोपधादण् ।
१३३ कच्छादिभ्यश्च ।
१३४ मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ् ।
१३५ अपदातौ साल्वात् ।
१३६ गोयवाग्वोश्च ।
१३७ गर्त्तोत्तरपदाच्छः ।

उस 'वृद्ध'-संज्ञक, प्राच्यदेशवाचक ईकारान्त शब्द से भी शैषिकार्थ में वुञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ १२३ ॥ 'वृद्ध'-संज्ञक जनपदवाची तथा जनपद-सीमा-वाची शब्दों से भी शैषिकार्थ में वुञ् प्रत्यय होता है ॥ १२४ ॥ किन्तु यदि जनपद अथवा जनपद की सीमा के वाचक शब्द बहुवचनविभक्ति से युक्त हों तो उनसे, 'वृद्ध'-संज्ञक न होने पर भी, वुञ् प्रत्यय हो ही जाता है ॥ १२५ ॥ देशवाचक कच्छ-शब्दान्त, अग्नि-शब्दान्त, वक्त्र-शब्दान्त एवं गर्त-शब्दान्त शब्दों से, चाहे वे 'वृद्ध'-संज्ञक हों या न हों, शैषिकार्थक वुञ् प्रत्यय होता है ॥ १२६ । देश-वाचक धूम आदि शब्दों से भी शैषिकार्थक वुञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ १२७ ॥ यदि (प्रत्यय से) कुत्सन (= निन्दा) अथवा प्रवीणता गम्यमान हो तो नगर शब्द से भी शैषिकार्थक वुञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ १२८ ॥ यदि प्रत्ययान्त शब्द मनुष्यार्थक हो तो अरण्य शब्द से भी शैषिकार्थक वुञ् प्रत्यय हो जाता है ॥१२९॥ कुरु और युगन्धर शब्दों से शैषिकार्थक वुञ् प्रत्यय विकल्प से होता[1] है ॥१३०॥ मद्र और वृजि शब्दों से शैषिकार्थक कन् प्रत्यय होता है ॥ १३१ ॥ ककार जिसकी उपधा हो उस देश-वाचक शब्द से शैषिकार्थक अण् प्रत्यय होता है ॥ १३२ ॥ देश-वाचक कच्छ आदि शब्दों से भी शैषिकार्थक अण् प्रत्यय होता है ॥१३३॥ (समुदाय से) मनुष्य अथवा मनुष्यनिष्ठ विषयविशेष के अभिधानार्थ कच्छ आदि शब्दों से वुञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ १३४ ॥ यदि समुदाय का अर्थ पदाति (= पैदल) से भिन्न मनुष्य अथवा मनुष्यवृत्ती पदार्थ हो तो साल्व शब्द से भी वुञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ १३५ ॥ यदि समुदाय का प्रयोग गाय अथवा यवागू (= यवचूर्ण) के लिए हुआ हो तब भी साल्व शब्द से वुञ् प्रत्यय हो जाता है ॥१३६॥ गर्त्त-शब्दान्त देशवाचक शब्द से शैषिकार्थक छ प्रत्यय होता है ॥१३७॥

१. मनुष्य अथवा मनुष्यवृत्तिविषयविशेष यदि समुदायार्थ हो तो यह वुञ् प्रत्यय कुरु शब्द से नित्य होता है ।

१३८ गहादिभ्यश्च ।
१३९ प्राचां कटादेः ।
१४० राज्ञः क च ।
१४१ वृद्धादकेकान्तखोपधात् ।
१४२ कन्थापलदनगरग्राम-
ह्रदोत्तरपदात् ।
१४३ पर्वताच्च ।
१४४ विभाषा मनुष्ये ।
१४५ कृकणपर्णाद्भारद्वाजे ।

तृतीयः पादः ।

१ युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां
खञ् च ।
२ तस्मिन्नणि च युष्माका-
स्माकौ ।
३ तवकममकावेकवचने ।
४ अर्धाद्यत् ।

गह आदि शब्दों से भी शैषिकार्थक छ प्रत्यय होता है ॥ १३८ ॥ प्राच्य-देशवाचक कट आदि शब्दों से भी शैषिकार्थक छ प्रत्यय होता हैं ॥ १३९ । राजन् शब्द से शैषिकार्थक छ प्रत्यय भी होता है और प्रकृति (के अन्त्य) को ककारादेश भी ॥ १४० ॥

'वृद्ध'-संज्ञक देशवाचक अक-शब्दान्त, इक-शब्दान्त एव खकार जिसकी उपधा हो उन शब्दों से शैषिकार्थक छ प्रत्यय होता है ॥१४१॥ 'वृद्ध'-संज्ञक देश-वाचक कन्था-शब्दान्त, पलद-शब्दान्त, नगर-शब्दान्त, ग्राम शब्दान्त एवं ह्रद-शब्दान्त प्रातिपदिकों से शैषिकार्थक छ प्रत्यय होता है ॥ १४२ ॥ यदि समुदाय मनुष्य-प्रतिपादक हो तो पर्वत शब्द से भी शैषिकार्थक छ प्रत्यय होता है ॥ १४३ ॥ किन्तु समुदाय यदि मनुष्य-प्रतिपादक न हो तो (पर्वत शब्द से) छ प्रत्यय विकल्प से होता है ॥ १४४ ॥ देशवाची कृकण एवं भारद्वाज शब्दों से शैषिकार्थक छ प्रत्यय होता है ॥ १४५ ॥

चतुर्थ अध्याय का द्वितीय पाद समाप्त ।

चतुर्थ अध्याय का तृतीय पाद

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से विकल्प से शैषिकार्थक खञ्, छ और अण् प्रत्यय होते हैं ॥ १ ॥ खञ् एवम् अण् प्रत्ययों के परे युष्मद् और अस्मद् शब्दों के स्थान मे क्रमशः युष्माक और अस्माक आदेश हो जाते हैं ॥ २ ॥ किन्तु यदि युष्मद् एवम् अस्मद् शब्द एकवचनपरक हों तो खञ् और अण् प्रत्ययों के परे क्रमशः तवक एवम् ममक आदेश हो जाते हैं ॥ ३ ॥ अर्ध शब्द से शैषिकार्थक

५ परावराधमोत्तमपूर्वाच्च ।
६ दिक्पूर्वपदाट्ठञ् च ।
७ ग्रामजनपदैकदेशादञ्ठञौ ।
८ मध्यान्मः ।
९ अ साम्प्रतिके ।
१० द्वीपादनुसमुद्रं यञ् ।
११ कालाट्ठञ् ।
१२ श्राद्धे शरदः ।
१३ विभाषा रोगातपयोः ।
१४ निशाप्रदोषाभ्यां च ।
१५ श्वसस्तुट् च ।
१६ संधिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ।
१७ प्रावृष एण्यः ।
१८ वर्षाभ्यष्ठक् ।
१९ छन्दसि ठञ् ।
२० वसन्ताच्च ।

यत् प्रत्यय होता है ॥ ४ ॥ पर-शब्दपूर्वक, अवर-शब्दपूर्वक, अधम-शब्दपूर्वक एवम् उत्तम-शब्दपूर्वक अर्धशब्द से भी शैषिकार्थक यत् प्रत्यय हो जाता है ॥५॥ जिस प्रातिपदिक का दिग्वाचक शब्द पूर्वपद और अर्धशब्द उत्तर-पद हो उससे शैषिकार्थक यत् प्रत्यय भी होता है और ठञ् प्रत्यय भी ॥ ६ ॥ दिग्वाचकपूर्वदक एवम् अर्धशब्दोत्तरपदक शब्द यदि ग्रामैकदेश अथवा जनपदैकदेश का वाचक हो तो उससे शैषिकार्थक अञ् एवं ठञ् प्रत्यय (विकल्प से) होते हैं ॥ ७ ॥ मध्य शब्द से शैषिकार्थक म प्रत्यय होता है ॥ ८ ॥ किन्तु साम्प्रतिक (= न्याय्य)[१] अर्थ का अभिधान करना हो तो 'अ' प्रत्यय हो जाता है ॥९॥ समुद्र के समीपवर्ती द्वीप के अभिधायक द्वीप शब्द से शैषिकार्थक यञ् प्रत्यय होता है ॥ १० ॥ काल-वाचक शब्दों से शैषिकार्थक ठञ् प्रत्यय होता है ॥११॥ श्राद्धकर्म के अभिधानार्थ शरद् शब्द से शैषिकार्थक ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ॥ १२ ॥ किन्तु यदि रोग या आतप (= धूप) का अभिधान करना हो तो शरद् शब्द से शैषिकार्थक ठञ् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥ १३ ॥ निशा एवं प्रदोष शब्दों से भी शैषिकार्थक ठञ् प्रत्यय विकल्प से हीं होता है ॥ १४ ॥ श्वस् शब्द से भी विकल्प से ही शैषिकार्थक ठञ् प्रत्यय होता है, साथ ही प्रकृति में तुट् का आगम भी हो जाता है ॥ १५ ॥ कालार्थक शब्दों में सन्धिवेला आदि शब्दों, ऋतु-वाचक शब्दों एवम् नक्षत्र-वाचक शब्दों से शैषिकार्थक अण् प्रत्यय हो जाता है ॥१६॥ प्रावृष् शब्द से शैषिकार्थक एन्य प्रत्यय होता है ॥ १७ ॥ वर्षा शब्द से शैषिकार्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥१८॥ किन्तु यदि प्रयोग वेद-विषयक हो तो वर्षा शब्द से भी शैषिकार्थ में ठञ् प्रत्यय हो जाता है ॥१९॥ वसन्त शब्द से, वैदिक प्रयोग होने पर, शैषिकार्थ

१. इसका तात्पर्य यह है कि 'अ'-प्रत्यय-युक्त मध्य शब्द का अर्थ है न अच्छा न बुरा, सामान्य = साधारण ।

२१ हेमन्ताच्च ।
२२ सवत्राण् च तलोपश्च ।
२३ सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ।
२४ विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम् ।
२५ तत्र जातः ।
२६ प्रावृषष्ठक् ।
२७ संज्ञायां शरदो वुञ् ।
२८ पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद् वुन् ।
२९ पथः पन्थ च ।
३० अमावास्याया वा ।
३१ अ च ।
३२ सिन्ध्वपकराभ्यां कन् ।
३३ अणञौ च ।
३४ श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाषाढाबहुलाल्लुक् ।

में ठञ् प्रत्यय ही होता है ॥ २० ॥ हेमन्त शब्द से भी वैदिक-प्रयोग में शैषिकार्थक ठञ् प्रत्यय ही होता है ॥ २१ ॥

हेमन्त शब्द से लौकिक तथा वैदिक दोनों प्रयोगों में शैषिकार्थक अण् प्रत्यय भी होता है और अन्त्य तकार का लोप भी ॥ २२ ॥ कालवाचक सायम्, चिरम्, प्राह्णे (= प्रातः काल अथवा मध्याह्न से पूर्व का समय—पूर्वाह्न), प्रगे (=प्रातः) और अव्ययसंज्ञक अन्य कालार्थक शब्दों से भी शैषिकार्थ में ट्यु एवं ट्युल् प्रत्यय भी होते हैं और इन प्रत्ययों में तुट् का आगम भी ॥ २३ ॥ किन्तु पूर्वाह्न एवम् अपराह्न शब्दों से शैषिकार्थक ट्यु एवं ट्युल् प्रत्यय तथा इन्हें तुट् का आगम भी विकल्प से होता है ॥ २४ ॥ सप्तम्यर्थ-सम्बद्ध शब्द से जात (= उत्पन्न) अर्थ में अण् आदि प्रत्ययों का विधान अवगन्तव्य है ॥ २५ ॥ सप्तमीसमर्थ प्रावृष् शब्द से जतार्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ २६ ॥ सप्तमीसमर्थ शरद् शब्द से यदि समुदाय संज्ञा-शब्द हो तो जातार्थ में वुञ् प्रत्यय होता है ॥ २७ ॥ समुदाय से संज्ञा यदि गम्यमान हो तो सप्तमीसमर्थ पूर्वाह्न, अपराह्न, आर्द्रा, मूल, प्रदोष एवम् अवस्कर (=गुह्य देश) शब्दों से जातार्थ में वुन प्रत्यय हो जाता है ॥२८॥ सप्तमीसमर्थ पथिन् शब्द से जातार्थ में वुन् प्रत्यय भी होता है और पथिन् के स्थान में पन्थ आदेश भी ॥ २९ ॥ सप्तमीसमर्थ अमावस्या शब्द से जातार्थ में विकल्प से वुन् प्रत्यय होता है ॥ ३० ॥ सप्तमीसमर्थ अमावस्या शब्द से जातार्थ में अ प्रत्यय भी होता है ॥ ३१ ॥ सप्तमीसमर्थ सिन्धु और अपकर शब्दों से जातार्थ में कन् प्रत्यय होता है ॥ ३२ ॥ सिन्धु एवम् अपकर शब्दों से यथाक्रम अण् और अञ् प्रत्यय भी होते हैं ॥ ३३ ॥ सप्तमीसमर्थ नक्षत्र-वाचक धनिष्ठा,

३५ स्थानान्तगोशालखरशालाच्च ।
३६ वत्सशालाभिजिदश्वयुक्शतभिषजो वा ।
३७ नक्षत्रेभ्यो बहुलम् ।
३८ कृतलब्धक्रीतकुशलाः ।
३९ प्रायभवः ।
४० उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक् ।
४१ सम्भूते ।
४२ कोशाड्ढञ् ।
४३ कालात्साधुपुष्यत्पच्यमानेषु ।
४४ उप्ते च ।
४५ आश्वयुज्या वुञ् ।
४६ ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम् ।
४७ देयमृणे ।

फल्गुनी, अनुराधा, स्वाति, तिष्य, पुनर्वसु, हस्त, विशाखा, आषाढा एवं बहुल शब्दों से जातार्थ में विहित प्रत्यय का लुक् हो जाता है ॥ ३४ ॥ सप्तमीसमर्थ स्थानशब्दान्त प्रातिपदिकों, गोशाला एवम् खरशाला शब्दों से जातार्थ में विहित प्रत्यय का लुक् हो जाता है ॥ ३५ ॥ सप्तमीसमर्थ शब्दों से जातार्थ में विहित प्रत्यय का लुक् विकल्प से होता है ॥ ३६ ॥ नक्षत्र-वाचक शब्दों से जातार्थ में विहित प्रत्ययों का लुक् बहुल रूप में होता है ॥ ३७ ॥ सप्तमीसमर्थ शब्दों से कृत (= किया गया), लब्ध, क्रीत और कुशल (= निपुण) अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ३८ ॥ सप्तमीसमर्थ शब्दों से प्रायभव (=आधिक्येन होना) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ३९ ॥ सप्तमीसमर्थ उपजानु, उपकर्ण और उपनीवि शब्दों से प्रायभवार्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ ४० ॥

सप्तमीसमर्थ शब्दों से सम्भूत[1] अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ४१ ॥ सप्तमीसमर्थ कोश शब्द से संभूतार्थ में ढञ् प्रत्यय होता है ॥ ४२ ॥ सप्तमीसमर्थ कालवाचक शब्दों से साधु, पुष्यत् (= खिलने वाला) और पच्यमान अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ४३ ॥ सप्तमीसमर्थ कालबाचक शब्दों से उप्त (= बोया गया) अर्थ में भी यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ४४ ॥ सप्तमीसमर्थ आश्वयुजी शब्द से उप्त अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है ॥ ४५ ॥ सप्तमीसमर्थ ग्रीष्म और वसन्त शब्दों से भी उप्त अर्थ में विकल्प से वुञ् प्रत्यय होता है ॥ ४६ ॥ सप्तमीसमर्थ कालवाचक शब्दों से 'देय ऋण' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते

---

१. सम्भूत के अर्थ (क) सम्भावना और (ख) आधार के परिमाण की अपेक्षा आधेय के परिमाण की अधिकता का अभाव हैं ।

४८ कलाप्यश्वत्थयवबुसाद् वुन् ।
४९ ग्रीष्मावरसमाद् वुञ् ।
५० संवत्सराग्रहायणीभ्यां ठञ् च ।
५१ व्याहरति मृगः ।
५२ तदस्य सोढम् ।
५३ तत्र भवः ।
५४ दिगादिभ्यो यत् ।
५५ शरीरावयवाच्च ।
५६ दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ् ।
५७ ग्रीवाभ्योऽण् च ।
५८ गम्भीराञ्ञ्यः ।
५९ अव्ययीभावाच्च ।
६० अन्तः पूर्वपदाट्ठञ् ।

हैं ॥ ४७ ॥ कालार्थक[1] सप्तमीसमर्थ कलापिन्, अश्वत्थ और यवबुस शब्दों से 'देय ऋण' अर्थ में वुन् प्रत्यय होता है ॥ ४८ ॥ सप्तमीसमर्थ कालार्थक ग्रीष्म और अवरसम शब्दों से 'देय ऋण' अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है ॥ ४९ ॥ किन्तु सप्तमीसमर्थ कालार्थक सम्वत्सर और आग्रहायणी शब्दों से 'देय ऋण' अर्थ में ठञ् प्रत्यय भी होता है और विकल्प से वुञ् प्रत्यय भी ॥ ५० ॥ सप्तमीसमर्थ कालार्थक शब्दों से 'बोलने वाला मृग' (= व्याहरति मृगः) इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ५१ ॥ प्रथमासमर्थ कालार्थक शब्दों से 'इसका' अथवा 'इसके द्वारा सहा गया है' (= अस्य सोढम्) इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ५२ ॥ सप्तमीसमर्थ शब्दों से 'भव' (= सत्ता) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ५३ ॥ सप्तमीसमर्थ दिश् आदि शब्दों से भवार्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ ५४ ॥ शरीर के अवयव के वाचक सप्तमीसमर्थ शब्दों से भी भवार्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ ५५ ॥ सप्तमीसमर्थ दृति, कुक्षि, कलशि, वस्ति, अस्ति[2] एवम् अहि शब्दों से भवार्थ में ढञ् प्रत्यय होता है ॥ ५६ ॥ सप्तमीसमर्थ ग्रीवा शब्द से भवार्थ में अण् प्रत्यय भी होता है (और ढञ् प्रत्यय भी) ॥ ५७ ॥ सप्तमीसमर्थ गम्भीर शब्द से भवार्थ में ञ्य प्रत्यय होता है ॥ ५८ ॥ 'अव्ययीभाव'-संज्ञक परिमुख आदि शब्दों से भी भवार्थ में ञ्य प्रत्यय हो जाता है ॥५९॥ किन्तु जिस 'अव्ययीभाव'-संज्ञक शब्द का पूर्वपद अन्तः शब्द हो उससे भवार्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ६० ॥

१. कलापिन् आदि शब्द लक्षण से, उस काल-विशेष के प्रतिपादक हैं जिसमें कलाप आदि की उत्पत्ति होती है ।

२. यह एक तिङन्तप्रतिरूपक निपात है । इसके दो अर्थ हैं—(क) सत्ता और (ख) धन ।

६१ ग्रामात् पर्यनुपूर्वात् ।
६२ जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ।
६३ वर्गान्ताच्च ।
६४ अशब्दे यत्खावन्यतरस्याम् ।
६५ कर्णललाटात्कनलङ्कारे ।
६६ तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः ।
६७ बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ् ।
६८ क्रतुयज्ञेभ्यश्च ।
६९ अध्यायेष्वेवर्षेः ।
७० पौरोडाशपुरोडाशात् ष्ठन् ।
७१ छन्दसो यदणौ ।
७२ द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक् ।

'अव्ययीभाव'-संज्ञक परिग्राम एवम् अनुग्राम शब्दों से भी भवार्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ६१ ॥ सप्तमीसमर्थ जिह्वामूल और अङ्गुलि शब्दों से भवार्थ में छ प्रत्यय होता है ॥ ६२ ॥ सप्तमीसमर्थ वर्ग-शब्दान्त प्रातिपदिक से भी भवार्थ में छ प्रत्यय हो जाता है ॥ ६३ ॥ यदि प्रत्ययान्त का अर्थ शब्दात्मक न हो तो वर्ग-शब्दान्त सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिक से वैकल्पिक रूप में भवार्थक यत् और ख प्रत्यय हो जाते हैं ॥ ६४ ॥ यदि प्रत्ययान्त का अर्थ अलङ्कार (= आभूषण) हो तो सप्तमीसमर्थ कर्ण और ललाट शब्दों से भवार्थ में कन् प्रत्यय होता है ॥ ६५ ॥ जिसकी व्याख्या कर्त्तव्य हो उसके नामभूत (= व्याख्यातव्यनाम) षष्ठीसमर्थ शब्दों से व्याख्यान अर्थ में (और भवार्थ में भी) भी यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥६६॥ किन्तु यदि षष्ठीसमर्थ व्याख्यातव्यनामभूत शब्द बहुत स्वरों से सम्पन्न तथा अन्तोदात्त हो तो उससे व्याख्यान एवं भव अर्थों में ठञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६७ ॥ षष्ठीसमर्थ व्याख्यातव्यनामभूत क्रतुविशेष-वाचक एवं यज्ञविशेष-वाचक शब्दों से भी व्याख्यान एवं भव अर्थों में ठञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६८ ॥ लक्षणा से ग्रन्थ-प्रतिपादक षष्ठीसमर्थ ऋषिवाचक शब्दों से व्याख्यान एवं भव अर्थों में ठञ् प्रत्यय होता है यदि दोनों प्रत्ययार्थों का[1] विशेषण मात्र अध्याय हो तो ॥ ६९ ॥ षष्ठीसमर्थ पौरोडाश और पुरोडाश शब्दों से भव एवं व्याख्यान अर्थों में ष्ठन प्रत्यय हो जाता है ॥ ७० ॥ षष्ठीसमर्थ छन्दस् शब्द से भव और व्याख्यान अर्थों मे विकल्प से यत् और अण् प्रत्यय होते हैं ॥ ७१ ॥ षष्ठीसमर्थ व्याख्यातव्यनामभूत द्व्यच् (=जिनमे दो अच् = स्वर हों), ऋदन्त, ब्राह्मण, ऋक्, प्रथम, अध्वर, पुरश्चरण, नामन्, आख्यान एवं नामाख्यान शब्दों से भव एवं व्याख्यान

१. इसका आशय यही है कि समुदाय—प्रत्ययान्त का प्रतिपाद्य अर्थ अध्याय है।

७३ ऋगयनादिभ्यः।
७४ तत आगतः।
७५ ठगायस्थानेभ्यः।
७६ शुण्डिकादिभ्योऽण्।
७७ विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्।
७८ ऋतष्ठञ्।
७९ पितुर्यच्च।
८० गोत्रादङ्कवत्।
८१ हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः।
८२ मयट् च।
८३ प्रभवति।
८४ विदूराञ्ञ्यः।
८५ तद्गच्छति पथिदूतयोः।
८६ अभिनिष्क्रामति द्वारम्।
८७ अधिकृत्य कृते ग्रन्थे।

अर्थों में ठक् प्रत्यय होता है ॥ ७२ ॥ षष्ठीसमर्थ ऋगयन आदि शब्दों से भव और व्याख्यान अर्थों में अण् प्रत्यय होता है ॥ ७३ ॥ पञ्चमीसमर्थ प्रातिपदिक से आगत (=आया हुआ) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ७४ ॥ आय-स्थान (= धनागम के स्थान) के अभिधायक पञ्चमीसमर्थ शब्दों से आगत अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ ७५ ॥ किन्तु पञ्चमीसमर्थ शुण्डिक आदि शब्दों से आगत अर्थ में अण् प्रत्यय हो जाता है ॥ ७६ ॥ विद्याप्रयुक्त सम्बन्ध तथा योनिप्रयुक्त सम्बन्ध से युक्त पदार्थों के वाचक पञ्चमीसमर्थ शब्दों से आगत अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है ॥ ७७ ॥ पूर्वसूत्रोक्त पञ्चमीसमर्थ शब्द यदि ऋदन्त हो तो उससे आगत अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ७८ ॥ किन्तु पितृ शब्द से आगत अर्थ में यत् प्रत्यय भी होता है (और ठञ् प्रत्यय भी) ॥ ७९ ॥ गोत्रप्रत्ययान्त पञ्चमीसमर्थ शब्दों से अङ्कार्थक प्रत्यय के समान ही आगत अर्थ में भी प्रत्यय होते हैं ॥ ८० ॥

हेतुभूततत्त्ववाचक और मनुष्यविशेषवाचक पञ्चमीसमर्थ शब्दों से आगत अर्थ में विकल्प से रूप्य प्रत्यय होता है ॥८१॥ पूर्वसूत्रोक्त शब्दों से मयट् प्रत्यय भी होता है ।८२॥ पञ्चमीसमर्थ शब्दों से 'प्रभवति' (= प्रथमतः प्रकट होता है) इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ८३ ॥ पञ्चमीसमर्थ विदूर शब्द से 'प्रभवति' अर्थ में ञ्य प्रत्यय होता है ॥ ८४ ॥ द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से 'जानेवाला मार्ग' तथा 'जाने वाला दूत' इन अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ८५ ॥ द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से 'की ओर निकलने का द्वार' (= अभिनिष्क्रामति द्वारम्) इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ८६ ॥ द्वितीयासमर्थ शब्द से 'के विषय में किया गया—लिखा गया—ग्रन्थ' (= अधिकृत्य कृते ग्रन्थे) इस अर्थ में यथाविहित

८८ शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः ।
८९ सोऽस्य निवासः ।
९० अभिजनश्च ।
९१ आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते ।
९२ शण्डिकादिभ्यो ञ्यः ।
९३ सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ ।
९४ तूदीशलातुरवर्मतीकूचवाराड्ढक्छण्ढञ्यकः ।
९५ भक्तिः ।
९६ अचित्तादेशकालाट्ठक् ।
९७ महाराजाट्ठञ् ।

प्रत्यय होते हैं ॥ ८७॥ द्वितीयासमर्थ शिशु क्रन्द, यमसभ, द्वन्द्वसमासनिष्पन्न शब्द और इन्द्रजनन आदि शब्दों से 'के विषय में लिखा गया ग्रन्थ' इस अर्थ में छ प्रत्यय होता है ॥ ८८ ॥ प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से 'इसका स्थान[1] है' इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ८९ ॥ प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से 'इसका अभिजन[2] है' इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ९० ॥ प्रथमासमर्थ पर्वतविशेषवाचक प्रातिपदिक से 'इन आयुधजीवियों का अभिजन है' इस अर्थ में छ प्रत्यय हो जाता है ॥ ९१ ॥ प्रथमासमर्थ शण्डिक आदि शब्दों से 'इसका अभिजन है' इस अर्थ में ञ्य प्रत्यय होता है ॥ ९२ ॥ प्रथमासमर्थ सिन्धु आदि शब्दों और तक्षशिला आदि शब्दों से 'इसका अभिजन है' इस अर्थ में क्रमशः अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं ॥ ९३ ॥ 'इसका अभिजन है' इस अर्थ में प्रथमासमर्थ तूदी शब्द से ढक्, शलातुर शब्द से छण्, वर्मती शब्द से ढञ् और कूचवार शब्द से यक् प्रत्यय होते हैं ॥ ९४ ॥ प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से 'इसकी भक्ति (= इसका सेवनीय) है' इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ९५ ॥ देशविशेष, कालविशेष और चित्तयुक्त पदार्थों के वाचक शब्दों से भिन्न प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से 'इसकी भक्ति है' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ ९६ ॥ प्रथमासमर्थ

१. ऐसे प्रसङ्गों में यह स्पष्ट है कि प्रकृतिभूत शब्द का अर्थ ही प्रत्ययार्थान्तर्गत निवासस्थानस्वरूप है। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

२. पूर्वसूत्रोक्त निवास शब्द 'निवसन्त्यस्मिन्निति निवासः' इस व्युत्पत्ति से निष्पन्न होने के कारण निवासस्थानार्थक है। अभिजन शब्द 'अभिजायते येभ्यः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार पूर्वज—पूर्वबान्धव का वाचक एवं तात्स्थ्यप्रयुक्त लक्षणा से पूर्वबान्धवनिवासस्थानार्थक है। अभिजन शब्द का निवासशब्द-साहचर्य के कारण लक्ष्यार्थ विवक्षित है। इस प्रकार निवास तथा अभिजन के आपाततः समानार्थक प्रतीत होने पर भी दोनों में वास्तविक अन्तर यह है कि वर्त्तमान स्वनिवासस्थान निवासशब्द का अर्थ है जब कि अभिजन शब्द का विवक्षित अर्थ पूर्वजों का निवासस्थान है।

९८ वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्।

९९ गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ्।

१०० जनपदिनां जनपदवत्सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने।

१०१ तेन प्रोक्तम्।

१०२ तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्।

१०३ काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः।

१०४ कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च।

१०५ पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु।

१०६ शौनकादिभ्यश्छन्दसि।

१०७ कठचरकाल्लुक्।

१०८ कलापिनोऽण्।

१०९ छगलिनो ढिनुक्।

महाराज शब्द से 'इसकी भक्ति है' इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ९६ ॥ प्रथमासमर्थ वासुदेव तथा अर्जुन शब्दों से 'इसकी भक्ति है' इस अर्थ में वुन् प्रत्यय होता है ॥ ९८ ॥ प्रथमासमर्थ गोत्रविशेषवाचक तथा प्रसिद्धक्षत्रिय-विशेषवाचक शब्दों से 'इसकी भक्ति है' इस अर्थ में बहुल रूप में वुञ् प्रत्यय होता है ॥ ९९ ॥ जनपदस्वामी के वाचक तथा जनपद-वाचक शब्दों का बहुवचनान्त रूप यदि समान (= एक) हो तो एकवचन और द्विवचन में भी 'इसकी भक्ति है' इस अर्थ में जनपदस्वामि-वाचक शब्द के सब कुछ—प्रकृति तथा प्रत्यय—जनपदवाचक शब्द के समान ही हो जाती है ॥ १०० ॥

तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से प्रोक्त (कहा गया) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ १०१ ॥ तृतीयासमर्थ तित्तिरि, वरतन्तु, खण्डिक और उख शब्दों से प्रोक्त अर्थ में छण् प्रत्यय हो जाता है ।१०२॥ तृतीयासमर्थ ऋषिवाचक काश्यप और कौशिक शब्दों से प्रोक्त अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है ॥ १०३ ॥ कलापी और वैशम्पायन के अन्तेवासियों के वाचक तृतीयासमर्थ शब्दों से भी प्रोक्त अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है ॥ १०४ ॥ यदि प्रोक्त पदार्थ प्राचीन (= पुराण) मुनियों द्वारा कथित 'ब्राह्मण' अथवा 'कल्प' हो तो भी तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से प्रोक्त अर्थ में णिनि प्रत्यय हो जाता है ॥ १०५ ॥ तृतीयासमर्थ शौनक आदि शब्दों से भी प्रोक्त अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है यदि प्रत्ययान्त छन्दोवाचक हो तो ॥ १०६ ॥ कठ एवं चरक शब्दों से विहित प्रोक्तार्थक प्रत्ययों का लुक् हो जाता है ॥ १०७ ॥ तृतीयासमर्थ कलापिन् शब्द से प्रोक्त अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ॥ १०८ ॥ किन्तु तृतीयासमर्थ छगलिन् शब्द से प्रोक्त अर्थ में

११० पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः ।
१११ कर्मन्दकृशाश्वादिनिः ।
११२ तेनैकदिक् ।
११३ तसिश्च ।
११४ उरसो यच्च ।
११५ उपज्ञाते ।
११६ कृते ग्रन्थे ।
११७ संज्ञायाम् ।
११८ कुलालादिभ्यो वुञ् ।
११९ क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ् ।
१२० तस्येदम् ।

ढिनुक् प्रत्यय होता है ॥ १०९ ॥ तृतीयासमर्थ पाराशर्य और शिलालिन् शब्दों से प्रोक्त अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है यदि प्रोक्त पदार्थ क्रमशः भिक्षु-सूत्र एवं नट-सूत्र हों तो ॥ ११० ॥ किन्तु प्रोक्त पदार्थ के क्रमशः भिक्षु-सूत्रात्मक एवं नट-सूत्रात्मक होने पर भी तृतीयासमर्थ कर्मन्द एवं कृशाश्व शब्दों से तो इनि प्रत्यय ही होता है ॥ १११ ॥ तृतीयासमर्थ शब्दों से एकदिक् (= तृतीयासमर्थ-प्रातिपदिक के अर्थ की जो दिशा हो उससे अभिन्न = समान दिशा में वर्त्तमान पदार्थ) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ११२ ॥ तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से एकदिक् अर्थ में तसि प्रत्यय भी होता है ॥११३॥ किन्तु तृतीयासमर्थ उरस् शब्द से एकदिक् अर्थ में यत् प्रत्यय भी होता है (और तसि प्रत्यय भी) ॥ ११४ ॥ तृतीयासमर्थ शब्दों से उपज्ञात (= प्रथमज्ञात = दूसरे से शिक्षा प्राप्त किए बिना ही अधिगत = स्वयम्प्राप्त) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ११५ ॥ तृतीयासमर्थ शब्दों से कृत[1] ग्रन्थ (= रचित ग्रन्थ) अर्थ में भी यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ११६ ॥ तृतीयासमर्थ शब्द से कृत अर्थ में, समुदाय—प्रत्ययान्त से संज्ञा के गम्यमान होने पर भी, यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ११७ ॥ तृतीयासमर्थ कुलाल आदि शब्दों से, समुदाय से संज्ञा के गम्यमान होने पर, कृत अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है ॥ ११८ ॥ किन्तु पूर्वसूत्रोक्तार्थ में ही तृतीयासमर्थ क्षुद्रा, भ्रमर, वटर और पादप शब्दों से अञ् प्रत्यय हो जाता है ॥११९॥ षष्ठीसमर्थ शब्दों से 'इदम्'[2] (=यह) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ १२० ॥

१. उपज्ञात एवं कृत में यही अन्तर है कि (उपज्ञात पदार्थ उपज्ञान से पूर्व भी विद्यमान रहता है जब कि 'कृत' का निर्माण होता है और इसलिए कृत पदार्थ कृति से पूर्व विद्यमान नहीं रहता।

२. समर्थविभक्ति षष्ठी के अर्थ सम्बन्ध से सामान्यतः सम्बद्ध पदार्थ का वाचक 'इदम्' पद है। यहाँ सम्बन्धविशेष का अभिधान प्रत्यय से विवक्षित नहीं है।

१२१ रथाद्यत्।
१२२ पत्रपूर्वादञ्।
१२३ पत्राध्वर्युपरिषदश्च।
१२४ हलसीराट्ठक्।
१२५ द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः।
१२६ गोत्रचरणाद् वुञ्।
१२७ सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्।
१२८ शाकलाद्वा।
१२९ छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः।

षष्ठीसमर्थ रथ[1] शब्द से 'इदम्' अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ १२१ ॥ पत्र (= वाहन) के वाचक शब्द जिसका पूर्वावयव हो उस षष्ठीसमर्थ शब्द से 'इदम्' अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है ॥१२२॥ षष्ठीसमर्थ पत्र-वाचक, अध्वर्यु और परिषद् शब्दों से भी 'इदम्' अर्थ में अञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ १२३ ॥ षष्ठीसमर्थ हल एवं सीर शब्दों से 'इदम्' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥२४॥ 'द्वन्द्व'-संज्ञक षष्ठी-समर्थ शब्दों से 'इदम्' अर्थ में वुन् प्रत्यय होता है यदि प्रत्ययार्थ—इदमर्थ, वैरात्मक (= विरोधात्मक, अथवा मैथुनकर्मात्मक हो तो ॥ १२५ ॥ षष्ठीसमर्थ 'गोत्र'-वाचक एवं 'चरण'-वाचक शब्दों से भी 'इदम्' अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है ॥ १२६ ॥ प्रत्ययार्थभूत इदम्पदार्थ यदि संघ, अङ्क[2] अथवा लक्षण हो तो षष्ठी-समर्थ अञ्-प्रत्ययान्त, यञ्-प्रत्ययान्त एवम् इञ्-प्रत्ययान्त शब्दों से 'इदम्' अर्थ में अण् प्रत्यय हो जाता है ॥ १२७ ॥ किन्तु सङ्घादि के इदम्पदार्थात्मक होने पर भी शाकल शब्द से तो विकल्प से ही अण् प्रत्यय होता है ॥ १२८ ॥ षष्ठीसमर्थ छन्दोग, औक्थिक, याज्ञिक, बहुच और नट शब्दों से 'इदम्' अर्थ में ञ्य प्रत्यय

१. यह प्रत्यय अवयवात्मक सम्बद्धार्थ में ही होता है—यत्प्रत्ययान्त रथ्य-शब्द का अर्थ रथसम्बन्धी अङ्ग ही होता है। रथसम्बन्धी वाहनकर्त्ता के अभिधानार्थ तो 'तद्वहति' सूत्रोक्त प्रत्यय ही होता है।

२. यद्यपि सामान्यतः अङ्क एवं लक्षण में कोई अन्तर नहीं माना जाता है तथापि अन्तर विवक्षित है—

अङ्क अङ्कयुक्त पदार्थ से साक्षात्-सम्बद्ध नहीं होता है जब कि लक्षण साक्षात्-सम्बद्ध होता है। विद्या विद्वानों का लक्षण है किन्तु गाय के शरीर पर सन्तप्त लोह-मुद्रा से किया गया चिह्न अङ्क है। इसका आशय यह है :—गाय के शरीर पर सन्तप्त लोह-शलाका से लिखो 'राम' यह लिपि है तो वर्तमान गाय के शरीर पर किन्तु इसका पहले सम्बन्ध गाय के अधिपति 'राम' व्यक्ति से है और उसके माध्यम से ही उसकी गाय के साथ। अतः परम्परासम्बद्ध होने से यह अङ्क है। इसके विपरीत विद्या का विद्वान् के साथ साक्षात्सम्बन्ध है, अतः यह लक्षण है।

१३० न दण्डमाणवान्तेवासिषु ।
१३१ रैवतिकादिभ्यश्छः ।
१३२ तस्य विकारः ।
१३३ अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ।
१३४ बिल्वादिभ्योऽण् ।
१३५ कोपधाच्च ।
१३६ त्रपुजतुनोः षुक् ।
१३७ ओरञ् ।
१३८ अनुदात्तादेश्च ।
१३९ पलाशादिभ्यो वा ।
१४० शम्याः ष्लञ् ।

होता है ॥ १२९ ॥ दण्डप्रधान माणवक (=सर्वदा दण्डधारण करने वाला माणवक) अथवा शिष्य यदि प्रत्ययार्थभूत इदम्पदार्थ हो तो षष्ठीसमर्थ शब्द से 'इदम्' अर्थ में वुञ् प्रत्यय नहीं होता ॥ १३० ॥ षष्ठीसमर्थ रैवतिक आदि शब्दों से 'इदम्' अर्थ में छः प्रत्यय होता है ॥ १३१ ॥ षष्ठीसमर्थ शब्दों से विकार (=एक तत्त्व की दूसरी अवस्था = अवस्थान्तर) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ १३२ ॥ किन्तु षष्ठीसमर्थ प्राणि-वाचक, ओषधि-वाचक एवं वृक्ष-वाचक शब्दों से तो अवयव अर्थ में भी (और विकार अर्थ में भी) यथाविहित प्रत्यय हो जाते हैं ॥ १३३ ॥ षष्ठीसमर्थ बिल्व आदि शब्दों से अवयव एवं विकार अर्थों में[1] अण् प्रत्यय होता है ॥ १३४ ॥ जिनकी 'उपधा' ककार हो उन षष्ठीसमर्थ शब्दों से भी यथासम्भव अवयव एवं विकार अर्थों में अथवा मात्र विकार अर्थ में अण् प्रत्यय हो जाता है ॥ १३५ ॥ षष्ठीसमर्थ त्रपु एवं जतु शब्दों से विकार अर्थ में अण् प्रत्यय और प्रकृति को षुक् का आगम (= ष्) भी हो जाता है ॥ १३६ ॥ किन्तु अन्य उकारान्त षष्ठीसमर्थ शब्दों से यथासम्भव अवयव एवं विकार अर्थों में अञ् प्रत्यय ही होता है ॥१३७॥ जिन षष्ठीसमर्थ शब्दों का आदि स्वर अनुदात्त हो उनसे भी यथासम्भव अवयव एवं विकार अर्थों में अञ् प्रत्यय ही होता है ॥१३८॥ किन्तु षष्ठीसमर्थ पलाश आदि शब्दों से यथासम्भव विकार एवम् अवयव अर्थों में अञ् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥ १३९ ॥ षष्ठीसमर्थ शमी शब्द से विकार एवम् अवयव अर्थों में ष्लञ्[2] प्रत्यय होता है ॥ १४० ॥

१. इस सूत्र के बाद जिन प्रत्ययों का विधान किया जाने वाला है वे प्राणिवाचक, ओषधिवाचक एवं वृक्ष-वाचक शब्दों से तो दोनों में से किसी भी अर्थ में हो सकते हैं, किन्तु अन्य शब्दों से मात्र विकार अर्थ में ही—यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए।

२. कुछ ग्रन्थों में ष्लञ् प्रत्यय का विधान उपलब्ध होता है। किन्तु काशिका आदि के अनुसार प्रत्यय का स्वरूप निर्दिष्ट है। यही "ञितश्च तत्प्रत्ययात्" इस सूत्र के भाष्य के आधार पर भी प्रमाणित है—यह शब्दरत्नकार का मन्तव्य है।

१४१ मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ।
१४२ नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ।
१४३ गोश्च पुरीषे ।
१४४ पिष्टाच्च ।
१४५ संज्ञायां कन् ।
१४६ व्रीहेः पुरोडाशे ।
१४७ असंज्ञायां तिलयवाभ्याम् ।
१४८ द्व्यचश्छन्दसि ।
१४९ नोत्वद्वर्ध्रबिल्वात् ।
१५० तालादिभ्योऽण् ।
१५१ जातरूपेभ्यः परिमाणे ।
१५२ प्राणिरजतादिभ्योऽञ् ।
१५३ ञितश्च तत्प्रत्ययात् ।

भक्ष्य एवम् आच्छादन से भिन्न विकार और अवयव अर्थों में षष्ठीसमर्थ सभी शब्दों से वैकल्पिक मयट् प्रत्यय हो सकता है यदि प्रयोग भाषाविषयक (= लौकिक) हो तो ॥ १४१ ॥ किन्तु यदि भाषा-विषयक प्रयोग भी हो तो भक्ष्य एवम् आच्छादन से भिन्न विकार तथा अवयव अर्थों में 'वृद्ध'-संज्ञक शब्द एवं शर आदि शब्दों से नित्य ही मयट् प्रत्यय होता है ॥ १४२ ॥ षष्ठीसमर्थ गो शब्द से भी पुरीष (= विष्ठा = गोबर) अर्थ में मयट् प्रत्यय हो जाता है १४३ ॥ षष्ठीसमर्थ पिष्ट शब्द से भी विकार अर्थ में मयट् प्रत्यय होता है ॥ १४४ ॥ किन्तु षष्ठीसमर्थ पिष्ट शब्द से ही विकार अर्थ में कन् प्रत्यय हो जाता है यदि प्रत्ययान्त संज्ञा-शब्द हो तो ॥ १४५ ॥ षष्ठीसमर्थ व्रीहि शब्द से भी पुरोडाशात्मक विकार अर्थ में मयट् प्रत्यय होता है ॥ १४६ ॥ षष्ठीसमर्थ तिल एवं यव शब्दों से भी यथा सम्भव विकार एवं अवयव अर्थों में, प्रत्ययान्त यदि संज्ञा-शब्द न हो तो, मयट् प्रत्यय हो जाता है ॥ १४७ ॥ यदि प्रत्ययान्त का प्रयोग वैदिक भाषा-गत हो तो षष्ठीसमर्थ द्व्यच् (= दो अचों = स्वरों से विशिष्ट) प्रातिपदिकों से भी यथासम्भव विकार और अवयव अर्थों में मयट् प्रत्यय हो जाता है ॥ १४८ ॥ किन्तु उकारवान् शब्द, वर्ध्र एवं बिल्व शब्दों से पूर्वसूत्रोक्त परिस्थिति में भी मयट् प्रत्यय नहीं होता ॥ १४९ ॥ षष्ठीसमर्थ तरल आदि शब्दों से यथासम्भव विकार और अवयव अर्थों में अण् प्रत्यय होता है ॥१५०॥ जातरूप (= सुवर्ण) के वाचक षष्ठीसमर्थ शब्दों से परिमाणात्मक विकार अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ॥ १५१ ॥ षष्ठीसमर्थ प्राणि-वाचक शब्दों और रजत आदि शब्दों से यथासम्भव विकार एवम् अवयव अर्थों में अञ् प्रत्यय होता है ॥१५२॥ विकारार्थक अथवा अवयवार्थक ञित् प्रत्यय जिनके अन्त में हों उन षष्ठीसमर्थ शब्दों से भी यथासम्भव विकार और अवयव अर्थों में अण् प्रत्यय हो जाता है

१५४ क्रीतवत् परिमाणात् ।
१५५ उष्ट्राद् वुञ् ।
१५६ उमोर्णयोर्वा ।
१५७ एण्या ढञ् ।
१५८ गोपयसोर्यत् ।
१५९ द्रोश्च ।
१६० माने वयः ।
१६१ फले लुक् ।
१६२ प्लक्षादिभ्योऽण् ।
१६३ जम्ब्वा वा ।
१६४ लुप् च ।
१६५ हरीतक्यादिभ्यश्च ।
१६६ कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च ।

॥ १५३ ॥ परिमाणवाचक शब्दों से विकार अर्थ में भी वे सब प्रत्यय हो जाते जिनका विधान उनसे क्रीत अर्थ में किया जा चुका है ॥ १५४ ॥ षष्ठीसमर्थ उष्ट्र शब्द से यथासम्भव विकार एवम् अवयव अर्थों में वुञ् प्रत्यय होता है ॥ १५५ ॥ षष्ठीसमर्थ उमा और ऊर्णा शब्दों से भी यथासम्भव विकार और अवयव अर्थों में विकल्प से वुञ् प्रत्यय होता है ॥ १५६ ॥ विकार तथा अवयव अर्थों में षष्ठीसमर्थ एणी शब्द से ढञ् प्रत्यय होता है ॥१५७॥ षष्ठीसमर्थ गो और पयस् शब्दों से यथासम्भव विकार एवम् अवयव अर्थों में यत् प्रत्यय होता है ॥ १५८ ॥ षष्ठीसमर्थ द्रु शब्द से भी विकार और अवयव अर्थों में यत् प्रत्यय हो जाता है ॥ १५९ ॥ किन्तु षष्ठीसमर्थ द्रु शब्द से ही मान-स्वरूप विकार अर्थ में वय प्रत्यय होता है ॥ १६० ॥

किन्तु फल यदि विकार अथवा अवयव के रूप में विवक्षित हो तो विकारावयवार्थक प्रत्ययों का लुक् हो जाता है ॥ १६१ ॥ षष्ठीसमर्थ प्लक्ष आदि शब्दों से फल-स्वरूप विकार एवम् अवयव अर्थों मे अण् प्रत्यय होता है ॥ १६२ ॥ षष्ठीसमर्थ जम्बू शब्द से भी फल-स्वरूप विकार और अवयव अर्थों में विकल्प से अण् प्रत्यय होता है ॥ १६३ ॥ जम्बू शब्द से विहित फलार्थक प्रत्यय का विकल्प से लुप् भी हो जाता है ॥ १६४ ॥ फल-स्वरूप विकार एवम् अवयव अर्थों में हरीतकी आदि शब्दों से विहित प्रत्यय का भी लुप् हो जाता है ॥ १६५ ॥ षष्ठीसमर्थ कंसीय एवं परशव्य शब्दों से विकार अर्थ में क्रमशः यञ् एवम् अञ् प्रत्यय होते हैं और इन प्रत्ययों के परे कंसशब्द से विहित छ प्रत्यय और परशु शब्द से विहित यत् प्रत्यय का लुक् भी हो जाता है ॥ १६६ ॥

चतुर्थाध्याय का तृतीय पाद समाप्त ।

चतुर्थः पादः ।

१ प्राग्वहतेष्ठक् ।
२ तेन दीव्यतिखनतिजयतिजितम् ।
३ संस्कृतम् ।
४ कुलत्थकोपधादण् ।
५ तरति ।
६ गोपुच्छाट्ठञ् ।
७ नौद्व्यचष्ठन् ।
८ चरति ।
९ आकर्षात् ष्ठल् ।
१० पर्पादिभ्यः ष्ठन् ।
११ श्वगणाट्ठञ् च ।
१२ वेतनादिभ्यो जीवति ।
१३ वस्नक्रयविक्रयाट्ठन् ।
१४ आयुधाच्छ च ।
१५ हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ।

चतुर्थाध्याय का चतुर्थ पाद

"तद्वहति०" सूत्र से पूर्व जितने प्रत्ययार्थों का निर्देश किया जाने वाला है उन अर्थों में सामान्यतया ठक् प्रत्यय का विधान समझना चाहिए ॥ १ ॥ तृतीया-समर्थ शब्दों से 'दीव्यति' (= खेलता है), 'खनति' (= खोदता है), 'जयति' (= जीतता है) और 'जितम्' (= जीता गया) अर्थों में ठक् प्रत्यय होता है ॥ २ ॥ तृतीयासमर्थ शब्दों से संस्कृत (= परिष्कृत = अच्छा बनाया गया) अर्थ में भी ठक् प्रत्यय होता है ॥ ३ ॥ किन्तु तृतीयासमर्थ कुलत्थ शब्द और ककार जिनकी 'उपधा' हो उन शब्दों से संस्कृत अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ॥ ४ ॥ तृतीयासमर्थ शब्दों से 'तरति' (= पार करता है = तैरता है) अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ ५ ॥ किन्तु 'तरति' अर्थ में तृतीयासमर्थ गोपुच्छ शब्द से ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ६ ॥ (और) तृतीयासमर्थ नौ शब्द एवं द्व्यच् (=दो स्वरों से विशिष्ट) शब्दों से ठन् प्रत्यय होता है ॥ ७ ॥ तृतीयासमर्थ शब्दों से 'चरति' (= आचरण करता है) अर्थ में भी ठक् प्रत्यय होता है ॥ ८ ॥ आकर्ष शब्द से 'चरति' अर्थ में ष्ठल् प्रत्यय होता है ॥ ९ ॥ पर्प आदि शब्दों से 'चरति' अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय होता है ॥ १० ॥ किन्तु श्वगण शब्द से 'चरति' अर्थ में विकल्प से ठञ् प्रत्यय भी होता है और ष्ठन् प्रत्यय भी ॥ ११ ॥ तृतीया-समर्थ वेतन आदि शब्दों से 'जीवति' (= जी रहा है) अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ १२ ॥ तृतीयासमर्थ वस्न, क्रयविक्रय और क्रय तथा विक्रय शब्दों से 'जीवति' अर्थ में ठन् प्रत्यय होता है ॥ १३ ॥ तृतीयासमर्थ आयुध शब्द से तो 'जीवति' अर्थ में छ प्रत्यय भी होता है और ठन् प्रत्यय भी ॥ १४ ॥ तृतीयासमर्थ उत्संग

१६ भस्त्रादिभ्यः ष्ठन् ।
१७ विभाषा विवधवीवधात् ।
१८ अण् कुटिलिकायाः ।
१९ निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ।
२० क्त्रेर्मम्नित्यम् ।
२१ अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनौ ।
२२ संसृष्टे ।
२३ चूर्णादिनिः ।
२४ लवणाल्लुक् ।
२५ मुद्गादण् ।
२६ व्यञ्जनैरुपसिक्ते ।
२७ ओजःसहोऽम्भसा वर्त्तते ।
२८ तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम् ।
२९ परिमुखं च ।
३० प्रयच्छति गर्ह्यम् ।
३१ कुसीददशैकादशात् ष्ठन्ष्ठचौ ।

आदि शब्दों से भी 'हरति' (= हर लेता है, ले जाता है) अर्थ में ठक् प्रत्यय हो जाता है ॥ १५ ॥ किन्तु तृतीयासमर्थ भस्त्रा आदि शब्दों से 'हरति' अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय हो जाता है ॥ १६ ॥ तृतीयासमर्थ विवध और वीवध शब्दों से भी 'हरति' अर्थ में विकल्प से ष्ठन् प्रत्यय होता है ॥ १७ ॥ किन्तु तृतीयासमर्थ कुटिलिका से 'हरति' अर्थ में अण् प्रत्यय हो जाता है ॥ १८ ॥ तृतीयासमर्थ अक्षद्यूत आदि शब्दों से निर्वृत्त (= उत्पन्न) अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥१९॥ क्त्रि-प्रत्ययान्त तृतीयासमर्थ शब्द से निर्वृत्त अर्थ में मम् प्रत्यय होता है ॥२०॥

तृतीयासमर्थ अपमित्य और याचित शब्दों से निर्वृत्त अर्थ में क्रमशः कक् और कन् प्रत्यय होते हैं ॥ २१ ॥ तृतीयासमर्थ शब्दों से संसृष्ट (= मिश्रित) अर्थ में भी ठक् प्रत्यय होता है ॥ २२ ॥ तृतीयासमर्थ चूर्ण शब्द से संसृष्ट अर्थ में इनि प्रत्यय होता है ॥ २३ ॥ किन्तु तृतीयासमर्थ लवण शब्द से संसृष्ट अर्थ में विहित ठक् प्रत्यय का लुक् हो जाता है ॥ २४ ॥ तृतीयासमर्थ मुद्ग शब्द से संसृष्ट अर्थ में अण् प्रत्यय हो जाता है ॥ २५ ॥ तृतीयासमर्थ व्यञ्जन-वाचक शब्दों से उपसिक्त अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है॥२६॥ तृतीयासमर्थ ओजस्, सहस् और अम्भस् शब्दों से 'वर्त्तते' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ २७ ॥ द्वितीयासमर्थ 'प्रति'-पूर्वक एवम् 'अनु'-पूर्वक ईप, लोम और कूल शब्दों से 'वर्त्तते' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ २८ ॥ द्वितीयासमर्थ परिमुख शब्द से भी 'वर्त्तते' अर्थ में ठक् प्रत्यय हो जाता है ॥ २९ ॥ निन्दनीयार्थप्रतिपादक द्वितीयासमर्थ शब्दों से 'प्रयच्छति' (= देता है) अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ ३० ॥ किन्तु निन्द्यार्थप्रतिपादक द्वितीयासमर्थ कुसीद, और दशैकादश शब्दों से 'प्रयच्छति' अर्थ में क्रमशः

३२ उञ्छति।	३९ पदोत्तरपदं गृह्णाति।
३३ रक्षति।	४० प्रतिकण्ठार्थललामं च।
३४ शब्ददर्दुरं करोति।	४१ धर्मं चरति।
३५ पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति।	४२ प्रतिपथमेति ठंश्च।
३६ परिपन्थं च तिष्ठति।	४३ समवायान् समवैति।
३७ माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति।	४४ परिषदो ण्यः।
३८ आक्रन्दाट्ठञ् च।	४५ सेनाया वा।

छन् और छच् प्रत्यय हो जाते हैं॥ ३१॥ द्वितीयासमर्थ शब्द: से 'उञ्छति' (= जमीन पर गिरे कणों को चुनता है) अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है॥ ३२॥ द्वितीयासमर्थ शब्दों से 'रक्षति' अर्थ में भी ठक् प्रत्यय हो जाता है॥ ३३॥ द्वितीयासमर्थ 'शब्द' और दर्दुर शब्दों से 'करोति' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है॥ ३४॥ द्वितीयासमर्थ पक्षि-वाचक, मत्स्य-वाचक और मृग-(= पशु) वाचक शब्दों से 'हन्ति' (= मारता है) अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है॥ ३५॥ द्वितीया-समर्थ परिपन्थ शब्द से भी 'तिष्ठति' अर्थ में ठक् प्रत्यय हो जाता है॥ ३६॥ द्वितीयासमर्थ 'माथ'-शब्दोत्तरपदक शब्द, पदवी और अनुपद शब्दों से 'धावति' (= दौड़ता है) अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है॥३७॥ किन्तु द्वितीयासमर्थ आक्रन्द शब्द से 'धावति' अर्थ में ठञ् प्रत्यय भी होता है और ठक् प्रत्यय भी॥ ३८॥ 'पद' शब्द जिनके उत्तरपद के रूप में हों उन द्वितीयासमर्थ शब्दों से 'गृह्णाति' (= ग्रहण करता है) अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है॥३९॥ द्वितीयासमर्थ प्रतिकण्ठ, अर्थ और ललाम शब्दों से भी 'गृह्णाति' अर्थ में ठक् प्रत्यय हो जाता है॥४०॥

द्वितीयासमर्थ धर्म शब्द से 'चरति' (= आचरण करता है) अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है॥ ४१॥ द्वितीयासमर्थ प्रतिपथ शब्द से 'एति' (= आता है) अर्थ में ठन् प्रत्यय भी होता है और ठक् प्रत्यय भी॥ ४२॥ द्वितीयासमर्थ समवाय (= समूह[१]) वाचक शब्दों से 'समवैति' (= मिल जाता है) अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है॥ ४३॥ किन्तु द्वितीयासमर्थ समूह-वाचक परिषद् शब्द से 'समवैति' अर्थ में ण्य प्रत्यय हो जाता है॥ ४४॥ द्वितीयासमर्थ समूहवाचक सेना शब्द से तो 'समवैति' अर्थ में ण्य प्रत्यय विकल्प से होता है॥ ४५॥

१. समूहवाचक का तात्पर्य समूहविशेषवाचक है।

४६ संज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ पश्यति ।
४७ तस्य धर्म्यम् ।
४८ अण् महिष्यादिभ्यः ।
४९ ऋतोऽञ् ।
५० अवक्रयः ।
५१ तदस्य पण्यम् ।
५२ लवणाट्ठञ् ।
५३ किशरादिभ्यः ष्ठन् ।
५४ शलालुनोऽन्यतरस्याम् ।
५५ शिल्पम् ।
५६ मड्डुकझर्झरादणन्यतरस्याम् ।
५७ प्रहरणम् ।
५८ परश्वधाट्ठञ् च ।
५९ शक्तियष्ट्योरीकक् ।
६० अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः ।

द्वितीयासमर्थ ललाट और कुक्कुटी शब्दों से 'पश्यति' अर्थ में, यदि प्रत्ययान्त शब्द संज्ञा-शब्द हो तो, ठक् प्रत्यय हो जाता है ॥ ४६ ॥ षष्ठीसमर्थ शब्दों से धर्म्य (=उचित) अर्थ में ठक् प्रत्यय हो जाता है ॥ ४७ ॥ किन्तु षष्ठीसमर्थ महिषी आदि शब्दों से तो धर्म्य अर्थ में अण् प्रत्यय ही होता है ॥ ४८ ॥ षष्ठी-समर्थ ऋकारान्त शब्दों से धर्म्य अर्थ में अञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ ४९ ॥ षष्ठीसमर्थ शब्दों से अवक्रय अर्थ मे ठक् प्रत्यय होता है ॥५०॥ पण्य-भूतार्थवाचक प्रथमासमर्थ शब्दों से 'अस्य' (=इसका)[1] अर्थ, में ठक् प्रत्यय हो जाता है ॥ ५१ ॥ प्रथमासमर्थ पण्यभुत लवण शब्द से तो 'अस्य' इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ ५२ ॥ किन्तु उक्त अर्थ में किशर आदि शब्दों से तो ष्ठन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ५३ ॥ यह ष्ठन् प्रत्यय शलालु शब्द से विकल्प से होता है ॥ ५४ ॥ शिल्पस्थानीय प्रथमासमर्थ शब्द से 'अस्य' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ ५५ ॥ किन्तु मण्डुक और झर्झर शब्दों से उक्त षष्ठ्यर्थ में विकल्प से अण् प्रत्यय भी होता है और ठक् प्रत्यय भी ॥ ५६ ॥ प्रहरण—(=प्रहार का साधन) प्रतिपादक प्रथमासमर्थ शब्दों से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ ५७ ॥ किन्तु परश्वध शब्द से उक्त अर्थ में ठञ् प्रत्यय भी होता है और ठक् भी ॥ ५८ ॥ प्रहरणभूतार्थवाचक शक्ति और यष्टि शब्दों से तो षष्ठ्यर्थ में ईकक् प्रत्यय हो जाता है ॥ ५९ ॥ मति (=बुद्धि) के स्वरूप के प्रतिपादक

१. 'वह पण्य है इसका' यह प्रत्ययान्त शब्द का अर्थ होता है। इससे स्पष्ट है कि प्रकृतिभूत शब्द 'वह' इस प्रथमान्त पद द्वारा निर्दिष्ट है और इसे पण्य के रूप में आना है। इस प्रकार प्रकृति के प्रथमासमर्थ पण्यस्थानीय हो जाने से प्रत्यय का अर्थ मात्र 'इसका' है। अत एव प्रत्यय का विधान षष्ठ्यर्थ में किया गया है।

६१ शीलम् ।
६२ छत्रादिभ्यो णः ।
६३ कर्माध्ययने वृत्तम् ।
६४ बह्वच्पूर्वपदाट्ठच् ।
६५ हितं भक्षाः ।
६६ तदस्मै दीयते नियुक्तम् ।
६७ श्राणामांसौदनाट्टिठन् ।
६८ भक्तादणन्यतरस्याम् ।
६९ तत्र नियुक्तः ।
७० अगारान्ताट्ठन् ।
७१ अध्यायिन्यदेशकालात् ।
७२ कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति ।

प्रथमासमर्थ अस्ति, नास्ति और दिष्ट शब्दों से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६० ॥

शील, अर्थात् स्वभाव, के प्रतिपादक प्रथमासमर्थ शब्द से भी षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ ६१ ॥ किन्तु शीलप्रतिपादक प्रथमासमर्थ छत्र आदि शब्दों से ण प्रत्यय हो जाता है ॥ ६२ ॥ अध्ययनगत (स्खलित आदि) कर्म के प्रतिपादक प्रथमासमर्थ शब्दों से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ ६३ ॥ किन्तु अध्ययनगत कर्म के प्रतिपादक प्रथमासमर्थ शब्द का पूर्वावयवभूत शब्द यदि दो से अधिक स्वरों से सम्पन्न (= बह्वच्) हो तो षष्ठ्यर्थ में ठन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६४ ॥ हित भक्ष (= खाद्य) पदार्थ के प्रतिपादक प्रथमासमर्थ शब्दों से [1]षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ ६५ ॥ नियत रूप में अथवा नित्य दिए जाने वाले पदार्थ के प्रतिपादक प्रथमासमर्थ शब्द से चतुर्थ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ ६६ ॥ परन्तु उक्त पदार्थ के प्रतिपादक प्रथमासमर्थ श्राणा (= यवागू = यवचूर्ण), मांस और ओदन शब्दों से तो चतुर्थ्यर्थ में टिठन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६७ ॥ किन्तु भक्त शब्द से तो विकल्प से अण् प्रत्यय भी होता है और ठक् प्रत्यय भी ॥ ६८ ॥ सप्तमीसमर्थ शब्दों से नियुक्त अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ ६९ ॥ किन्तु सप्तमीसमर्थ 'अगार–' शब्दान्त प्रातिपदिक से नियुक्त अर्थ में ठन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ७० ॥ अध्ययन में प्रतिषिद्ध देश (= अदेश) और (अध्ययन के लिए निषिद्ध) काल (= अकाल) के प्रतिपादक सप्तमीसमर्थ शब्दों से अध्यायी (= पढ़ने वाला) अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ ७१ ॥ सप्तमीसमर्थ 'कठिन-' शब्दान्त शब्द, प्रस्तार एवं संस्थान शब्दों से 'व्यवहरति' (= व्यवहार

१. हित शब्द के योग में "चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः" सूत्र द्वारा चतुर्थी विभक्ति के विहित होने से प्रत्यय का विधान चतुर्थ्यर्थ ('अस्मै') में ही मानना उचित है ।

७३ निकटे वसति ।
७४ आवसथात् ष्ठल् ।
७५ प्राग्घिताद्यत् ।
७६ तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ।
७७ धुरो यड्ढकौ ।
७८ खः सर्वधुरात् ।
७९ एकधुराल्लुक् च ।
८० शकटादण् ।
८१ हलसीराट्ठक् ।
८२ संज्ञायां जन्या ।
८३ विध्यत्यधनुषा ।
८४ धनगणं लब्धा ।
८५ अन्नाण्णः ।
८६ वशं गतः ।
८७ पदमस्मिन्दृश्यम् ।
८८ मूलमस्यावर्हि ।

करता है) अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ ७२ ॥ सप्तमीसमर्थ निकट शब्द से 'वसति' (= निवास करता है) अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ ७३ ॥ किन्तु सप्तमीसमर्थ आवसथ शब्द से 'वसति' अर्थ में ष्ठल् प्रत्यय हो जाता है ॥ ७४ ॥ 'तस्मै हितम्' इस सूत्र से पूर्व जो विधिसूत्र हैं उनमें 'यत्' प्रत्यय का अधिकार समझना चाहिए ॥ ७५ ॥ द्वितीयासमर्थ रथ, युग और प्रसङ्ग शब्दों से 'वहति' (= ढोता है = खींचता है) अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ ७६ ॥ किन्तु द्वितीया-समर्थ धुर् शब्द से 'वहति' अर्थ में विकल्प से यत् एवं ढक् प्रत्यय भी हो जाते हैं ॥ ७७ ॥ द्वितीयासमर्थ सर्वधुर शब्द से तो 'वहति' अर्थ में ख प्रत्यय ही होता है ॥ ७८ ॥ किन्तु द्वितीयासमर्थ एकधुर शब्द से तो 'वहति' अर्थ में ख प्रत्यय भी होता है और विकल्प से उस प्रत्यय का लुक् भी हो जाता है ॥ ७९ ॥ द्वितीया-समर्थ शकट शब्द से तो 'वहति' अर्थ में अण् प्रत्यय हो जाता है ॥ ८० ॥

किन्तु द्वितीयासमर्थ हल और सीर शब्दों से 'वहति' अर्थ से ठक् प्रत्यय हो जाता है ॥ ८१ ॥ द्वितीयासमर्थ जनी (= वधू) शब्द से 'वहति' अर्थ में यत् प्रत्यय हो जाता है यदि समुदाय (= प्रत्ययान्त शब्द) संज्ञाशब्द हो तो ॥ ८२ ॥ द्वितीयासमर्थ शब्दों से 'विद्ध्यति' (= वेधता है) अर्थ में यदि उस वेधनकार्य का करण कारक धनुष न हो तो यत् प्रत्यय होता है ॥ ८३ ॥ द्वितीया-समर्थ धन और गण शब्दों से 'लब्धा' (= प्राप्त करने का स्वभाव वाला) अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ ८४ ॥ द्वितीयासमर्थ अन्न शब्द से 'लब्धा' अर्थ में ण प्रत्यय होता है ॥ ८५ ॥ द्वितीयासमर्थ वश शब्द से गत (= प्राप्त) अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ ८६ ॥ 'दृश्य' (= देखा जाने योग्य) इस अर्थ से सम्बद्ध प्रथमासमर्थ पद शब्द से सप्तम्यर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ ८७ ॥ आवर्हि

८९ संज्ञायां धेनुष्या।
९० गृहपतिसंयुक्ते ञ्यः।
९१ नौवयोधर्मविषमूलसीता-
तुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्या-
नाम्यसमसमितसम्मितेषु।
९२ धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते।
९३ छन्दसो निर्मिते।
९४ उरसोऽण् च।
९५ हृदयस्य प्रियः।
९६ बन्धने चर्षौ।
९७ मतजनहलात्करणजल्पकर्षेषु।
९८ तत्र साधुः।
९९ प्रतिजनादिभ्यः खञ्।
१०० भक्ताण्णः।
१०१ परिषदो ण्यः।
१०२ कथादिभ्यष्ठक्।
१०३ गुडादिभ्यष्ठञ्।

(= उत्पाटनीय) अर्थ से सम्बद्ध प्रथमासमर्थ मूल शब्द से षष्ठ्यर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ ८८ ॥ (ऋण देने वाले व्यक्ति को ऋण चुकाने के निमित्त दूहने के लिए दी गई गाय की) संज्ञा के रूप में धेनुष्या शब्द का निपातन (= धेनु शब्द से 'य' प्रत्यय और षुक् का आगम विधेय) है ॥ ८९ ॥ तृतीयासमर्थ नौ, वयस्, धर्म, विष, मूल, सीता और तुला शब्दों से क्रमशः तार्य (= तरण-योग्य), तुल्य, प्राप्य, वद्ध्य, आनाम्य, सम, समित (= सङ्गत) और सम्मित (= सदृश) अर्थों मे यत् प्रत्यय होता है ॥ ९१ ॥ पञ्चमीसमर्थ धर्म, पथिन् और न्याय शब्दों से अनपेत अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ ९२ ॥ तृतीयासमर्थ छन्दस् शब्द से निर्मित अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ ९३ ॥ किन्तु तृतीयासमर्थ उरस् शब्द से निर्मित अर्थ में विकल्प से अण् प्रत्यय भी होता है और यत् प्रत्यय भी ॥ ९४ ॥ षष्ठीसमर्थ हृदय शब्द से प्रिय अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ ९५ ॥ षष्ठीसमर्थ हृदय शब्द से बन्धन ऋषि (= वशीकारक मन्त्र) अर्थ में भी यत् प्रत्यय होता है ॥ ९६ ॥ षष्ठीसमर्थ मत, जन एवं हल शब्दों से क्रमशः करण (= करना या करने का साधन), जल्प एवं कर्ष अर्थों मे यत् प्रत्यय होता है ॥ ९७ ॥ सप्तमीसमर्थ शब्दों से साधु (= योग्य, निपुण) अर्थ में भी यत् प्रत्यय होता है ॥ ९८ ॥ सप्तमीसमर्थ प्रतिजन आदि शब्दों से साधु अर्थ में खञ् प्रत्यय होता है ॥९९॥ सप्तमीसमर्थ भक्त शब्द से साधु अर्थ में 'ण' प्रत्यय होता है ॥१००॥ सप्तमीसमर्थ परिषद् शब्द से साधु अर्थ में 'ण्य' प्रत्यय होता है ॥ १०१ ॥ सप्तमीसमर्थ कथा आदि शब्दों से साधु अर्थ मे ठक् प्रत्यय होता है ॥ १०२ ॥ स० स०[1] गुड आदि शब्दों से साधु अर्थ मे ठञ् प्रत्यय होता है ॥ १०३ ॥ स०

१. स० स० = सप्तमीसमर्थ।

१०४ पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ् ।
१०५ सभाया यः ।
१०६ ढश्छन्दसि ।
१०७ समानतीर्थे वासी ।
१०८ समानोदरे शयित ओ चोदात्तः ।
१०९ सोदराद्यः ।
११० भवे छन्दसि ।
१११ पाथोनदीभ्यां ड्यण् ।
११२ वेशन्तहिमवद्भ्यामण् ।
११३ स्रोतसो विभाषा ड्यड्ड्यौ ।
११४ सगर्भसयूथसनुताद्यन् ।
११५ तुग्राद्घन् ।
११६ अग्राद्यत् ।
११७ घच्छौ च ।
११८ समुद्राभ्राद्घः ।
११९ बर्हिषि दत्तम् ।
१२० दूतस्य भागकर्मणी ।
१२१ रक्षोयातूनां हननी ।
१२२ रेवतीजगतीहविष्याभ्यः प्रशस्ये

स० पथिन्, अतिथि, वसति एवं स्वपति शब्दों से साधु अर्थ मे ढञ् प्रत्यय होता है ॥ १०४ ॥ स० स० सभा शब्द से साधु अर्थ मे य प्रत्यय होता है ॥ १०५ ॥ किन्तु छान्दस प्रयोग मे ढ प्रत्यय हो जाता है ॥ १०६ ॥ स० स० समानतीर्थ शब्द से वासी (= रहने वाला) अर्थ मे यत् प्रत्यय होता है ॥ १०७ ॥ स० स० समानोदर शब्द से शयितृ (= शयन करने वाला) अर्थ मे यत् प्रत्यय भी होता है और 'नो' के ओकार का उदात्तत्व भी ॥ १०८ ॥ स० स० सोदर शब्द से शयितृ अर्थ में 'य' प्रत्यय होता है ॥ १०९ ॥ छान्दस प्रयोग में स० सं० श० से भव[1] (= वर्तमान) अर्थ मे यत् प्रत्यय होता है ॥ ११० ॥ स० स० पाथस् तथा नदी शब्दों से ड्यण् प्रत्यय होता है ॥ १११ ॥ स० स० वेशन्त एवं हिमवत् शब्दों से अण् प्रत्यय होता है ॥ ११२ ॥ स० स० स्रोतस् शब्द से विकल्प से ड्यत् एवं ड्य प्रत्यय होते हैं ॥ ११३ ॥ स० स० सगर्भ, सयूथ और सनुत शब्दों से यन् प्रत्यय होता है ॥ ११४ ॥ स० स० तुग्र शब्द से घन् प्रत्यय होता है ॥११५॥ स० स० अग्र शब्द से यत् प्रत्यय होता है ॥११६॥ अभ्र शब्द से 'घ', 'छ' एवं घन् प्रत्यय भी होते हैं ॥ ११७ ॥ स० स० समुद्र एवं अभ्र शब्द से 'घ' प्रत्यय होता है ॥ ११८ ॥ स०स० बर्हिस् शब्द से दत्त अर्थ मे यत् प्रत्यय होता है ॥११९॥ षष्ठीसमर्थ दूत शब्द से भाग एवं कर्म (= कार्य) अर्थों में यत् प्रत्यय होता है ॥१२०॥ षष्ठीसमर्थ रक्षस् एवम् यातु शब्दों से हननी (= हननसाधन) अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥१२१॥ षष्ठीसमर्थ रेवती, जगती एवं हविष्या शब्दों से

१. इसके बाद पादसमाप्तिपर्यन्त 'छन्दसि' का और ४।४।११८ तक 'भवे' का अधिकार है।

१२३ असुरस्य स्वम्।
१२४ मायायामण्।
१२५ तद्वानासामुपधानो मन्त्र इतीष्टकासु लुक् च मतोः।
१२६ अश्विमानण्।
१२७ वयस्यासु मूर्ध्नो मतुप्।
१२८ मत्वर्थे मासतन्वोः।
१२९ मधोर्ञ च।
१३० ओजसोऽहनि यत्खौ।
१३१ वेशोयशआदेर्भगाद्यल्।
१३२ ख च।
१३३ पूर्वैः कृतमिनयौ च।
१३४ अद्भिः संस्कृतम्।
१३५ सहस्रेण सम्मितौ घः।
१३६ मतौ च।
१३७ सोममर्हति यः।
१३८ मये च।

प्रशस्य अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ १२२ ॥ षष्ठीसमर्थ असुर शब्द से 'स्व' (= अपना) अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ १२३ ॥ किन्तु षष्ठीसमर्थ असुर शब्द से मायात्मक स्व के अभिधानार्थ अण् प्रत्यय हो जाता है ॥ १२४ ॥ उपधान अर्थात् चयनवाचक मन्त्र के प्रतिपादक प्रथमासमर्थ मतुबन्त प्रातिपदिक से इष्टका-स्वरूप षष्ठ्यर्थ के अभिधान के लिए यत् प्रत्यय भी हो जाता है और प्रकृति के मतुप् प्रत्यय का लोप भी ॥ १२५ ॥ किन्तु अश्विमत् शब्द से यत् प्रत्यय न होकर अण् प्रत्यय ही होता है और प्रकृतिगत मतुप् का लोप भी ॥ १२६ ॥ वयस्या (= वयस्वान् उपधान मन्त्र हो जिसका उस) के अभिधानार्थ मूर्धन् शब्द से मतुप् प्रत्यय हो जाता है ॥ १२७ ॥ परन्तु यदि मास या तनु प्रत्ययार्थ के विशेषण हों तब तो मतुप् के अर्थ में यत् प्रत्यय ही होता है ॥ १२८ ॥ मधु शब्द से मत्वर्थ में 'ञ' प्रत्यय भी होता है, यत् प्रत्यय भी और प्रत्ययों का लुक् भी (विकल्प से) ॥ १२९ ॥ ओजस् शब्द से दिन के अभिधानार्थ मत्वर्थ में यत् एवं 'ख' प्रत्यय होते हैं ॥ १३० ॥ वेशोभग और यशोभग शब्दों से मत्वर्थ में यल् प्रत्यय होता है ॥ १३१ ॥ उक्त शब्दों से 'ख' प्रत्यय भी होता है ॥ १३२ ॥ तृतीया-समर्थ पूर्व शब्द से कृत अर्थ में इन एवं 'य' प्रत्यय भी होते हैं और 'ख' प्रत्यय भी ॥ १३३ ॥ तृतीयासमर्थ अप् शब्द से संस्कृत अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ १३४ ॥ तृतीयासमर्थ सहस्र शब्द से सम्मित (= सदृश) अर्थ मे 'घ' प्रत्यय होता है ॥ १३५ ॥ मत्वर्थ में भी सहस्र शब्द से 'घ' प्रत्यय होता है ॥ १३६ ॥ द्वितीयासमर्थ सोम शब्द से 'अर्हति' अर्थ में 'य' प्रत्यय होता है ॥ १३७ ॥ सोम शब्द से मयट् प्रत्यय के अर्थ में भी 'य' प्रत्यय होता है ॥ १३८ ॥

१३९ मधोः ।
१४० वसोः समूहे च ।
१४१ नक्षत्राद्घः ।
१४२ सर्वदेवात्तातिल् ।
१४३ शिवशमरिष्टस्य करे ।
१४४ भावे च ।

मधु शब्द से मयडर्थ में यत् प्रत्यय हो जाता है ॥ १३९ ॥ वसु शब्द से तो समूह अर्थ में भी यत् प्रत्यय होता है और मयडर्थ में भी ॥ १४० ॥

नक्षत्र शब्द से स्वार्थ में 'घ' प्रत्यय होता है ॥ १४१ ॥ सर्व एवं देव शब्दों से स्वार्थ में तातिल् प्रत्यय होता है ॥ १४२ ॥ षष्ठीसमर्थ शिव आदि शब्दों से 'कर' (= करने वाला) अर्थ में तातिल् प्रत्यय होता है ॥ १४३ ॥ शिव आदि शब्दों से भाव अर्थ में भी तातिल् प्रत्यय होता है ॥ १४४ ॥

चतुर्थाध्याय का चतुर्थ पाद समाप्त ।

चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

प्रथमः पादः ।

१ प्राक् क्रीताच्छः ।
२ उगवादिभ्यो यत् ।
३ कम्बलाच्च संज्ञायाम् ।
४ विभाषा हविरपूपादिभ्यः ।
५ तस्मै हितम् ।
६ शरीरावयवाद्यत् ।
७ खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च ।
८ अजाविभ्यां थ्यन् ।
९ आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः ।
१० सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ ।
११ माणवचरकाभ्यां खञ् ।
१२ तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ ।

पञ्चम अध्याय का प्रथम पाद

'तेन क्रीतम्०' सूत्र से पूर्व जितने प्रत्ययार्थों[1] का निर्देश किया जाने वाला है उन अर्थों में छ[2] प्रत्यय का विधान अवगन्तव्य है ॥ १ ॥ उकारान्त एवं गो आदि शब्दों से प्राक्क्रीतीय अर्थों में यत् प्रत्यय होता है ॥ २ ॥ यदि प्रत्ययान्त संज्ञा शब्द हो तो प्राक्क्रीतीय अर्थों में कम्बल शब्द से भी यत् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३ ॥ किन्तु हविस् एवम् अपूप आदि शब्दों से यत् प्रत्यय विकल्प से ही होता है ॥ ४ ॥ चतुर्थी-समर्थ शब्दों से हित अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ५ ॥ शरीर के अवयवों के वाचक चतुर्थीसमर्थ शब्दों से हित अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ ६ ॥ चतुर्थी-समर्थ खल, यव, माष, तिल, वृक्ष और ब्रह्मन् शब्दों से भी हित अर्थ में 'यत् प्रत्यय ही होता है ॥ ७ ॥ किन्तु चतुर्थीसमर्थ अज एवम् अवि शब्दों से हित अर्थ में थ्यन प्रत्यय हो जाता है ॥ ८ ॥ चतुर्थी-समर्थ आत्मन्, विश्वजन और भोग शब्द जिनका उत्तरपद हो उन शब्दों से हित अर्थ में 'ख' प्रत्यय हो जाता है ॥ ९ ॥ चतुर्थी-समर्थ सर्व और पुरुष शब्द से हित अर्थ में यथाक्रम 'ण' और ढञ् प्रत्यय होते हैं ॥ १० ॥ चतुर्थीसमर्थ माणव और चरक शब्दों से हित अर्थ में खञ् प्रत्यय होता है ॥ ११ ॥ चतुर्थी-समर्थ विकृतिवाचक

---

१. इन प्रत्ययार्थों को संक्षेप में 'प्राक्क्रीतीय अर्थ' कहते हैं। प्रत्ययार्थानुसार प्रकृतिभाग की समर्थविभक्ति का अनुसन्धान करना चाहिए।

२. यह सामान्य प्रत्यय है। अतएव यत् आदि विशेष प्रत्यय भी इन अर्थों में होते ही हैं।

१३ छदिरुपधिबलेर्ढञ् ।
१४ ऋषभोपानहोर्ञ्यः ।
१५ चर्मणोऽञ् ।
१६ तदस्य तदस्मिन् स्यादिति ।
१७ परिखाया ढञ् ।
१८ प्राग्वतेष्ठञ् ।
१९ आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट्ठक् ।
२० असमासे निष्कादिभ्यः ।
२१ शताच्च ठन्यतावशते ।
२२ संख्याया अतिशदन्तायाः कन् ।
२३ वतोरिड् वा ।

शब्द से उसके वाच्य विकृति (=कार्य) के लिए उपयुक्त प्रकृति (=उपादान कारण) के अभिधानार्थ यथाविहित (छ, यत् आदि) प्रत्यय होते हैं ॥ १२ ॥ चतुर्थी-समर्थ विकृतिवाचक छदिर् उपधि और बलि शब्दों से तत्तद्विकृत्यर्थ प्रकृति के अभिधानार्थ ढञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ १३ ॥ चतुर्थी-समर्थ ऋषभ और उपानह् शब्दों से तत्तद्विकृत्यर्थ प्रकृति के अभिधानार्थ ञ्य प्रत्यय होता है ॥ १४ ॥ चतुर्थी-समर्थ चर्मजन्यविकृतिवाचक शब्दों से स्ववाच्यविकृत्यर्थ-प्रकृतिभूत चर्म के अभिधानार्थ अञ् प्रत्यय होता है ॥ १५ ॥ प्रथमासमर्थ शब्दों से '(यह[1]) इसका हो' और '(यह) इसमें हो' इन अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥१६॥ प्रथमासमर्थ परिखा शब्द से '(यह) इसकी हो' एवम् '(यह) इसमें हो' इन अर्थों में ढञ् प्रत्यय होता है ॥ १७ ॥ "तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः" इस सूत्र से पूर्व निर्दिष्ट अर्थों में सामान्यतः ठञ् प्रत्यय का अधिकार है ॥ १८ ॥ "तदर्हति॰" सूत्र से पूर्व तक उल्लिखित प्रत्ययार्थों (=आर्हीयार्थ) में, गोपुच्छ आदि, संख्यावाचक और परिमाणवाचक शब्दों से भिन्न शब्दों से सामान्यतः ठक् प्रत्यय होता है ॥ १९ ॥ 'आर्हीय अर्थों में समासावयवभिन्न निष्क आदि शब्दों से ठक् प्रत्यय होता है ॥ २० ॥

समासावयवभिन्न शत शब्द से भी शतभिन्न आर्हीयार्थ[2] में ठन् प्रत्यय होता है ॥ २१ ॥ त्यन्त एवं शदन्त से भिन्न संख्यावाचक शब्दों से आर्हीयार्थ में कन् प्रत्यय हो जाता है ॥ २२ ॥ वत्वन्त संख्यावाचक शब्द से आर्हीयार्थ में विहित

१. प्रत्ययार्थान्तर्गत 'यह' सूत्रार्थ में 'प्रथमासमर्थ' कह देने से गतार्थ है । अतः बन्धनी के अन्दर रखा गया है । साथ ही यह भी ज्ञातव्य है कि 'यह' के स्थान में 'वह' कहना भी असम्भव या अनुचित नहीं है ।

२. शतभिन्न आर्हीयार्थ का तात्पर्य यह है :—प्रत्ययार्थ एवं प्रकृत्यर्थ (=शतशब्दार्थ) यदि एक—अभिन्न न हों तभी आर्हीयार्थक ठन् प्रत्यय होगा, अन्यथा कन् प्रत्यय ही होता है—'शतकं निदानम् ।'

२४ विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुनसंज्ञायाम्।
२५ कंसाट्टिठन्।
२६ शूर्पादञन्यतरस्याम्।
२७ शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्।
२८ अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम्।
२९ विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम्।
३० द्वित्रिपूर्वान्निष्कात्।
३१ विस्ताच्च।
३२ विंशतिकात् खः।
३३ खार्या ईकन्।
३४ पणपादमाषशताद्यत्।
३५ शाणाद्वा।
३६ द्वित्रिपूर्वादण् च।
३७ तेन क्रीतम्।

कन् प्रत्यय को विकल्प से इट् का आगम हो जाता है॥ २३॥ यदि प्रत्ययान्त संज्ञा शब्द न हो तो विंशत् एवं त्रिंशत् शब्दों से आर्हीयार्थ में ड्वुन् प्रत्यय हो जाता है॥ २४॥ कंस शब्द से आर्हीयार्थ में टिठन् प्रत्यय हो जाता है॥ २५॥ शूर्प शब्द से आर्हीयं अर्थों में विकल्प से अञ् प्रत्यय होता है॥ २६॥ शतमान, विंशतिक, सहस्र एवं वसन शब्दों से आर्हीय अर्थों में अण् प्रत्यय होता है॥ २९॥ अध्यर्ध शब्द जिनका पूर्वावयव हो उन शब्दों तथा 'द्विगु-संज्ञक शब्दों से आर्हीय अर्थों में विहित प्रत्ययों का लुक् हो जाता है यदि परिनिष्ठित शब्द का संज्ञा-शब्द के रूप में प्रयोग न होता हो तो॥ २८॥ किन्तु यदि अध्यर्धपूर्वपदक शब्द एवं 'द्विगु'-संज्ञक शब्द कार्षापण-शब्दान्त अथवा सहस्र-शब्दान्त हों तो उनसे आर्हीय अर्थ में विहित प्रत्ययों का विकल्प से लुक् होता है॥ २९॥ 'द्विगु'-संज्ञक द्विनिष्क एवं त्रिनिष्क शब्दों से विहित आर्हीयार्थक प्रत्ययों का भी विकल्प से लुक् हो जाता है॥ ३०॥ 'द्विगु'-संज्ञक द्विविस्त एवं त्रिविस्त शब्दों से विहित आर्हीयार्थक प्रत्यय का भी विकल्प से लुक् हो जाता है॥ ३१॥ अध्यर्धविंशतिक और 'द्विगु'-संज्ञक विंशतिक शब्दों से आर्हीयार्थ में ख प्रत्यय हो जाता है॥ ३२॥ अध्यर्द्ध-खारी और खारी-शब्दान्त 'द्विगु'-संज्ञक शब्दों से आर्हीयार्थ में ईकन् प्रत्यय होता है॥ ३३॥

अध्यर्द्धपूर्वपदक तथा 'द्विगु'-संज्ञक पण-शब्दान्त, पाद-शब्दान्त, माष-शब्दान्त और शत-शब्दान्त प्रातिपदिकों से आर्हीयार्थ में यत् प्रत्यय हो जाता है॥ ३४॥ किन्तु अध्यर्धपूर्वपदक एवं 'द्विगु'-संज्ञक शाण-शब्दान्त प्रातिपदिकों से आर्हीयार्थ में विकल्प से यन् प्रत्यय होता है॥ ३५॥ परन्तु 'द्वि'-शब्द-पूर्वक एवं 'त्रि'शब्द-पूर्वक शाण-शब्दान्त प्रातिपदिकों से तो विकल्प से अण् प्रत्यय भी हो जाता है॥ ३६॥ "प्राग्वतेष्ठञ्" (५।१।१८) सूत्र से लेकर

३८ तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ ।
३९ गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् ।
४० पुत्राच्छ च ।
४१ सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ ।
४२ तस्येश्वरः ।
४३ तत्र विदित इति च ।
४४ लोकसर्वलोकाट्ठञ् ।
४५ तस्य वापः ।
४६ पात्रात् ष्ठन् ।
४७ तदस्मिन्वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते ।
४८ पूरणार्धाट्ठन् ।
४९ भागाद्यच्च ।

जितने प्रत्ययों का विधान किया गया है वे तृतीयासमर्थ शब्दों से 'क्रीत' (= खरीदा गया) अर्थ में विहित समझे जाँय ॥ ३७ ॥ उक्त प्रत्यय षष्ठीसमर्थ शब्दों से भी संयोगस्वरूप निमित्त अथवा उत्पातस्वरूप[1] निमित्त अर्थ में भी होते हैं ॥ ३८ ॥ संयोगात्मक एवम् उत्पातात्मक निमित्त अर्थों में षष्ठीसमर्थ गो शब्द से और संख्यावाचक, परिमाणवाचक एवं अश्व आदि शब्दों से भिन्न षष्ठीसमर्थ द्व्यच् (= दो स्वरों से युक्त) शब्दों से यत् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३९ ॥ संयोग अथवा उत्पात रूपी निमित्त अर्थ में षष्ठीसमर्थ पुत्र शब्द से विकल्प से 'छ' प्रत्यय भी होता है और यत् प्रत्यय भी ॥ ४० ॥

उक्त अर्थ में ही षष्ठीसमर्थ सर्वभूमि शब्द से अण् प्रत्यय और पृथिवी शब्द से अञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ ४१ ॥ षष्ठीसमर्थ सर्वभूमि एवं पृथिवी शब्दों से ईश्वर अर्थ में भी क्रमशः अण् और अञ् प्रत्यय हो जाते हैं ॥ ४२ ॥ सप्तमीसमर्थ उक्त दोनों शब्दों से विदित अर्थ में भी क्रमशः अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं ॥ ४३ ॥ सप्तमीसमर्थ लोक एवं सर्वलोक शब्दों से विदित अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ४४ ॥ षष्ठीसमर्थ शब्दों से 'वाप' (= बोया जाने वाला भूखण्ड) अर्थ में यथाविहित ठञ् आदि प्रत्यय होते हैं ॥ ४५ ॥ षष्ठीसमर्थ पात्र शब्द से वाप अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय होता है ॥ ४६ ॥ वृद्धि (= सूद-ब्याज), आय, लाभ, शुल्क एवम् उपदा (= घूस) के रूप में दीयमान पदार्थ के प्रतिपादक प्रथमासमर्थ शब्दों से यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ४७ ॥ पूर्वसूत्रोक्त अर्थ में पूरणवाचक एवम् अर्ध शब्दों से ठन् प्रत्यय होता है ॥ ४८ ॥ उक्त अर्थ में ही भाग[2] शब्द से

१. संयोग = सम्बन्ध । उत्पात=पृथिव्यादि पञ्चमहाभूतों का शुभाशुभसूचक परिणाम । द्र०—'पाञ्चभौतिकशरीरे द्रव्यमेव च क्रियारूपेण परिणमते इति दक्षिणाक्षिस्पन्दनं महाभूतपरिणामः ।' पदमञ्जरी—५।१।३८ ॥

२. भाग शब्द का अर्थ प्रकृत में रुपया का अंश है ।

५० तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः।
५१ वस्नद्रव्याभ्यां ठन्कनौ।
५२ सम्भवत्यवहरति पचति।
५३ आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम्।
५४ द्विगोष्ठंश्च।
५५ कुलिजाल्लुक्खौ च।
५६ सोऽस्यांशवस्नभृतयः।
५७ तदस्य परिमाणम्।
५८ संख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु।
५९ पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पंचाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम्।
६० पञ्चद्दशतौ वर्गे वा।

यत् प्रत्यय भी होता है और ठन् प्रत्यय भी ॥ ४९ ॥ 'हरति', 'वहति' एवम् 'अवहरति' अर्थों में द्वितीयासमर्थ वंशभार आदि शब्दों से अथवा भारभूत वंश (के प्रतिपादक वंश) आदि शब्दों से यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ५० ॥ 'हरति' आदि अर्थों में द्वितीयासमर्थ वस्न और द्रव्य शब्दों से क्रमशः ठन् एवं कन् प्रत्यय होते हैं ॥ ५१ ॥ 'सम्भवति', 'अवहरति' और 'पचति' अर्थों में द्वितीयासमर्थ शब्दों से यथाविहित प्रत्यय होते है ॥ ५२ ॥ 'सम्भवति' आदि अर्थों में द्वितीयासमर्थ आढक, आचित और पात्र शब्दों से विकल्प से 'ख' प्रत्यय और ठञ् प्रत्यय होते हैं ॥ ५३ ॥ किन्तु आढकशब्दान्त, आचितशब्दान्त एवम् पात्रशब्दान्त द्विगु से 'सम्भवति' आदि अर्थों में ठन् प्रत्यय भी होता है और विकल्प से 'ख' प्रत्यय भी ॥ ५४ ॥ कुलिजशब्दान्त द्विगु से 'सम्भवति' आदि अर्थों में विकल्प से 'ख' प्रत्यय, ठञ् प्रत्यय एवं इनका (विकल्प से ही) लुक् भी हो जाता है ॥ ५५ ॥ भागप्रतिपादक, मूल्यप्रतिपादक एवम् वेतनप्रतिपादक षष्ठीसमर्थ शब्दों से यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥५६॥ परिमाणप्रतिपादक षष्ठीसमर्थ शब्दों से भी यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ५७ ॥ परिमाणप्रतिपादक संख्यावाचक प्रथमासमर्थ शब्दों से संज्ञाशब्द-व्युत्पादनार्थ, संघ, सूत्र एवम् अध्ययन-स्वरूप षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ५८ ॥ परिमाणोपाधिक संख्यावाचक शब्दों से षष्ठ्यर्थ में पंक्ति आदि शब्दों का निपातन किया जाता है ॥ ५९ ॥ 'यह इस वर्ग का परिमाण है' इस अर्थ में पञ्चन् और दशन् शब्दों का वैकल्पिक निपातन है ॥ ६० ॥

१. यहाँ 'परिमीयते येन तत् परिमाणम्' इस व्युत्पत्ति से निष्पन्न यौगिक परिमाणशब्द गृहीत है, रूढ नहीं। देखिए—पदमञ्जरी, न्यास आदि। अतः 'यह (= संख्या) परिमाण है इसका' यह प्रत्ययार्थ निष्पन्न हुआ।

६१ सप्तनोऽञ्छन्दसि ।
६२ त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे संज्ञायां डण् ।
६३ तदर्हति ।।
६४ छेदादिभ्यो नित्यम् ।
६५ शीर्षच्छेदाद्यच्च ।
६६ दण्डादिभ्यः ।
६७ छन्दसि च ।
६८ पात्राद्घंश्च ।
६९ कडङ्करदक्षिणाच्छ च ।
७० स्थालीबिलात् ।
७१ यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ ।
७२ पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति ।
७३ संशयमापन्नः ।
७४ योजनं गच्छति ।

परिमाणोपाधिक सप्तन् शब्द से वर्गात्मक षष्ठयर्थ में, यदि प्रयोग वेदविषयक हो तो अञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६१ ॥ परिमाणोपाधिक त्रिंशत् एवं चत्वारिंशत् शब्दों से ब्राह्मणात्मक षष्ठयर्थ के अभिधानार्थ संज्ञा-विषय में डण् प्रत्यय होता है ॥ ६२ ॥ द्वितीयासमर्थ शब्दों से 'अर्हति' (= योग्य है) इस अर्थ में यथा-विहित प्रत्यय होते हैं ॥ ६३ ॥ द्वितीयासमर्थ छेद आदि शब्दों से 'नित्यम्[1] अर्हति' इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ६४ ॥ द्वितीयासमर्थ शीर्षच्छेद शब्द से 'नित्यम् अर्हति' इस अर्थ में यत् प्रत्यय भी होता है ॥ ६५ ॥ द्वितीया-समर्थ दण्ड आदि शब्दों से 'अर्हति' इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ ६६ ॥ द्वितीयासमर्थ सब शब्दों से, प्रयोग के छन्दो-विषयक होने पर, 'अर्हति' अर्थ में यत् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६७ ॥ द्वितीयासमर्थ पात्र शब्द से 'अर्हति' अर्थ में घन् प्रत्यय भी होता है (और यत् प्रत्यय भी) ॥ ६८ ॥ द्वितीयासमर्थ कडङ्कर एवं दक्षिणा शब्दों से 'अर्हति' अर्थ में छ प्रत्यय भी होता है (और यत् प्रत्यय भी) ॥ ६९ ॥ द्वि० स० स्थालीबिल शब्द से भी 'अर्हति' अर्थ में छ प्रत्यय और यत् प्रत्यय होते हैं ॥ ७० ॥ द्वि० स० यज्ञ एवं ऋत्विज् शब्दों से 'अर्हति' अर्थ में क्रमशः घ प्रत्यय एवं खञ् प्रत्यय होते हैं ॥ ७१ ॥ द्वि० स० पारायण, तुरायण एवं चान्द्रायण शब्दों से 'वर्त्तयति' (= सम्पादन करता है) इस अर्थ मे ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ७२ ॥ द्वितीयासमर्थ संशय शब्द से आपन्न (= प्राप्त) अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ७३ ॥ द्वि० स० योजन शब्द से 'गच्छति' अर्थ

१. नित्य का अर्थ आभीक्ष्ण्य अर्थात् पुनः पुनः है ।
२. यहाँ वर्त्तन = सम्पादन यथासम्भव अध्ययनार्थक भी हो जाता है, क्योंकि पारायण-सम्पादन का अर्थ शब्दाध्ययन ही होता है ।

७५ पथः ष्कन्।
७६ पन्थो ण नित्यम्।
७७ उत्तरपथेनाहृतं च।
७८ कालात्।
७९ तेन निर्वृत्तम्।
८० तमधीष्टो भृतो भूतो भावी।
८१ मासाद्वयसि यत्खञौ।
८२ द्विगोर्यप्।
८३ षण्मासाण्ण्यच्च।
८४ अवयसि ठंश्च।
८५ समायाः खः।
८६ द्विगोर्वा।
८७ रात्र्यहःसंवत्सराच्च।[2]

में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ७४ ॥ द्वि० स० पथिन् शब्द से 'गच्छति' अर्थ में ष्कन् प्रत्यय होता है ॥ ७५ ॥ द्वितीयासमर्थ पथिन् शब्द से 'नित्यं'[1] गच्छति' अर्थ में ण प्रत्यय और पथिन् के स्थान में पन्थ आदेश भी हो जाता है ॥७६॥ तृतीयासमर्थ उत्तरपथ शब्द से आहृत एवं 'गच्छति' अर्थों में भी ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ७७ ॥ इसके बाद जिन प्रत्ययों का विधान किया जाने वाला है उन्हें कालवाचक शब्दों से विहित समझना चाहिए ॥ ७८ ॥ तृतीयासमर्थ कालवाचक शब्दों से निर्वृत्त (= सम्पन्न) अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ७९ ॥ द्वितीयासमर्थ कालवाचक शब्दों से अधीष्ट (= सत्कारपूर्व नियुक्त), भृत (= वेतन देकर खरीदा गया), भूत (= व्याप्त) एवम् भावी अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ८० ॥

द्वि० स० मास शब्द से व्याप्त वयस् अर्थ में विकल्प से यत् एवं खञ् प्रत्यय होते हैं ॥ ८१ ॥ द्वि० स० मासशब्दान्त 'द्विगु'-संज्ञक शब्द से व्याप्त वयस् अर्थ में यप् प्रत्यय होता है ॥ ८२ ॥ परन्तु द्वि० स० षण्मास शब्द से उक्त अर्थ मे ण्यत् प्रत्यय भी होता है और यप् प्रत्यय (तथा ठञ् प्रत्यय) भी ॥ ८३ ॥ यदि वयस् से भिन्न अर्थ प्रतिपाद्य हो तो द्वि० स० षण्मास शब्द से ठञ् प्रत्यय भी होता है (और ण्यत् प्रत्यय भी) ॥ ८४ ॥ द्वि० स० समा शब्द से (सू० सं० ८०[2] में निर्दिष्ट) अधीष्ट आदि चार अर्थों में 'ख' प्रत्यय होता है ॥ ८५ ॥ किन्तु समाशब्दान्त 'द्विगु'-संज्ञक शब्द से (सू० सं० ७९ तथा ८० में निर्दिष्ट) पाँच अर्थों में विकल्प से 'ख' प्रत्यय होता है ॥ ८६ ॥ रात्रि-शब्दान्त, अहन्-शब्दान्त एवम् संम्वत्सर-शब्दान्त 'द्विगु'-संज्ञक शब्दों से भी निर्वृत्त आदि पाँच

१. मात्र 'गच्छति' अर्थ में भी पान्थ शब्द का प्रयोग प्रसिद्ध होने से इस सूत्र में नित्य शब्द का प्रत्ययार्थान्तर्गत उल्लेख उचित नहीं है—ऐसा भाष्यकार का मत है।
२. कुछ आचार्य इस सूत्र में 'निर्वृत्त' अर्थ का भी समाहार मानते हैं।

८८ वर्षाल्लुक् च ।
८९ चित्तवति नित्यम् ।
९० षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते ।
९१ वत्सरान्ताच्छन्दसि ।
९२ सम्परिपूर्वात् ख च ।
९३ तेन परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम् ।
९४ तदस्य ब्रह्मचर्यम् ।
९५ तस्य च दक्षिणायज्ञाख्येभ्यः ।
९६ तत्र च दीयते कार्यं भववत् ।
९७ व्युष्टादिभ्योऽण् ।
९८ तेन यथाकथाच हस्ताभ्यां णयतौ ।
९९ सम्पादिनि ।
१०० कर्मवेषाद्यत् ।

अर्थों में विकल्प से 'ख' प्रत्यय और ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ८७ ॥ किन्तु वर्षाशब्दान्त द्विगु से निर्वृत्त आदि ५ अर्थों में विकल्प से 'ख' प्रत्यय, ठञ् प्रत्यय और इनका विकल्प से लुक् भी हो जाता है ॥ ८८ ॥ किन्तु यदि प्रत्ययार्थ (का विशेष्य) चित्तवान् —जीव हो तो वर्षाशब्दान्त द्विगु से विहित निर्वृत्ताद्यर्थक प्रत्यय का लुक् नित्य हो जाता है ॥८९॥ 'साठ रात्रियों में पक जाते हैं' इस अर्थ में तृतीयासमर्थ षष्टिरात्र शब्द से कन् प्रत्यय तथा रात्र शब्द के लोप का निपातन है ॥ ९० ॥ वत्सर-शब्दान्त शब्दों से निर्वृत्त आदि ५ अर्थों में, छान्दस-प्रयोग होने पर 'छ' प्रत्यय होता है ॥ ९१ ॥ सम्-पूर्वक और परि-पूर्वक वत्सर-शब्दान्त शब्दों से छान्दस-प्रयोग होने पर निर्वृत्त आदि ५ अर्थों में 'ख' प्रत्यय भी होता है और छ प्रत्यय भी ॥ ९२ ॥ तृतीयासमर्थ कालवाचक शब्दों से परिजय्य (= जीता जा सकने वाला), लभ्य, कार्य एवं सुकर अर्थों मे ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ९३ ॥ द्वितीया[1]समर्थ कालवाचक शब्द से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है यदि ब्रह्मचर्य गम्यमान हो तो ॥ ९४ ॥ षष्ठीसमर्थ यज्ञनामभूत शब्दों से दक्षिणा अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ ९५ ॥ सप्तमीसमर्थ कालवाचक शब्दों से 'दीयते' (=दिया जाता है) और 'कार्यम्' (= किया जाने योग्य) अर्थों में भवार्थक प्रत्ययों के समान ही प्रत्यय अवगन्तव्य हैं ॥ ९६ ॥ सप्तमीसमर्थ व्युष्ट आदि शब्दों से 'दीयते' और 'कार्यम्' अर्थों में अण् प्रत्यय होता है ९७ ॥ यथाकथाच इस अव्ययसमुदाय एवम् तृतीयान्त हस्तशब्द से भी उक्त अर्थों में क्रमशः[2] 'ण' एवं यत् प्रत्यय होते हैं ॥ ९८ ॥ तृतीयासमर्थ शब्दों से सम्पादी (= सम्पन्न = गुणोत्कर्षयुक्त) अर्थ में इनि प्रत्यय होता है ॥ ९९ ॥ तृतीयासमर्थ कर्मन्

१. भाष्यकार के अनुसार तो यहाँ प्रथमा ही समर्थ विभक्ति है ।
२. प्रत्ययों में तो यथासंख्य विवक्षित है, किन्तु अर्थों में नहीं । अतः प्रत्येक शब्द से दोनों अर्थों में प्रत्यय का विधान सिद्ध है ।

१०१ तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः । १०८ प्रकृष्टे ठञ् ।
१०२ योगाद्यच्च । १०९ प्रयोजनम् ।
१०३ कर्मण उकञ् । ११० विशाखाषाढादण्मन्थदण्डयोः ।
१०४ समयस्तदस्य प्राप्तम् । १११ अनुप्रवचनादिभ्यश्छः ।
१०५ ऋतोरण् । ११२ समापनात् सपूर्वपदात् ।
१०६ छन्दसि घस् । ११३ ऐकागारिकट् चौरे ।
१०७ कालाद्यत् । ११४ आकालिकडाद्यन्तवचने ।

एवं वेष शब्दों से सम्पादी अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ १०० ॥

चतुर्थीसमर्थ सन्ताप आदि शब्दों से 'प्रभवति' (= समर्थ है) अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ १०१ ॥ चतुर्थीसमर्थ योग शब्द से 'प्रभवति' अर्थ में यत् प्रत्यय भी होता है (और ठञ् प्रत्यय भी) ॥ १०२ ॥ चतुर्थीसमर्थ कर्मन् शब्द से 'प्रभवति' अर्थ में उकञ् प्रत्यय होता है ॥ १०३ ॥ प्रथमासमर्थ समय शब्द से 'यह (समय[1]) इसका प्राप्त है' इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ १०४ ॥ प्रथमासमर्थ ऋतु शब्द से 'इसको प्राप्त है' इस अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ॥ १०५ ॥ परन्तु यदि प्रयोग छन्दोविषयक हो तो घस् प्रत्यय हो जाता है ॥ १०६ ॥ प्रथमासमर्थ काल शब्द से 'इसका प्राप्त है' इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ॥ १०७ ॥ परन्तु प्रकर्षवृत्ती प्रथमासमर्थ काल शब्द से उक्त अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ १०८ ॥ प्रथमासमर्थ शब्दों से 'इसका प्रयोजन है' इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ॥ १०९ ॥ यदि प्रत्ययान्त का अर्थ क्रमशः मन्थ (= मथन का साधन) तथा दण्ड हो तो प्रथमासमर्थ विशाखा एवं आषाढ़ शब्दों से भी 'इसका प्रयोजन है' इस अर्थ मे अण् प्रत्यय हो जाता है ॥ ११० ॥ प्रथमासमर्थ अनुप्रवचन आदि शब्दों से 'इसका प्रयोजन है' इस अर्थ में छ प्रत्यय होता है ॥ १११ ॥ प्रथमासमर्थ पूर्वपदविशिष्ट संमापन शब्द से भी 'इसका प्रयोजन है' इस अर्थ में छ प्रत्यय हो जाता है ॥ ११२ ॥ समुदाय से चौर अर्थ के प्रतिपादनार्थ एकागार शब्द से 'इसका प्रयोजन है' इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय का निपातन[2] है ॥ ११३ ॥ एक काल में ही उत्पत्ति एवं विनाश के प्रतिपादनार्थ

१. प्राप्त वह समय ही है जिसके वाचक समय शब्द से प्रत्यय का विधान किया गया है । इसी प्रकार प्रयोजनादि अर्थों के प्रसंग मे भी अवगन्तव्य है ।
२. निपातन चोर अर्थ मे ही इस शब्द के प्रयोग के नियम के लिए किया गया है ।

११५ तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ।
११६ तत्र तस्येव ।
११७ तदर्हम् ।
११८ उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे ।
११९ तस्य भावस्त्वतलौ ।
१२० आ च त्वात् ।
१२१ न नञ्पूर्वात्तत्पुरुषादचतुरसङ्गतलवणवटयुधकतरसलसेभ्यः ।
१२२ पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ।
१२३ वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च ।
१२४ गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ।
१२५ स्तेनाद्यन्नलोपश्च ।
१२६ सख्युर्यः ।

प्रथमासमर्थ समानकाल[1] शब्द के स्थान में 'आ' इस आदेश का निपातन है ॥ ११४ ॥ तृतीयासमर्थ शब्द से क्रियागत तुल्यता के अभिधानार्थ वति प्रत्यय होता है ॥ ११५ ॥ सप्तमीसमर्थ तथा षष्ठीसमर्थ शब्दों से भी इवार्थ (=सादृश्य) में वति प्रत्यय होता है ॥ ११६ ॥ द्वितीयासमर्थ शब्दों से अर्ह (=योग्य) अर्थ में वति प्रत्यय होता है ॥ ११७ ॥ धात्वर्थविशिष्ट साधन में वर्तमान उपसर्गों से भी प्रयोग के छन्दोविषयक होने पर वति प्रत्यय हो जाता है ॥ ११८ ॥ षष्ठीसमर्थ शब्दों से भावार्थ[2] में त्व एवम् तल् प्रत्यय होते हैं ॥ ११९ ॥ 'ब्रह्मणस्त्वः' (५।१।१३६) सूत्र तक त्व एवम् तल् प्रत्ययों का अधिकार है ॥ १२० ॥

इसके वाद जिन भावार्थक प्रत्ययों का विधान किया जाने वाला है वे प्रत्यय अचतुर, असङ्गत, अलवण, अवट, अयुध, अकत, अरस एवम् अलस शब्दों से भिन्न नञ्-तत्पुरुषनिष्पन्न शब्दों से नहीं होते ॥ १२१ ॥ षष्ठीसमर्थ पृथु आदि शब्दो से भावार्थ में विकल्प से इमनिच् प्रत्यय होता है ॥ १२२ ॥ षष्ठीसमर्थ वर्ण (= रूप) विषयवाचक शब्दों तथा दृढ आदि शब्दों से भावार्थ में ष्यञ् प्रत्यय भी होता है (और इमनिच् प्रत्यय भी) ॥ १२३ ॥ षष्ठीसमर्थ गुणवाचक शब्दों एवं ब्राह्मण आदि शब्दों से क्रियार्थ (एवं भावार्थ) में भी ष्यञ् प्रत्यय हो जाता है ॥१२४॥ षष्ठीसमर्थ स्तेन शब्द से भाव एवं कर्म (=क्रिया) अर्थों में यत् प्रत्यय भी होता है और प्रकृति के नकार का लोप भी ॥ १२५ ॥ षष्ठीसमर्थ सखि शब्द से भाव

---

१. प्रथम क्षण में उत्पत्ति, द्वितीय क्षण में स्थिति तथा तृतीय क्षण में ही विनाश जिसका हो उस आशुविनाशी के लिए यह प्रयोग है। एककाल में उत्पति-विनाश का वर्णन शीघ्रविनाशित्व का प्रतिपादक ही है।

२. शब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तं भावशब्देनोच्यते—काशिका।
प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः—सिद्धान्तकौमुदी।

१२७ कपिज्ञात्योर्ढक्।

१२८ पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्।

१२९ प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्।

१३० हायनान्तयुवादिभ्योऽण्।

१३१ इगन्ताच्च लघुपूर्वात्।

१३२ योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ्।

१३३ द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च।

१३४ गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेषु।

१३५ होत्राभ्यश्छः।

१३६ ब्रह्मणस्त्वः।

तथा कर्म अर्थों में 'य' प्रत्यय हो जाता है ॥ १२६ ॥ ष० स० कपि तथा ज्ञाति शब्दों से भाव तथा कर्म अर्थों मे ढक् प्रत्यय हो जाता है ॥ १२७ ॥ ष० स० पतिशब्दान्त शब्दों एवम् पुरोहित आदि शब्दों से भाव तथा कर्म अर्थों मे यक् प्रत्यय हो जाता है ॥१२८॥ ष० स० प्राणिजातिवाचक, वयोवाचक (= अवस्थावाचक) एवम् उद्गात्र आदि शब्दों से भाव तथा कर्म अर्थों मे अञ् प्रत्यय होता है ॥ १२९ ॥ ष० स० हायनशब्दान्त शब्दों एवम् युवन् आदि शब्दों से भाव तथा कर्म अर्थों मे अण् प्रत्यय होता है ॥ १३० ॥ लघु स्वर हो पूर्व मे जिसके उस इगन्त ष० स० शब्द से भी भाव तथा कर्म अर्थों मे अण् प्रत्यय हो जाता है ॥ १३१ ॥ जिसकी उपधा यकार तथा उपान्त्य स्वर गुरु हो उस ष० स० शब्द से भाव एवं कर्म अर्थों मे वुञ् प्रत्यय होता है ॥ १३२ ॥ द्वन्द्वसमासनिष्पन्न शब्दों एवं मनोज्ञ आदि शब्दों से भी भाव तथा कर्म अर्थों मे वुञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ १३३ ॥ यदि प्रयोग श्लाघा, अत्याकार (= निन्दा) तथा अवेत (= प्राप्त अथवा अवगत) के विषय मे किया गया हो तो ष० स० गोत्र-वाचक तथा चरण-वाचक शब्दों से भाव तथा कर्म अर्थों मे वुञ् प्रत्यय हो जाता हैं ॥ १३४ ॥ ष० स० ऋत्विग्वाचक शब्द से भावों तथा कर्म अर्थों मे छ प्रत्यय हो जाता है ॥ १३५ ॥ किन्तु ऋत्विग्वाचक ब्रह्मन् शब्द से भाव तथा कर्म अर्थों मे त्व प्रत्यय ही होता है ॥ १३६ ॥

पञ्चमाध्याय का प्रथम पाद समाप्त।

द्वितीयः पादः

१ धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ।
२ व्रीहिशाल्योर्ढक् ।
३ यवयवकषष्टिकाद्यत् ।
४ विभाषातिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः
५ सर्वचर्मणः कृतः खखञौ ।
६ यथामुखसम्मुखस्य दर्शनः खः ।
७ तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति ।
८ आप्रपदं प्राप्नोति ।
९ अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु ।
१० परोवरपरम्परपुत्रपौत्रमनुभवति
११ अवारपारात्यन्तानुकामं गामी ।
१२ समांसमां विजायते ।
१३ अद्यश्वीनावष्टब्धे ।
१४ आगवीनः ।
१५ अनुग्वलङ्गामी ।

पञ्चमाध्याय का द्वितीय पाद

षष्ठीसमर्थ धान्यविशेषवाचक शब्दों से क्षेत्रात्मक भवन (= उत्पत्तिस्थान) अर्थ में खञ् प्रत्यय होता है ॥ १ ॥ उक्त अर्थ में व्रीहि एवं शालि शब्दों से ढक् प्रत्यय होता है ॥ २ ॥ यव, यवक एवं षष्टिक शब्दों से यत् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३ ॥ किन्तु तिल, माष, उमा, भङ्गा तथा अणु शब्दों विकल्प से यत् प्रत्यय तथा खञ् प्रत्यय होते हैं ॥ ४ ॥ तृतीयासमर्थ सर्वचर्मन् शब्द से कृत अर्थ मे 'ख' एवं खञ् प्रत्यय होते हैं ॥ ५ ॥ षष्ठीसमर्थ यथामुख और सम्मुख शब्दों से दर्शन (= जिसमें देखा जाय) अर्थ में 'ख' प्रत्यय होता है ॥ ६ ॥ जिनके आदि में सर्व शब्द और और अन्त में पथिन्, भङ्ग, कर्मन्, पत्र अथवा पात्र शब्द हो उन द्वितीयासमर्थ शब्दों से 'व्याप्नोति' (= व्याप्त करता है) अर्थ में 'ख' प्रत्यय होता है ॥ ७ ॥ द्वितीयासमर्थ आप्रपद शब्द से 'प्राप्नोति' अर्थ में 'ख' प्रत्यय होता है ॥८॥ द्वितीयासमर्थ अनुपद, सर्वान्न एवम् अयानय शब्दों से क्रमशः बद्धा (= बन्धी हुई), भक्षयति और नेय अर्थों में 'ख' प्रत्यय होता है ॥ ९ ॥ द्वितीयासमर्थ परोवर, परम्पर एवं पुत्रपौत्र शब्दों से 'अनुभवति' (= अनुभव करता है) इस अर्थ में 'ख' प्रत्यय हो जाता है ॥ १० ॥ द्वितीयासमर्थ अवारपार, अत्यन्त और अनुकाम शब्दों से 'गामी' (= जाने वाला) अर्थ में 'ख' प्रत्यय होता है ॥ ११ ॥ समांसमाम् शब्द से 'विजायते' (= गर्भधारण करती है) इस अर्थ में 'ख' प्रत्यय होता है ॥ १२ ॥ अद्याश्व शब्द से 'अवष्टब्ध' (= आसन्न) प्रसव करने वाली' अर्थ में 'ख' प्रत्यय होता है ॥ १३ ॥ आङ्-पूर्वक गो शब्द से कर्मकर अर्थ में 'ख' प्रत्यय का निपातन है ॥ १४ ॥ 'अलङ्गामी' अर्थ

१६ अध्वनो यत्खौ ।
१७ अभ्यमित्राच्छ च ।
१८ गोष्ठात् खञ् भूतपूर्वे ।
१९ अश्वस्यैकाहगमः ।
२० शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः ।
२१ व्रातेन जीवति ।
२२ साप्तपदीनं सख्यम् ।
२३ हैयङ्गवीनं संज्ञायाम् ।
२४ तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ ।
२५ पक्षात्तिः ।
२६ तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ ।
२७ विनञ्भ्यां नानाञौ नसह ।
२८ वेः शालच्छङ्कटचौ ।
२९ सम्प्रोदश्च कटच् ।
३० अवात् कुटारच्च ।

में अनुगु शब्द से 'ख' प्रत्यय होता है ॥ १५ ॥ उक्त अर्थ में ही अध्वन् शब्द से विकल्प से यत् एवं 'ख' प्रत्यय हो जाते हैं ॥ १६ ॥ उक्त अर्थ में द्वितीयासमर्थ अभ्यमित्र शब्द से 'छ' प्रत्यय भी होता है (और विकल्प से यत् एवं 'ख' प्रत्यय भी) ॥ १७ ॥ भूतपूर्व अर्थ में गोष्ठ शब्द से खञ् प्रत्यय होता है ॥ १८ ॥ अश्व शब्द से एकाहगम (= एक दिन में तय करने योग्य मार्ग) इस अर्थ में खञ् प्रत्यय होता है ॥ १९ ॥ अधृष्ट एवं अकार्य अर्थों में क्रमशः खञ्-प्रत्ययान्त शालीन एवं कौपीन शब्दों का निपातन है ॥ २० ॥

तृतीयासमर्थ व्रात (= शारीरिक श्रम) शब्द से 'जीवति' इस अर्थ में खञ् प्रत्यय होता है ॥ २१ ॥ मैत्री अर्थ में खञ्-प्रत्यान्त साप्तपदीन शब्द का निपातन है ॥ २२ ॥ घृत के वाचक संज्ञा शब्द के रूप के खञ्-प्रत्ययान्त हैयङ्गवीन शब्द का भी निपातन है ॥ २३ ॥ षष्ठीसमर्थ पीलु आदि शब्दों तथा कर्ण आदि शब्दों से क्रमशः पाक एवं मूल अर्थों में क्रमशः कुणप् एवं जाहच् प्रत्यय होते हैं ॥ २४ ॥ परन्तु षष्ठीसमर्थ पक्ष शब्द से मूल अर्थ में 'ति' प्रत्यय हो जाता है ॥ २५ ॥ तृतीयासमर्थ शब्दों से वित्त (= ज्ञात) अर्थ में चुञ्चुप् एवं चणप् प्रत्यय होते हैं ॥ २६ ॥ असहार्थ—पृथग्भावार्थ में वर्त्तमान वि[1] एवं नञ् से स्वार्थ में क्रमशः ना और नाञ् प्रत्यय हो जाते हैं ॥ २७ ॥ क्रियाविशिष्ट-साधनवाचक वि शब्द से स्वार्थ में शालच् एवं शङ्कटच् प्रत्यय होते हैं ॥ २८ ॥ किन्तु सम्, प्र, उत् (तथा वि शब्द से भी) कटच् प्रत्यय हो जाता है ॥ २९ ॥ अव शब्द से तो कुटारच् प्रत्यय भी होता है (और कटच् प्रत्यय भी)

१. यहाँ से ३४वें सूत्र तक विहित प्रत्यय उपसर्गों से होते हैं ।

३१ नते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ्नाटज्भ्रटचः ।
३२ नेर्बिडज्बिरीसचौ ।
३३ इनच्पिटच्चिकचि च ।
३४ उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः ।
३५ कर्मणि घटोऽठच् ।
३६ तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् ।
३७ प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ।
३८ पुरुषहस्तिभ्यामण् च ।
३९ यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ।
४० किमिदम्भ्यां वो घः ।
४१ किमःसङ्ख्यापरिमाणे डति च ।
४२ संख्याया अवयवे तयप् ।
४३ द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ।

॥ ३० ॥ नासिका के नमन (= नीचापन) को प्रकट करने हेतु अव शब्द से टीटच्, नाटच् एवं भ्रटच् प्रत्यय हो जाते हैं यदि प्रत्ययान्त संज्ञा-शब्द[1] हो तो ॥ ३१ ॥ और 'नि' शब्द से बिडच् एवं बिरीसच् प्रत्यय हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ उक्त अर्थ में 'नि' शब्द से इनच् और पिटच् प्रत्यय भी होते हैं और इन प्रत्ययों के साथ-साथ 'नि' के स्थान में क्रमशः चिक एवं 'चि' आदेश भी ॥ ३३ ॥ क्रमशः आसन्न एवं आरूढ अर्थों में विद्यमान उप एवम् अधि शब्दों से स्वार्थ में त्यकन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३४ ॥ सप्तमीसमर्थ कर्मन् शब्द से 'घट' (= संलग्न) अर्थ में अठच् प्रत्यय होता है ॥ ३५ ॥ प्रथमासमर्थ तारका आदि शब्दों से 'अस्य सञ्जातः' इस अर्थ में इतच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३६ ॥ प्रथमासमर्थ शब्दों से 'अस्य प्रमाणम्'[2] इस अर्थ में द्वयसच्, दघ्नच् एवं मात्रच् प्रत्यय हो जाते हैं ॥ ३७ ॥ किन्तु प्रथमासमर्थ पुरुष एवं हस्तिन् शब्दों से 'अस्य प्रमाणम्' इस अर्थ में अण् प्रत्यय भी होता है ॥ ३८ ॥ प्रथमासमर्थ यत्, तत् एवम् एतद् शब्दों से 'अस्य परिमाणम्' इस अर्थ में वतुप् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३९ ॥ प्रथमासमर्थ किम् एवम् इदम् शब्दों से भी उक्त अर्थ में वतुप् प्रत्यय और प्रत्ययादि वकार के स्थान में घकारादेश भी हो जाता है ॥ ४० ॥

संख्यापरिच्छेद अर्थ में प्रथमासमर्थ किम् शब्द से डति प्रत्यय भी होता है और वतुप् प्रत्यय भी और वतुप् के वकार के स्थान में घकारादेश भी ॥ ४१ ॥ प्रथमासमर्थ संख्यावाचक शब्दों से 'उसके अवयव हैं' इस अर्थ में तयप् प्रत्यय हो जाता है ॥ ४२ ॥ द्वि एवं त्रि शब्दों से विहित तयप् प्रत्यय के स्थान में

१. ऐसी अभिव्यक्ति का संज्ञाशब्द-व्युत्पादनार्थ प्रत्यय का विधान तात्पर्यविषयीभूत अर्थ है। यही अभिप्राय सर्वत्र समझना चाहिए।
२. परिच्छेद अर्थ में मात्रच् एवं ऊर्ध्वमानार्थ में शेष दो प्रत्यय होते हैं।

४४ उभादुदात्तो नित्यम् ।
४५ तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः।
४६ शदन्तविंशतेश्च ।
४७ संख्याया गुणस्य निमाने मयट्।
४८ तस्य पूरणे डट् ।
४९ नान्तादसंख्यादेर्मट् ।
५० थट् च च्छन्दसि ।
५१ षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् ।
५२ बहुपूगगणसङ्घस्य तिथुक् ।
५३ वतोरिथुक् ।
५४ द्वेस्तीयः ।
५५ त्रेः सम्प्रसारणं च ।
५६ विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्
५७ नित्यं शतादिमासार्धमास-
संवत्सराच्च ।
५८ षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः ।
५९ मतौ छः सूक्तसाम्नोः ।

अयज् आदेश भी विकल्प से हो जाता है ॥ ४३ ॥ किन्तु उभ शब्द से विहित तयप् प्रत्यय के स्थान में उदात्त अयज् आदेश नित्य ही होता है ॥ ४४ ॥ प्रथमासमर्थ दशन्-शब्दान्त संख्यावाचक शब्दों से 'यह इसमें अधिक है' इस अर्थ में 'ड' प्रत्यय होता है ॥ ४५ ॥ प्रथमासमर्थ शत-शब्दान्त संख्यावाचक एवं विंशति शब्द से भी उक्त अर्थ में 'ड' प्रत्यय हो जाता है ॥ ४६ ॥ भाग के मूल्य को प्रकट करने वाले प्रथमान्त संख्यावाचक शब्दों से मयट् प्रत्यय हो जाता है ॥ ४७ ॥ षष्ठीसमर्थ संख्यावाचक शब्दों से पूरण अर्थ में डट् प्रत्यय होता है ॥ ४८ ॥ संख्यावाचक शब्द जिनके पूर्वपद न हों उन षष्ठीसमर्थ संख्यावाचक शब्दों से पूरणार्थ में विहित डट् प्रत्यय को मट् का आगम हो जाता है ॥ ४९ ॥ वैदिक विषय में तो थट् का आगम भी होता है (और मट् का आगम भी ॥ ५० ॥ षष्ठीसमर्थ षट्, कतिपय और चतुर शब्दों से विहित डट् को थुक् का आगम हो जाता है ॥ ५१ ॥ किन्तु बहु, गण, पूग और संघ शब्दों से विहित डट् प्रत्यय को तिथुक् का आगम हो जाता है ॥ ५२ ॥ वत्वन्त संख्यावाचक शब्द से विहित डट् प्रत्यय को इथुक् का आगम हो जाता है ॥ ५३ ॥ षष्ठीसमर्थ द्वि शब्द से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय योता है ॥ ५४ ॥ त्रि शब्द से तीय प्रत्यय तथा प्रकृति को सम्प्रसारण भी हो जाता है ॥ ५५ ॥ विंशति आदि शब्दों से विहित पूरणार्थक डट् प्रत्यय को विकल्प से तमट् का आगम हो जाता है ॥ ५६ ॥ किन्तु शत आदि शब्दों, मास, अर्धमास एवं संवत्सर शब्दों से विहित डट् को नित्य ही तमट् का आगम होता है ॥ ५७ ॥ संख्यावाचक शब्द यदि पूर्वपद न हो तो षष्टि आदि शब्दों से विहित डट् को भी नित्य तमट् का आगम हो जाता है ॥ ५८ ॥ सूक्त एवं सामन् के अभिधेय होने पर षष्ठीसमर्थ

६० अध्यायानुवाकयोर्लुक् ।
६१ विमुक्तादिभ्योऽण् ।
६२ गोषदादिभ्यो वुन् ।
६३ तत्र कुशलः पथः ।
६४ आकर्षादिभ्यः कन् ।
६५ धनहिरण्यात् कामे ।
६६ स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते ।
६७ उदराट्ठगाद्यूने ।
६८ सस्येन परिजातः ।
६९ अंशं हारी ।
७० तन्त्रादचिरापहृते ।
७१ ब्राह्मणकोष्णिके संज्ञायाम् ।
७२ शीतोष्णाभ्यां कारिणि ।
७३ अधिकम् ।
७४ अनुकाभिकाभीकः कमिता ।
७५ पार्श्वेनान्विच्छति ।
७६ अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां ठक्ठञौ ।

शब्दों से मत्वर्थ में 'छ' प्रत्यय होता है ॥ ५९ ॥ किन्तु अध्याय एवम् अनुवाक के अभिधेय होने पर मत्वर्थ मे विहित 'छ' प्रत्यय का लुक् हो जाता है ॥ ६० ॥

अध्याय एवम् अनुवाक के अभिधानार्थ विमुक्त आदि शब्दों से मत्वर्थ मे अण् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६१ ॥ गोषद आदि शब्दों से उक्त अर्थ मे वुन् प्रत्यय होता है ॥ ६२ ॥ सप्तमीसमर्थ पथिन् शब्द से कुशल अर्थ मे वुन् प्रत्यय होता है ॥ ६३ ॥ सप्तमीसमर्थ आकर्ष आदि शब्दों से कुशल अर्थ मे कन् प्रत्यय होता है ॥ ६४ ॥ सप्तमीसमर्थ धन एवं हिरण्य शब्दों से काम अर्थ मे कन् प्रत्यय होता है ॥ ६५ ॥ सप्तमीसमर्थ स्वाङ्गवाचक शब्दों से प्रसित (= तत्पर) अर्थ मे कन् प्रत्यय होता है ॥ ६६ ॥ यदि प्रत्ययान्त का अभिधेय आद्यून (=पेटू) व्यक्ति हो तो सप्तमीसमर्थ उदर शब्द से भी प्रसित अर्थ मे कन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६७ ॥ तृतीयासमर्थ सस्य शब्द से परिजात (= अच्छी तरह उत्पन्न) अर्थ मे कन् प्रत्यय होता है ॥ ६८ ॥ द्वितीयासमर्थ अंश शब्द से हारी (= हरण करने वाला = हिस्सेदार) अर्थ में कन् प्रत्यय होता है ॥ ६९ ॥ पञ्चमीसमर्थ तन्त्र शब्द से अचिरापहृत अर्थ मे कन् प्रत्यय होता है ॥ ७० ॥ संज्ञाविषय मे कन्-प्रत्ययान्त ब्राह्मण तथा उष्णिक् शब्दों का निपातन है ॥ ७१ ॥ द्वितीयासमर्थ शीत एवम् उष्ण शब्दों से कारी (= करने वाला) अर्थ में कन् प्रत्यय होता है ॥ ७२ ॥ अध्यारूढ शब्द से कन् प्रत्यय तथा इस प्रत्यय के परे उत्तरपद (= आरूढ शब्द) के लोप का भी निपातन है ॥ ७३ ॥ कमिता (= इच्छा करने वाला) अर्थ मे कन्-प्रत्ययान्त अनुक, अभिक एवम् अभीक शब्दों का निपातन है ॥ ७४ ॥ तृतीयासमर्थ पार्श्व शब्द से 'अन्विच्छति' (= ढूढता है = चाहता है) इस अर्थ मे कन् प्रत्यय होता है ॥ ७५ ॥ तृतीयासमर्थ अयःशूल

७७ तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा ।
७८ स एषां ग्रामणीः ।
७९ शृङ्खलमस्य बन्धनं करभे ।
८० उत्क उन्मनाः ।
८१ कालप्रयोजनाद्रोगे ।
८२ तदस्मिन्नन्नं प्राये संज्ञायाम् ।
८३ कुल्माषादञ् ।
८४ श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते ।
८५ श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ ।
८६ पूर्वादिनिः ।
८७ सपूर्वाच्च ।
८८ इष्टादिभ्यश्च ।
८९ छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि ।
९० अनुपद्यन्वेष्टा ।
९१ साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम् ।
९२ क्षेत्रियच्परक्षेत्रे चिकित्स्यः ।

एवं दण्डाजिन शब्दों से 'अन्विच्छति' अर्थ मे ठक् और ठन् प्रत्यय होते हैं ॥ ७६ ॥ जिस रूप मे ग्रहण किया गया हो उस रूप के प्रतिपादक पूरणप्रत्ययान्त शब्दों से स्वार्थ में कन् प्रत्यय हो जाता है और विकल्प के पूरणप्रत्यय का लुक् भी ॥ ७७ ॥ प्रथमासमर्थ ग्रामणीभूत (= नेता–प्रमुख) व्यक्ति के वाचक शब्दों से षष्ठ्यर्थ मे कन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ७८ ॥ बन्धनस्थानीय प्रथमासमर्थ शृङ्खल शब्द से करभ-स्वरूप षष्ठ्यर्थ मे कन् प्रत्यय होता है ॥ ७९ ॥ उद्गत मन वाले व्यक्ति के वाचक उत् शब्द से स्वार्थ मे कन् प्रत्यय होता है ॥ ८० ॥

कालवाचक एवं प्रयोजनवाचक शब्दों से रोग अर्थ मे कन् प्रत्यय होता है ॥ ८१ ॥ बाहुल्येन उपलब्ध होने वाले अन्न के वाचक प्रथमासमर्थ शब्दों से संज्ञाशब्दसिध्यर्थ कन् प्रत्यय होता है ॥८२॥ इस अर्थ में प्रथमासमर्थ (=प्रथमान्त) कुल्माष शब्द से अञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ ८३ ॥ 'वेद पढता है' इस अर्थ में घन्प्रत्ययान्त श्रोत्रिय शब्द का निपातन है ॥८४॥ खाए गए श्राद्धके साधनीभूत द्रव्य के प्रतिपादक प्रथमासमर्थ श्राद्ध शब्द से 'इसके द्वारा' इस अर्थ में इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं ॥ ८५ ॥ क्रियाविशेषणीभूत द्वितीयैकवचनान्त पूर्व शब्द से भी 'अनेन' इस अर्थ में इनि प्रत्यय होता है ॥ ८६ ॥ पूर्वशब्दान्त शब्दों से भी उक्त अर्थ में इनि प्रत्यय हो जाता है ॥ ८७ ॥ प्रथमासमर्थ इष्ट आदि शब्दों से भी 'अनेन' इस अर्थ में इनि प्रत्यय हो जाता है ॥ ८८ ॥ पर्यवस्थाता अर्थ में इन्प्रत्ययान्त परिपन्थिन् एवं परिपरिन् शब्दों का निपातन है ॥ ८९ ॥ अन्वेष्टा अर्थ में अनुपद शब्द से भी इनिप्रत्यय का निपातन है ॥ ९० ॥ साक्षात् देखने वाले के अभिधानार्थ साक्षात् शब्द से इनि प्रत्यय होता है ॥ ९१ ॥ सप्तमीसमर्थ परक्षेत्र शब्द से चिकित्स्य अर्थ में घन् प्रत्यय तथा 'पर' शब्द के

९३ इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा।
९४ तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्।
९५ रसादिभ्यश्च।
९६ प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्।
९७ सिध्मादिभ्यश्च।
९८ वत्सांसाभ्यां कामबले।
९९ फेनादिलच्च।
१०० लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः।
१०१ प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः।
१०२ तपःसहस्राभ्यां विनीनी।
१०३ अण् च।
१०४ सिकताशर्कराभ्यां च।
१०५ देशे लुबिलचौ च।
१०६ दन्त उन्नत उरच्।
१०७ ऊषसुषिमुष्कमधो रः।

लोप का भी निपातन है ॥ ९२ ॥ षष्ठीसमर्थ इन्द्र शब्द से लिङ्ग (=चिह्न) अर्थ में तथा तृतीयासमर्थ इन्द्र शब्द से इष्ट, सृष्ट, जुष्ट तथा दत्त अर्थों में घच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९३ ॥ प्रथमासमर्थ शब्दों से 'इसका है' और 'इसमे है' इन अर्थों में मतुप् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९४ ॥ रस आदि शब्दों से भी उक्त अर्थों में मतुप् प्रत्यय होता है ॥ ९५ ॥ प्राणिस्थित तत्वों के वाचक प्रथमासमर्थ आकारान्त शब्दों से मत्वर्थ में विकल्प से लच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९६ ॥ सिध्म आदि शब्दों से भी विकल्प से मत्वर्थ में लच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९७ ॥ कामवान् एवं बलवान् अर्थों में क्रमशः प्रथमासमर्थ वत्स और अंश शब्दों से भी मत्वर्थ में लच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९८ ॥ फेन शब्द से मत्वर्थ में विकल्प से इलच् प्रत्यय भी होता है और मतुप् प्रत्यय भी ॥ ९९ ॥ प्रथमासमर्थ लोम आदि शब्दों से विकल्प से 'श' एवं मतुप्; पामन् आदि शब्दों से 'न' एवम् मतुप् और पिच्छ आदि शब्दों से इलच् और मतुप् प्रत्यय हो जाते हैं ॥ १०० ॥

प्रथमासमर्थ प्रज्ञा, श्रद्धा और अर्चा शब्दों से मत्वर्थ में विकल्प से 'ण' प्रत्यय भी होता है और मतुप् भी ॥ १०१ ॥ प्रथमासमर्थ तपस् और सहस्र शब्दों से विकल्प से मत्वर्थ में क्रमशः विन् और इनि प्रत्यय हो जाते हैं ॥१०२॥ इन शब्दों से अण् प्रत्यय भी होता है ॥ १०३ ॥ सिकता और शर्करा शब्दों से भी मत्वर्थ में अण् प्रत्यय हो जाता है ॥ १०४ ॥ यदि देश अभिधेय हो तब तो सिकता और शर्करा शब्दों से विकल्प से इलच्, अण् और मतुप् प्रत्यय भी होते हैं और विकल्प से ही इन प्रत्ययों का लुक् भी ॥ १०५ ॥ उन्नतदन्त-प्रतिपादक प्रथमासमर्थ दन्त शब्द से मत्वर्थ में उरच् प्रत्यय होता है ॥ १०६ ॥ ऊष, सुषि, मुष्क और मधु शब्दों से मत्वर्थ में 'र' प्रत्यय होता है ॥ १०७ ॥

१०८ द्युद्रुभ्यां मः ।	११५ अत इनिठनौ ।
१०९ केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ।	११६ व्रीह्यादिभ्यश्च ।
११० गाण्ड्यजगात् संज्ञायाम् ।	११७ तुन्दादिभ्य इलच्च ।
१११ काण्डाण्डादीरन्नीरचौ ।	११८ एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम् ।
११२ रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् ।	११९ शतसहस्रान्ताच्च निष्कात् ।
११३ दन्तशिखात् संज्ञायाम् ।	१२० रूपादाहतप्रशंसयोर्यप् ।
११४ ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसाः ।	१२१ अस्मायामेधास्रजो विनिः ।
	१२२ बहुलं छन्दसि ।
	१२३ ऊर्णाया युस् ।

द्यु और द्रु शब्दों से मत्वर्थ में 'म' प्रत्यय होता है ॥ १०८ ॥ केश शब्द से मत्वर्थ में विकल्प से 'व' प्रत्यय भी होता है ॥ १०९ ॥ यदि प्रत्ययान्त संज्ञा शब्द हो तो गाण्डी और अजग शब्दों से भी मत्वर्थ में 'व' प्रत्यय होता है ॥ ११० ॥ काण्ड और अण्ड शब्दों से मत्वर्थ में क्रमशः ईरन् और इरच् प्रत्यय होते हैं ॥ १११ ॥ रजस् आदि शब्दों से मत्वर्थ में वलच् प्रत्यय होता है ॥ ११२ ॥ यदि प्रत्ययान्त संज्ञा शब्द हो तो दन्त और शिखा शब्दों से भी मत्वर्थ में वलच् प्रत्यय होता है ॥ ११३ ॥ संज्ञा शब्द के रूप में मत्वर्थप्रत्ययान्त ज्योत्स्ना, तमिस्रा, शृङ्गिण, ऊर्जस्विन्, ऊर्जस्वल, गोमिन्, मलिन और मलीमस शब्दों का निपातन है ॥ ११४ ॥ अदन्त शब्दों से मतुबर्थ में विकल्प से इनि एवं ठन् प्रत्यय होते हैं ॥ ११५ ॥ व्रीहि आदि शब्दों से भी मत्वर्थ में उक्त प्रत्यय होते हैं ॥ ११६ ॥ तुन्द आदि शब्दों से तो मत्वर्थ में इलच् प्रत्यय भी होता है ॥ ११७ ॥ किन्तु 'एक'-शब्दपूर्वक तथा 'गो'-शब्दपूर्वक शब्दों से तो नित्य[1] ही मत्वर्थ में इलच् प्रत्यय होता है ॥ ११८ ॥ निष्कशत और निष्कसहस्र शब्दों से भी मत्वर्थ में इलच् प्रत्यय होता है ॥ ११९ ॥ आहतोपाधिक एवं प्रशंसोपाधिक रूप शब्द से मत्वर्थमें यप् प्रत्यय होता है ॥ १२० ॥

असन्त शब्दों और माया, मेधा एवं स्रज् शब्दों से भी मत्वर्थ में विनि प्रत्यय होता है ॥ १२१ ॥ छन्दोविषय में तो मत्वर्थक विनि प्रत्यय बहुल रूप में होता है ॥ १२२ ॥ ऊर्णा शब्द से मत्वर्थ में युस् प्रत्यय होता है ॥ १२३ ॥

१. पूर्वसूत्र में चकार से मतुबादि का भी समुच्चय होने से इलच् का वैकल्पिकत्व प्राप्त है । अतएव इस सूत्र में नित्य-ग्रहण सार्थक है ।

१२४ वाचो ग्मिनिः ।
१२५ आलजाटचौ बहुभाषिणि ।
१२६ स्वामिन्नैश्वर्ये ।
१२७ अर्शआदिभ्योऽच् ।
१२८ द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्प्राणिस्थादिनिः ।
१२९ वातातीसाराभ्यां कुक् च ।
१३० वयसि पूरणात् ।
१३१ सुखादिभ्यश्च ।
१३२ धर्मशीलवर्णान्ताच्च ।
१३३ हस्ताज्जातौ ।
१३४ वर्णाद् ब्रह्मचारिणि ।
१३५ पुष्करादिभ्यो देशे ।
१३६ बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् ।
१३७ संज्ञायां मन्माभ्याम् ।
१३८ कंशम्भ्यां बभयुस्तितुतयसः ।
१३९ तुन्दिबलिवटेर्भः ।

वाच् शब्द से मत्वर्थ में ग्मिनि प्रत्यय होता है ॥ १२४ ॥ प्रत्ययान्त का अभिधेय यदि बहुभाषी तो वाच् शब्द से मत्वर्थ में आलच् और आटच् प्रत्यय हो जाते हैं ॥ १२५ ॥ ऐश्वर्यवाचक स्व शब्द से मत्वर्थ में आमिन् प्रत्यय का निपातन है ॥ १२६ ॥ अर्शस् आदि शब्दों से मत्वर्थ में अच् प्रत्यय हो जाता है ॥ १२७ ॥ द्वन्द्वसमासनिष्पन्न शब्दों, रोगार्थक शब्दों, प्राणियों में विद्यमान निन्द्य पदार्थ के वाचक शब्दों से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय होता है ॥ १२८ ॥ वात तथा अतिसार शब्दों से मत्वर्थ मे इनि प्रत्यय भी होता है और प्रकृति को कुक् का आगम भी ॥ १२९ ॥ पूरणप्रत्ययान्त शब्दों से भी वयस् के द्योतनार्थ मत्वर्थ में इनि प्रत्यय हो जाता है ॥ १३० ॥ सुख आदि शब्दों से भी मत्वर्थ में इनि प्रत्यय हीं होता है ॥ १३१ ॥ धर्म आदि शब्द जिनके अन्त में हों उन से भी मत्वर्थ में इनि प्रत्यय ही होता है ॥ १३२ ॥ यदि प्रत्ययान्त का वाच्य जाति विशेष हो तो हस्त शब्द से भी मत्वर्थ में इनि प्रत्यय ही होता है ॥ १३३ ॥ प्रत्ययान्त से ब्रह्मचारी का प्रतिपादन करने के लिए वर्ण शब्द से भी मत्वर्थ में इनि प्रत्यय ही होता है ॥ १३४ ॥ समुदाय से देश के अभिधानार्थ पुष्कर आदि शब्दों से भी मत्वर्थ में इनि प्रत्यय हीं होता है ॥ १३५ ॥

बल आदि शब्दों से तो मत्वर्थ में विकल्प से मतुप् भी हो जाता है (और इनि प्रत्यय भी) ॥१३६॥ संज्ञाशब्द के निष्पादनार्थ मन्नन्त एवं मकारान्त शब्दों से भी इनि प्रत्यय ही होता है ॥ १३७ ॥ कम् और शम् शब्दों से मत्वर्थ में 'ब', 'भ', युस्, 'ति', 'तु', 'त', और यस् प्रत्यय हो जाते हैं ॥ १३८ ॥ तुन्दि, बलि,

१४० अहंशुभमोर्युस् ।

तृतीयः पादः

१ प्राग्दिशो विभक्तिः ।
२ किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः
३ इदम् इश् ।
४ एतेतौ रथोः ।
५ एतदोऽन् ।
६ सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ।
७ पञ्चम्यास्तसिल् ।
८ तसेश्च ।
९ पर्यभिभ्यां च ।
१० सप्तम्यास्त्रल् ।
११ इदमो हः ।
१२ किमोऽत् ।
१३ वा ह च च्छन्दसि ।

और वटि शब्दों से मत्वर्थ में 'म' प्रत्यय होता है ॥ १३९ ॥ अहम् (=अहङ्कार) और शुभम् शब्दों से मत्वर्थ में युस् प्रत्यय हो जाता है ॥ १४० ॥

पञ्चमाध्याय का द्वितीय पाद समाप्त ॥

पञ्चमाध्याय का तृतीय पाद

"दिक्-शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः" इस सूत्र से पूर्व जिनका विधान किया जा रहा है[1] उनकी संज्ञा 'विभक्ति' है ॥ १ ॥ 'किम् शब्द से', 'द्वि आदि सर्वनामों से अन्य सर्वनाम-संज्ञक शब्दों से' और 'बहु शब्द से' इनका अधिकार है[2] ॥२॥ प्राग्दिशीय प्रत्ययों के परे इदम् के स्थान में इश् आदेश हो जाता है ॥३॥ रेफादि तथा थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्ययों के परे इदम् के स्थान में एत तथा इत आदेश हो जाते हैं ॥ ४ ॥ प्राग्दिशीय प्रत्ययों के परे एतद् शब्द को अश् आदेश हो जाता है ॥ ५ ॥ दकारादि प्राग्दिशीय प्रत्ययों के परे सर्व शब्द के स्थान में विकल्प से 'स' आदेश हो जाता है ॥ ६ ॥ पञ्चम्यन्त किम् आदि शब्दों के स्थान में तसिल् आदेश हो जाता है ॥ ७ ॥ पञ्चम्यन्त किम् आदि शब्दों से विहित तसि के स्थान में भी तसिल् आदेश हो जाता है ॥ ८ ॥ सप्तम्यन्त किम् आदि शब्दों के स्थान में त्रल् आदेश हो जाता है ॥ १० ॥ सप्तम्यन्त इदम् शब्द से 'ह' प्रत्यय हो जाता है (सप्तमी के स्थान में 'ह' आदेश हो जाता है) ॥ ११ ॥ सप्तम्यन्त किम् शब्द से अत् प्रत्यय होता है ॥ १२ ॥ किन्तु छन्दो-

१. इन्हीं प्रत्ययों को प्राग्दिशीय प्रत्यय कहते हैं ।
२. यह अधिकार भी "दिक्-शब्देभ्यः" सूत्र से पूर्व तक है ।

१४ इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ।
१५ सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा । ६
१६ इदमो र्हिल् ।
१७ अधुना ।
१८ दानीं च ।
१९ तदो दा च ।
२० तयोर्दार्हिलौ च च्छन्दसि ।
२१ अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् ।
२२ सद्यः परुत्परार्यैषमःपरेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः ।
२३ प्रकारवचने थाल् ।
२४ इदमस्थमुः ।
२५ किमश्च ।
२६ था हेतौ च च्छन्दसि ।
२७ दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः ।
२८ दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् ।

विषय में सप्तम्यन्त किम् शब्द से विकल्प से 'ह' प्रत्यय भी होता है और अत् प्रत्यय भी ॥ १३ ॥ तसिल् आदि प्रत्यय अन्य-विभक्त्यन्त शब्दों से भी विहित देखे जाते हैं ॥ १४ ॥ सप्तम्यन्त सर्व, एक, अन्य, किम् , यत् और तत् शब्दों से कालार्थक 'दा' प्रत्यय होता है ॥ १५ ॥ सप्तम्यन्त इदम् शब्द से कालार्थ में र्हिल् प्रत्यय होता है ॥ १६ ॥ सप्तम्यन्त इदम् शब्द से कालार्थ में अधुना प्रत्यय भी होता है और इदम् के स्थान में अश् आदेश भी ॥ १७ ॥ सप्तम्यन्त इदम् शब्द से कालार्थ में दानीम् प्रत्यय भी होता है ॥ १८ ॥ सप्तम्यन्त तत् शब्द से कालार्थक 'दा' प्रत्यय भी होता है और दानीम् प्रत्यय भी ॥ १९ ॥ किन्तु छन्दोविषय में इदम् एवम् तद् शब्दों से क्रमशः दा और र्हिल् प्रत्यय भी हो जाते हैं ॥ २० ॥ सप्तम्यन्त किम् आदि शब्दों से अनद्यतनकाल अर्थ में विकल्प से र्हिल् प्रत्यय होता है ॥ २१ ॥ सप्तम्यन्त प्रकृतियों से कालार्थ में सद्यः, परुत्, परारि, ऐषम, परेद्यवि, अद्य, पूर्वेद्युः, अन्येद्युः, अन्यतरेद्युः, इतरेद्युः, अधरेद्युः, उभयेद्युः और उत्तरेद्युः शब्दों का निपातन होता है ॥ २२ ॥ प्रकारवृत्ती किम् आदि शब्दो से स्वार्थ में थाल् प्रत्यय होता है ॥ २३ ॥ किन्तु प्रकारवृत्ती इदम् शब्द से स्वार्थ में थमु प्रत्यय होता है ॥ २४ ॥ प्रकारवृत्ती किम् शब्द से भी स्वार्थ में थमु प्रत्यय होता है ॥ २५ ॥ परन्तु छन्दोविषय में ता हेतुवृत्ती किम् शब्द से स्वार्थ में था प्रत्यय भी देखा जाता है ॥ २६ ॥ दिक् अर्थ में रूढ (= दिक्-शब्द) सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त एवं प्रथमान्त दिग्वृत्ती, देशवृत्ती और कालवृत्ती शब्दों से स्वार्थ में अस्ताति प्रत्यय होता है ॥ २७ ॥ सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त

२९ विभाषा परावराभ्याम्।
३० अञ्चेर्लुक्।
३१ उपर्युपरिष्टात्।
३२ पश्चात्।
३३ पश्च पश्चा च च्छन्दसि।
३४ उत्तराधरदक्षिणादातिः।
३५ एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः।
३६ दक्षिणादाच्।
३७ आहि च दूरे।
३८ उत्तराच्च।
३९ पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम्।
४० अस्ताति च।
४१ विभाषाऽवरस्य।

तथा प्रथमान्त (यथासम्भव) दिग्देशकालवृत्ती दक्षिणा एवम् उत्तरा शब्दों से स्वार्थ में अतसुच् प्रत्यय हो जाता है॥ २८॥ किन्तु पर एवम् अवर शब्दों से अस्ताति प्रत्यय के अर्थ में विकल्प से ही अतसुच् प्रत्यय होता है॥ २९॥ अञ्च्शब्दान्त दिक्-शब्द से विहित अस्ताति प्रत्यय का लुक् हो जाता है॥३०॥ अस्तात्यर्थक प्रत्यय के अर्थ में ऊर्ध्व शब्द से रिल् एवम् रिष्टातिल् प्रत्यय होते हैं और ऊर्ध्व के स्थान में उप आदेश भी॥ ३१॥ अस्तात्यर्थ में अपर शब्द से आति प्रत्यय तथा अपर के स्थान में पश्च आदेश भी हो जाता है है॥ ३२॥ किन्तु छन्दोविषय में अस्तात्यर्थ में अपर शब्द से 'अ' एवम् 'आ' प्रत्यय भी होते हैं और अपर के स्थान में पश्च आदेश भी॥ ३३॥ अस्तात्यर्थ में उत्तर, अधर और दक्षिण शब्दों से आति प्रत्यय हो जाता है॥ ३४॥ किन्तु पञ्चम्यन्त से अतिरिक्त (अर्थात् सप्तम्यन्त एवं प्रथमान्त) उत्तर, अधर, एवम् दक्षिण शब्दों से अवधि तथा अवधिमान् के बीच सामीप्य होने पर अस्तात्यर्थ में विकल्प से एनप् प्रत्यय भी होता है॥ ३५॥ सप्तम्यन्त एवं प्रथमान्त दक्षिण शब्द से अस्तात्यर्थ में आच् प्रत्यय होता है॥ ३६॥ किन्तु यदि अवधि तथा अवधिमान् के बीच दूरी हो तब तो दक्षिण शब्द से आहि प्रत्यय भी हो जाता है॥ ३७॥ यदि अवधि तथा अवधिमान् में दूरी हो तो सप्तम्यन्त और प्रथमान्त उत्तर शब्द से भी आच् एवम् आहि प्रत्यय हो जाते हैं॥ ३८॥ सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त एवम् प्रथमान्त पूर्व, अधर एवम् अवर शब्दों से अस्तात्यर्थ में असि प्रत्यय होता है और क्रमशः प्रकृतियों के स्थान में पुर, अध्, और अव् आदेश भी॥ ३९॥ पूर्व आदि शब्दों के स्थान में अस्ताति प्रत्यय के परे भी उपर्युक्त आदेश होते हैं॥ ४०॥

किन्तु अस्ताति प्रत्यय के परे अवर शब्द के स्थान में उक्त अव् आदेश

४२ संख्याया विधार्थे धा ।
४३ अधिकरणविचाले च ।
४४ एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम् ।
४५ द्वित्र्योश्च धमुञ् ।
४६ एधाच्च ।
४७ याप्ये पाशप् ।
४८ पूरणाद्भागे तीयादन् ।
४९ प्रागेकादशभ्योऽच्छन्दसि ।
५० षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च ।
५१ मानपश्वङ्गयोः कन्लुकौ च ।
५२ एकादाकिनिच्चासहाये ।
५३ भूतपूर्वे चरट् ।
५४ षष्ठ्या रूप्य च ।
५५ अतिशायने तमबिष्ठनौ ।
५६ तिङश्च ।

विकल्प से ही होता है ॥ ४१ । विधा (=क्रिया का प्रकार) अर्थ में वर्तमान संख्यावाचक शब्दों से स्वार्थ में 'धा' प्रत्यय होता है ॥ ४२ ॥ द्रव्य की संख्या में परिवर्तन गम्यमान होने पर भी संख्यावाचक शब्दों से स्वार्थ में 'धा' प्रत्यय हो जाता है ॥ ४३ ॥ एक शब्द से विहित 'धा' प्रत्यय के स्थान में विकल्प से ध्यमुञ् आदेश हो जाता है ॥ ४४ ॥ द्वि और त्रि शब्दों से विहित 'धा' के स्थान में विकल्प से धमुञ् आदेश हो जाता है ॥ ४५ ॥ द्वि एवम् त्रि शब्दों से विहित 'धा' प्रत्यय के स्थान में विकल्प से एधाच् आदेश भी होता है ॥ ४६ ॥ कुत्सितार्थवृत्ती शब्दों से स्वार्थ में पाशप् प्रत्यय होता है ॥ ४७ ॥ पूरणार्थक तीय प्रत्यय से विशिष्ट (=तीय-प्रत्ययान्त) शब्दों से भाग अर्थ में अन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ४८ ॥ एकादश के पूर्वभावी संख्या के बाचक शब्द यदि पूरणप्रत्ययान्त एवं भागार्थक हों तो उनसे भी लोकविषय में अन प्रत्यय हो जाता है ॥ ४९ ॥

भाग के अभिधेय होने पर लोकविषय में षष्ठ और अष्टम शब्दों से 'ञ' प्रत्यय भी होता है और अन् प्रत्यय भी ॥ ५० ॥ मान के प्रतिपादक षष्ठ शब्द से विहित कन् प्रत्यय का और पश्वङ्ग के प्रतिपादक अष्टम शब्द से विहित 'ञ' और अन् प्रत्यय का विकल्प से लुक् भी हो जाता है ॥ ५१ ॥ असहायवाची एक शब्द से आकिनिच् और कन् प्रत्यय भी होते हैं और विकल्प से इनका लुक् भी ॥ ५२ ॥ भूतपूर्वत्वविशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान शब्दों से चरट् प्रत्यय होता है ॥ ५३ ॥ षष्ठयन्त शब्दों से भूतपूर्व अर्थ में रूप्य प्रत्यय भी होता है और चरट् प्रत्यय भी ॥ ५४ ॥ प्रकर्षविशिष्ट अर्थ में विद्यमान शब्दों से स्वार्थ में तमप् और इष्ठन् प्रत्यय होते हैं ॥ ५५ ॥ प्रकर्ष के द्योत्य होने पर तिङन्त शब्दों से

५७ द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ।
५८ अजादी गुणवचनादेव।
५९ तुश्छन्दसि।
६० प्रशस्यस्य श्रः।
६१ ज्य च।
६२ वृद्धस्य च।
६३ अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ।
६४ युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्।
६५ विन्मतोर्लुक्।
६६ प्रशंसायां रूपप्।
६७ ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः।
६८ विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु।
६९ प्रकारवचने जातीयर्।
७० प्रागिवात् कः।
७१ अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः।

भी तमप् प्रत्यय होता है ॥ ५६ ॥ द्विवचन एवं विभज्य (=विभक्तव्य) के उपपद होने पर अतिशययुक्त पदार्थ के प्रतिपादक शब्द से तरप् और ईयसुन् प्रत्यय होते हैं ॥ ५७ ॥ इनमे से अजादि—इष्ठन् और ईयसुन्—प्रत्यय गुणवचन शब्दों से ही होते हैं। ५८ ॥ तृन् तथा तृच् प्रत्ययों से निष्पन्न शब्दों से भी छन्दोविषय में इष्ठन तथा ईयसुन् प्रत्यय होते हैं ॥ ५९ ॥ इन अजादि प्रत्ययों के परे रहते प्रशस्य शब्द के स्थान में 'श्र' आदेश हो जाता है ॥ ६० ॥

प्रशस्य शब्द को 'ज्य' आदेश भी हो जाता है ॥ ६१ ॥ अजादि प्रत्ययों के परे वृद्ध शब्द के स्थान में भी 'ज्य' आदेश हो जाता है ॥ ६२ ॥ अजादि प्रत्ययों के परे अन्तिक और बाढ़ शब्दों के स्थान में क्रमशः नेद और साध आदेश हो जाते हैं ॥ ६३ ॥ अजादि प्रत्ययों के परे युवन् एवम् अल्प शब्दों के स्थान में विकल्प से कन् आदेश हो जाता है ॥ ६४ ॥ अजादि प्रत्ययों के परे विन् और मतुप् प्रत्ययों का लुक् हो जाता है ॥ ६५ ॥ प्रशंसाविशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान शब्दों से स्वार्थ में रूपप् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६६ ॥ पूर्ण होने में कुछ कमी (=ईषदसमाप्ति) अर्थ में सुबन्त से कल्पप्, देश्य और देशीयर् प्रत्यय होते हैं ॥ ६७ ॥ ईषदसमाप्ति अर्थ में सुबन्त से विकल्प से प्रकृति के पूर्वावयव के रूप में बहुच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६८ ॥ प्रकारविशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान शब्दों से स्वार्थ में जातीयर् प्रत्यय होता है ॥ ६९ ॥ "इवे प्रतिकृतौ"[1] सूत्र से पूर्व 'क' प्रत्यय का अधिकार है ॥ ७० ॥ अव्ययसंज्ञक और सर्वनामसंज्ञक शब्दों से 'टि' के पूर्व प्रागिवीय अर्थों में अकच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ७१ ॥

१. इस सूत्र से पूर्व निर्दिष्ट प्रत्ययार्थों को 'प्रागिवीय अर्थ' और प्रत्ययों को 'प्रागिवीय प्रत्यय' कहते हैं।

७२ कस्य च दः ।
७३ अज्ञाते ।
७४ कुत्सिते ।
७५ संज्ञायां कन् ।
७६ अनुकम्पायाम् ।
७७ नीतौ च तद्युक्तात् ।
७८ बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज्वा ।
७९ घनिलचौ च ।
८० प्राचामुपादेरडज्वुचौ च ।
८१ जातिनाम्नः कन् ।
८२ अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च ।
८३ ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः ।
८४ शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात् ।
८५ अल्पे ।
८६ ह्रस्वे ।

प्रत्यय के योग में ककारान्त ('अव्यय'-संज्ञक) शब्दों के (अन्त्य ककार के) स्थान में दकारादेश हो जाता है ॥७२॥ अज्ञ तत्वविशिष्ट अर्थ में वर्तमान (सुबन्त और तिङन्त) शब्दों से स्वार्थ मे यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥ ७३ ॥ कुत्सितत्व-विशिष्ट अर्थ में वर्तमान शब्दों से भी स्वार्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ॥७४॥ कुत्सितत्वविशिष्ट अर्थ में विद्यमान सुबन्त से संज्ञाशब्द के निष्पादनार्थ कन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ७५ ॥ अनुकम्पा गम्यमान होने पर भी सुबन्त एवं तिङन्त से यथाविहित 'क' प्रत्यय होता है ॥ ७६ ॥ सामदानादि नीति के गम्यमान होने पर भी अनुकम्पाविशिष्टार्थवाचक शब्दों से यथाविहित 'क' प्रत्यय होता है ॥ ७७ ॥ नीति के गम्यमान होने पर अनुकम्पायुक्तार्थवृत्ती अनेकाच् एवं मनुष्यनामभूत सुबन्तों से ठच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ७८ ॥ उक्त सुबन्तों से घन् और इलच् प्रत्यय भी होते हैं ॥ ७९ ॥ उक्त परिस्थिति में उप शब्द जिनके आदि में हो उन अनेकाच् तथा मनुष्यनामभूत शब्दों से विकल्प से अडच् , वुच् (घन्, इलच् और ठच्) प्रत्यय भी होते हैं ॥ ८० ॥

नीति गम्यमान होने पर अनुकम्पाविशिष्टार्थवृत्ती जातिवाचक अनेकाच् शब्द यदि मनुष्यनामभूत हों तो उनसे भी कन् प्रत्यय होता है ॥ ८१ ॥ अजिन-शब्दान्त मनुष्यनामभूत शब्दों से भी अनुकम्पा के गम्यमान होने पर कन् प्रत्यय तथा उत्तरपद का लोप हो जाता है ॥ ८२ ॥ इस प्रकरण में विहित ठच् एवम् अजादि प्रत्ययों के परे प्रकृतिभूत शब्दों के द्वितीय अच् से उत्तरवर्ती भाग का लोप हो जाता है ॥ ८३ ॥ मनुष्यनामभूत शेवल, सुपरि, विशाल, वरुण और अर्यमन् शब्दों के तृतीय अच् से उत्तरवर्ती भाग का ठच् प्रत्यय और अजादि प्रत्ययों के परे लोप हो जाता है ॥ ८४ ॥ अल्पत्वविशिष्टार्थवृत्ती शब्दों से यथा-विहित प्रत्यय (= कन् प्रत्यय) होता है ॥ ८५ ॥ ह्रस्वत्वविशिष्टार्थवृत्ती शब्दों से

८७ संज्ञायां कन्।
८८ कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः।
८९ कुत्वा डुपच्।
९० कासूगोणीभ्यां ष्टरच्।
९१ वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे।
९२ किंयत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्।
९३ वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्।
९४ एकाच्च प्राचाम्।
९५ अवक्षेपणे कन्।
९६ इवे प्रतिकृतौ।
९७ संज्ञायां च।
९८ लुम्मनुष्ये।
९९ जीविकार्थे चापण्ये।
१०० देवपथादिभ्यश्च।

भी यथाविहित प्रत्यय होता है ॥ ८६ ॥ ह्रस्वत्व-हेतुक संज्ञा के गम्यमान होने पर भी कन् प्रत्यय होता है ॥ ८७ ॥ ह्रस्वत्वविशिष्टार्थवृत्ती कुटी, शमी और शुण्डा शब्दों से 'र' प्रत्यय होता है ॥ ८८ ॥ ह्रस्वत्व द्योत्य होने पर कुतू शब्द से डुपच् प्रत्यय होता है ॥ ८९ ॥ ह्रस्वत्व द्योत्य होने पर कासू और गोणी शब्दों से ष्टरच् प्रत्यय होता है ॥ ९० ॥ तनुत्व द्योत्य होने पर वत्स, उक्षन्, अश्व और ऋषभ शब्दों से भी ष्टरच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९१ ॥ दो में एक का निर्धारण यदि कर्त्तव्य हो तो किम्, यत् और तत् शब्दों से डतरच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९२ ॥

किन्तु बहुत में एक का निर्धारण कर्त्तव्य होने पर जाति तथा परिप्रश्न में वर्त्तमान किम्, यत् और तत् शब्दों से डतमच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९३ ॥ प्राच्यदेशवर्त्ती आचार्यों के मत में 'एक' शब्द से उक्त दोनों परिस्थितियों में क्रमशः डतरच् एवम् डतमच् प्रत्यय हो जाते हैं ॥ ९४ ॥ अवक्षेपसाधनीभूत अर्थ में विद्यमान शब्दों से कन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९५ ॥ प्रतिमा-स्वरूप इवार्थ में वृत्ती (=सादृश्य-प्रतियोगिभूत पदार्थ के प्रतिपादक) शब्दों से कन् प्रत्यय प्रत्यय हो जाता है ॥ ९६ ॥ समुदाय से संज्ञा यदि गम्यमान हो तो भी इवार्थ में कन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९७ ॥ यदि प्रत्ययान्त का वाच्य कोई मनुष्य हो तो संज्ञा-विहित कन् प्रत्यय का लुप् हो जाता है ॥ ९८ ॥ जीविका के साधनीभूत किन्तु अपण्य (=अविक्रीयमाण) पदार्थ के वाच्य होने पर भी इवार्थविहित कन् प्रत्यय का लुप् हो जाता है ॥ ९९ ॥ देवपथ आदि शब्दों से भी इवार्थविहित कन् प्रत्यय का लुप् हो जाता है ॥ १०० ॥

१०१ वस्तेर्ढञ् ।
१०२ शिलाया ढः ।
१०३ शाखादिभ्यो यः ।
१०४ द्रव्यं च भव्ये ।
१०५ कुशाग्राच्छः ।
१०६ समासाच्च तद्विषयात् ।
१०७ शर्करादिभ्योऽण् ।
१०८ अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक् ।
१०९ एकशालायाष्ठजन्यतरस्याम् ।
११० कर्कलोहितादीकक् ।
१११ प्रत्नपूर्वविश्वेमात्थाल्छन्दसि ।
११२ पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात् ।
११३ व्रातच्फञोरस्त्रियाम् ।
११४ आयुधजीविसंघाञ्ञ्यड्-
वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात् ।
११५ वृकाट्टेण्यण् ।

वस्ति शब्द से इवार्थ में ढञ् प्रत्यय होता है ॥ १०१ ॥ शिला शब्द से इवार्थ में 'ढ' प्रत्यय होता है ॥ १०२ ॥ शाखा आदि शब्दों से इवार्थ में 'य'[१] प्रत्यय होता है ॥ १०३ ॥ यदि प्रत्यान्त द्वारा भव्य का अभिधान चिकीर्षित हो तो द्रु शब्द से इवार्थ में, यत् प्रत्यय हो जाता है ॥ १०४ ॥ कुशाग्र शब्द से इवार्थ में 'छ' प्रत्यय होता है ॥ १०५ ॥ इवार्थविषयक समास से निष्पन्न शब्दों से भी 'छ' प्रत्यय हो जाता है ॥ ६ ॥ शर्करा आदि शब्दों से इवार्थ में अण् प्रत्यय हो जाता है ॥ १०७ ॥ अङ्गुली आदि शब्दों से इवार्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ १०८ ॥ एकशाला शब्द से इवार्थ में विकल्प से ठच् प्रत्यय होता है ॥१०९॥ कर्क और लोहित शब्दों से इवार्थ में ईकक् प्रत्यय होता है ॥ ११० ॥

छन्दोविषय में प्रत्न, पूर्व, विश्व और इम शब्दों से इवार्थ में थाल् प्रत्यय होता है ॥१११॥ पूग (=संघ) के वाचक शब्दों से, यदि उस संघ में ग्रामणी—ग्रामप्रमुख समाविष्ट न हो तो ञ्य प्रत्यय हो जाता है ॥ ११२ ॥ स्त्रीविषय से भिन्न विषय में [२]व्रातवाची शब्दों और च्फञ्-प्रत्ययान्त शब्दों से भी ञ्य प्रत्यय हो जाता है ॥ ११३ ॥ वाहीकदेशवृत्ती आयुधजीवियों के सङ्घ के वाचक शब्दों में ब्राह्मण-विशेषवाचक एवं राजन्यवाचक शब्दों से भिन्न शब्दों से स्वार्थ में ञ्यट् प्रत्यय हो जाता है ॥ ११४ ॥ आयुधजीविसङ्घवाचक वृक शब्द से टेण्यण् प्रत्यय होता

---

१. काशिकाकार के मत मे यत् प्रत्यय का विधान किया गया है ।

२. जिनकी कोई निश्चित जीविका न हो उनके समूह को 'पूग' कहते हैं और जिनकी जीविका उत्सेध (= शारीरिक श्रम हो) उनके समूह को 'व्रात' ।

११६ दामन्यादित्रिगर्तषष्ठाच्छः ।

११७ पर्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ ।

११८ अभिजिद्विदभृच्छालावच्छिखावच्छमीवदूर्णावच्छ्रुमदणो यञ् ।

११९ ञ्यादयस्तद्राजाः ।

चतुर्थः पादः ।

१ पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन्लोपश्च ।

२ दण्डव्यवसर्गयोश्च ।

३ स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् ।

४ अनत्यन्तगतौ क्तात् ।

५ न सामिवचने ।

है ॥ ११५ ॥ आयुधजीविसंघवाची दामनी आदि शब्दों और त्रिगर्तषष्ठ[1] (अर्थात् जिन आयुधजीवियों के छः अन्तर्वर्ग हैं तथा छठा त्रिगर्त है उन) शब्दों से 'छ' प्रत्यय हो जाता है ॥११६॥ आयुधजीविसंघवाची पार्श्व आदि शब्दों और यौधेय आदि शब्दों से स्वार्थ में क्रमशः अण् और अञ् प्रत्यय हो जाते हैं ॥ ११७ ॥ आयुधजीविसंघवाची अण्-प्रत्ययान्त अभिजित्, विदभृत, शालावत्, शिलावत्, शमीवत्, उर्णावत् और श्रुमत् शब्दों से यञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ ११८ ॥ "पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात्" सूत्र से अब तक जितने प्रत्ययों का विधान किया गया है उन सब की संज्ञा "तद्राज" है ॥ ११९ ॥

पञ्चमाध्याय का तृतीय पाद समाप्त ।

पञ्चमाध्याय का चतुर्थ पाद

संख्यावाचीपूर्वकपद क पाद-शब्दान्त और शत-शब्दान्त शब्दों से वीप्सा गम्यमान होने पर में वुन् प्रत्यय भी होता है और प्रकृति के अन्त्य वर्ण का लोप भी ॥ १ ॥ दण्ड तथा व्यवसर्ग (= दान) गम्यमान होने पर भी उक्त शब्दों से वुन् प्रत्यय तथा अन्तलोप हो जाते हैं ॥ २ ॥ प्रकार (= भेद और सादृश्य) के द्योतनार्थ स्थूल आदि शब्दों से कन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३ ॥ अनत्यन्त गति (अत्यन्त = पूर्ण, गति = सम्बन्ध, न = अभाव) गम्यमान होने पर क्त-प्रत्ययान्त शब्दों से भी कन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ४ ॥ किन्तु सामि (= आधा)

१. इस प्रसङ्ग में निम्ननिर्दिष्ट स्मृति द्रष्टव्य है—
आहुस्त्रिगर्तषष्ठांस्तु कौण्डोपरथदाण्डकी ।
क्रौष्टकिर्जालमानिश्च ब्रह्मगुप्तोऽथ जानकिः ॥ (सिद्धान्तकौमुदी में 'जानकिः' के स्थान में 'आलकिः' यह पाठ है)।

१०१ वस्तेर्ढञ् ।
१०२ शिलाया ढः ।
१०३ शाखादिभ्यो यः ।
१०४ द्रव्यं च भव्ये ।
१०५ कुशाग्राच्छः ।
१०६ समासाच्च तद्विषयात् ।
१०७ शर्करादिभ्योऽण् ।
१०८ अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक् ।
१०९ एकशालायाष्ठजन्यतरस्याम् ।
११० कर्कलोहितादीकक् ।
१११ प्रत्नपूर्वविश्वेमात्थाल्छन्दसि ।
११२ पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात् ।
११३ व्रातच्फञोरस्त्रियाम् ।
११४ आयुधजीविसंघाञ्ञ्यड्-वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात् ।
११५ वृकाट्टेण्यण् ।

वस्ति शब्द से इवार्थ में ढञ् प्रत्यय होता है ॥ १०१ ॥ शिला शब्द से इवार्थ मे 'ठ' प्रत्यय होता है ॥ १०२ ॥ शाखा आदि शब्दों से इवार्थ में 'य'[1] प्रत्यय होता है ॥ १०३ ॥ यदि प्रत्यान्त द्वारा भव्य का अभिधान चिकीर्षित हो तो द्रु शब्द से इवार्थ में, यत् प्रत्यय हो जाता है ॥ १०४ ॥ कुशाग्र शब्द से इवार्थ में 'छ' प्रत्यय होता है ॥ १०५ ॥ इवार्थविषयक समास से निष्पन्न शब्दों से भी 'छ' प्रत्यय हो जाता है ॥ ६ ॥ शर्करा आदि शब्दों से इवार्थ में अण् प्रत्यय हो जाता है ॥ १०७ ॥ अङ्गुली आदि शब्दों से इवार्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ १०८ ॥ एकशाला शब्द से इवार्थ में विकल्प से ठच् प्रत्यय होता है ॥१०९॥ कर्क और लोहित शब्दों से इवार्थ में ईकक् प्रत्यय होता है ॥ ११० ॥

छन्दोविषय में प्रत्न, पूर्व, विश्व और इम शब्दों से इवार्थ में थाल् प्रत्यय होता है ॥१११॥ पूग (=संघ) के वाचक शब्दों से, यदि उस संघ में ग्रामणी—ग्रामप्रमुख समाविष्ट न हो तो ञ्य प्रत्यय हो जाता है ॥ ११२ ॥ स्त्रीविषय से भिन्न विषय में [2]व्रातवाची शब्दों और च्फञ्-प्रत्ययान्त शब्दों से भी ञ्य प्रत्यय हो जाता है ॥ ११३ ॥ वाहीकदेशवृत्ती आयुधजीवियों के सङ्घ के वाचक शब्दों में ब्राह्मण-विशेषवाचक एवं राजन्यवाचक शब्दों से भिन्न शब्दों से स्वार्थ में ञ्यट् प्रत्यय हो जाता है ॥ ११४ ॥ आयुधजीविसङ्घवाचक वृक शब्द से टेण्यण् प्रत्यय होता

१. काशिकाकार के मत मे यत् प्रत्यय का विधान किया गया है ।

२. जिनकी कोई निश्चित जीविका न हो उनके समूह को 'पूग' कहते हैं और जिनकी जीविका उत्सेध (= शारीरिक श्रम हो) उनके समूह को 'व्रात' ।

११६ दामन्यादित्रिगर्तषष्ठाच्छः ।

११७ पर्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ ।

११८ अभिजिद्विदभृच्छालावच्छिखावच्छमीवदूर्णावच्छुमदणो यञ् ।

११९ ञ्यादयस्तद्राजाः ।

चतुर्थः पादः ।

१ पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन्लोपश्च ।

२ दण्डव्यवसर्गयोश्च ।

३ स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् ।

४ अनत्यन्तगतौ क्तात् ।

५ न सामिवचने ।

है ॥ ११५ ॥ आयुधजीविसंघवाची दामनी आदि शब्दों और त्रिगर्तषष्ठ (अर्थात् जिन आयुधजीवियों के छः अन्तर्वर्ग हैं तथा छठा त्रिगर्त है उन) शब्दों से 'छ' प्रत्यय हो जाता है ॥११६॥ आयुधजीविसंघवाची पार्श्व आदि शब्दों और यौधेय आदि शब्दों से स्वार्थ में क्रमशः अण् और अञ् प्रत्यय हो जाते हैं ॥ ११७ ॥ आयुधजीविसंघवाची अण्-प्रत्ययान्त अभिजित्, विदभृत, शालावत, शिखावत्, शमीवत्, उर्णावत् और श्रुमत् शब्दों से यञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ ११८ ॥ "पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात्" सूत्र से अब तक जितने प्रत्ययों का विधान किया गया है उन सब की संज्ञा "तद्राज" है ॥ ११९ ॥

पञ्चमाध्याय का तृतीय पाद समाप्त ।

पञ्चमाध्याय का चतुर्थ पाद

संख्यावाचीपूर्वकपदक पाद-शब्दान्त और शत-शब्दान्त शब्दों से वीप्सा गम्यमान होने पर में वुन् प्रत्यय भी होता है और प्रकृति के अन्त्य वर्ण का लोप भी ॥ १ ॥ दण्ड तथा व्यवसर्ग (= दान) गम्यमान होने पर भी उक्त शब्दों से वुन् प्रत्यय तथा अन्तलोप हो जाते हैं ॥ २ ॥ प्रकार (= भेद और सादृश्य) के द्योतनार्थ स्थूल आदि शब्दों से कन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३ ॥ अनत्यन्त गति (अत्यन्त = पूर्ण, गति = सम्बन्ध, न = अभाव) गम्यमान होने पर क्त-प्रत्ययान्त शब्दों से भी कन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ४ ॥ किन्तु सामि (= आधा)

१. इस प्रसङ्ग में निम्ननिर्दिष्ट स्मृति द्रष्टव्य है—
आहुस्त्रिगर्तषष्ठांस्तु कौण्डोपरथदाण्डकी ।
क्रौष्टकिर्जालमानिश्च ब्रह्मगुप्तोऽथ जानकिः ॥ (सिद्धान्तकौमुदी में 'जानकिः' के स्थान में 'आलकिः' यह पाठ है)।

६ बृहत्या आच्छादने ।
७ अषडक्षाशितंग्वलंकर्मालं पुरुषाध्युत्तरपदात् खः ।
८ विभाषाञ्चेरदिक् स्त्रियाम् ।
९ जात्यन्ताच्छ बन्धुनि ।
१० स्थानान्ताद्विभाषा सस्थानेनेति चेत् ।
११ किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ।
१२ अनु च च्छन्दसि ।
१३ अनुगादिनष्ठक् ।
१४ णचः स्त्रियामञ् ।
१५ अणिनुणः ।
१६ बिसारिणो मत्स्ये ।
१७ संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् ।
१८ द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ।
१९ एकस्य सकृच्च ।

तथा इसके पर्याय के उपपद होने पर क्तान्त शब्दों से उक्त कन् प्रत्यय नहीं होता है ॥ ५ ॥ आच्छादन में वर्तमान बृहती शब्द से भी स्वार्थ में कन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६ ॥ अषडक्ष, आशितङ्गु, अलङ्कर्म, अलम्पुरुष और जिनका उतरावयव अधि शब्द हो उन शब्दों से स्वार्थ में 'ख' प्रत्यय हो जाता है ॥ ७ ॥ स्त्रीत्वविशिष्ट दिक् के वाचक से भिन्न अञ्च्-शब्दान्त शब्दों से स्वार्थ में विकल्प से 'ख' प्रत्यय होता है ॥ ८ ॥ बन्धु के प्रतिपादक जाति-शब्दान्त शब्दों से स्वार्थ में 'छ' प्रत्यय होता है ॥ ९ ॥ यदि सस्थान (=समान स्थान वाले=सदृश) व्यक्ति द्वारा स्थानशब्दान्तपदप्रतिपाद्य तत्त्व अर्थवान् हो तो स्थानशब्दान्त शब्दों से भी 'छ' प्रत्यय हो जाता है ॥ १० ॥ 'घ'-संज्ञक-प्रत्ययान्त किम् शब्द, एकारान्त शब्द, तिङन्त और 'अव्यय'-संज्ञक शब्दों से, यदि द्रव्य का प्रकर्ष गम्यमान न हो तो आमु प्रत्यय हो जाता है ॥ ११ ॥ और छन्दोविषय प्रयोग में तो अमु प्रत्यय भी होता है ॥ १२ ॥

अनुगादिन् शब्द से स्वार्थ में ठक् प्रत्यय हो जाता है ॥ १३ ॥ णच्-प्रत्ययान्त शब्दों से स्त्रीविषय में अञ् प्रत्यय हो जाता है ॥ १४ ॥ इनुण्-प्रत्यान्त शब्दों से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होता है ॥ १५ ॥ प्रत्ययान्त द्वारा मत्स्य के अभिधानार्थ विसारिन् शब्द से भी स्वार्थ में अण् प्रत्यय हो जाता है ॥१६॥ क्रिया की आवृत्ति की गणना के लिए प्रयुक्त संख्यावाचक शब्दों से स्वार्थ में कृत्वसुच् प्रत्यय हो जाता है ॥ १७ ॥ किन्तु क्रिया की अभ्यावृत्ति (=जन्म) की गणना में वर्तमान द्वि, त्रि और चतुर् शब्दों से सुच् प्रत्यय हो जाता है ॥ १८ ॥ और 'एक' शब्द से सुच् प्रत्यय भी होता है तथा एक के स्थान में सकृत् आदेश भी

२० विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले ।
२१ तत्प्रकृतवचने मयट् ।
२२ समूहवच्च बहुषु ।
२३ अनन्तावसथेतिहभेषजाञ्ञ्यः ।
२४ देवतान्तात् तादर्थ्ये यत् ।
२५ पादार्घाभ्यां च ।
२६ अतिथेर्ञ्यः ।
२७ देवात्तल् ।
२८ अवेः कः ।
२९ यावादिभ्यः कन् ।
३० लोहितान्मणौ ।
३१ वर्णे चानित्ये ।
३२ रक्ते ।
३३ कालाच्च ।
३४ विनयादिभ्यष्ठक् ।
३५ वाचो व्याहृतार्थायाम् ।
३६ तद्युक्तात् कर्मणोऽण् ।
३७ ओषधेरजातौ ।

॥ १९ ॥ यदि क्रियाओं की उत्पत्ति आसन्नकालिक हो तो क्रियाभ्यावृत्तिगणनवृत्ती बहु शब्द से विकल्प से 'धा' प्रत्यय होता है ॥ २० ॥

प्रचुरमात्रा में प्रस्तुत पदार्थ के अभिधायक प्रथमासमर्थ शब्दों से स्वार्थ में मयट् प्रत्यय होता है ॥ २१ ॥ किन्तु यदि प्रस्तुत पदार्थ बहुत्वविशिष्ट हो तो समूहार्थक प्रत्यय भी होते हैं और (विकल्प से) मयट् भी ॥ २२ ॥ अनन्त, आवसथ, इतिह और भेषज शब्दों से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय होता है ॥ २३ ॥ चतुर्थीसमर्थ देवताशब्दान्तों शब्दों से तादर्थ्य में यत् प्रत्यय होता है ॥ २४ ॥ चतुर्थीसमर्थ पाद और अर्घ शब्दों से भी तादर्थ्य में यत् प्रत्यय हो जाता है ॥ २५ ॥ चतुर्थीसमर्थ अतिथि शब्द से तादर्थ्य में ञ्य प्रत्यय होता है ॥ २६ ॥ देव शब्द से स्वार्थ में तल् प्रत्यय होता है ॥ २७ ॥ अवि शब्द से स्वार्थ में 'क' प्रत्यय होता है ॥ २८ ॥ याव आदि शब्दों से स्वार्थ में कन् प्रत्यय होता है ॥ २९ ॥ मणि अर्थ में वर्तमान लोहित शब्द से भी स्वार्थ में कन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३० ॥ अनित्य वर्ण (= रंग) के प्रतिपादक लोहित शब्द से भी स्वार्थ में कन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३१ ॥ लाक्षा आदि साधनों द्वारा रंगे पदार्थ के प्रतिपादक लोहित शब्द से भी स्वार्थ में कन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३२ ॥ अनित्यवर्णवाचक तथा लाक्षादिरक्तपदार्थवाचक काल शब्द से भी स्वार्थ में कन् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३२ ॥ विनय आदि शब्दों से स्वार्थ में ठक् प्रत्यय होता है ॥ ३४ ॥ सन्देशवाणी के प्रतिपादक वाच् शब्द से भी स्वार्थ में ठक् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३५ ॥ सन्दिष्टार्थक वाणी से युक्त क्रिया के प्रतिपादक—सन्देश सुनकर किए गए कार्य के प्रतिपादक—कर्मन् शब्द से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होता है ॥ ३६ ॥ जातिभिन्नार्थक ओषधि शब्द से भी स्वार्थ में अण् प्रत्यय हो जाता

३८ प्रज्ञादिभ्यश्च ।
३९ मृदस्तिकन् ।
४० सस्नौ प्रशंसायाम् ।
४१ वृकज्येष्ठाभ्यां तिल्तातिलौ च च्छन्दसि ।
४२ बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् ।
४३ संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम् ।
४४ प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः ।
४५ अपादाने चाहीयरुहोः ।
४६ अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वकर्तरि तृतीयायाः ।
४७ हीयमानपापयोगाच्च ।
४८ षष्ठ्या व्याश्रये ।
४९ रोगाच्चापनयने ।
५० कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्विः ।
५१ अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च ।

है ॥ ३७ ॥ प्रज्ञ आदि शब्दों से भी स्वार्थ में अण् प्रत्यय हो जाता है ॥ ३८ ॥ मृत् शब्द से स्वार्थ में तिकन् प्रत्यय होता है ॥ ३९ ॥ किन्तु प्रशस्त मृत्तिका के वाचक मृत् शब्द से स्वार्थ में विकल्प से 'स' और 'स्न' प्रत्यय हो जाते हैं ॥४०॥

प्राशस्त्यविशिष्टार्थक वृक तथा ज्येष्ठ शब्दों से छन्दोविषय में स्वार्थ मे क्रमशः तिल् और तातिल् प्रत्यय होते हैं ॥ ४१ ॥ बह्वर्थक तथा अल्पार्थक 'कारक'-संज्ञक शब्दों से स्वार्थ में विकल्प से शस् प्रत्यय होता है ॥ ४२ ॥ संख्यावाचक शब्दों और वृत्तिविषय में एकत्वविशिष्ट अर्थ के प्रतिपादक परिमाणवाचक शब्दों से भी वीप्सा गम्यमान होने पर विकल्प से शस् प्रत्यय हो जाता है ॥ ४३ ॥ कर्मप्रवचनीय-संज्ञक 'प्रति' शब्द के योग में विहित पञ्चमी से युक्त शब्दों से तसि प्रत्यय होता है ॥ ४४ ॥ अपादानविहित पञ्चमी से युक्त शब्दों से भी विकल्प से तसि प्रत्यय हो जाता है॥४५॥ कर्तृतृतीयाभिन्न तृतीया से युक्त शब्दों से अतिग्रह, अव्यथन और क्षेप (= निन्दा) अर्थों मे विकल्प से तसि प्रत्यय होता है ॥ ४६ ॥ हीयमान तथा पाप से युक्त होने पर भी कर्तृतृतीयाभिन्नतृतीयान्त शब्दों से विकल्प से तसि प्रत्यय हो जाता है ॥ ४७ ॥ व्याश्रय (= अनेकपक्षसमाश्रय) गम्यमान होने पर षष्ठ्यन्त शब्द से भी विकल्प से तसि प्रत्यय हो जाता है ॥४८॥ अपनयन गम्यमान होने पर षष्ठ्यन्त रोगवाचक शब्दों से भी विकल्प से तसि प्रत्यय हो जाता है ॥ ४९ ॥ कृ, भू अथवा अस् धातु के योग मे (अभूततद्भाव गम्यमान होने पर) सम्पद्यकर्त्ता से (अर्थात् जो सम्पन्न हो रहा हो उससे) च्वि प्रत्यय हो जाता है ॥ ५० ॥ अरुस्, मनस्, चक्षुस्, चेतस्, रहस् और रजस् शब्दों से च्वि प्रत्यय भी होता है और इन प्रकृतियों का अन्तलोप

५२ विभाषा साति कार्त्स्न्ये।
५३ अभिविधौ सम्पदा च।
५४ तदधीनवचने।
५५ देये त्रा च।
५६ देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम्।
५७ अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्।
५८ कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ।
५९ संख्यायाश्च गुणान्तायाः।
६० समयाच्च यापनायाम्।
६१ सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने।
६२ निष्कुलान्निष्कोषणे।
६३ सुखप्रियादानुलोम्ये।

भी ॥ ५१ ॥ यदि अभूततद्भाव पूर्णरूपेण हो (अर्थात् प्रकृति पूर्णतः विकृत हो जाती हो) तो च्व्यर्थ में विकल्प से साति प्रत्यय भी होता है ॥ ५२ ॥ अभिविधि गम्यमान होने पर कृ, भू तथा अस् धातुओं के योग में एवम् सम्पद् (सम् + √पद्) के योग में भी च्व्यर्थ में विकल्प से साति प्रत्यय हो जाता है (और पक्षान्तर में कृ, भू, एवम् अस् धातुओं के योग में, सम्पद् के योग में नहीं) च्वि प्रत्यय भी ॥ ५३ ॥ तदधीनत्व अर्थ में कृ, भू, अस् एवम् सम् + पद् के योग में स्वामिविशेषवाचक शब्दों से साति प्रत्यय होता है ॥५४॥ किन्तु देय वस्तु के तदधीनीकरण अर्थ में सम्प्रदानात्मक स्वामिविशेष के वाचक शब्दों से 'त्रा' प्रत्यय भी होता है और विकल्प से साति प्रत्यय भी ॥ ५५ ॥ द्वितीयान्त तथा सप्तम्यन्त देव, मनुष्य, पुरुष, पुरु और मर्त्य शब्दों से भी बहुलरूप मे 'त्रा' प्रत्यय होता है ॥ ५६ ॥ अव्यक्त शब्द के अनुकरणभूत शब्दों से, यदि उनका आधा भाग कम से कम दो स्वरों से युक्त हो और अन्त में 'इति' शब्द न जुड़ा हो तो डाच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ५७ ॥ कृषि के अभिधेय होने पर कृ-धातु से युक्त द्वितीय, तृतीय, शम्ब और बीज शब्दों से भी डाच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ५८ ॥ कृषि के अभिधेय होने पर 'गुण'-शब्दान्त संख्यावाचक शब्दों से भी डाच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ५९ ॥ यापना (= अतिक्रमण) गम्यमान होने पर समय शब्द से भी कृ धातु के योग में डाच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६० ॥ अतिव्यथन (= अतिपीड़न) गम्यमान होने पर सपत्र और निष्पत्र शब्दों से भी कृ धातु के योग में डाच्, प्रत्यय हो जाता है ॥ ६१ ॥

निष्कोषण (= भीतरी अङ्गों का बाहर निकालना) गम्यमान होने पर निष्कुल शब्द से भी कृ धातु के योग में डाच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६२ ॥ आनुलोम्य (= अनुकूलता) गम्यमान होने पर सुख और प्रिय शब्दों से भी कृ धातु

६४ दुःखात् प्रातिलोम्ये ।
६५ शूलात् पाके ।
६६ सत्यादशपथे ।
६७ मद्रात् परिवापणे ।
६८ समासान्ताः ।
६९ न पूजनात् ।
७० किमः क्षेपे ।
७१ नञस्तत्पुरुषात् ।
७२ पथो विभाषा ।
७३ बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात् ।
७४ ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे ।
७५ अच्प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः ।
७६ अक्ष्णोऽदर्शनात् ।
७७ अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीव-

---

के योग में डाच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६३ ॥ प्रातिलोम्य गम्यमान होने पर दुःख शब्द से भी कृ धातु के योग में डाच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६४ ॥ पाक गम्यमान होने पर शूल शब्द से भी कृ धातु के योग में डाच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६५ ॥ शपथ से भिन्न अर्थ में विद्यमान सत्य शब्द से भी कृ धातु के योग में डाच् प्रत्यय हो जाता है ॥६६॥ मुण्डनार्थ-विषयक मद्र शब्द से भी कृ धातु के योग मे डाच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६७ ॥ अब से पञ्चमाध्यायसमाप्तिपर्यन्त जिन प्रत्ययों का विधान किया जाएगा उन्हें समास का अन्त्यावयव (= समासान्त) समझना चाहिए॥६८॥ किन्तु पूज्यवाची शब्दों के उत्तर समासान्त प्रत्यय नहीं होते ॥६९॥ क्षेपार्थक किम्-शब्द से उत्तरवर्त्ती समासचरमावयवभूत शब्दों से भी समासान्त प्रत्यय नहीं होते ॥ ७० ॥ नञ्-तत्पुरुष से निष्पन्न शब्द से भी समासान्त प्रत्यय नहीं होते ॥ ७१ ॥ नञ्-तत्पुरुष के चरमावयव पथिन् शब्द से भी विकल्प से समासान्त प्रत्यय नहीं होते ॥ ७२ ॥ संख्येयवृत्ती बहुशब्दान्तभिन्न एवं गण शब्दान्तभिन्न बहुव्रीहि से समासान्त डच् प्रत्यय हो जाता है ॥७३॥ ऋक्-शब्दान्त, पुर्-शब्दान्त, अप्-शब्दान्त, अक्षशब्दपूर्वक से भिन्न धुर्-शब्दान्त और पथिन्-शब्दान्त समासों से समासान्त 'अ' प्रत्यय हो जाता है ॥ ७४ ॥ 'प्रति'-पूर्वक 'अनु'-पूर्वक और 'अव'-पूर्वक सामन् और लोमन् शब्दों से समासान्त अच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ७५ ॥ दर्शन से भिन्न अर्थ में वृत्ती अक्षि शब्द जिसका चरमावयव हो उससे भी समासान्त अच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ७६ ॥ समासान्त अच् प्रत्यय से विशिष्ट अचतुर, विचतुर, सुचतुर, स्त्रीपुंस, धेन्वनडुह, ऋक्साम, वाङ्मनस, अक्षिभ्रुव, दारगव, ऊर्वष्ठीव, पदष्ठीव, नक्तन्दिव, रात्रिन्दिव, अहर्दिव, सरजस, निःश्रेयस, पुरुषायुष, द्व्यायुष, त्र्यायुष, ऋग्यजुष, जातोक्ष, महोक्ष,

नक्तंदिवरात्रिंदिवाहर्दिवसरजस-
निःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुष-
त्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्ष-
वृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः।
७८ ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः।
७९ अवसमन्धेभ्यस्तमसः।
८० श्वसो वसीयःश्रेयसः।
८१ अन्ववतप्ताद्रहसः।
८२ प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात्।
८३ अनुगवमायामे।
८४ द्विस्तावा त्रिस्तावा वेदिः।
८५ उपसर्गादध्वनः।
८६ तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः
८७ अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः।
८८ अह्नोऽह्न एतेभ्यः।
८९ न सङ्ख्यादेः समाहारे।

वृद्धोक्ष, उपशुन और गोष्ठश्व शब्दों का निपातन किया जाता है ॥ ७७ ॥ ब्रह्मवर्चस् और हस्तिवर्चस् शब्दों से भी समासान्त अच् प्रत्यय हो जाता है ॥७८॥ अव, सम् और अन्ध शब्द से उत्तरवर्ती (= समासचरमावयवभूत) तमस् शब्द से भी समासान्त अच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ७९ ॥ श्वोवसीयस् और श्वःश्रेयस् शब्दों से भी समासान्त अच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ८० ॥ अनुरहस्, अवरहस् और तप्तरहम् शब्दों से भी समासान्त अच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ८१ ॥ सप्तम्यन्त प्रत्युरस् शब्द से भी समासान्त अच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ८२ ॥ आयाम (= दैर्घ्य) के अभिधेय होने पर अनुगव इस समासान्त-अच्-प्रत्ययान्त शब्द का निपातन किया जाता है ॥ ८३ ॥ वेदि के अभिधानार्थ समासान्त-अच्-प्रत्ययान्त द्विस्तावा और त्रिस्तावा शब्दों (= स्त्रीत्वविशिष्ट द्विस्ताव एवं त्रिस्ताव शब्दों) का निपातन किया जाता है ॥ ८४ ॥ उपसर्गपूर्वक अध्वन्-शब्दान्त शब्दों से भी समासान्त अच् प्रत्यय होजाता है ॥ ८५ ॥ संख्यावाचकशब्द-पूर्वक एवं 'अव्यय'-संज्ञकशब्दपूर्वक अंगुलिशब्दान्त तत्पुरुष से भी समासान्त अच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ८६ ॥ अहोरात्र, सर्वरात्र, एकदेशवाचक-शब्दपूर्वक रात्रि-शब्दान्त पूर्वरात्र आदि शब्दों संख्यातरात्र तथा पुण्यरात्र शब्दों से और संख्यावाचकशब्दपूर्वक एवम् 'अव्यय'-संज्ञकशब्दपूर्वक रात्रि शब्दों से भी समासान्त अच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ८७ ॥ पूर्ववर्ती दो सूत्रों में निर्दिष्ट पूर्वपदों से निष्पन्न अहन्-शब्दान्त समास के चरमावयव अहन् शब्द के स्थान में टच् प्रत्यय के परे 'अह्न' आदेश हो जाता है ॥ ८८ ॥ किन्तु यदि संख्यावाचकशब्दपूर्वक

९० उत्तमैकाभ्यां च ।
९१ राजाहःसखिभ्यष्टच् ।
९२ गोरतद्धितलुकि ।
९३ अग्राख्यायामुरसः ।
९४ अनोऽश्मायःसरसां जातिसंज्ञयोः ॥८
९५ ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः ।
९६ अतेः शुनः ।
९७ उपमानादप्राणिषु ।
९८ उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः ।
९९ नावो द्विगोः ।
१०० अर्धाच्च ।
१०१ खार्याः प्राचाम् ।
१०२ द्वित्रिभ्यामञ्जलेः ।
१०३ अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि ।

अहन्-शब्दान्त तत्पुरुष समाहारविहित हो तो टच् प्रत्यय के परे भी अहन् शब्द के स्थान में अह्न आदेश नहीं होता ॥ ८९ ॥ उत्तमाहन् और एकाहन् शब्द के चरमावयव अहन् शब्द के स्थान में भी टच् प्रत्यय के परे अह्न आदेश नहीं होता ॥ ९० ॥ राजन्-शब्दान्त, अहन्-शब्दान्त और सखि-शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय होता है ॥ ९१ ॥ यदि तद्धितप्रत्यय के लुक् का विषय न हो तो गो-शब्दान्त तत्पुरुष से भी समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९२ ॥ प्रधानार्थक उरस् शब्द जिसका अन्त्यावयव हो उस तत्पुरुष से भी समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९३ ॥ जाति-विषय तथा संज्ञा-विषय में अनस्-शब्दान्त, अश्मन्-शब्दान्त, अयस्-शब्दान्त और सरस्-शब्दान्त तत्पुरुषों से भी समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९४ ॥ जाति-विषय एवं संज्ञा-विषय में 'तत्पुरुष'-संज्ञक ग्रामतक्षन् एवं कौटतक्षन् शब्दों से भी समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९५ ॥ 'तत्पुरुष'-संज्ञक अतिश्वन् शब्द से भी समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है ॥९६॥ प्राणिभिन्नवृत्ती उपमानभूत श्वन् शब्द जिसका उत्तरपद हो उस तत्पुरुष से भी समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९७ ॥ उत्तरसक्थिन्, मृगसक्थिन्, पूर्वसक्थिन् शब्दों और उपमानभूत सक्थिन् शब्द जिसका उत्तरपद हो उस तत्पुरुष से भी समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है ॥९८॥ 'द्विगु'-संज्ञक नौ-शब्दान्त शब्दों से भी समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९९ ॥ 'तत्पुरुष'-संज्ञक अर्धनौ शब्द से भी समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है ॥ १०० ॥

'द्विगु'-संज्ञक खारीशब्दान्त एवम् 'अर्ध'-शब्दपूर्वक खारीशब्दान्त तत्पुरुष से भी समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है ॥ १०१ ॥ 'तत्पुरुष'-संज्ञक द्व्यञ्जलि तथा त्र्यञ्जलि शब्दों से भी समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है ॥ १०२ ॥ नपुंसकलिङ्गवृत्ती अन्-शब्दान्त एवम् अस्-शब्दान्त तत्पुरुष से भी छन्दो-

१०४ ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम्।
१०५ कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम्।
१०६ द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्समाहारे।
१०७ अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः।
१०८ अनश्च।
१०९ नपुंसकादन्यतरस्याम्।
११० नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः।
१११ झयः।
११२ गिरेश्च सेनकस्य।
११३ बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्।
११४ अङ्गुलेर्दारुणि।
११५ द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः।
११६ अप्पूरणीप्रमाण्योः।

विषय में समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है॥ १०३॥ यदि समास से[1] जानपदत्व (= जनपदसम्बन्ध) प्रतीत होता हो तो ब्रह्मन्-शब्दान्त तत्पुरुष से भी समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है॥ १०४॥ 'तत्पुरुष'-संज्ञक कुब्रह्मन् और महाब्रह्मन् शब्दों से भी विकल्प से समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है॥ १०५॥ चवर्गान्त, दकारान्त, षकारान्त और हकारान्त द्वन्द्वों से भी समास के समाहार में विहित होने पर समासान्त टच् प्रत्यय हो जता है॥ १०६॥ अव्ययीभाव समास के उत्तरपदभूत शरद् आदि शब्दों से भी समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है॥ १०७॥ अन्-शब्दान्त अव्ययीभाव से भी समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है॥ १०८॥ नपुंसकलिङ्गवृत्ती अन्-शब्दान्त शब्द जिसका उत्तरपद हो उस अव्ययीभाव से भी विकल्प से टच् प्रत्यय हो जाता है॥ १०९॥ नदी-शब्दान्त, पौर्णमासी-शब्दान्त और आग्रहायणी-शब्दान्त अव्ययीभाव से भी विकल्प से टच् प्रत्यय हो जाता है॥ ११०॥ झय्-प्रत्याहार का कोई व्यञ्जन जिसके अन्त में हो उस अव्ययीभाव से भी विकल्प से टच् प्रत्यय हो जाता है॥ १११॥ 'सेनक' आचार्य के मत में गिरि-शब्दान्त अव्ययीभाव से भी टच् प्रत्यय हो जाता है॥ ११२॥ स्वाङ्गवाची सक्थिन् शब्द या अक्षि शब्द जिनके अन्त में हों उन बहुव्रीहियों से षच् प्रत्यय होता है॥११३॥ प्रत्ययान्त द्वारा दारु (=काष्ठ) के अभिधानार्थ अंगुलिशब्दान्त बहुव्रीहि से भी समासान्त षच् प्रत्यय हो जाता है॥११४॥ 'बहुव्रीहि'-संज्ञक द्विमूर्धन् और त्रिमूर्धन् शब्दों से समासान्त 'ष' प्रत्यय होता है॥११५॥ स्त्रीत्वविशिष्ट पूरणप्रत्ययान्त शब्द अथवा प्रमाणी शब्द जिनका उत्तरपद हो उन बहुव्रीहियों से समासान्त अप् प्रत्यय होता है॥ ११६॥

१. अत एव इस समास में जनपदविशेषवाचक शब्द ही पूर्वपद होता है।

११७ अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः ।
११८ अञ्नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात् ।
११९ उपसर्गाच्च ।
१२० सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्ष-चतुरश्रैणीपदाजपदप्रोष्ठपदाः ।
१२१ नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योर-न्यतरस्याम् ।
१२२ नित्यमसिच् प्रजामेधयोः ।
१२३ बहुप्रजाश्छन्दसि ।
१२४ धर्मादनिच् केवलात् ।
१२५ जम्भा सुहरिततृणसोमेभ्यः ।
१२६ दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे ।
१२७ इच् कर्मव्यतिहारे ।
१२८ द्विदण्ड्यादिभ्यश्च ।
१२९ प्रसम्भ्यां जानुनोर्ज्ञुः ।

'बहुव्रीहि'-संज्ञक अन्तर्लोमन् एवं बहिर्लोमन् शब्दों से भी अप् प्रत्यय हो जाता है ॥ ११७ ॥ यदि नासिका-शब्दान्त बहुव्रीहि स्थूल-शब्दपूर्वक न हो तो उससे अच् प्रत्यय हो जाता है और नासिका शब्द के स्थान में नस् आदेश भी ॥ ११८ ॥ उपसर्गपूर्वक नासिका-शब्दान्त बहुव्रीहि से भी अच् प्रत्यय तथा नासिका शब्द के स्थान में नस् आदेश हो जाते हैं ॥ ११९ ॥ अच्-प्रत्ययान्त 'बहुव्रीहि'-संज्ञक सुप्रात, सुश्व, सुदिव, शारिकुक्ष, चतुरश्र, एणीपद, अजपद और प्रोष्ठपद शब्दों का निपातन किया जाता है ॥ १२० ॥

नञ्-पूर्वक, 'दुस्'-पूर्वक एवं 'सु'-पूर्वक हलि-शब्दान्त और सक्थिन्-शब्दान्त बहुव्रीहि से भी विकल्प से समासान्त अच् प्रत्यय हो जाता है ॥ १२१ ॥ नञ्-पूर्वक, 'दुस्'-पूर्वक एवं 'सु'-पूर्वक प्रजा-शब्दान्त एवं मेधा-शब्दान्त बहुव्रीहि से नित्य असिच् प्रत्यय होता है ॥ १२२ ॥ छन्दोविषय में बहुप्रजा शब्द का निपातन किया जाता है ॥ १२३ ॥ केवल (अर्थात् शब्दान्तरसम्बन्ध-रहित = असहाय) धर्म शब्द जिसका उत्तर पद हो उस बहुव्रीहि से समासान्त अनिच् प्रत्यय हो जाता है ॥ १२४ ॥ 'सु', हरित, तृण और सोम शब्द से उत्तर बहुव्रीहि के उत्तरपद के रूप में कृतसमासान्त जम्भा शब्द का निपातन किया जाता है ॥ १२५ ॥

लुब्ध के साथ योग होने पर कृतसमासान्त 'बहुव्रीहि'-संज्ञक दक्षिणेर्मा शब्द का निपातन किया जाता है ॥१२६॥ कर्मव्यतिहार में विहित बहुव्रीहि से भी समासान्त इच् प्रत्ययान्त होता है ॥ १२७ ॥ इच्-प्रत्यय-विशिष्ट 'बहुव्रीहि'-संज्ञक द्विदण्डि आदि शब्दों का साधुत्व अकारान्तत्व है ॥ १२८ ॥ 'बहुव्रीहि'-संज्ञक प्रजानु एवं संजानु शब्दों के अन्तस्थ जानु पद के स्थान में 'ज्ञु' आदेश हो जाता है ॥१२९॥

१३० ऊर्ध्वाद्विभाषा।	१३८ पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः।
१३१ ऊधसोऽनङ्।	१३९ कुम्भपदीषु च।
१३२ धनुषश्च।	१४० संख्यासुपूर्वस्य।
१३३ वा संज्ञायाम्।	१४१ वयसि दन्तस्य दतृ।
१३४ जायाया निङ्।	१४२ छन्दसि च।
१३५ गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः।	१४३ स्त्रियां संज्ञायाम्।
१३६ अल्पाख्यायाम्।	१४४ विभाषा श्यावारोकाभ्याम्।
१३८ उपमानाच्च।	१४५ अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च।

किन्तु उर्ध्वजानु शब्द के उत्तरावयव जानु शब्द के स्थान में 'ज्ञु' आदेश विकल्प से होता है ॥ १३० ॥ ऊधस्-शब्दान्त बहुव्रीहि को अनङ् आदेश हो जाता है ॥ १३१ ॥ धनुष्शब्दान्त बहुव्रीहि को भी अनङ् आदेश हो जाता है ॥१३२॥ परन्तु संज्ञाविषय में धनुष्-शब्दान्त बहुव्रीहि को विकल्प से अनङ् आदेश होता है ॥ १३३ ॥ जाया-शब्दान्त बहुव्रीहि को निङ् आदेश हो जाता है ॥ १३४ ॥ उत्, पूति, सु और सुरभि शब्द से उत्तरवर्त्ती गन्ध शब्द को, बहुव्रीहि समास में, इकारादेश हो जाता है ॥ १३५ ॥ अल्पार्थक गन्ध शब्द को भी बहुव्रीहि समास में इकारादेश हो जाता है ॥ १३६ ॥ उपमानवाचक शब्द से उत्तरवर्त्ती गन्ध शब्द के स्थान में भी बहुव्रीहि समास में इकारादेश हो जाता है ॥ १३७ ॥ हस्त्यादिशब्द-भिन्न उपमानवाचक शब्दों से उत्तरवर्त्ती पाद शब्द का (अन्त्य-) लोप, बहुव्रीहि समास में, हो जाता है ॥ १३८ ॥ 'बहुव्रीहि-संज्ञक कुम्भपदी आदि शब्दों की सिद्धि के लिए भी पादशब्द का अन्त्य-लोप हो जाता है ॥ १३९ ॥ संख्यावाचकशब्दपूर्वक और 'सु'-शब्दपूर्वक पादशब्दान्त बहुव्रीहि (के उत्तरपद—पाद शब्द) का भी अन्त्य-लोप हो जाता है ॥ १४० ॥

संख्यापूर्वक और 'सु'-पूर्वक बहुव्रीहि के चरमावयव दन्त शब्द के स्थान में दतृ आदेश हो जाता है यदि समुदाय से वयस् (= उम्र) गम्यमान हो तो ॥ १४१ ॥ छन्दोविषय में भी बहुव्रीहि के चरमावयव दन्त शब्द के स्थान में दतृ आदेश हो जाता है ॥ १४२ ॥ अन्यपदार्थ के स्त्रीत्वविशिष्ट होने पर संज्ञा-विषय में भी बहुव्रीहि के उत्तरपद दन्त शब्द को दतृ आदेश हो जाता है ॥ १४३ ॥ किन्तु श्याव तथा अरोक शब्द के उत्तरवर्त्ती दन्त शब्द के स्थान में दतृ आदेश विकल्प से होता है ॥ १४४ ॥ अग्र-शब्दान्त शब्दों, शुद्ध, शुभ्र, वृष और वराह शब्दों से उत्तरवर्त्ती बहुव्रीहि के चरमावयव दन्त शब्द

१४६ ककुदस्यावस्थायां लोपः ।
१४७ त्रिककुत् पर्वते ।
१४८ उद्विभ्यां काकुदस्य ।
१४९ पूर्णाद्विभाषा ।
१५० सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः ।
१५१ उरःप्रभृतिभ्यः कप् ।
१५२ इनः स्त्रियाम् ।
१५३ नद्यृतश्च ।
१५४ शेषाद्विभाषा ।
१५५ न संज्ञायाम् ।
१५६ ईयसश्च ।
१५७ वन्दिते भ्रातुः ।
१५८ ऋतश्छन्दसि ।
१५९ नाडीतन्त्र्योः स्वाङ्गे ।
१६० निष्प्रवाणिश्च ।

के स्थान में भी विकल्प से ही दत् आदेश होता है ।। १४५ ।। यदि समुदाय से अवस्था गम्यमान हो तो ककुदशब्दान्त बहुव्रीहि का अन्त्य-लोप हो जाता है ।। १४६ ।। पर्वत के अभिधेय होने पर अन्त्यलोपविशिष्ट 'बहुव्रीहि'-संज्ञक त्रिककुद् शब्द का निपातन किया जाता है ।। १४७ ।। बहुव्रीहि समास मे 'उत्' और 'वि से उत्तरवर्ती काकुद शब्द का अन्त्य-लोप हो जाता है ।। १४८ ।। किन्तु पूर्ण-शब्दोत्तवर्त्ती काकुदशब्द का अन्त्यलोप विकल्प से ही होता है ।। १४९ ।। बहुव्रीहि समास में क्रमशः मित्र एवम् अमित्र अर्थों मे 'सु' और दुस् से उत्तरवर्ती हृदय शब्द के स्थान में हृत् आदेश का निपातन किया जाता है ।। १५० ।। उरस् आदि शब्द जिनके अन्त में हों उन बहुव्रीहियों से समासान्त कप् प्रत्यय हो जाता है ।। १५१ ।। स्त्रीविषय में इन्-शब्दान्त बहुव्रीहि से भी कप् प्रत्यय हो जाता है ।। १५२ ।। 'नदी'-संज्ञक-शब्दान्त और ऋदन्त बहुव्रीहि से भी समासान्त कप् प्रत्यय हो जाता है ।। १५३ ।। जिन बहुव्रीहियों से समासान्त प्रत्यय का विधान नहीं किया गया है उनसे भी विकल्प से कप् प्रत्यय हो सकता है ।। १५४ ।। किन्तु संज्ञा-विषय में बहुव्रीहि समास मे कप् प्रत्यय नहीं होता ।।१५५।। इयसुन्-प्रत्ययान्त बहुव्रीहि से भी समासान्त कप् प्रत्यय नहीं होता ।। १५६ ।। वन्दितार्थक भ्रातृशब्द जिसका उत्तरपद हो उस बहुव्रीहि से भी कप् प्रत्यय नहीं होता ।। १५७ ।। ऋदन्त बहुव्रीहि से भी छन्दोविषय में कप् प्रत्यय नहीं होता ।। १५८ ।। स्वाङ्गवाचक नाडी एवं तन्त्री शब्द जिनके उत्तरपद हों उन बहुव्रीहियों से भी समासान्त कप् प्रत्यय नहीं होता ।। १५९ ।। निष्प्रवाणि इस बहुव्रीहि से भी कप् प्रत्यय के प्रतिषेध का निपातन किया जाता है ।। १६० ।।

पञ्चमाध्याय का चतुर्थ पाद समाप्त ।

पञ्चमाध्याय समाप्त ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

प्रथमः पादः ।

१ एकाचो द्वे प्रथमस्य ।
२ अजादेर्द्वितीयस्य ।
३ नन्द्राः संयोगादयः ।
४ पूर्वोऽभ्यासः ।
५ उभे अभ्यस्तम् ।
६ जक्षित्यादयः षट् ।
७ तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य ।
८ लिटि धातोरनभ्यासस्य ।
९ सन्यङोः ।
१० श्लौ ।
११ चङि ।

षष्ठ अध्याय का प्रथम पाद

सम्प्रसारण-विधिपर्यन्त 'प्रथम एकाच् के स्थान में द्वित्व हो जाता है' इसका अधिकार है ॥ १ ॥ 'अजादि धातुओं के[1] द्वितीय एकाच् के स्थान में (द्वित्व हो जाता है)' इसका भी अधिकार है ॥ २ ॥ किन्तु द्वितीय एकाच् के अवयवभूत नकार, दकार और रेफ का द्वित्व नहीं होता ॥ ३ ॥ इस प्रकरण में जिनका द्वित्व विहित हुआ है उनके (= द्वित्वविशिष्ट के) प्रथम अंश को 'अभ्यास' कहते हैं ॥ ४ ॥ किन्तु 'अभ्यस्त' द्वित्वविशिष्ट अर्थात् दोनों ही अंशों की संज्ञा है ॥ ५ ॥ जक्ष, जागृ, दरिद्रा, कास, शास, देधीङ् और वेवीङ् धातुओं की भी संज्ञा 'अभ्यस्त' है ॥ ६ ॥ तुज् आदि धातुओं के अभ्यास को दीर्घ हो जाता है ॥ ७ ॥ लिट् लकार के परे अभ्याससंज्ञकभिन्न धात्ववयभूत प्रथम एकाच् का और अजादि धातुओं के द्वितीय एकाच् का द्वित्व हो जाता है ॥ ८ ॥ सन्-प्रत्ययान्त और यङ्-प्रत्ययान्त धातुओं के अनभ्यास एवं यथासम्भव प्रथम अथवा द्वितीय एकाच् का भी द्वित्व हो जाता है ॥ ९ ॥ श्लु के परे भी द्वित्व हो जाता है ॥ १० ॥ चङ् प्रत्यय के परे भी यथासम्भव अभ्यास के प्रथम एकाच् अथवा द्वितीय एकाच् का

---

१. यहाँ अजादि पद में 'अच् आदिः' इस प्रकार कर्मधारय समास एवं 'अजादेः' को पञ्चम्यन्त मान कर आद्य अच् से उत्तरवर्ती एकाच् अर्थात् द्वितीय एकाच् का द्वित्व होता है—यह भी एक पक्ष है। इसका अनुसन्धान द्वित्व-विधायक सूत्र में भी कर्त्तव्य है।

१२ दाश्वान्साह्वान्मीढ्वांश्च ।
१३ ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे ।
१४ बन्धुनि बहुव्रीहौ ।
१५ वचिस्वपियजादीनां किति ।
१६ ग्रहिज्याविव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च ।
१७ लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ।
१८ स्वापेश्चङि ।
१९ स्वपिस्यमिव्येञां यङि ।
२० न वशः ।
२१ चायः की ।
२२ स्फायः स्फी निष्ठायाम् ।
२३ स्त्यः प्रपूर्वस्य ।
२४ द्रवमूर्तिस्पर्शयोः श्यः ।
२५ प्रतेश्च ।
२६ विभाषाऽभ्यवपूर्वस्य ।

द्वित्व हो जाता है ॥ ११ ॥ लोक तथा वेद में दाश्वान्, साह्वान् और मीढ्वान् शब्दों का निपातन किया जाता है ॥ १२ ॥ पुत्रशब्दोत्तरपदक एवं पतिशब्दोत्तरपदक तत्पुरुष समास के अन्तर्गत ष्यङ् प्रत्यय के स्थान में सम्प्रसारण हो जाता है ॥ १३ ॥ बन्धु-शब्दोत्तरपदक बहुव्रीहिसमास में भी ष्यङ् प्रत्यय के स्थान में सम्प्रसारण हो जाता है ॥ १४ ॥ कित् प्रत्यय के परे वच्, स्वप् एवं यज धातुओं को भी सम्प्रसारण हो जाता है ॥ १५ ॥ ग्रह, ज्या, वेञ्, व्यध, वश, व्यच, व्रश्च्, प्रच्छ और भ्रस्ज धातुओं को ङित् प्रत्यय के परे भी सम्प्रसारण हो जाता है और कित् प्रत्यय के परे भी ॥ १६ ॥ और लिट् लकार के परे तो वच आदि धातुओं के 'अभ्यास' को भी सम्प्रसारण हो जाता है और ग्रह आदि धातुओं के अभ्यास को भी ॥ १७ ॥ णिच्-प्रत्ययान्त स्वप् (= स्वापि) धातु को भी चङ् प्रत्यय के परे सम्प्रसारण हो जाता है ॥ १८ ॥ स्वप्, स्यम् और व्येञ् धातुओं को यङ् प्रत्यय के परे भी सम्प्रसारण हो जाता है ॥ १९ ॥ किन्तु वश धातु को यङ् के परे सम्प्रसारण नहीं होता ॥ २० ॥

यङ् प्रत्यय के परे चाय् धातु के स्थान में 'की' आदेश हो जाता है ॥२१॥ 'निष्ठा' (= 'क्त' और क्तवतु) प्रत्ययों के परे स्फाय धातु के स्थान में 'स्फी' आदेश हो जाता है ॥ २२ ॥ 'प्र'-पूर्वक स्त्या (= स्त्यै और ष्टैश) धातुओं के स्थान में भी 'निष्ठा' प्रत्यय के परे सम्प्रसारण हो जाता है ॥ २३ ॥ द्रव पदार्थ की मूर्त्ति (=काठिन्य) और स्पर्श अर्थों में श्यै धातु के स्थान में भी 'निष्ठा' प्रत्यय के परे सम्प्रसारण हो जाता है ॥ २४ ॥ यह सम्प्रसारण 'प्रति'-पूर्वक श्यै धातु के स्थान में भी 'निष्ठा' प्रत्यय के परे हो जाता है ॥ २४ ॥ यह सम्प्रसारण 'प्रति'-पूर्वक श्यै धातु के स्थान में भी होता है ॥ २५ ॥ किन्तु 'अव'-पूर्वक

२७ शृतं पाके।
२८ प्यायः पी।
२९ लिड्यङोश्च।
३० विभाषा श्वेः।
३१ णौ च संश्चङोः।
३२ ह्वः सम्प्रसारणम्।
३३ अभ्यस्तस्य च।
३४ बहुलं छन्दसि।
३५ चायः की।
३६ अपस्पृधेथामानृचुरानृहुश्चिच्युषेतित्याजश्राताश्रितमाशीराशीर्ताः।
३७ न सम्प्रसारणे संप्रसारणम्।
३८ लिटि वयो यः।
३९ वश्चास्यान्यतरस्यां किति।
४० वेञः।
४१ ल्यपि च।
४२ ज्यश्च।
४३ व्यश्च।

और 'अभि'-पूर्वक श्यै धातु के स्थान में विकल्प से ही सम्प्रसारण होता है ॥२६॥ प्रत्ययान्त द्वारा पाक के अभिधानार्थ 'क्त' प्रत्यय के परे श्रा धातु के स्थान में 'शृ' आदेश हो जाता है ॥ २७ ॥ 'निष्ठा' प्रत्यय के परे प्याय् धातु के स्थान में भी विकल्प से 'पी' आदेश हो जाता है ॥ २८ ॥ लिट् लकार और यङ् प्रत्यय के परे भी प्याय् धातु के स्थान में 'पी' आदेश हो जाता है ॥२९॥ लिट् और यङ् प्रत्यय के परे श्वि धातु के स्थान में भी विकल्प से सम्प्रसारण हो जाता है ॥३०॥ सन्-परक एवं चङ्-परक णिच् प्रत्यय के परे भी श्वि धातु के स्थान में विकल्प से सम्प्रसारण हो जाता है ॥ ३१ ॥ सन्-परक एवं चङ्-परक णिच् प्रत्यय के परे ह्वेञ् धातु के स्थान में भी सम्प्रसारण हो जाता है ॥ ३२ ॥ भावी 'अभ्यस्त' संज्ञा का आश्रय होने वाले ह्वेञ् धातु के स्थान में भी (द्विर्वचन से पूर्व) सम्प्रसारण हो जाता है ॥ ३३ ॥ किन्तु छन्दोविषय में ह्वेञ् धातु को बहुल रूप मे ही सम्प्रसारण होता है ॥ ३४ ॥ छन्दोविषय में चाय् धातु के स्थान में बहुल रूप में की आदेश हो जाता है ॥ ३५ ॥ छन्दोविषय में हीं अपस्पृधेथाम्, आनृचुः, आनृहुः, चिच्युषे, तित्याज, श्राताः, श्रितम्, आशीः और आशीर्त शब्दों का निपातन किया जाता है ॥ ३६ ॥ सम्प्रसारण के परे पूर्ववर्त्ती यण् के स्थान में सम्प्रसारण नहीं होता ॥ ३७ ॥ लिट् लकार के परे वय् धातु के यकार के स्थान में भी संप्रसारण नहीं होता ॥ ३८ ॥ कित् लिट् के परे वय् धातु के यकार के स्थान में विकल्प से वकार आदेश भी हो जाता है ॥ ३९ ॥ लिट् लकार के परे वेञ् धातु के स्थान मे भी सम्प्रसारण नहीं होता ॥ ४० ॥

ल्यप् प्रत्यय के परे भी वेञ् धातु को सम्प्रसारण नही होता ॥ ४१ ॥ ल्यप् के परे ज्या धातु के स्थान में भी सम्प्रसारण नहीं होता ॥ ४२ ॥ ल्यप् के परे

४४ विभाषा परेः ।
४५ आदेच उपदेशेऽशिति ।
४६ न व्यो लिटि ।
४७ स्फुरतिस्फुलत्योर्घञि ।
४८ क्रीङ्जीनां णौ ।
४९ सिध्यतेरपारलौकिके ।
५० मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च ।
५१ विभाषा लीयतेः ।
५२ खिदेश्छन्दसि ।
५३ अपगुरो णमुलि ।
५४ चिस्फुरोर्णौ ।
५५ प्रजने वीयतेः ।
५६ बिभेतेर्हेतुभये ।
५७ नित्यं स्मयतेः ।
५८ सृजिदृशोर्झल्यमकिति ।

व्येञ् धातु को भी सम्प्रसारण नहीं होता ॥ ४३ ॥ किन्तु 'परि'-पूर्वक व्येञ् धातु के स्थान में विकल्प से ही सम्प्रसारण नही होता ॥ ४४ ॥ शित् प्रत्यय से भिन्न प्रत्ययों के परे उपदेश में एजन्त धातु के स्थान में आकार आदेश हो जाता है ॥ ४५ ॥ किन्तु लिट् लकार के परे व्येञ् धातु के स्थान में आकारादेश नही होता ॥ ४६ ॥ घञ् प्रत्यय के परे स्फुर एवं स्फुल धातुओं के स्थान में भी आकारादेश हो जाता है ॥ ४७ ॥ क्री, इङ् और जि धातुओं के एच् के स्थान में भी णिच् के परे आकारादेश हो जाता है ॥ ४८ ॥ पारलौकिकभिन्न-विषयक सिध् धातु के एच् के स्थान में भी णिच् के परे आकारादेश हो जाता है ॥४९॥ मीञ्, मिञ् और दीङ् धातुओं के अन्त्य अल् के स्थान में ल्यप् प्रत्यय और एच् के विषय में भी प्रत्ययोत्पत्ति से पूर्व हीं आकारादेश हो जाता है॥ ५० ॥ लीङ् एवं ली धातुओं के अन्त्य अल् के स्थान में भी ल्यप् प्रत्यय एवम् एच् आदेश के विषय में उपदेशावस्था में हीं विकल्प से आकारादेश हो जाता है ॥ ५१ ॥ छन्दोविषय में खिद धातु के एच् को भी विकल्प से आकारादेश हो जाता है ॥ ५२ ॥ णमुल् प्रत्यय के परे 'अप'-पूर्वक गुर धातु के एच् के स्थान में भी विकल्प से आकारादेश हो जाता है ॥ ५३ ॥ णिच् के परे चि एवं स्फुर् धातुओं के एच् के स्थान में भी विकल्प से आकारादेश हो जाता है ॥ ५४ ॥ प्रजन (=गर्भग्रहण) अर्थ में विद्यमान वी धातु के एच् के स्थान में भी णिच् के परे विकल्प से आकारादेश हो जाता है ॥ ५५ ॥ हेतु-प्रयोज्य भय के प्रतिपादक 'भी' धातु के एच् के स्थान में भी णिच् के परे विकल्प से आकारादेश हो जाता है ॥ ५६ ॥ किन्तु स्मिङ् धातु के एच् के स्थान में धातु के हेतु-प्रयोज्य भय (=स्मय) का प्रतिपादक होने पर णिच् प्रत्यय के परे नित्य ही आकारादेश होता है ॥ ५७ ॥ किद्भिन्न झलादि प्रत्ययों के परे सृज् और दृश् धातुओं को

५६ अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्।
६० शीर्षंश्छन्दसि।
६१ ये च तद्धिते।
६२ पद्न्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु
६३ धात्वादेः षः सः।
६४ णो नः।
६५ लोपो व्योर्वलि।
६६ वेरपृक्तस्य।
६७ हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्।
६८ एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः।
६९ शेश्छन्दसि बहुलम्।
७० ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्।
७१ संहितायाम्।
७२ छे च।

अम् का आगम हो जाता है ॥ ५८ ॥ उपदेश में अनुदात्त ऋदुपध (= जिनकी उपधा ह्रस्व ऋकार हो उन) धातुओं को भी किद्भिन्न झलादि प्रत्ययों के परे विकल्प से अमागम हो जाता है ॥ ५९ ॥ छन्दोविषय में शिरःशब्द-समानार्थक शीर्षन् शब्द का निपातन किया जाता है ॥ ६० ॥

यकारादि तद्धित प्रत्ययों के परे भी शिरःशब्द के स्थान में शीर्षन् आदेश हो जाता है ॥ ६१ ॥

यस् आदि प्रत्ययों के परे पाद, दन्त, नासिका, मास, हृदय, निशा, असृज्, यूष, दोष, यकृत्, शकृत्, उदक एवम् आसन शब्दों के स्थान में क्रमशः पद्, दत्, नस्, मास्, हृत्, निश्, असन्, यूषन्, दोषन्, यकन्, शकन्, उदन् और आसन् आदेश हो जाते हैं ॥ ६२ ॥ धातु के आद्य औपदेशिक षकार के स्थान में सकारादेश हो जाता है ॥ ६३ ॥ धातु के आद्य णकार के स्थान में नकारादेश हो जाता है ॥ ६४ ॥ वल् प्रत्याहार के (घटक व्यञ्जन के) परे वकार और यकार का लोप हो जाता है ॥ ६५ ॥ 'अपृक्त'-संज्ञक वि (= क्विन्, क्विप् आदि) का भी लोप हो जाता है ॥६६॥ हलन्त, दीर्घीभूत ङी एवं आप् से परवर्ती 'अपृक्त'-संज्ञक सु (= स्), ति (= त्) और सि (= स्) का लोप हो जाता है ॥ ६७ ॥ एङन्त एवं ह्रस्वान्त प्रातिपादिकों से परवर्त्ती सम्बुद्ध्यवयवभूत हल् का भी लोप हो जा जाता है ॥ ६८ ॥ छन्दोविषय में 'शि' का भी बहुल रूप में लोप हो जाता है ॥ ६९ ॥ कृत्संज्ञक पित् प्रत्ययों के परे ह्रस्व को तुक् का आगम हो जाता है ॥ ७० ॥ "अनुदात्तं पदमेकवर्जम्" सूत्र तक 'संहितायाम्' (= संहिताविषय में) का अधिकार है ॥ ७१ ॥ संहिता विषय में छकार के परे भी ह्रस्व को तुक् का आगम हो जाता है ॥ ७२ ॥

७३ आङ्माङोश्च ।
७४ दीर्घात् ।
७५ पदान्ताद्वा ।
७६ इको यणचि ।
७७ एचोऽयवायावः ।
७८ वान्तो यि प्रत्यये ।
७९ धातोस्तन्निमित्तस्यैव ।
८० क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे ।
८१ क्रय्यस्तदर्थे ।
८२ भय्यप्रवय्ये च च्छन्दसि ।
८३ एकः पूर्वपरयोः ।
८४ अन्तादिवच्च ।
८५ षत्वतुकोरसिद्धः ।
८६ आद् गुणः
८७ वृद्धिरेचि ।
८८ एत्येधत्यूठ्सु ।

(ङित्) आङ् एवं माङ् को भी छकार के परे तुक् का आगम हो जाता है ॥ ७३ ॥ (दीर्घ से) परवर्ती छकार के परे पूर्ववर्ती दीर्घ को भी तुक् का आगम हो जाता है ॥ ७४ ॥ किन्तु पदान्त दीर्घ को परवर्ती छकार के परे विकल्प से ही तुक् का आगम होता है ॥ ७५ ॥ अच् के परे इक् के स्थान में यणादेश हो जाता है ॥ ७६ ॥ अच् के परे एच् के स्थान में क्रमशः अय्, अव्, आय् और आव् आदेश हो जाते हैं ॥ ७७ ॥ यकारादि प्रत्यय के परे भी एच्[1] के स्थान में वकारान्त—अव् और आव्—आदेश हो जाते हैं ॥ ७८ ॥ धात्ववयवभूत एच् के स्थान में भी उसी एच् के कारण विहित यकारादि प्रत्यय के परे वान्त—अव् और आव्—आदेश हो जाते हैं ॥ ७९ ॥

शक्यार्थ में विहित यत् प्रत्यय के परे क्षि एवं जि धातु के (आदेशभूत) एकार के स्थान में भी अय् आदेश का निपातन किया जाता है ॥ ८० ॥ क्रयणार्थ प्रस्तुत पदार्थ के अभिधायक यत् प्रत्यय के परे क्री धातु के एकार के स्थान में भी अय् आदेश का निपातन किया जाता है ॥ ८१ ॥ छन्दोविषय में यत् प्रत्यय के परे 'भी' धातु तथा 'प्र'-पूर्वक 'वी' धातु के एकार के स्थान में भी अय् आदेश का निपातन किया जाता है ॥ ८२ ॥ इसके बाद 'पूर्व और पर के स्थान में मिलकर एक आदेश हो जाता है' इसका अधिकार है ॥ ८३ ॥ पूर्व एवं पर के स्थान में विहित एकादेश पूर्व के अन्त्य और पर के आद्य अवयव के समान कार्याश्रय होता है ॥ ८४ ॥ षत्व तथा तुक् के विधान के प्रसङ्गों में एकादेश असिद्ध हो जाता है—अर्थात् सिद्धवत् कार्य नहीं करता ॥ ८५ ॥ अवर्ण और उससे परवर्ती अच् के स्थान में एकादेश-गुण हो जाता है ॥ ८६ ॥ अवर्ण और उससे परवर्ती एच् के स्थान में एकादेश वृद्धि हो जाती है ॥ ८७ ॥ एजादि इण् धातु,

१. एच् आदेश के सामर्थ्यानुसार क्रमशः आकार और औकार ही यहाँ ग्राह्य हैं ।

८९ आटश्च।
९० उपसर्गादृति धातौ।
९१ वा सुप्यापिशलेः।
९२ औतोम्शसोः।
९३ एङि पररूपम्।
९४ ओमाङोश्च।
९५ उस्यपदान्तात्।
९६ अतो गुणे।
९७ अव्यक्तानुकरणस्यात इतौ।
९८ नाम्रेडितस्यान्त्यस्य तु वा।
९९ अकः सवर्णे दीर्घः।

एध धातु और ऊठ् के अवयवभूत अच् से पूर्व यदि अवर्ण हो तो इस अवर्ण तथा परवर्त्ती अच् के स्थान में भी एकादेश वृद्धि हो जाती है ॥ ८८ ॥ पूर्ववर्त्ती आट् एवं परवर्त्ती एच् के स्थान में भी एकादेश वृद्धि हो जाती है ॥ ८९ ॥ अवर्णान्त उपसर्ग एवं परवर्ती (ह्रस्व-) ऋकारादि धातुओं के अवयवभूत अवर्ण एवं ऋकार के स्थान में भी एकादेश वृद्धि हो जाती है॥९०॥ किन्तु परवर्त्ती सुबन्तावयव ऋकारादि धातुओं के आदि ऋकार तथा पूर्ववर्त्ती अवर्ण के स्थान में आपिशलि आचार्य के मत में विकल्प से ही एकादेश वृद्धि होती है ॥ ९१ ॥ पूर्ववर्त्ती ओत् से उत्तर यदि आम् या शस् हो तो पूर्व-पर के स्थान में अकारादेश हो जाता है ॥ ९२ ॥

अवर्णान्त उपसर्ग से उत्तर यदि एङादि धातु हो तो उपसर्गावयव अवर्ण तथा धात्ववयव एङ् के स्थान में एकादेश पररूप हो जाता है ॥ ९३ ॥ अवर्णान्त शब्द से उत्तर यदि ओम् या आङ् शब्द हो तो भी पूर्व अवर्ण और पर ओकार अथवा आकार के स्थान में पररूप एकादेश हो जाता है ॥ ९४ ॥ पदान्त-भिन्न अवर्ण से उत्तर यदि उस् हो तो भी पूर्व अवर्ण और परवर्त्ती उस् के अवयवभूत उकार के स्थान में पररूप एकादेश हो जाता है ॥ ९५ ॥ पदान्त-भिन्न अत् से उत्तर यदि 'गुण' स्वर हो तो भी पूर्व अवर्ण और पर 'गुण' के स्थान में पररूप एकादेश हो जाता है ॥ ९६ ॥

अव्यक्तानुकरणभूत शब्द के अन्त्यावयव 'अत्' के उत्तर यदि 'इति' शब्द हो तो पूर्व 'अत' और परवर्त्ती 'इति' के अवयव 'इ' के स्थान में भी पररूप एकादेश हो जाता है ॥ ९७ ॥ किन्तु अव्यक्तानुकरणभूत शब्द के 'आम्रेडित'-संज्ञक स्वरूप के अवयवभूत 'अत्' के के उत्तर यदि 'इति' शब्द हो तो उक्त पररूप विकल्प से होता है ॥ ९८ ॥

अक् के उत्तर यदि सवर्ण अच् हो तो पूर्व-पर के स्थान मे दीर्घ एकादेश

१०० प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ।
१०१ तस्माच्छसो नः पुंसि ।
१०२ नादिचि
१०३ दीर्घाज्जसि च ।
१०४ वा छन्दसि ।
१०५ अमि पूर्वः ।
१०६ सम्प्रसारणाच्च ।
१०७ एङः पदान्तादति ।
१०८ ङसिङसोश्च ।
१०९ ऋत उत् ।
११० ख्यत्यात् परस्य ।
१११ अतो रोरप्लुतादप्लुते ।
११२ हशि च ।
११३ प्रकृत्यान्तःपादमव्यपरे ।

हो जाता है ॥ ९९ ॥ अक् से उत्तर यदि प्रथमा अथवा द्वितीया विभक्ति से सम्बद्ध अच् हो तो भी पूर्व-पर के स्थान में पूर्वसवर्ण दीर्घ हो जाता है ॥ १०० ॥ पूर्वसवर्ण दीर्घ से उत्तरवर्ती शस् के अवयवभूत सकार के स्थान में नकारादेश हो जाता है ॥ १०१ ॥ किन्तु यदि अवर्ण से उत्तर अथवा द्वितीया से सम्बद्ध इच् हो तो पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता ॥ १०२ ॥ दीर्घ अक् से उत्तर यदि प्रथमा या द्वितीया से सम्बद्ध जस् (= अस्) या इच् हो तो भी पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता ॥ १०३ ॥ किन्तु यह अव्यवहितोक्त दीर्घप्रतिषेध छन्दोविषय में वैकल्पिक रूप से ही होता है ॥ १०४ ॥ अक् से उत्तर यदि अम् (द्वि० ए० व०) हो तो पूर्व-पर के स्थान में पूर्वरूप हो जाता है ॥ १०५ ॥ सम्प्रसारण से परवर्ती अच् होने पर भी पूर्व-पर के स्थान में एकादेश पूर्वरूप हो जाता है ॥ १०६ ॥ पदान्त एङ् से उत्तरवर्ती अत् (= ह्रस्व अकार) यदि हो तो भी पूर्व-पर के स्थान में एकादेश पूर्वरूप हो जाता है ॥ १०७ ॥ एङ् से पर यदि ङसि अथवा ङस् का अवयवभूत अत् हो तो भी पूर्व-पर के स्थान में पूर्वरूप हो जाता है ॥ १०८ ॥ ऋदन्त से पर यदि ङसि अथवा ङस् का अत् हो तो पूर्व-पर के स्थान में एकादेश उत् (= ह्रस्व उकार) हो जाता है ॥ १०९ ॥ ख्य और त्य शब्दों से परवर्ती ङसि अथवा ङस् के अत् के स्थान में भी उत् आदेश हो[1] जाता है ॥ ११० ॥ प्लुतभिन्न अत् से उत्तरवर्ती 'रु' के रेफ के स्थान मे भी अप्लुत अत् के परे उत् आदेश हो जाता है ॥ १११ ॥ हश् के परे भी अप्लुत अत् से उत्तरवर्ती 'रु' के रेफ के स्थान में उत् आदेश हो जाता है ॥ ११२ ॥ वकारपरक एवं यकारपरक से भिन्न अत् के परे रहते ऋक्पाद के मध्य में विद्यमान एङ् प्रकृतिस्थ ही बना रहता

१. इस सूत्र से एकादेश का विधान नहीं किया गया है, क्योंकि "परस्य" पद के उल्लेख से "एकः पूर्वपरयोः" के अधिकार का अभाव निश्चित है ।

११४ अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमवन्त्ववस्युषु च।
११५ यजुष्युरः।
११६ आपोजुषाणोवृष्णोवर्षिष्ठेऽम्बेऽम्बालेऽम्बिकेपूर्वे।
११७ अङ्ग इत्यादौ च।
११८ अनुदात्ते च कुधपरे।
११९ अवपथासि च।
१२० सर्वत्र विभाषा गोः।
१२१ अवङ् स्फोटायनस्य।
१२२ इन्द्रे च।
१२३ प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्।
१२४ आङोऽनुनासिकश्छन्दसि।
१२५ इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च
१२६ ऋत्यकः।

है (= एङ् के स्थान से एकादेश नहीं होता है) ॥ ११३ ॥ किन्तु अव्यात्, अवद्यात्, अवक्रमु, अव्रत, अयम्, अवन्तु और अवस्यु इन शब्दों के अवयवभूत (यथासम्भव) वकारपरक एवं यकारपरक अत् के परे भी ऋक्पादमध्यस्थ एङ् प्रकृतिवत् ही बना रहता है ॥ ११४ ॥ एङन्त उरस् शब्द भी अत् के परे यजुर्वेद में प्रकृतिवत् बना रहता है ॥ ११५ ॥ अत् के परे यजुर्वेदपठित आपो, जुषाणो, वृष्णो, वर्षिष्ठ और अम्बिके-शब्दपूर्ववर्त्ती 'अम्बे अम्बाले' शब्द भी प्रकृतिवत् बने रहते हैं ॥ ११६ ॥ एङन्त अङ्ग शब्द के आम्मावयवभूत अत् के परे पूर्व एङ् यजुर्वेद में प्रकृतिवत् बना रहता है ॥ ११७ ॥ कवर्ग-परक एवं धकार-परक है अनुदात्त अत् के परे रहते भी पूर्ववर्त्ती एङ् यजुर्वेद में प्रकृतिवत् बना रहता एङ् ॥ ११८ ॥

अवपथाः शब्द के अन्त्यावयव अनुदात्त अत् के परे रहते भी पूर्ववर्त्ती यजुर्वेद में प्रकृतिवत् ही बना रहता है ॥ ११९ ॥ लोक और वेद दोनों में अत् के परे गो-शब्दसम्बन्धी एङ् विकल्प से प्रकृतिवत् बना रहता है ॥ १२० ॥ अच् के परे गो शब्द के एङ् के स्थान में स्फोटायन आचार्य के मत में अवङ् आदेश हो जाता है ॥ १२१ ॥ किन्तु इन्द्र शब्द के परे उक्त अवङ् आदेश नित्य होता है ॥ १२२ ॥ अच् के परे प्लुत-संज्ञक और प्रगृह्य-संज्ञक शब्द भी नित्य प्रकृतिवत् बने रहते हैं ॥ १२३ ॥ अच् के परे छन्दोविषय में आङ् के स्थान में अनुनासिकादेश भी हो जाता है और वह प्रकृतिवत् भी बना रहता है ॥ १२४ ॥ असवर्ण अच् के परे इक् के स्थान में भी शाकल्याचार्य के मत में ह्रस्वादेश तथा उसका प्रकृतिवद्भाव हो जाता है ॥ १२५ ॥ ऋत् के परे अक् का भी शाकल्या-

१. "पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते" इस सिद्धान्त के अनुसार भाष्यकार ने "कारपूर्वः" इस अंश का प्रत्याख्यान कर दिया है।

१२७ अप्लुतवदुपस्थिते ।
१२८ ई३ चाक्रवर्मणस्य ।
१२९ दिव उत् ।
१३० एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ।
१३१ स्यश्छन्दसि बहुलम् ।
१३२ सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम् ।
१३३ सुट् कात्पूर्वः ।
१३४ सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे ।
१३५ समवाये च ।
१३६ उपात् प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च ।
१३७ किरतौ लवने ।
१३८ हिंसायां प्रतेश्च ।
१३९ अपाच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने ।
१४० कुस्तुम्बुरुणि जातिः ।

चार्य के मत में प्रकृतिवद्भाव तथा ह्रस्वादेश हो जाता है ॥१२६॥ अनार्ष 'इति' शब्द के परे प्लुत स्वर अप्लुतवत् हो जाता है ॥ १२७ ॥ अच् के परे प्लुत ईकार-३ भी चाक्रवर्मणानार्य के मत में अप्लुतवत् हो जाता है ॥ १२८ ॥ दिव् शब्द को पदान्त विषय में उकारादेश हो जाता है ॥ १२९ ॥ यदि नञ् के साथ समस्त न हों तो ॥ १३० ॥ ककाररहित एतद् और तद् शब्दों से सम्बद्ध सु विभक्ति का हल् के परे लोप हो जाता है छन्दोविषय में हल् के परे 'स्य'-शब्दोत्तरवर्त्ती सु विभक्ति का भी बहुल रूप में लोप हो जाता है ॥ १३१ ॥ 'सः' पद के अवयव सु विभक्ति का भी अच् के परे लोप हो जाता है यदि लोप से छन्दःपाद की पूर्त्ति हो जाती हो तो ॥ १३२ ॥ यहाँ से "पारस्करप्रभृतीनि च०" सूत्र तक "सुट् का आगम ककार से पूर्व हो" इसका अधिकार अवगन्तव्य है ॥ १३३ ॥ भूषण अर्थ के अभिधानार्थ सम् और परि उपसर्ग से विशिष्ट कृ धातु को सुट् का आगम हो जाता है ॥ १३४ ॥ समवाय (= समूह) के अभिधानार्थ भी उक्त उपसर्ग से विशिष्ट कृ धातु को सुट् का आगम हो जाता है ॥ १३५ ॥ प्रतियत्न (= गुणाधान), विकार और वाक्याध्याहार अर्थ में भी 'उप' उपसर्ग से विशिष्ट कृ धातु को सुट् का आगम हो जाता है ॥ १३६ ॥ 'उप' उपसर्ग से विशिष्ट (विक्षेपार्थक) कृ धातु यदि लवन (= छेदन) से सम्बद्ध हो तो उसे भी सुट् का आगम हो जाता है ॥ १३७ ॥ किन्तु हिंसासम्बद्ध होने पर 'उप' उपसर्ग से विशिष्ट कृ धातु को भी सुट् का आगम हो जाता है और 'प्रति' उपसर्ग से विशिष्ट को भी ॥ १३८ ॥

चतुष्पात् प्राणियों तथा पक्षियों द्वारा किए जाने वाले आलेखन (= खरोंच) के विषय में प्रयुक्त 'अप'-पूर्वक कृ धातु को भी सुट् का आगम हो जाता है ॥ १३९ ॥ ओषधिजातिवाचक सुडागमविशिष्ट कुस्तुम्बुरु शब्द का निपातन है

१४१ अपरस्पराः क्रियासातत्ये।
१४२ गोष्पदं सेवितासेवितप्रमाणेषु।
१४३ आस्पदं प्रतिष्ठायाम्।
१४४ आश्चर्यमनित्ये।
१४५ वर्चस्केऽवस्करः।
१४६ अपस्करो रथाङ्गम्।
१४७ विष्किरः शकुनौ वा।
१४८ ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे।
१४९ प्रतिष्कशश्च कशेः।
१५० प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी।
१५१ मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयोः।
१५२ कास्तीराजस्तुन्दे नगरे।
१५३ कारस्करो वृक्षः।
१५४ पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्
१५५ अनुदात्तं पदमेकवर्जम्।
१५६ कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः।
१५७ उञ्छादीनां च।

॥ १४० ॥ क्रियासातत्य के द्योतनार्थ सुडागमविशिष्ट 'अपरस्पराः' शब्द का भी निपातन है ॥ १४१ ॥ सेवित, असेवित एवं प्रमाण (= क्षेत्रफल) अर्थों के द्योतनार्थ सुडागम एवं उसके स्थान मे षकारादेश से विशिष्ट गोष्पद शब्द का भी निपातन है ॥ १४२ ॥ प्रतिष्ठा के द्योतनार्थ सुडागम विशिष्ट आस्पद शब्द का भी निपातन है ॥ १४३ ॥ अद्भुतत्व के द्योतनार्थ सुडागमविशिष्ट आश्चर्य शब्द का भी निपातन है ॥ १४४ ॥ वर्चस्क (= अन्नमल) अर्थ में सुडागमविशिष्ट अवस्कर शब्द का भी निपातन है ॥ १४५ ॥ रथाङ्ग के अभिधानार्थ सुडागम-विशिष्ट अपस्कर शब्द का भी निपातन है ॥ १४६ ॥ पक्षी अर्थ में मूर्धन्यादेशयुक्त सुडागम से विशिष्ट विष्किर शब्द का भी विकल्प से निपातन है ॥ १४७ ॥ चन्द्र शब्द के उत्तरपद (= समासचरमावयव) होने पर पूर्वपद के अन्त्य ह्रस्व स्वर से उत्तर सुट् का आगम हो जाता है यदि प्रयोग मन्त्रविषयक हो तो ॥ १४८ ॥ 'प्रति' उपसर्ग से विशिष्ट कश धातु से भी कृतषत्व सुडागम से विशिष्ट प्रतिष्कश शब्द का निपातन है ॥ १४९ ॥ ऋषि के अभिधानार्थ सुडागमविशिष्ट प्रस्कण्व एवं हरिश्चन्द्र शब्दों का निपातन है ॥ १५० ॥ वेणु तथा परिव्राजक अर्थों में क्रमशः सुडागमविशिष्ट मस्कर और मस्करिन् शब्दों का निपातन है ॥ १५१ ॥ नगर-विशेष अर्थ में कास्तीर और अजस्तुन्द शब्दों का निपातन है ॥ १५२ ॥ वृक्ष अर्थ में कारस्कर शब्द का निपातन है ॥ १५३ ॥ पारस्कर आदि संज्ञा शब्दों का भी निपातन है ॥ १५४ ॥ एक उदात्त अथवा स्वरित को छोड़ कर पद के सब स्वर अनुदात्त हो जाते हैं ॥ १५५ ॥ कृष धातु तथा आकारस्वरविशिष्ट घञन्त शब्दों का अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ १५६ ॥ उञ्छ आदि शब्दों का भी अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ १५७ ॥ विस

१५८ अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः।
१५९ धातोः।
१६० चितः।
१६१ तद्धितस्य[1]।
१६२ कितः।
१६३ तिसृभ्यो जसः।
१६४ चतुरः शसि।
१६५ सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः।
१६६ अन्तोदात्तादुत्तरपदादन्यतरस्यामनित्यसमासे।
१६७ अञ्चेश्छन्दस्यसर्वनामस्थानम्।
१६८ ऊडिदम्पदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः।
१६९ अष्टनो दीर्घात्।
१७० शतुरनुमो नद्यजादी।
१७१ उदात्तयणो हल्पूर्वात्।
१७२ नोङ्धात्वोः।

परवर्ती अनुदात्त स्वर को निमित्त मान कर पूर्ववर्ती उदात्त स्वर का लोप हुआ हो वह अनुदात्त भी उदात्त हो जाता है॥ १५८॥

धातु का अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है॥ १५९॥ चित्प्रत्यान्त[1] शब्दों का भी अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है॥ १६०॥ तद्धितसंज्ञक चित् प्रत्यय से निष्पन्न शब्दों का भी अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है॥ १६१॥ तद्धितसंज्ञक कित् प्रत्यय से निष्पन्न शब्दों का भी अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है॥ १६२॥ तिसृ शब्द से परवर्ती (=विहित) जस् प्रत्यय भी उदात्त हो जाता है॥ १६३॥ शस् प्रत्यय के परे चतुर् शब्द का अन्त्य स्वर भी उदात्त हो जाता है॥ १६४॥ सप्तमी-बहुबचन में जो प्रकृतिभूत शब्द एक ही स्वर से युक्त रहे उससे विहित तृतीया आदि विभक्तियाँ उदात्त हो जाती हैं॥ १६५॥ किन्तु अनित्यसमास का जो उत्तरपद एकाच् एवम् अन्तोदात्त हो उससे विहित तृतीयादि विभक्तियाँ विकल्प से ही उदात्त होती हैं॥१६६॥ छन्दोविषय प्रयोग में अञ्च् शब्द से विहित असर्वनामस्थान विभक्तियाँ भी उदात्त हो जाती हैं॥ १६७॥ ऊठ्विशिष्ट, इदम् शब्द, "पद्दन्नोमास०" सूत्र से आदेश रूप से विहित पद् आदि शब्दों, अप्, पुम्, रै तथा दिव् शब्दों से विहित असर्वनामस्थान विभक्तियाँ भी उदात्त हो जाती हैं॥ १६८॥ दीर्घान्त अष्टन् शब्द से परवर्ती असर्वनामस्थान विभक्तियाँ भी उदात्त हो जाती हैं॥ १६९॥ नुमागम-रहित शतृप्रत्ययान्त अन्तोदात्त शब्दों से विहित 'नदी'-संज्ञक तथा अजादि असर्वनामस्थान विभक्तियाँ भी उदात्त हो जाती हैं॥ १७०॥ हल् हो पूर्व में जिसके उस उदात्तस्थानिक यण् से परवर्ती 'नदी'-संज्ञक और अजादि असर्वनामस्थान विभक्तियाँ भी उदात्त हो जाती हैं॥ १७१॥ किन्तु अङ्-प्रत्ययात्मक उदात्त स्वर

१. यहाँ कृत्संज्ञक चित्-प्रत्यय विवक्षित है।

१७३ ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप्।
१७४ नामन्यतरस्याम्।
१७५ ङ्याश्छन्दसि बहुलम्।
१७६ षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिः।
१७७ झल्युपोत्तमम्।
१७८ विभाषा भाषायाम्।
१७९ न गोश्वन्त्साववर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः।
१८० दिवो झल्।
१८१ नृ चान्यतरस्याम्।
१८२ तित्स्वरितम्।
१८३ तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमह्न्विङोः
१८४ आदिः सिचोऽन्यतरस्याम्।
१८५ स्वपादिर्हिंसामच्यनिटि।

तथा धातुस्थ उदात्त स्वर के स्थान मे विहित हल्पूर्वक यण् से उत्तरवर्ती[1] अजादि असर्वनामस्थान विभक्तियाँ उदात्त नहीं होती ॥ १७२ ॥ अन्तोदात्त ह्रस्वान्त एवं नुट् से परवर्ती मतुप् प्रत्यय भी उदात्त हो जाता है ॥ १७३ ॥ मतुप् प्रत्यय के परे जो ह्रस्व तदन्त अन्तोदात्त शब्द से परवर्ती नाम् (नुट + आम्) प्रत्यय भी विकल्प से उदात्त हो जाता है ॥ १७४ ॥ ङ्यन्त शब्दों से उत्तरवर्ती नाम् प्रत्यय भी छन्दोविषय मे बहुल रूप में उदात्त हो जाता है ॥ १७५ ॥ 'षट्'-संज्ञक शब्दों और त्रि तथा चतुर् शब्दों से परवर्ती हलादि विभक्तियाँ भी उदात्त हो जाती हैं ॥ १७६ ॥ 'षट्'-संज्ञक, त्रि और चतुर् शब्दों से विहित झलादि विभक्तियों से निष्पन्न पदों में उपोत्तम (= उपान्त्य) स्वर उदात्त हो जाते हैं ॥ १७७ ॥ परन्तु भाषा में अव्यवहित-पूर्वसूत्रोक्त उदात्तत्व विकल्प से ही होता है ॥ १७८ ॥

गो, श्वन्, सु विभक्ति के परे अवर्णान्त शब्द, राड्, अङ्, कुङ् और कृत् शब्दों मे षष्ठाध्यायविहित स्वरविधि प्रवृत्त नही होती ॥ १७९ ॥ दिव् शब्द से विहित झलादि विभक्तियाँ उदात्त नही होती ॥ १८० ॥ नृ शब्द से विहित झलादि विभक्तियाँ भी विकल्प से उदात्त नही होती ॥ १८१ ॥ तित् (= जिसके तकार की इत्संज्ञा हुई हो) प्रत्यय स्वरित हो जाता है ॥ १८२ ॥ तासि प्रत्यय, अनुदात्तेत्, ह्नुङ् तथा इङ् धातुओं से भिन्न औपदेशिक ङित् एवम् औपदेशिक अदन्त धातुओं से परवर्ती लकारस्थानिक सार्वधातुक प्रत्यय अनुदात्त हो जाते हैं ॥ १८३ ॥ सिजन्त शब्द का आदि स्वर विकल्प से उदात्त हो जाता है ॥ १८४ ॥ इडागमरहित अजादि लसार्वधातुक के परे स्वप् आदि

१. असम्भव के कारण 'नदी'-संज्ञक प्रत्यय की अनुवृत्ति नहीं होती।

१८६ अभ्यस्तानामादिः ।
१८७ अनुदात्ते च ।
१८८ सर्वस्य सुपि ।
१८९ भीह्रीभृहुमदजनधनदरिद्राजागरां प्रत्ययात् पूर्वं पिति ।
१९० लिति ।
१९१ आदिर्णमुल्यन्यतरस्याम् ।
१९२ अचः कर्तृयकि ।
१९३ थलि च सेटीडन्तो वा ।
१९४ ञ्नित्यादिर्नित्यम् ।
१९५ आमन्त्रितस्य च ।
१९६ पथिमथोः सर्वनामस्थाने ।
१९७ अन्तश्च तवै युगपत् ।
१९८ क्षयो निवासे ।
१९९ जयः करणम् ।
२०० वृषादीनां च ।

धातुओं और हिंस् धातु के आदि स्वर विकल्प से उदात्त हो जाते हैं ॥ १८५ ॥ इडागमरहित अजादि लसार्वधातुक के परे अभ्यस्तसंज्ञक धातुओं का आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥ १८६ ॥ जिसमे उदात्त स्वर विद्यमान न हो उस लसार्वधातुक के परे भी अभ्यस्तसंज्ञक धातुओं का आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥ १८७ ॥ सुप् प्रत्यय के परे सर्व शब्द का आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥ १८८ ॥ भी, ह्री, अभ्यस्तसंज्ञक भृ, हु, मद, जन, धन, दरिद्रा और जागृ धातुओं का प्रत्यय से पूर्ववर्त्ती स्वर पित् लसार्वधातुक के परे उदात्त हो जाता है ॥ १८९ ॥ लित् प्रत्यय के परे भी पूर्व स्वर उदात्त हो जाता है ॥ १९० ॥ णमुल् प्रत्यय के परे भी (अभ्यस्तसंज्ञक) प्रकृति का आदि स्वर विकल्प से उदात्त हो जाता है ॥ १९१ ॥ कर्त्रर्थक यक् प्रत्यय के परे औपदेशिक अजन्त धातुओं का आदि स्वर भी विकल्प से उदात्त हो जाता है ॥ १९२ ॥ इडागमविशिष्ट थल् प्रत्यय के परे विकल्प से इट् अथवा प्रकृतिभूत शब्द का अन्त्य अथवा आद्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ १९३ ॥ ञित् तथा नित् प्रत्ययों के परे प्रकृति का आद्य स्वर नित्य उदात्त होता है ॥ १९४ ॥ आमन्त्रित-संज्ञक शब्द का भी आद्य स्वर नित्य उदात्त हो जाता है ॥ १९५ ॥ सर्वनामस्थानसंज्ञक विभक्तियों के परे पथि और मथि शब्दों का आद्य स्वर भी उदात्त हो जाता है ॥ १९६ ॥ 'तवै'- प्रत्ययान्त शब्द का आद्य स्वर भी उदात्त हो जाता है और अन्त्य स्वर भी ॥ १९७ ॥ निवासार्थक क्षय शब्द का भी आद्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ १९८ ॥

करणव्युत्पन्न जय शब्द (= जयसाधनार्थक जय शब्द) का भी आद्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ १९९ ॥ वृष आदि शब्दों का भी आद्य स्वर उदात्त हो

२०१ संज्ञायामुपमानम्।
२०२ निष्ठा च द्व्यजनात्।
२०३ शुष्कधृष्टौ।
२०४ आशितः कर्ता।
२०५ रिक्ते विभाषा।
२०६ जुष्टार्पिते च च्छन्दसि।
२०७ नित्यं मन्त्रे।
२०८ युष्मदस्मदोर्ङसि।
२०९ ङयि च।
२१० यतोऽनावः।
२११ ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यतः।
२१२ विभाषा वेण्विन्धानयोः।
२१३ त्यागरागहासकुहश्वठक्रथानाम्।
२१४ उपोत्तमं रिति।
२१५ चङ्यन्यतरस्याम्।
२१६ मतोः पूर्वमात्संज्ञाया स्त्रियाम्।

जाता है ॥ २०० ॥ उपमेय की संज्ञा के रूप में प्रयुक्त उपमानभूतार्थवाचक शब्दों का भी आद्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ २०१ ॥ दों स्वरों से घटित निष्ठा-प्रत्ययान्त संज्ञाविषयक शब्दों का भी, आद्य स्वर यदि वह आकार-स्वरूप न हो, तो उदात्त हो जाता है ॥ २०२ ॥ (असंज्ञाविषय में भी) शुष्क और धृष्ट शब्दों का आद्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ २०३ ॥ कर्त्रर्थकनिष्ठाप्रत्ययान्त आशित शब्द का भी आद्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ २०४ ॥ रिक्त शब्द का भी आद्य स्वर विकल्प से उदात्त हो जाता है ॥ २०५ ॥ छन्दोविषय में जुष्ट एवम् अर्पित शब्दों का भी आद्य स्वर विकल्प से उदात्त हो जाता है ॥ २०६ ॥ किन्तु प्रयोग यदि सामवेद-गत हो तो उक्त दोनों शब्दों का आद्य स्वर नित्योदात्त होता है ॥१०७॥ ङस् प्रत्यय के परे युष्मद् और अस्मद् शब्दों का अन्त्य और आद्य स्वर भी उदात्त हो जाता है ॥ २०८ ॥ ङे प्रत्यय के परे भी युष्मद् और अस्मद् शब्दों का आद्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ २०९ ॥ यदि यत् प्रत्यय नौ शब्द से विहित न हो तो तदन्त द्व्यच् शब्द का भी आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥ २१० ॥ दो स्वरों से घटित नाव्य शब्द से भिन्न यत्प्रत्ययान्त ईड्य, वन्द्य, वार्य, शंस्य और दोह्य शब्दों का भी आद्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ २११ ॥ वेणु और इन्धान शब्दों का भी आद्य स्वर विकल्प से उदात्त हो जाता है ॥ २१२ ॥ त्याग, राग, हास, कुह, श्वठ और क्रथ शब्दों का भी आद्य स्वर विकल्प से उदात्त हो जाता है ॥ २१३ ॥ रित्-प्रत्ययान्त शब्दों का उपान्त्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ २१४ ॥ चङ्-प्रत्ययान्त शब्दों का भी उपान्त्य स्वर विकल्प से उदात्त हो जाता है ॥ २१५ ॥ स्त्रीत्वविशिष्ट अर्थ की संज्ञा के रूप में प्रयुज्यमान मत्वन्त शब्दों का मतुप् से पूर्ववर्ती आकार स्वरउदात्त हो जाता है ॥ २१६ ॥

२१७ अन्तोऽवत्याः ।
२१८ ईवत्याः ।
२१९ चौ ।
२२० समासस्य ।

द्वितीयः पादः

१ बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् ।
२ तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः ।
३ वर्णो वर्णेष्वनेते ।
४ गाधलवणयोः प्रमाणे ।
५ दायाद्यं दायादे ।
६ प्रतिबन्धि चिरकृच्छ्रयोः ।
७ पदेऽपदेशे ।
८ निवाते वातत्राणे ।
९ शारदेऽनार्तवे ।

स्त्रीत्वविशिष्टसंज्ञावृत्ती 'अवती'-शब्दान्त शब्दों का अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ २१७ ॥ 'ईवती'-शब्दान्त शब्दों का भी अन्त्य स्वर स्त्रीत्वविशिष्टसंज्ञाविषय में उदात्त हो जाता है ॥ २१८ ॥ लुप्तनकारक 'अञ्च्' धातु के परे भी पूर्ववर्त्ती शब्द का अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ २१९ ॥ समाससंज्ञक शब्दों का भी अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ २२० ॥

षष्ठाध्याय का प्रथम पाद समाप्त ।

षष्ठाध्याय का द्वितीय पाद

बहुव्रीहिसमासनिष्पन्न शब्दों में पूर्वपद का स्वर प्रकृतिवत् (= विग्रहकाल में जैसा स्वर का स्वरूप हो वैसा ही) बना रहता है ॥ १ ॥ तत्पुरुष समास में, पूर्वपदस्थानीय तुल्यार्थक, तृतीयान्त, सप्तम्यन्त, उपमानभूतार्थवाचक, अव्ययसंज्ञक, द्वितीयान्त तथा 'कृत्य'-प्रत्ययान्त शब्दों का स्वर प्रकृतिवत् बना रहता है ॥२॥ तत्पुरुष समास में यदि उत्तरपद 'एत'-शब्द से भिन्न कोई वर्णवाचक शब्द हो और पूर्वपद भी वर्णवाचक शब्द हो तो पूर्वपद का स्वर प्रकृतिवत् बना रह जाता है ॥ ३ ॥ प्रमाणवाचक तत्पुरुषसमासनिष्पन्न शब्द में यदि गाध अथवा लवण शब्द उत्तरपद हो तो भी पूर्वपद का स्वर प्रकृतिवत् बना रहता है ॥४॥ दायादशब्दोत्तरपदक तत्पुरुषसमास में दायाद्यवाचक पूर्वपद का स्वर प्रकृतिवत् बना रहता है ॥ ५ ॥ चिर-शब्दोत्तरपदक एवं कृच्छ्र-शब्दोत्तरपदक तत्पुरुष में प्रतिबन्धि[1]-वाचक पूर्वपद का स्वर प्रकृतिवत् बना रहता है ॥ ६ ॥ 'पद'-शब्दोत्तरपदक अपदेश-(= छल-) वाचक तत्पुरुष में भी पूर्वपद का स्वर प्रकृतिवत् बना रहता है ॥ ७ ॥ निवात-शब्दोत्तरपदक वातत्राणवाचक तत्पुरुष में भी पूर्वपद का प्रकृतिस्वरत्व ज्ञातव्य है ॥ ८ ॥ शरदृतु में उत्पन्न पदार्थ का जो वाचक न

---

१. कार्यं प्रतिबध्नातीति प्रतिबन्धिः = प्रतिबन्धकः ।

१० अध्वर्युकषाययोर्जातौ।
११ सदृशप्रतिरूपयोः सादृश्ये।
१२ द्विगौ प्रमाणे।
१३ गन्तव्यपण्यं वाणिजे।
१४ मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये नपुंसके।
१५ सुखप्रिययोर्हिते।
१६ प्रीतौ च।
१७ स्वं स्वामिनि।
१८ पत्यावैश्वर्ये।
१९ न भूवाक्चिद्दिधिषु।
२० वा भुवनम्।
२१ आशङ्काबाधनेदीयःसु सम्भावने
२२ पूर्वे भूतपूर्वे।

हो उस शारद-शब्द-स्वरूप उत्तरपद से घटित तत्पुरुष में भी पूर्वपद का स्वर यथापूर्व बना रहता है ॥ ९ ॥ अध्वर्युशब्दोत्तरपदक एवं कषायशब्दोत्तरपदक जातिवाचक तत्पुरुष के भी पूर्वपद का स्वर यथापूर्व बना रहता है ॥ १० ॥ 'सदृश'-शब्दोत्तरपदक और प्रतिरूप-शब्दोत्तरपदक सादृश्यवाचक तत्पुरुष में भी पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्व ज्ञातव्य है ॥ ११ ॥ 'द्विगु'-संज्ञक-शब्दोत्तरपदक प्रमाणवाची तत्पुरुष में भी पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्व अवगन्तव्य है ॥ १२ ॥ वाणिज्य-शब्दोत्तपदक तत्पुरुष में गन्तव्यार्थवाचक तथा पण्यभूतार्थवाचक पूर्वपदों का स्वर भी प्रकृतिवत् बना रहता है ॥ १३ ॥ नपुंसकलिङ्गवृती मात्रा-शब्दोत्तरपदक, उपज्ञा-शब्दोत्तरपदक, उपक्रम-शब्दोत्तरपदक और छाया-शब्दोतरपदक तत्पुरुष में भी पूर्वपद का स्वर यथापूर्व बना रहता है ॥ १४ ॥ सुख-शब्दोत्तरपदक और प्रिय-शब्दोत्तरपदक तत्पुरुष यदि हित-वाचक हो तो भी पूर्वपद का प्रकृतिस्वर बना रहता है ॥ १५ ॥ समास द्वारा प्रीति गम्यमान होने पर भी पूर्वसूत्रोक्त तत्पुरुष के पूर्वपद का स्वर प्रकृतिवत् बना रहता है ॥ १६ ॥ स्वामिन्-शब्दोत्तरपदक तत्पुरुष मे भी स्व-वाचक पूर्वपद का स्वर प्रकृतिवत् बना रहता है ॥ १७ ॥ पति-शब्दोत्तरपदक ऐश्वर्यवाची तत्पुरुष मे भी पूर्वपद का स्वर प्रकृतिवत् बना रहता है ॥ १८ ॥ किन्तु पति-शब्दोत्तरपदक तत्पुरुष में भू, वाच्, चित् अथवा दिधिषू शब्द यदि पूर्वपद हो तो स्वर पूर्ववत् नहीं बना रहता ॥ १९ ॥ पति-शब्दोत्तरपदक ऐश्वर्यवाचक तत्पुरुष समास में पूर्वपदभूत भुवन शब्द का स्वर भी विकल्प से प्रकृतिवत् बना रहता है ॥ २० ॥

यदि सम्भावनावाचक तत्पुरुष मे आशङ्क, आबाध अथवा नेदीयस् शब्द उत्तरपद हो तो भी पूर्वपद का स्वर यथापूर्व बना रहता है ॥ २१ ॥ भूतपूर्ववाचक

१. तत्पुरुष का अर्थ तत्पुरुष समास से निष्पन्न शब्द है।

२३ सविधसनीडसमर्यादसवेशसदेशेषु सामीप्ये ।
२४ विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु ।
२५ श्रज्यावमकन्पापवत्सु भावे कर्मधारये ।
२६ कुमारश्च ।
२७ आदिः प्रत्येनसि ।
२८ पूगेष्वन्यतरस्याम् ।
२९ इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ ।
३० बह्वन्यतरस्याम् ।
३१ दिष्टिवितस्त्योश्च ।
३२ सप्तमी सिद्धशुष्कपक्वबन्धेष्वकालात् ।
३३ परिप्रत्युपापावर्ज्यमानाहोरात्रावयवेषु ।
३४ राजन्यबहुवचनद्वन्द्वेऽन्धकवृष्णिषु ।

तत्पुरुष में यदि 'पूर्व' शब्द उत्तरपद हो तो भी पूर्वपद का स्वर यथापूर्व बना रहता है ॥ २२ ॥ सामीप्यवाचक तत्पुरुष में यदि उत्तरपद के स्थान में सविध, सनीड़, समर्याद, सवेश या सदेश शब्द हो तो भी पूर्वपद का स्वर प्रकृतिवत् बना रहता है ॥ २३ ॥ गुणवचन (= गुणवाचक) शब्द यदि तत्पुरुष में उत्तरपदस्थानीय हो तो विस्पष्ट आदि पूर्वपदस्थानीय शब्दों का भी स्वर यथापूर्व बना रहता है ॥ २४ ॥ कर्मधारय समास में यदि श्र, ज्य, अवम, कन् अथवा पाप शब्द उत्तरपदस्थानीय हो तो भावार्थक पूर्वपद का भी स्वर यथापूर्व बना रहता है ॥ २५ ॥ कर्मधारय समास में पूर्वपदस्थानीय कुमार शब्द का भी स्वर यथापूर्व बना रहता है ॥ २६ ॥ प्रत्येनस्-शब्दोत्तरपदक कर्मधारय में पूर्वपदस्थानीय कुमार-शब्द का आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥ २७ ॥ किन्तु गणवाचक शब्द यदि कर्मधारय में उत्तरपद हो तो पूर्वपदस्थानीय कुमार शब्द का आद्युदात्त्व विकल्प से ही होता है ॥२८॥ इगन्त शब्द, कालवाचक शब्द, कपाल, भगाल अथवा शराव शब्द यदि द्विगुसमास में उत्तरपद हो तो पूर्वपद का स्वर प्रकृतिवत् बना रहता है ॥ २९ ॥ द्विगुसमास मे इगन्तादि शब्द के उत्तरपद होने पर पूर्वपदस्थानीय बहु शब्द का भी स्वर विकल्प से यथापूर्व बना रहता है ॥ ३० ॥ दिष्टि-शब्दोत्तरपदक और वितस्ति-शब्दोत्तरपदक द्विगुसमास में भी पूर्वपद का स्वर विकल्प से यथापूर्व बना रहता है ॥ ३१ ॥ सिद्ध, शुष्क, पक्व अथवा बन्ध शब्द यदि उत्तरपद हो तो पूर्वपदस्थानीय कालार्थकभिन्न सप्तम्यन्त शब्द का भी स्वर प्रकृतिवत् बना रहता है ॥ ३२ ॥ वर्ज्यमानपदार्थवाचक, दिनावयववाचक अथवा रात्र्यवयववाचक उत्तरपद होने पर पूर्वपदस्थानीय परि, प्रति, उप एवम् अप इन शब्दों का भी स्वर यथापूर्व बना रहता है ॥ ३३ ॥ बहुवचनान्त राजन्यवाचकशब्दों में विहित द्वन्द्व यदि अन्धकवंश अथवा वृष्णिवंश

३५ संख्या।
३६ आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासी।
३७ कार्तकौजपादयश्च।
३८ महान्व्रीह्यपराह्णगृष्टीष्वासजाबालभारभारतहैलिहिलरौरवप्रवृद्धेषु।
३९ क्षुल्लकश्च वैश्वदेवे।
४० उष्ट्रः सादिवाम्योः।
४१ गौः सादसादिसारथिषु।
४२ कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपा पारेवडवा तैतिलकद्रूः पण्यकम्बलो दासीभाराणां च।
४३ चतुर्थी तदर्थे।
४४ अर्थे।
४५ क्ते च।
४६ कर्मधारयेऽनिष्ठा।

का प्रतिपादक हो तो भी पूर्वपद का स्वर प्रकृतिवत् बना रहता है॥ ३४॥ द्वन्द्वसमास में संख्यावाचक पूर्वपद का भी स्वर यथापूर्व बना रहता है॥ ३५॥ आचार्यवाचक शब्दों से निष्पन्न शिष्यवाचक शब्दों के बीच विहित द्वन्द्व समास के पूर्वपद का प्रकृतिस्वरत्व अवगन्तव्य है॥ ३६॥ द्वन्द्वसमासनिष्पन्न कार्तकौजप आदि शब्दों के भी पूर्वपद का प्रकृतिस्वर बना रहता है॥३७॥ व्रीहि, अपराह्ण, गृष्टि, इष्वास, जाबाल, भार, भारत, हैलिहिल, रौरव अथवा प्रवृद्ध शब्द यदि उत्तरपद हो तो पूर्वपदस्थानीय महत् शब्द का भी प्रकृतिस्वर बना रहता है॥ ३८॥ वैश्वदेव शब्द यदि उत्तरपद हो तो पूर्वपदस्थानीय क्षुल्लक और महत् शब्द का भी प्रकृतिस्वर बना रहता है॥ ३९॥ सादिन् अथवा वामिन् शब्द यदि उत्तरपद हो तो पूर्वपदस्थानीय उष्ट्र शब्द का भी स्वर प्रकृतिवत् बना रहता है॥ ४०॥

साद, सादिन् अथवा सारथि शब्द यदि उत्तरपद हो तो पूर्वपदस्थानीय गो शब्द का भी स्वर प्रकृतिवत् बना रहता है॥ ४१॥ कुरुगार्हपत, रिक्तगुरु, असूतजरती, अश्लीलदृढरूपा, पारेवडवा, तैतिलकद्रू, पण्यकम्बल और दासीभार आदि शब्दों के पूर्वपदों का भी प्रकृतिस्वर बना रहता है॥ ४२॥ चतुर्थ्यन्त पूर्वपद का भी स्वर तदर्थ (= चतुर्थ्यन्तपदार्थ के निमित्तभूत अर्थ) के वाचक शब्द के उत्तरपद होने पर यथापूर्व बना रहता है॥ ४३॥ अर्थ शब्द यदि उत्तरपद हो तो भी चतुर्थ्यन्त पूर्वपद का प्रकृतिस्वर यथापूर्व बना रहता है॥ ४४॥ क्त-प्रत्ययान्त उत्तरपद होने पर भी चतुर्थ्यन्त पूर्वपद का प्रकृतिस्वरत्व अवगन्तव्य है॥ ४५॥ कर्मधारय समास मे क्त-प्रत्ययान्त उत्तरपद होने पर 'निष्ठा'-प्रत्ययान्त से भिन्न पूर्वपद का भी स्वर यथापूर्व बना रहता है॥ ४६॥

४७ अहीने द्वितीया ।
४८ तृतीया कर्मणि ।
४९ गतिरनन्तरः ।
५० तादौ च निति कृत्यतौ ।
५१ तवै चान्तश्च युगपत् ।
५२ अनिगन्तोऽञ्चतौ वप्रत्यये ।
५३ न्यधी च ।
५४ ईषदन्यतरस्याम् ।
५५ हिरण्यपरिमाणं धने ।
५६ प्रथमोऽचिरोपसम्पत्तौ ।
५७ कतरकतमौ कर्मधारये ।
५८ आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः ।
५९ राजा च ।
६० षष्ठी प्रत्येनसि ।

हीन (= त्यक्त, जहाँ से विभक्त हो चुका हो उस) से उस भिन्न अर्थ के वाचक समास में क्त-प्रत्ययान्त उत्तरपद होने पर द्वितीयान्त पूर्वपद का भी प्रकृतिस्वरत्व अवगन्तव्य है ॥ ४७ ॥ कर्मार्थक-क्त-प्रत्ययान्त उत्तरपद होने पर तृतीयान्त पूर्वपद का भी स्वर यथावत् बना रहता है ॥ ४८ ॥ कर्म-क्त-प्रत्ययान्त उत्तरपद होने पर अव्यवहित-पूर्वपदस्थानीय 'गति'-संज्ञक शब्द का भी स्वर यथापूर्व बना रहता है ॥ ४९ ॥ तुन्-प्रत्यय-भिन्न तकारादि नित् प्रत्ययों से निष्पन्न पूर्वपदस्थानीय 'गति'-संज्ञक शब्द का भी स्वर यथापूर्व बना रहता है ॥ ५० ॥ तवै-प्रत्ययान्त उत्तरपद के तवै-प्रत्यय का अन्त्य स्वर उदात्त भी हो जाता है और अव्यवहित-पूर्वपदस्थानीय 'गति-संज्ञक शब्द का प्रकृतिस्वर भी बना रहता है ॥ ५१ ॥ क्विन्-आदि-प्रत्ययान्त अञ्च् धातु यदि उत्तरपद हो तो इगन्त से भिन्न 'गति'-संज्ञक शब्द का भी प्रकृतिस्वर बना रहता है ॥ ५२ ॥ उक्तविध अञ्च् धातु के परे 'नि' तथा अधि इन दोनों 'गति'-संज्ञक शब्दों का भी प्रकृतिस्वर बना रहता है ॥ ५३ ॥ पूर्वपदस्थानीय ईषत् शब्द का प्रकृतिस्वरत्व विकल्प से अवगन्तव्य है ॥ ५४ ॥ धन शब्द यदि उत्तरपद हो तो पूर्वपदस्थानीय हिरण्य-परिमाण-प्रतिपादक शब्द का भी विकल्प से प्रकृतिस्वरत्व अवगन्तव्य है ॥ ५५ ॥ अचिरोपसम्पत्ति (= अभिनवत्व) गम्यमान होने पर पूर्वपदस्थानीय 'प्रथम' शब्द का भी प्रकृतिस्वर विकल्प से बना ही रहता है ॥ ५६ ॥ कर्मधारय समास में पूर्वपदस्थानीय कतर और कतम शब्दों का भी प्रकृतिस्वर विकल्प से बना ही रहता है ॥ ५७ ॥ ब्राह्मण-शब्दोत्तरपदक एवं कुमार-शब्दोत्तरपदक कर्मधारय में पूर्वपदस्थानीय आर्य शब्द का भी प्रकृतिस्वर विकल्प से यथापूर्व बना रहता है ॥ ५८ ॥ उक्त दोनों कर्मधारय में पूर्वपदस्थानीय राजन् शब्द का भी प्रकृतिस्वर विकल्प से बना ही रहता है ॥ ५९ ॥ प्रत्येनस्-शब्दो-

६१ क्ते नित्यार्थे ।
६२ ग्रामः शिल्पिनि ।
६३ राजा च प्रशंसायाम् ।
६४ आदिरुदात्तः ।
६५ सप्तमीहारिणौ धर्म्येऽहरणे ।
६६ युक्ते च ।
६७ विभाषाऽध्यक्षे ।
६८ पापं च शिल्पिनि ।
६९ गोत्रान्तेवासिमाणवब्राह्मणेषु क्षेपे ।
७० अङ्गानि मैरेये ।
७१ भक्ताख्यास्तदर्थेषु ।
७२ गोबिडालसिंहसैन्धवेषूपमाने ।
७३ अके जीविकार्थे ।

त्तरपदक कर्मधारय में भी पूर्वपदस्थानीय राजन् शब्द का भी प्रकृतिस्वर विकल्प से बना ही रहता है ॥ ६० ॥

नित्यसमास में क्त-प्रत्ययान्त उत्तरपद होने पर भी पूर्वपद का प्रकृतिस्वर विकल्प से बना हीं रहता है ॥ ६१ ॥ शिल्पिवाचक उत्तरपद होने पर पूर्वपद-स्थानीय ग्राम शब्द का भी प्रकृतिस्वर विकल्प से बना ही रहता है ॥ ६२ ॥ प्रशंसा गम्यमान होने पर भी शिल्प-वाचक उत्तरपद के परे पूर्वपदस्थानीय राजन् शब्द का प्रकृतिस्वर विकल्प से बना ही रहता है ॥ ६३ ॥ अब से 'पूर्वपद का आदि स्वर उदात्त हो जाता है' यह अधिकृत समझना चाहिए ॥ ६४ ॥ हरण (=वाहन) शब्द से भिन्न हरण-वाचक उत्तरपद होने पर सप्तम्यन्त पूर्वपद और हारि-वाचक पूर्वपद का आद्युदात्तत्व हो जाता है ॥ ६५ ॥ युक्त-(=कर्तव्यतत्पर-) वाचक समास में भी पूर्वपद का आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥ ६६ ॥ अध्यक्ष-शब्दोत्तरपदक समास में पूर्वपद का वैकल्पिक आद्युदात्तत्व समझना चाहिए ॥ ६७ ॥ शिल्पि-वाचक उत्तरपद होने पर भी पूर्वपद का वैकल्पिक आद्युदात्तत्व समझना चाहिए ॥ ६८ ॥ निन्दावाचक समास में गोत्र-वाचक, अन्तेवासिवाचक, माणव और ब्राह्मण शब्दों के उत्तरपदत्व में भी पूर्वपद का आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥ ६९ ॥ मैरेय-शब्दोत्तरपदक समास में मैरेयाङ्गवाचक पूर्वपद का भी आद्युदात्तत्व ज्ञातव्य है ॥ ७० ॥ अन्न के निमित्त अपेक्षित वस्तु का वाचक शब्द यदि उत्तरपद हो तो भी अन्नवाचक पूर्वपद का आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥ ७१ ॥ उपमानवाचक गो, बिडाल, सिंह अथवा सैन्धव शब्द यदि उत्तरपद हो तो भी पूर्वपद का आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥ ७२ ॥ जीविका-साधनवाचक समास में अक-प्रत्ययान्त शब्द यदि उत्तरपद हो तो भी पूर्वपद का आद्युदात्तत्व समझना चाहिए ॥ ७३ ॥

७४ प्राचां क्रीडायाम् ।
७५ अणि नियुक्ते ।
७६ शिल्पिनि चाकृञः ।
७७ संज्ञायां च ।
७८ गोतन्तियवं पाले ।
७९ णिनि ।
८० उपमानं शब्दार्थप्रकृतावेव ।
८१ युक्तारोह्यादयश्च ।
८२ दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटं जे ।
८३ अन्त्यात्पूर्वं बह्वचः ।
८४ ग्रामेऽनिवसन्तः ।
८५ घोषादिषु च ।
८६ छात्र्यादयः शालायाम् ।
८७ प्रस्थेऽवृद्धमकर्क्यादीनाम् ।
८८ मालादीनां च ।
८९ अमहन्नवं नगरेऽनुदीचाम् ।

प्राच्यदेशीय क्रीड़ा के वाचक समास में भी अक-प्रत्ययान्त उत्तरपद होने पर पूर्वपद का आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥ ७४ ॥ नियुक्त-वाचक समास में अण्-प्रत्ययान्त उत्तरपद होने पर भी पूर्वपद का आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥ ७५ ॥ शिल्पि-वाचक समास में भी यदि कृ धातु से भिन्न अण्-प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद हो तो पूर्वपद का आद्युदात्तत्व समझना चाहिए ॥ ७६ ॥ समासयुक्त शब्द यदि संज्ञाशब्द हो तो भी कृञ्-धातुभिन्न अण्-प्रत्ययान्त उत्तरपद के परे पूर्वपद का आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥ ७७ ॥ पाल-शब्दोत्तरपदक समास में पूर्वपदस्थानीय गो, तन्ति और यव शब्दों का आद्युदात्तत्व हो जाता है ॥ ७८ ॥ णिनि-प्रत्ययान्त शब्दार्थक धातु यदि उत्तरपद हो तो भी उपमान-वाचक पूर्वपद का आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥ ८० ॥

युक्तारोहिन् आदि समस्त शब्दों का भी आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥८१॥ 'ज' इस उत्तरपद के परे पूर्वपदस्थानीय दीर्घान्त शब्द, काश, तुष, भ्राष्ट्र और वट शब्दों का भी आद्युदात्तत्व ज्ञातव्य है ॥ ८२ ॥ उत्तरपद के परे बह्वच् पूर्वपद का अन्त्य से पूर्व (=उपान्त्य) स्वर उदात्त हो जाता है ॥ ८३ ॥ ग्राम-शब्दोत्तरपदक समास में तद्ग्रामवासिभिन्न व्यक्ति का वाचक पूर्वपद आद्युदात्त हो जाता है ॥ ८६ ॥ प्रस्थ-शब्दोत्तरपदक समास में कर्की आदि शब्दों से भिन्न 'वृद्ध'-संज्ञक शब्दों का भी आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥८७॥ प्रस्थ-शब्दोत्तरपदक समास में पूर्वपदस्थानीय माला आदि शब्दों का भी आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥ ८८ ॥ समुदाय यदि उदीच्यदेशस्थ-नगर-वाचक न हो तो महत् और नव शब्दों से भिन्न पूर्वपद का भी आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥ ८९ ॥

९० अर्मे चावर्णं द्व्यच्त्र्यच्।	९६ उदकेऽकेवले।
९१ न भूताधिकसञ्जीवमद्राश्मकज्जलम्।	९७ द्विगौ क्रतौ।
९२ अन्तः।	९८ सभायां नपुंसके।
९३ सर्वं गुणकार्त्स्न्ये।	९९ पुरे प्राचाम्।
९४ संज्ञायां गिरिनिकाययोः।	१०० अरिष्टगौडपूर्वे च।
९५ कुमार्यां वयसि।	१०१ न हास्तिनफलकमार्देयाः।
	१०२ कुसूलकूपकुम्भशालं बिले।

अर्म-शब्दोत्तरपदक समास में अवर्णान्त द्व्यच् (= दो स्वरों मात्र से घटित) एवं त्र्यच् (= तीन स्वरों से ही घटित) पूर्वपद का भी आदि स्वर उदात्त हो जाता है ॥९०॥ किन्तु अर्म-शब्दोत्तरपदक समास में भी पूर्वपदस्थानीय भूत, अधिक, संजीव, मद्र, अश्मन् और कज्जल शब्दों का आदि स्वर उदात्त नहीं होता ॥ ९१ ॥ अब से 'अन्तः' (= पूर्वपद का अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है) का अधिकार समझना चाहिए ॥ ९२ ॥ गुण की कृत्स्नता को प्रकट करने वाला पूर्वपदस्थानीय सर्व शब्द का अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ ९३ ॥ संज्ञा-विषय में गिरि-शब्दोत्तरपदक और निकाय-शब्दोत्तरपदक समास में पूर्वपद का अन्तोदात्तत्व अवगन्तव्य है ॥ ९४ ॥ वयस् यदि गम्यमान हो तो कुमारी-शब्दोत्तरपदक समास में भी पूर्वपद का अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ ९५ ॥ मिश्रण-वाचक समास में उदक शब्द यदि उत्तरपद हो तो भी पूर्वपद का अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ ९६ ॥ क्रतु-वाचक समास में द्विगुसंज्ञक शब्द यदि उत्तरपद हो तो भी पूर्वपद का अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ ९७ ॥ सभा-शब्दोत्तरपदक नपुंसकलिङ्गवृत्ती समास में भी पूर्वपद का अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ ९८ ॥ पुर-शब्दोत्तरपदक प्राच्यदेशवाचक समास के पूर्वपद का भी अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ ९९ ॥ पुर-शब्दोत्तरपदक अरिष्टशब्दपूर्वक[1] एवं (पुर-शब्दोत्तरपदक) गौड़-शब्दपूर्वक समास में अरिष्ट एवं गौड़ शब्दों का भी अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ १०० ॥

किन्तु पुर-शब्दोत्तरपदक समास में भी पूर्वपदस्थानीय हास्तिन, फलक और मार्देय शब्दों का अन्तोदात्तत्व नहीं होता ॥ १०१ ॥ बिल-शब्दोत्तरपदक समास

१. सूत्र में 'पूर्व' शब्द का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि यदि अरिष्ट एवं गौड़ शब्द पूर्वपदावयव भी हों तो भी इनका अन्तोदात्तत्व हो ही जाता है।

१०३ दिक्शब्दा ग्रामजनपदाख्यान-चानराटेषु ।
१०४ आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासिनि ।
१०५ उत्तरपदवृद्धौ सर्वं च ।
१०६ बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् ।
१०७ उदराश्वेषुषु ।
१०८ क्षेपे ।
१०९ नदी बन्धुनि ।
११० निष्ठोपसर्गपूर्वमन्यतरस्याम् ।
१११ उत्तरपदादिः ।
११२ कर्णो वर्णलक्षणात् ।
११३ सञ्ज्ञौपम्ययोश्च ।
११४ कण्ठपृष्ठग्रीवाजङ्घं च ।

में भी पूर्वपदस्थानीय कुसूल, कूप, कुम्भ और शाला शब्दों का अन्तोदात्तत्व अवगन्तव्य है ॥ १०२ ॥ ग्रामवाचक, जनपदवाचक, आख्यानवाचक अथवा चानराट शब्द यदि उत्तरपद हो तो दिग्वाचकत्वेन[1] प्रसिद्ध पूर्वपद भी अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १०३ ॥ आचार्यवाचक शब्द से निष्पन्न अन्तेवासिवाचक शब्द यदि उत्तरपद हो तो भी दिग्वाचकत्वेन प्रसिद्ध पूर्वपद अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १०४ ॥ "उत्तरपदस्य च" इस सूत्र से विहित वृद्धि से विशिष्ट शब्द यदि उत्तरपद हो तो पूर्वपदस्थानीय दिग्वाचकत्वेन प्रसिद्ध शब्द और सर्व शब्द भी अन्तोदात्त हो जाते हैं ॥ १०५ ॥ समस्तशब्द यदि संज्ञाशब्द हो तो बहुव्रीहि-समास मे पूर्वपदस्थानीय विश्व शब्द भी अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १०६ ॥ संज्ञा-विषयक बहुव्रीहि समास में उदर, अश्व अथवा इषु शब्द यदि उत्तरपद हो तो भी पूर्वपद अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १०७ ॥ संज्ञाविषयक समस्त शब्द से यदि क्षेप (= निन्दा) गम्यमान हो तो भी उदरशब्दोत्तरपदक, अश्वशब्दोत्तरपदक और इषुशब्दोत्तरपदक बहुव्रीहि में पूर्वपद अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १०८ ॥ बन्धु-शब्दोत्तरपदक बहुव्रीहि समास में भी 'नदी'-संज्ञक[2] पूर्वपद अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १०९ ॥ बहुव्रीहि समास में उपसर्गपूर्वक निष्ठा-प्रत्ययान्त पूर्वपद भी विकल्प से अन्तोदात्त हो जाता है ॥ ११० ॥ अब उत्तरपद के आद्युदात्तत्व का अधिकार अवगन्तव्य है ॥ १११ ॥ बहुव्रीहि समास में वर्ण-(= रूप-) वाचक और लक्षणवाचक पूर्वपद से परवर्ती उत्तरपदस्थानीय कर्ण शब्द आद्युदात्त हो जाता है ॥ ११२ ॥ संज्ञाविषयक तथा औपम्य के प्रतिपादक बहुव्रीहि समास में भी उत्तरपदस्थानीय कर्ण शब्द आद्युदात्त हो जाता है ॥ ११३ ॥ संज्ञाविषयक

१. अत एव यदि प्रकृत में यह शब्द कालार्थक भी हो तो भी अन्तोदात्तत्व हो जाता है।
२. नदी-संज्ञा-सूत्र में 'वर्णयोरेव संज्ञा' यह भी एक पक्ष है। तदनुसार गार्गी आदि शब्द नद्यन्त भी हैं। अतएव वृत्तिकार ने "नद्यन्तं पूर्वपदम्" कहा है।

११५ शृङ्गमवस्थायां च।
११६ नञो जरमरमित्रमृताः।
११७ सोर्मनसी अलोमोषसी।
११८ क्रत्वादयश्च।
११९ आद्युदात्तं द्व्यच्छन्दसि।
१२० वीरवीर्यौ च।
१२१ कूलतीरतूलमूलशालाक्षसममव्ययीभावे।
१२२ कंसमन्थशूर्पपाय्यकाण्डं द्विगौ।
१२३ तत्पुरुषे शालायां नपुंसके।
१२४ कन्था च।
१२५ आदिश्चिहणादीनाम्।
१२६ चेलखेटकटुककाण्डं गर्हायाम्।

तथा औपम्यप्रतिपादक बहुव्रीहि समास में उत्तरपदस्थानीय कण्ठ, पृष्ठ, ग्रीवा और जङ्घा शब्द भी आद्युदात्त हो जाते हैं ॥ ११४ ॥ संज्ञाविषयक, औपम्यप्रतिपादक एवम् अवस्थाप्रतिपादक बहुव्रीहि में भी उत्तरपदस्थानीय शृङ्ग शब्द आद्युदात्त हो जाता है ॥ ११५ ॥ नञ्-पूर्वपदक बहुव्रीहि समास में उत्तरपदस्थानीय जर, मर, मित्र और मृत शब्द भी आद्युदात्त हो जाते हैं ॥ ११६ ॥ 'सु'-शब्द पूर्वपदक बहुव्रीहि समास में लोमस् और उषस् शब्दों से भिन्न अस्-शब्दान्त उत्तरपद भी आद्युदात्त हो जाते हैं ॥ ११७ ॥ 'सु'-पूर्वपदक बहुव्रीहि समास में उत्तरपदस्थानीय क्रतु आदि शब्द भी आद्युदात्त हो जाते हैं ॥ ११८ ॥ 'सु'-पूर्वक आद्युदात्त द्व्यच् उत्तरपद भी बहुव्रीहि समास में, यदि प्रयोग छन्दोविषयक हो तो आद्युदात्त ही बना रहता है ॥ ११९ ॥ 'सु'-शब्दपूर्वक बहुव्रीहि में उत्तरपदस्थानीय वीर और वीर्य शब्द भी छन्दोविषयक प्रयोग में आद्युदात्त हो जाते हैं ॥ १२० ॥

अव्ययीभाव समास में उत्तरपदस्थानीय कूल, तीर, तूल, मूल, शाला, अक्ष और सम शब्द आद्युदात्त हो जाते हैं ॥ १२१ ॥ द्विगुसमास में उत्तरपदस्थानीय कंस, मन्थ, शूर्प, पाय्य और काण्ड शब्द आद्युदात्त हो जाते हैं ॥१२२॥ शाला-शब्दान्त नपुंसकलिङ्गवर्ती तत्पुरुष समास में भी उत्तरपद (= शाला शब्द) आद्युदात्त हो जाता है ॥ १२३ ॥ नपुंसकत्वविशिष्ट तत्पुरुष समास में उत्तरपदस्थानीय कन्था शब्द भी आद्युदात्त हो जाता है ॥ १२४ ॥ कन्था-शब्दान्त तत्पुरुष में पूर्वपदस्थानीय चिहण आदि शब्द आद्युदात्त[1] हो जाते हैं ॥ १२५ ॥ समस्त शब्द से यदि गर्हा गम्यमान हो तो तत्पुरुष समास में उत्तरपदस्थानीय चेल, खेट, कटुक और काण्ड शब्द भी आद्युदात्त हो जाते हैं

१. अनुवृत्ति द्वारा 'आदि' के सुलभ होने पर भी सूत्र में पुनः उत्तरपदाद्युदात्तत्व के प्रकरण में पूर्वपद का आद्युदात्तत्व 'आदि' शब्द के निर्देश से सिद्ध होता है।

१२७ चीरमुपमानम् ।
१२८ पललसूपशाक मिश्रे ।
१२९ कूलसूदस्थलकर्षाः संज्ञायाम्
१३० अकर्मधारये राज्यम् ।
१३१ वर्ग्यादयश्च ।
१३२ पुत्रः पुम्भ्यः ।
१३३ नाचार्यराजर्त्विक्संयुक्त-ज्ञात्याख्येभ्यः ।
१३४ चूर्णादीन्यप्राणिषष्ठ्याः ।
१३५ षट् च काण्डादीनि ।
१३६ कुण्डं वनम् ।
१३७ प्रकृत्या भगालम् ।
१३८ शितेर्नित्याबह्वज्बहुव्रीहावभसत्
१३९ गतिकारकोपपदात्कृत् ।
१४० उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ।

॥ १२७ ॥ उत्तरपदस्थानीय उपमानवाचक चीर शब्द भी तत्पुरुष समास में आद्युदात्त हो जाता है ॥ १२७ ॥ मिश्रण-वाचक तत्पुरुष में उत्तरपदस्थानीय पलल, सूप और शाक शब्द भी आद्युदात्त हो जाते हैं ॥ १२८ ॥ संज्ञाविषयक तत्पुरुष में उत्तरपदस्थानीय कूल, सूद, स्थल और कर्ष शब्द भी आद्युदात्त हो जाते हैं ॥ १२९ ॥ कर्मधारय से भिन्न तत्पुरुष में उत्तरपदभूत राज्य शब्द भी आद्युदात्त हो जाता है ॥ १३० ॥ कर्मधारयभिन्न तत्पुरुष में उत्तरपदस्थानीय कार्य आदि शब्द भी आद्युदात्त हो जाते हैं ॥ १३१ ॥ पुंवाचक शब्द से परवर्त्ती उत्तरपदभूत पुत्र शब्द भी आद्युदात्त हो जाता है ॥ १३२ ॥ किन्तु पुंवाचक-शब्दों में भी आचार्य, राजन्, ऋत्विज्, संयुक्त (= स्त्री के सम्बन्धी श्यालक आदि), ज्ञाति (= माता-पिता के सम्बन्धी) शब्द अथवा इनके सामान्य या विशेष पर्याय शब्दों से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय पुत्र शब्द तत्पुरुष समास में आद्युदात्त नहीं होता ॥ १३३ ॥ अप्राणिवाचक षष्ठयन्त पद से परवर्त्ती चूर्ण आदि उत्तरपद तत्पुरुष समास में आद्युदात्त हो जाते हैं ॥ १३४ ॥ अप्राणिवाचक षष्ठयन्त पद से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय पूर्वोक्त छः शब्द—काण्ड, चीर, पलल, सूप शाक और कूल शब्द—भी तत्पुरुषसमास में आद्युदात्त हो जाते हैं ॥१३५॥ वनवाचक तत्पुरुष में उत्तरपदभूत कुण्ड शब्द भी आद्युदात्त हो जाता है ॥१३६॥ तत्पुरुष समास में उत्तरपदस्थानीय भगाल (= कपाल = खोपड़ी) तथा एतदर्थक शब्दों का प्रकृतिस्वर ही बना रहता है ॥ १३७ ॥ शिति-शब्द-पूर्वपदक बहुव्रीहि समास में नित्यरूप में दो से अधिक स्वरों से रहित, भसत् शब्द से भिन्न, उत्तरपद का भी प्रकृतिस्वर बना रहता है ॥१३८॥ गति-संज्ञकपूर्वपदक, कारकोपपदक एवम् उपपद-संज्ञकशब्दपूर्वपदक तत्पुरुष में उत्तरपदस्थानीय कृदन्त शब्द का भी प्रकृतिस्वर ही बना रहता है ॥ १३९ ॥ वनस्पति आदि समस्त शब्दों

१४१ देवताद्वन्द्वे च।
१४२ नोत्तरपदेऽनुदात्तादावपृथिवी-रुद्रपूषमन्थिषु।
१४३ अन्तः।
१४४ थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम्।
१४५ सूपमानात् क्तः।
१४६ संज्ञायामनाचितादीनाम्।
१४७ प्रवृद्धादीनां च।
१४८ कारकाद्दत्तश्रुतयोरेवाशिषि।
१४९ इत्थम्भूतेन कृतमिति च।
१५० अनो भावकर्मवचनः।
१५१ मन्क्तिन्व्याख्यानशयनासन-स्थानयाजकादिक्रीताः।
१५२ सप्तम्याः पुण्यम्।

के पूर्व तथा उत्तर दोनों ही पदों के प्रकृतिस्वर बने रहते हैं॥ १४०॥ देवतावाचक द्वन्द्व समास में भी पूर्व तथा उत्तर पदों के प्रकृतिस्वर सुरक्षित रहते हैं॥ १४१॥ किन्तु पृथिवी, रुद्र, पूषन् और मन्थिन् से अतिरिक्त अनुदात्तादि उत्तरपद से विशिष्ट देवताद्वन्द्व के पूर्वोत्तर पदों के प्रकृतिस्वर यथापूर्व नहीं बने रहते॥ १४२॥ अब से उत्तरपद के अन्तोदात्तत्व का अधिकार अवगन्तव्य है॥ १४३॥ गतिसंज्ञक-पूर्वपदक, कारक-पूर्वपदक तथा उपपदसंज्ञक-पूर्वपदक समास में उत्तरपदस्थानीय क्थन्-प्रत्ययान्त, अथन्-प्रत्ययान्त, घञ्-प्रत्ययान्त, क्त-प्रत्ययान्त, अच्-प्रत्ययान्त, अप्-प्रत्ययान्त, इत्-प्रत्ययान्त एवं क-प्रत्ययान्त शब्दों के अन्त्य स्वर उदात्त हो जाते हैं॥ १४४॥ 'सु' और उपमानभूतार्थवाचक शब्दों से परवर्ती क्त-प्रत्ययान्त उत्तरपद का भी अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है॥१४५॥ प्रयोग संज्ञाविषयक यदि हो तो भी गति-संज्ञक, कारक-संज्ञक तथा उपपद-संज्ञक शब्दों से परवर्ती आचित आदि शब्दों से भिन्न उत्तरपद अन्तोदात्त हो जाते हैं॥ १४६॥ प्रवृद्ध आदि समस्त शब्दों में भी उत्तरपद-स्थानीय क्त-प्रत्ययान्त वृद्ध आदि शब्द अन्तोदात्त हो जाते हैं॥ १४७॥ किन्तु संज्ञाविषयक समास में भी यदि आशीर्वाद गम्यमान हो तो कारक-पूर्वपदक समास के क्त-प्रत्ययान्त उत्तरपदों के बीच केवल दत्त और श्रुत शब्द ही अन्तोदात्त होते हैं॥ १४८॥ 'इस प्रकार के व्यक्ति द्वारा किया गया' इस अर्थ में समस्त शब्दों के क्तान्त उत्तरपद भी अन्तोदात्त हो जाते हैं॥ १४९॥ कारक-पूर्वपदक समास में भावार्थक तथा कर्मार्थक 'अन'-प्रत्ययान्त (=ल्युट् = अन) उत्तरपद अन्तोदात्त हो जाता है॥ १५०॥ उत्तरपदस्थानीय मन्नन्त, क्तिन्नन्त, व्याख्यान, शयन, आसन, स्थान, याजक आदि शब्द और क्रीत शब्द भी अन्तोदात्त हो जाते हैं॥ १५१॥ सप्तम्यन्त से परवर्ती उत्तरपदस्थानीय पुण्य शब्द भी

१५३ ऊनार्थकलहं तृतीयायाः ।
१५४ मिश्रं चानुपसर्गमसन्धौ ।
१५५ नञो गुणप्रतिषेधे सम्पाद्यर्ह-
हितालमर्थास्तद्धिताः ।
१५६ ययतोश्चातदर्थे ।
१५७ अच्कावशक्तौ ।
१५८ आक्रोशे च
१५९ संज्ञायाम्
१६० कृत्योकेष्णुच्चार्वादयश्च
१६१ विभाषा तृन्नन्नतीक्ष्णशुचिषु
१६२ बहुव्रीहाविदमेतत्तद्भ्यः प्रथम-
पूरणयोः क्रियागणने ।
१६३ संख्यायाः स्तनः ।
१६४ विभाषा छन्दसि ।
१६५ संज्ञायां मित्राजिनयोः ।

अन्तोदात्त हो जाता है ॥१५२॥ तृतीयान्त से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय ऊनार्थक शब्द एवं कलह शब्द के भी अन्त्य स्वर उदात्त हो जाते हैं ॥ १५३ ॥ यदि सन्धि (=समझौता) समस्त पद से गम्यमान न हो तो तृतीयान्त से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय उपसर्गरहित मिश्र शब्द भी अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १५४ ॥ गुणप्रतिषेधार्थक नञ् यदि पूर्वपद हो तो सम्पाद्यर्थक, अर्हार्थक, हितार्थक एवम् अलमर्थक तद्धित प्रत्ययों से निष्पन्न उत्तरपद भी अन्तोदात्त हो जाते हैं ॥१५५॥ गुणप्रतिषेधार्थक नञ् यदि पूर्वपद और तादर्थ्य-भिन्नार्थक तद्धित-संज्ञक 'य' अथवा यत् प्रत्यय से निष्पन्न उत्तरपद हो तो भी वह (=उत्तरपद) अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १५६ ॥ समास से अशक्ति यदि गम्यमान हो तो नञ्-पूर्वपदक अच्-प्रत्ययान्त एवं 'क'-प्रत्ययान्त उत्तरपदों का भी अन्तोदात्तत्व हो जाता है ॥ १५७ ॥ आक्रोश गम्यमान होने पर भी पूर्वसूत्रविहित अन्तोदात्तत्व ज्ञातव्य है ॥ १५८ ॥ आक्रोश गम्यमान होने पर संज्ञास्वरूप (=व्यक्तिविशेषवाचक) उत्तरपद का भी अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है ॥ १५९ ॥ नञ्-पूर्वपदक समास में 'कृत्य'-संज्ञकप्रत्ययान्त, उक-प्रत्यान्त, इष्णुच्-प्रत्ययान्त एवम् चारु आदि उत्तरपद भी अन्तोदात्त हो जाते हैं ॥ १६० ॥

नञ्-पूर्वपदक तृन्-प्रत्ययान्त, अन्न, तीक्ष्ण एवं शुचि इन उत्तरपदों के भी अन्त्य स्वर उदात्त हो जाते हैं ॥ १६१ ॥ इदम्-शब्दपूर्वपदक, एतत्-शब्दपूर्वपदक और तत्-शब्दपूर्वपदक बहुव्रीहि समास में क्रिया की अभ्यावृत्ति की गणना में वर्त्तमान 'प्रथम' शब्द तथा पूरण-प्रत्ययान्त उत्तरपदों के भी अन्त्य स्वर उदात्त हो जाते हैं ॥ १६२ ॥ बहुव्रीहि समास में संख्यावाचक-पूर्वपदक उत्तरपदस्थानीय स्तन शब्द भी अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १६३ ॥ किन्तु पूर्वसूत्रोक्त अन्तोदात्तत्व छन्दोविषय में वैकल्पिक है ॥ १६४ ॥ संज्ञाविषयक बहुव्रीहि समास में उत्तरपद-

१६६ व्यवायिनोऽन्तरम्।
१६७ मुखं स्वाङ्गम्।
१६८ नाव्ययदिक्शब्दगोमहत्स्थूलमुष्टिपृथुवत्सेभ्यः।
१६९ निष्ठोपमानादन्यतरस्याम्।
१७० जातिकालसुखादिभ्योऽनाच्छादनात् क्तोऽकृतमितप्रतिपन्नाः।
१७१ वा जाते।
१७२ नञ्सुभ्याम्।
१७३ कपि पूर्वम्।
१७४ ह्रस्वान्तेऽन्त्यात्पूर्वम्।
१७५ बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि।
१७६ न गुणादयोऽवयवाः।

स्थानीय मित्र तथा अजिन शब्द भी अन्तोदात्त हो जाते हैं ॥ १६५ ॥ व्यवधान उत्पन्न करने वाले पदार्थ के वाचक शब्दों से परवर्त्ती अन्तर शब्द भी बहुव्रीहि समास में अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १६६ ॥ बहुव्रीहि समास में उत्तरपदस्थानीय स्वाङ्गवाचक मुख शब्द भी अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १६७ ॥ किन्तु बहुव्रीहि समास में भी 'अव्यय'-संज्ञक शब्दों, दिग्वाचकत्वेन प्रसिद्ध शब्दों, गो, महत्, स्थूल, मुष्टि, पृथु और वत्स शब्दों से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय स्वाङ्गवाचक मुख शब्द अन्तोदात्त नहीं होता ॥१६८॥ किन्तु 'निष्ठा'-संज्ञकप्रत्ययान्त तथा उपमानभूतार्थवाचक शब्दों से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय स्वाङ्गवाचक मुख शब्द विकल्प से अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १६९ ॥ आच्छादक-तत्त्ववाचक शब्दों से भिन्न जातिवाचक, कालवाचक और सुख आदि शब्दों से परवर्त्ती कृत, मित और प्रतिपन्न शब्दों से भिन्न क्त-प्रत्ययान्त उत्तरपद भी अन्तोदात्त हो जाते हैं ॥ १७० ॥ किन्तु पूर्वसूत्रोक्त शब्दों से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय जात शब्द बहुव्रीहि समास में, विकल्प से ही अन्तोदात्त होता है ॥१७१॥ नञ्-पूर्वपदक एवं 'सु'-पूर्वपदक बहुव्रीहिसंज्ञक शब्द अथवा उत्तरपद अन्तोदात्त हो जाता है ॥१७२॥

किन्तु नञ्-पूर्वपदक अथवा 'सु'-पूर्वपदक बहुव्रीहि में यदि (दीर्घान्त) उत्तरपद कप्-प्रत्ययान्त हो तो कप् से पूर्ववर्त्ती उत्तरपदावयव स्वर ही उदात्त होता है ॥ १७३ ॥ यदि नञ्-पूर्वपदक एवं 'सु'-पूर्वपदक बहुव्रीहि का उत्तरपद ह्रस्वान्त तथा कप्-प्रत्यय-विशिष्ट हो तो कप्प्रत्यय की प्रकृति का अन्त्य से पूर्व (= उपान्त्य) स्वर ही उदात्त होता है ॥ १७४ ॥ उत्तरपदार्थ के बहुत्व का प्रतिपादक बहु शब्द यदि पूर्वपद हो तो भी बहुव्रीहि समास में उत्तरपद के स्वर की व्यवस्था नञ्-पूर्वपदक बहुव्रीहि के समान ही समझनी चाहिए ॥१७५॥ किन्तु बहु-शब्दपूर्वपदक बहुव्रीहि मे भी उत्तरपदस्थानीय अवयवार्थक गुण आदि

१७७ उपसर्गात्स्वाङ्गं ध्रुवमपर्शु।
१७८ वनं समासे
१७९ अन्तः।
१८० अन्तश्च।
१८१ न निविभ्याम्।
१८२ परेरभितो भावि मण्डलम्।
१८३ प्रादस्वाङ्गं संज्ञायाम्।
१८४ निरुदकादीनि च।
१८५ अभेर्मुखम्।
१८६ अपाच्च।
१८७ स्फिगपूतवीणाञ्जोऽध्वकुक्षिसीरनामनाम च।
१८८ अधेरुपरिस्थम्।
१८९ अनोरप्रधानकनीयसी।
१९० पुरुषश्चान्वादिष्टः।
१९१ अतेरकृत्पदे।

शब्द अन्तोदात्त नहीं होते ॥ १७६ ॥ उपसर्ग से परवर्त्ती पर्शु शब्द से भिन्न ध्रुव (= एकरूप) स्वाङ्ग का वाचक उत्तरपद भी बहुव्रीहि समास में अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १७७ ॥ उपसर्ग से परवर्ती उत्तरपदस्थानीय वन शब्द समासमात्र में अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १७८ ॥ अन्तः-शब्द-पूर्वपदक उत्तरपदस्थानीय वन शब्द भी अन्तोदात्त हो जाता है ॥१७९॥ उपसर्ग से परवर्ती उत्तरपदस्थानीय अन्तस् शब्द भी अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १८० ॥

किन्तु 'नि' अथवा 'वि' उपसर्ग से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय अन्तस् शब्द अन्तोदात्त नहीं होता ॥ १८१ ॥ 'परि' उपसर्ग से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय वह शब्द, जो किसी एक तत्त्व के दोनों भागों में होने वाले पदार्थ का वाचक हो, और मण्डल शब्द भी अन्तोदात्त हो जाते हैं ॥१८२॥ 'प्र' शब्द से परवर्त्ती अस्वाङ्गवाचक उत्तरपद भी संज्ञाविषयक प्रयोग में अन्तोदात्त हो जाता है ॥१८३॥ निरुदक आदि समस्त शब्द भी अन्तोदात्त हो जाते हैं ॥ १८४ ॥ अभि शब्द से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय मुख शब्द भी समासमात्र में अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १८५ ॥ 'अप' शब्द से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय मुख शब्द भी अन्तोदात्त हो जाता है ॥१८६॥ 'अप' शब्द से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय स्फिग, पूत, वीणा, अञ्जस्, अध्वन्, कुक्षि, हल-वाचक शब्द एवं नामन् शब्द भी अन्तोदात्त हो जाते हैं ॥ १८७ ॥ 'अधि' शब्द से परवर्त्ती उपस्थितपदार्थवाचक उत्तरपद भी अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १८८ ॥ 'अनु' शब्द से परवर्त्ती अप्रधानभूतार्थवाचक शब्द और कनीयस् शब्द भी अन्तोदात्त हो जाते हैं ॥ १८९ ॥ 'अनु' शब्द से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय अन्वादिष्टवाची पुरुष शब्द भी अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १९० ॥ 'अति' शब्द से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय कृदन्त-भिन्न शब्द और

१९२ नेरनिधाने ।
१९३ प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे ।
१९४ उपाद्द्व्यजजिनमगौरादयः ।
१९५ सोरवक्षेपणे ।
१९६ विभाषोत्पुच्छे ।
१९७ द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु बहुव्रीहौ ।
१९८ सक्थं चाक्रान्तात् ।
१९९ परादिश्छन्दसि बहुलम् ।

तृतीयः पादः

१ अलुगुत्तरपदे ।
२ पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ।
३ ओजःसहोम्भस्तमसस्तृतीयायाः ।

पद शब्द भी अन्तोदात्त हो जाते हैं ॥ १९१ ॥ अनिधानार्थक (= निधान = अप्रकटता, से भिन्न अर्थ के प्रतिपादक) 'नि' शब्द से परवर्त्ती उत्तरपद भी अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १९२ ॥ तत्पुरुष समास में 'प्रति' शब्द से परवर्त्ती अंशु आदि उत्तरपद अन्तोदात्त हो जाते हैं ॥ १९३ ॥ 'उप' शब्द से परवर्त्ती गौर आदि शब्दों से भिन्न उत्तरपदस्थानीय द्व्यच् (= दो स्वरों से सम्पन्न) शब्द और अजिन शब्द भी अन्तोदात्त हो जाते हैं ॥ १९४ ॥ अवक्षेपण (= निन्दा) गम्यमान होने पर 'सु' शब्द से परवर्त्ती उत्तरपद भी तत्पुरुष समास में अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १९५ ॥ तत्पुरुष-संज्ञक उत्पुच्छ शब्द भी विकल्प से अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १९६ ॥ बहुव्रीहि समास में द्वि अथवा त्रि शब्द से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय पाद्, दत् और मूर्धन शब्द भी विकल्प से अन्तोदात्त हो जाते हैं ॥ १९७ ॥ क-शब्दान्त-भिन्न पूर्वपद से परवर्त्ती सक्थ (= सक्थिन् + षच्) शब्द भी विकल्प से अन्तोदात्त हो जाता है ॥ १९८ ॥ किन्तु छन्दोविषय प्रयोग में उत्तरपदस्थानीय सक्थ शब्द बहुलरूप में आद्युदात्त हो जाता है ॥ १९९ ॥

षष्ठाध्याय का द्वितीय पाद समाप्त ।

षष्ठाध्याय का तृतीय पाद

यहाँ से आनङ्-सूत्रपर्यन्त 'अलुक्' का और अङ्गाधिकार के आरम्भ तक 'उत्तरपद के परे' का अधिकार अवगन्तव्य है ॥ १ ॥ स्तोकार्थक, अन्तिकार्थक, दूरार्थक और कृच्छ्रार्थक शब्दों से विहित पञ्चमी का उत्तरपद के परे लुक् नहीं (= अलुक्) होता ॥ २ ॥ ओजस्, सहस्, अम्भस् और तमस् शब्दों से विहित तृतीया विभक्ति का भी उत्तरपद के परे लुक् नहीं होता ॥ ३ ॥ यदि समुदाय संज्ञा-शब्द हो तो मनस्शब्दोत्तरवर्त्ती तृतीया विभक्ति का भी

४ मनसः संज्ञायाम् ।
५ आज्ञायिनि च ।
६ आत्मनश्च[1] ।
७ वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः ।
८ परस्य च ।
९ हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम ।
१० कारनाम्नि च प्राचां हलादौ ।
११ मध्याद् गुरौ
१२ अमूर्धमस्तकात्स्वाङ्गादकामे ।
१३ बन्धे च विभाषा ।
१४ तत्पुरुषे कृति बहुलम् ।
१५ प्रावृट्शरत्कालदिवां जे ।
१६ विभाषा वर्षक्षरशरवरात् ।
१७ घकालतनेषु कालनाम्नः ।
१८ शयवासवासिष्वकालात् ।

लुक् नहीं होता ॥ ४ ॥ आज्ञायिन्-शब्द-स्वरूप उत्तरपद के परे भी मनस्-शब्दोत्तरवर्ती तृतीया विभक्ति का लुक् नहीं होता ॥ ५ ॥ पूरणप्रत्ययान्त उत्तर-पद के परे आत्मन्-शब्द से विहित चतुर्थी विभक्ति का भी लुक् नहीं होता ॥ ७ ॥ वैयाकरणों द्वारा व्यवह्रियमाण संज्ञाशब्द होने पर 'पर'-शब्द से विहित चतुर्थी विभक्ति का भी उत्तरपद के परे लुक् नहीं होता ॥८॥ यदि समुदाय संज्ञाशब्द हो तो हलन्त और अदन्त शब्दों से विहित सप्तमी का भी उत्तरपद के परे लुक् नही होता ॥ ९ ॥ यदि समुदाय प्राच्यदेशवर्त्ती कार (= कर = Tax) का नाम हो तो हलादि उत्तरपद के परे हलन्त एवम् अदन्त शब्दों से विहित सप्तमी का भी लुक् नही होता ॥ १० ॥ 'गुरु'-शब्दात्मक उत्तरपद के परे 'मध्य'-शब्दविहित सप्तमी का भी लुक् नही होता ॥ ११ ॥ काम शब्द से भिन्न उत्तरपद के परे मूर्धन् और मस्तक शब्दों से भिन्न स्वाङ्गवाचक शब्दों से विहित सप्तमी का भी लुक् नहीं होता ॥ १४ ॥ घञन्त बन्ध शब्द के उत्तरपदत्व में हलन्त और अदन्त शब्दों से विहित सप्तमी का भी विकल्प से लुक् नहीं होता ॥ १३ ॥ कृत्प्रत्ययान्त उत्तरपद के परे तत्पुरुषसमासावयवभूत शब्द से विहित सप्तमी का भी बहु रूप में लुक् नहीं होता ॥ १४ ॥ 'ज' शब्द के परे प्रावृष्, शरद्, काल और दिव् शब्दों से विहित सप्तमी का भी बहुलरूप में लुक् नहीं होता ॥ १५ ॥ किन्तु 'ज' शब्द के उत्तरपदत्व में वर्ष, क्षर, शर और वर शब्दों से विहित सप्तमी का विकल्प से ही लुक् नहीं होता ॥ १६ ॥ 'घ'-संज्ञक (= तरप् और तमप्) प्रत्ययों, कालवाचक और तुडागमविशिष्ट ट्यु-प्रत्ययस्थानिक एवं ट्युल्-प्रत्ययस्थानिक 'तन' शब्द के परे कालनामभूत शब्दों से विहित सप्तमी विभक्ति का भी विकल्प से लुक् नहीं होता ॥ १७ ॥ शय, वास अथवा वासिन् शब्द यदि

१. महाभाष्य के अनुसार यह वार्तिक है ।

१९ नेन्सिद्धबध्नातिषु च।
२० स्थे च भाषायाम्।
२१ षष्ठ्या आक्रोशे।
२२ पुत्रेऽन्यतरस्याम्।
२३ ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः।
२४ विभाषा स्वसृपत्योः।
२५ आनङ् ऋतो द्वन्द्वे।
२६ देवताद्वन्द्वे च।
२७ ईदग्नेः सोमवरुणयोः।
२८ इद्वृद्धौ।
२९ दिवो द्यावा।
३० दिवसश्च पृथिव्याम्।

उत्तरपद हो तो कालभिन्नार्थक पूर्वपद से उत्तरवर्त्ती सप्तमी का भी विकल्प से लुक् नहीं होता ॥ १८ ॥

किन्तु इन्नन्त शब्द, सिद्ध शब्द अथवा बन्ध्-धातुस्वरूप उत्तरपद के परे रहते पूर्वपदोत्तरवर्त्ती सप्तमी का अलुक् नहीं होता ॥ १९ ॥ यदि समुदाय का प्रयोग 'भाषा'-विषयमे होता हो तो 'स्थ'-शब्दस्वरूप उत्तरपदके परे रहते भी सप्तमी का अलुक् नहीं होता ॥ २० ॥ उत्तरपद के परे समुदाय से आक्रोश गम्यमान होनेपर षष्ठी का अलुक् हो जाता है ॥ २१ ॥ पुत्र-शब्दस्वरूप उत्तरपद के परे रहते भी आक्रोश गम्यमान होने पर षष्ठी का विकल्प से अलुक् हो जाता है ॥२२॥ विद्यानिमित्तकसम्बन्धवाचक और यौनसम्बन्धवाचक ऋकारान्त शब्दों से उत्तरवर्त्ती षष्ठी का भी (विद्यानिमित्तकसम्बन्धवाचक तथा यौनसम्बन्धवाचक उत्तरपद के परे) लुक् नहीं होता ॥ २३ ॥ स्वसृ-शब्दात्मक और पति-शब्दात्मक उत्तरपद के परे भी ऋकारान्त विद्यासम्बन्धवाचक और यौनसम्बन्धवाचक शब्दों से विहित षष्ठी का विकल्प से लुक् नहीं होता ॥ २४ ॥ ऋदन्त विद्याप्रयुक्तसम्बन्धवाचक शब्दों के बीच और ऋदन्त यौनसम्बन्धवाचक शब्दों के बीच हुए द्वन्द्व समास में उत्तरपद के परे रहते पूर्वपद के स्थान में आनङ् आदेश हो जाता है ॥ २५ ॥ देवतावाचक शब्दों में विहित द्वन्द्व समास में भी उत्तरपद के परे रहते पूर्वपद के स्थान में आनङ् आदेश हो जाता है ॥ २६ ॥ सोम-शब्दोत्तरपदक एवं वरुण-शब्दोत्तरपदक द्वन्द्व समास में पूर्वपदस्थानीय अग्नि शब्द के स्थान में ईत् आदेश हो जाता है ॥ २७ ॥ किन्तु यदि देवताद्वन्द्व-घटक उत्तरपद वृद्धियुक्त हो गया हो तो पूर्वपदस्थानीय अग्नि शब्द के स्थान में इत् आदेश नहीं होता है ॥ २८ ॥ देवताद्वन्द्व में उत्तरपद के परे रहते दिव् शब्द के स्थान में द्यावा आदेश हो जाता है ॥ २९ ॥ परन्तु यदि देवताद्वन्द्व में उत्तरपद के स्थान में पृथिवी शब्द हो तब तो (पूर्वपदभूत) दिव् के स्थान में विकल्प से

३१ उषासोषसः ।
३२ मातरपितरावुदीचाम् ।
३३ पितरामातरा च च्छन्दसि ।
३४ स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ।
३५ तसिलादिष्वाकृत्वसुचः ।
३६ क्यङ्मानिनोश्च ।
३७ न कोपधायाः ।
३८ संज्ञापूरण्योश्च ।
३९ वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे ।
४० स्वाङ्गाच्चेतः ।
४१ जातेश्च ।

दिवस् आदेश भी हो जाता है ॥ ३० ॥ देवताद्वन्द्व मे उत्तरपद के परे रहते उषस् शब्द के स्थान में उषासा आदेश हो जाता है ॥ ३१ ॥ उदीच्य आचार्यों के मत में द्वन्द्व समास में पितृ-शब्दस्वरूप उत्तरपद के परे रहते पूर्वपदस्थानीय मातृ शब्द के स्थान में आरङ् आदेश हो जाता है ॥ ३२ ॥ छन्दोविषयक प्रयोगार्थ 'पितरामातरा' इस शब्द का निपातन अवगन्तव्य है ॥ ३३ ॥ पूरण-प्रत्ययान्त अथवा प्रिय आदि शब्दों से भिन्न स्त्रीत्वविशिष्ट समानाधिकरण शब्द यदि उत्तरपद हों तो पूर्वपदस्थानीय ऊङ्-प्रत्ययान्तभिन्न भाषितपुंस्क[1] स्त्रीत्व-विशिष्ट शब्द पुंवत् हो जाता है ॥ ३४ ॥ तसिल् प्रत्यय से लेकर कृत्वसुच् प्रत्यय तक प्रत्याहृत प्रत्ययों के परे रहते भी पूर्वसूत्रवर्णित[2] स्त्रीत्वविशिष्ट शब्द पुंवत् हो जाता है ३५ ॥ क्यङ् प्रत्यय और मानिन् शब्द के परे रहते भी स्त्रीत्वविशिष्ट पूर्वनिर्दिष्ट शब्द पुंवत् हो जाता है ॥ ३६ ॥ किन्तु जिस शब्द की उपधा ककार हो वह पुंवत् नहीं होता ॥ ३७ ॥ संज्ञा के रूप में प्रयुक्त अथवा पूरणप्रत्ययान्त स्त्रीत्वविशिष्ट शब्द भी पुंवत् नहीं होता ॥ ३८ ॥ रक्तार्थक एवं विकारार्थक प्रत्ययों से भिन्न, वृद्धिनिमित्तभूत तत्त्व से घटित तद्धित प्रत्यय से निष्पन्न (= तथाविध तद्धितान्त) स्त्रीत्वविशिष्ट भाषितपुंस्क शब्द भी पुंवत् नही होता ॥ ३९ ॥ स्वाङ्ग-वाचक शब्द से विहित ईकार (= ङीप् आदि) प्रत्यय से विशिष्ट शब्द जिसका उत्तरपद हो वह भाषितपुंस्कादि शब्द भी (मानिन्-शब्द से भिन्न) उत्तरपद के परे रहते पुंवत् नहीं होता ॥ ४० ॥ जातिवाचक शब्द से विहित ईकार (= ङीप् आदि) प्रत्यय से निष्पन्न स्त्रीत्वयुक्त शब्द भी पुंवत् नही होता ॥ ४१ ॥

१. एक ही प्रवृत्तिनिमित्त को लेकर पुंल्लिंग में भी प्रवृत्त—प्रयुक्त शब्द (= भाषितः पुमान् यस्मिन्) 'भाषितपुंस्क' है ॥

२. पूर्वसूत्र (६।३।३४) में वर्णित पूर्वपद और उत्तरपद की सारी विशेषताओं की अपेक्षा यथासम्भव अग्रिम सूत्रों में भी अवगन्तव्य है ।

४२ पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु।
४३ घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्योऽनेकाचो ह्रस्वः।
४४ नद्याः शेषस्यान्यतरस्याम्।
४५ उगितश्च।
४६ आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः।
४७ द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः।
४८ त्रेस्त्रयः।
४९ विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम्।
५० हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु।
५१ वा शोकष्यञ्रोगेषु।
५२ पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु।
५३ पद्यत्यतदर्थे।
५४ हिमकाषिहतिषु च।

परन्तु कर्मधारय समास में उत्तरपद के परे एवं जातीयर् और देशीयर् प्रत्ययों के परे पुंवत् हो ही जाता है ॥ ४२ ॥ 'घ'-संज्ञक प्रत्यय, रूपप् और कल्पप् प्रत्ययों और चेलट्, ब्रुव, गोत्र, मत एवं हत शब्दों के परे रहते पूर्ववर्त्ती भाषितपुंस्क अनेकाच् शब्दों से विहित ङी प्रत्यय को ह्रस्वादेश हो जाता है ॥ ४३ ॥ पूर्वसूत्र के लक्ष्य से भिन्न भाषितपुंस्क से विहित नदी-संज्ञक (= ईकार और ऊकार) को भी विकल्प से 'घ'-संज्ञक आदि प्रत्ययों और चेलट् आदि शब्दों के परे रहते ह्रस्व हो जाता है ॥ ४४ ॥ उगित् शब्द से परवर्त्ती नदी-संज्ञक शब्दों (= ईकार तथा ऊकार) का भी विकल्प से ह्रस्वादेश हो जाता है ॥ ४५ ॥ समानाधिकरण उत्तरपद और जातीयर् प्रत्यय के परे रहते महत् शब्द के स्थान में आकारादेश हो जाता है ॥ ४६ ॥

बहुव्रीहि से भिन्न समास के अवयवभूत द्वि तथा अष्टन् शब्दों को भी अशीति-शब्दभिन्न उत्तरपद के परे रहते आत्व हो जाता है ॥ ४७ ॥ पूर्वसूत्रोक्त परिस्थिति मे त्रि शब्द के स्थान में त्रयस् आदेश हो जाता है ॥ ४८ ॥ किन्तु चत्वारिंशत् आदि संख्यावाचक शब्द यदि उत्तरपद हों तो उक्त परिस्थिति में द्वि, अष्टन् और त्रि शब्दों के स्थान में पूर्वसूत्रत्रयविहित आदेश विकल्प से होते हैं ॥ ४९ ॥ लेख शब्द, यत् प्रत्यय अण् प्रत्यय और लास शब्द के परे रहते हृदय शब्द के स्थान में हृद् आदेश हो जाता है ॥ ५० ॥ किन्तु शोक शब्द, ष्यञ् प्रत्यय और रोग शब्द के परे हृद् आदेश विकल्प से होता है ॥ ५१ ॥ आजि, आति, ग और उपहत शब्दों के परे पाद शब्द के स्थान में पद् आदेश हो जाता है ॥ ५२ ॥ तादर्थ्य विहित से भिन्न यत् प्रत्यय के परे भी पाद शब्द के स्थान में पद् आदेश हो जाता है ॥ ५३ ॥ हिम, काषिन् और हति शब्द के परे

५५ ऋचः शे ।
५६ वा घोषमिश्रशब्देषु ।
५७ उदकस्योदः संज्ञायाम् ।
५८ पेषंवासवाहनधिषु च ।
५९ एकहलादौ पूरयितव्येऽन्यतरस्याम् ।
६० मन्थौदनसक्तुबिन्दुवज्रभारहारवीवधगाहेषु च ।
६१ इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य ।
६२ एकतद्धिते च ।
६३ ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम् ।
६४ त्वे च ।
६५ इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु ।
६६ खित्यनव्ययस्य ।
६७ अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ।

भी पाद शब्द के स्थान में पद् आदेश हो जाता है ॥ ५४ ॥ ऋक्सम्बन्धी पाद शब्द के स्थान में भी शस् प्रत्यय के परे पद् आदेश हो जाता है ॥ ५५ ॥ किन्तु उत्तरपदस्थानीय घोष, मिश्र और 'शब्द' शब्दों के परे रहते पाद के स्थान में पद् आदेश विकल्प से ही होता है ॥ ५६ ॥ उत्तरपद के परे रहते प्रत्ययान्त-स्वरूप संज्ञाशब्द की निष्पत्ति हेतु उदक शब्द के स्थान में उद आदेश हो जाता है ॥ ५७ ॥ पेषम्, वास, वाहन और धि शब्दों के परे भी उदक के स्थान में उद आदेश हो जाता है ॥ ५८ ॥ यदि उत्तरपद के स्थान में कोई वैसा पूरयितव्य (= भरने योग्य) पदार्थ का वाचक शब्द हो जिसके आदि में एक ही व्यञ्जन (= एकहलादि) हो तो भी उदक शब्द के स्थान में उद आदेश हो जाता है ॥ ५९ ॥ किन्तु मन्थ, ओदन, सक्तु, बिन्दु, वज्र, भार, हार, वीवध और गाह शब्दों में से किसी के भी उत्तरपद होने पर पूर्वपदस्थानीय उदक शब्द के स्थान में उद आदेश विकल्प से ही होता है ॥ ६० ॥

गालवाचार्य के मतानुसार ङ्यन्त-भिन्न इगन्त शब्द को भी उत्तरपद के परे रहते विकल्प से ह्रस्वादेश हो जाता है ॥ ६१ ॥ तद्धित प्रत्यय और उत्तरपद के परे रहते एका शब्द के स्थान में भी ह्रस्वान्तादेश हो जाता है ॥ ६२ ॥ संज्ञा-विषय और छन्दोविषय मे ङ्यन्त तथा आबन्त शब्दों को भी उत्तरपद के परे रहते बहुलरूप में ह्रस्वान्तादेश हो जाता है ॥६३॥ त्व' प्रत्यय के परे ङ्यन्त और आबन्त शब्दों को बहुल रूप मे ह्रस्वादेश हो जाता है ॥६४॥ चित, तूल और भारिन् शब्दों के उत्तरपद होने पर क्रमशः इष्टका, इषीका और माला शब्दों के स्थान में भी ह्रस्वान्तादेश हो जाता है ॥ ६५ ॥ खित्-प्रत्ययान्त उत्तरपद के परे अव्यय-भिन्न शब्दों को भी ह्रस्वादेश हो जाता है ॥ ६६ ॥ खित्-प्रत्ययान्त उत्तरपद के परे अरुस्, द्विषत् और अव्ययभिन्न अजन्त शब्दों को मुम् का आगम हो जाता

६८ इच एकाचोम्प्रत्ययवच्च।
६९ वाचंयमपुरन्दरौ च।
७० कारे सत्यागदस्य।
७१ श्येनतिलस्य पाते ञे।
७२ रात्रेः कृति विभाषा।
७३ नलोपो नञः।
७४ तस्मान्नुडचि।
७५ नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचि-नकुलनखनपुंसकनक्षत्र-नक्रनाकेषु प्रकृत्या।
७६ एकादिश्चैकस्य चादुक्।
७७ नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम्।
७८ सहस्य सः संज्ञायाम्।
७९ ग्रन्थान्ताधिके च।
८० द्वितीये चानुपाख्ये।

है ॥ ६७ ॥ खित्-प्रत्ययान्त उत्तरपद के परे एकाच् इजन्त पूर्वपद को अम् का आगम हो जाता है और इस आगम के विषय में सब कार्य द्वितीयैकवचन अम् प्रत्यय के समान ही होते हैं ॥ ६८ ॥ अमागमविशिष्ट वाचंयम और पुरन्दर शब्दों का निपातन किया जाता है ॥ ६९ ॥ कार शब्द यदि उत्तरपद हो तो पूर्वपदस्थानीय सत्य और अगद शब्दों को भी मुम् का आगम हो जाता है ॥ ७० ॥ 'ञ'-प्रत्ययान्त पात[1] शब्द यदि उत्तरपद हो तो श्येन और तिल शब्दों को भी मुम् का आगम हो जाता है ॥ ७१ ॥ कृदन्त उत्तरपद के परे रात्रि शब्द को भी विकल्प से मुम् का आगम हो जाता है ॥ ७२ ॥ उत्तरपद के परे पूर्वपदस्थानीय नञ् के 'न्' का लोप हो जाता है ॥७३॥ जिसका 'न्' लुप्त हुआ हो उस नञ् को अजादि उत्तरपद के परे रहते नुट् का आगम हो जाता है ॥७४॥ किन्तु नभ्राट्, नपात्, नवेदा, नासत्या, नमुचि, नकुल, नख, नपुंसक, नक्षत्र, नक्र और नाक इन शब्दों के पूर्वावयव नञ् के 'न्' का लोप नहीं होता है ॥७५॥ 'एक' शब्द जिसके आदि में हो उस नञ् के 'न्' का उत्तरपद के परे प्रकृतिभाव (अर्थात् लोप का अभाव) और नञ्-पूर्ववर्त्ती एक शब्द को आदुक् का आगम भी हो जाता है ॥ ७६ ॥ प्राणिभिन्नार्थक नग शब्द के पूर्वावयव नञ् के 'न' का भी विकल्प से प्रकृतिभाव हो जाता है ॥ ७७ ॥ संज्ञाविषय में उत्तरपद के परे सह शब्द के स्थान में 'स' आदेश हो जाता है ॥ ७८ ॥ ग्रन्थान्तवृत्ती एवम् अधिक अर्थ में विद्यमान सह शब्द के स्थान में भी 'स' आदेश हो जाता है ॥ ७९ ॥ यदि 'सह' शब्द से युक्त अप्रधान पदार्थ प्रत्यक्ष अनुपलभ्यमान हो तो भी 'सह' के स्थान में 'स' आदेश हो जाता है ॥ ८० ॥

१. पात शब्द मूलतः घञ्-प्रत्ययान्त है। पीछे स्त्रीत्वविवक्षामें इससे अधिकरणार्थक 'ञ' प्रत्यय का "घञः सास्यां क्रियेति ञः" (४।२।५८) सूत्र से विधान किया जाता है।

८१ अव्ययीभावे चाकाले ।
८२ वोपसर्जनस्य ।
८३ प्रकृत्याशिषि ।
८४ समानस्य छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु ।
८५ ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु ।
८६ चरणे ब्रह्मचारिणि ।
८७ तीर्थे ये ।
८८ विभाषोदरे ।
८९ दृग्दृशवतुषु ।
९० इदङ्किमोरीश्की ।
९१ आ सर्वनाम्नः ।
९२ विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतौ वप्रत्यये ।

यदि उत्तरपद कालवाचक शब्द से भिन्न हो तो अव्ययीभाव समास में भी सह शब्द के स्थान में 'स' आदेश हो जाता है ॥ ८१ ॥ जिसके सब अवयव उपसर्जन हों उस समास के पूर्वावयव सह शब्द के स्थान में भी विकल्प से 'स' आदेश हो जाता है ॥ ८२ ॥ किन्तु गो, वत्स और हल शब्दों से भिन्न उत्तरपद होने पर उपसर्जन-समासावयवभूत सह शब्दका प्रकृतिभाव हो जाता है ॥ ८३ ॥ छन्दोविषयक प्रयोग में मूर्धन् , प्रभृति और उदर्क शब्दों में कोई यदि उत्तरपद न हो तो समान शब्द के स्थान में भी 'स' आदेश हो जाता है ॥८४॥ ज्योतिस् , जनपद, रात्रि, नाभि, नामन् , गोत्र, रूप, स्थान, वर्ण, वयस् , वचन अथवा बन्धु शब्द यदि उत्तरपद हो तो भी समान शब्द के स्थान में 'स' आदेश हो जाता है ॥ ८५ ॥ यदि समानता चरण–(कठादि शाखा–) निमित्तक हो तो ब्रह्मचारिन् शब्द के उत्तरपद होने पर भी समान शब्द के स्थान में 'स' आदेश हो जाता है ॥ ८६ ॥ यत्-प्रत्ययान्त तीर्थ शब्द यदि उत्तरपद हो तो भी समान शब्द के स्थान में 'स' आदेश हो जाता है ॥ ८७ ॥ यत्-प्रत्ययान्त उदर शब्द यदि उत्तरपद हो तो भी समान के स्थान में विकल्प से 'स' आदेश हो जाता है ॥८८॥ दृक्, दृश् और वतुप्रत्यय[1] के परे भी समान शब्द के स्थान में 'स' आदेश हो जाता है ॥ ८९ ॥ दृक्, दृश शब्दों और वतु प्रत्यय के परे रहते इदम् और किम् शब्दों के स्थान में क्रमशः ईश् और की आदेश हो जाते हैं ॥ ९० ॥ दृक्, दृश शब्दों और वतु प्रत्यय के परे रहते भी सर्वनाम के स्थान में आकारान्त आदेश हो जाता है ॥ ९१ ॥ [2]व-प्रत्ययान्त अञ्च् धातु यदि

१. यह उत्तरसूत्रार्थ है, क्योंकि वतु प्रत्यय के परे समान शब्द नहीं मिलता ।
२. 'अञ्चतौ वप्रत्यये' इस पाठ के अनुसार यह अर्थ है । व-प्रत्यय का अर्थ क्विन्-क्विवादि प्रत्यय हैं । सि० कौ० आदि में 'अञ्चतावप्रत्यये' यह पाठ है । इसके

९३ समः समिः।
९४ तिरसस्तिर्यलोपे।
९५ सहस्य सध्रिः।
९६ सधमादस्थयोश्छन्दसि।
९७ द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्।
९८ ऊदनोर्देशे।
९९ अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु।
१०० अर्थे विभाषा।
१०१ कोः कत्तत्पुरुषेऽचि।
१०२ रथवदयोश्च।
१०३ तृणे च जातौ।
१०४ का पथ्यक्षयोः।
१०५ ईषदर्थे।

उत्तरपद हो तो विष्वक्, देव और सर्वनाम-संज्ञक शब्दों के 'टि' के स्थान मे अद्रि आदेश हो जाता है ॥ ९२ ॥ व-प्रत्ययान्त अञ्च् धातु के उत्तरपदत्व में सम के स्थान में समि आदेश हो जाता है ॥ ९३ ॥ व-प्रत्ययान्त अञ्च् धातु यदि लोप का विषय हुए बिना हीं उत्तरपद हो तो तिरस् शब्द के स्थान में तिरि आदेश हो जाता है ॥ ९४ ॥ व-प्रत्ययान्त अञ्च् धातु के उत्तरपद होने पर सह शब्द के स्थान में सध्रि आदेश हो जाता है ॥ ९५ ॥ किन्तु छन्दोविषयक प्रयोग में माद अथवा स्थ शब्द यदि उत्तरपद हो तो सह शब्द के स्थान में सध आदेश हो जाता है ॥ ९६ ॥ द्वि, अन्तर् और उपसर्ग से उत्तरवर्त्ती आप् शब्द के स्थान में ईकारादेश हो जाता है ॥ ९७ ॥ यदि समुदाय देशाभिधायक शब्द हो तो अनु उपसर्ग से परवर्ती आप् शब्द के स्थान में ऊकारादेश हो जाता है ॥ ९८ ॥ षष्ठीवृत्ती तथा तृतीयावृत्ती से भिन्न 'अन्य' शब्द को उत्तरपदस्थानीय आशीस्, आशा, आस्था, आस्थित, उत्सुक, ऊति, कारक और राग शब्दों एवं 'छ' प्रत्यय के परे दुक् का आगम हो जाता है ॥ ९९ ॥ किन्तु अर्थ शब्द यदि उत्तरपद हो तो अन्त्य शब्द को विकल्प से ही दुक् का आगम होता है ॥ १०० ॥ तत्पुरुष समास में अजादि उत्तरपद के परे 'कु' शब्द के स्थान में कत् आदेश हो जाता है ॥ १०१ ॥ रथ और वद शब्द के उत्तरपद होने पर भी 'कु' शब्द के स्थान में कत् आदेश हो जाता है ॥ १०२ ॥ समुदाय से जाति के अभिधानार्थ तृण शब्द के उत्तरपद होने पर भी 'कु' शब्द के स्थान में कत् आदेश हो जाता है ॥ १०३ ॥ पथिन् अथवा अक्ष शब्द यदि उत्तरपद हो तो 'कु' शब्द के स्थान में का आदेश हो जाता है ॥ १०४ ॥ ईषदर्थक 'कु' शब्द के स्थान में भी

अनुसार 'अविद्यमान है प्रत्यय जिसके उत्तर उस अञ्च् धातु के परे' ऐसा अर्थ होगा। क्विन् आदि प्रत्ययों का सर्वापहार लोप हो जाने से यह अर्थ भी संगत है।

१०६ विभाषा पुरुषे ।
१०७ कवं चोष्णे ।
१०८ पथि च च्छन्दसि ।
१०९ पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् ।
११० संख्याविसायपूर्वस्याह्नस्याह्नन्यतरस्यां ङौ ।
१११ ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ।
११२ सहिवहोरोदवर्णस्य ।
११३ साढ्यै साढ्वा साढेति निगमे ।
११४ संहितायाम् ।
११५ कर्णे लक्षणस्याविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्नच्छिन्नच्छिद्रस्रुवस्वस्तिकस्य ।
११६ नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ ।
११७ वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलुकादीनाम् ।
११८ वले ।
११९ मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम् ।

उत्तरपद के परे का आदेश हो जाता है ॥ १०५ ॥ किन्तु 'पुरुष' शब्द यदि उत्तरपद हो तो का आदेश विकल्प से ही होता है ॥ १०६ ॥ उष्ण शब्द यदि उत्तरपद हो तो 'कु' शब्द के स्थान में कव आदेश हो जाता है ॥ १०७ ॥ यदि प्रयोग छन्दोविषयक हो तो पथिन्-शब्द के उत्तरपद होने पर 'कु' शब्द के स्थान में विकल्प से कव आदेश भी होता है और का आदेश भी (और पाक्षिक आदेशाभाव भी) ॥ १०८ ॥ शिष्टप्रयोगानुरोध से पृषोदर आदि शब्दों की निष्पत्ति के लिए आवश्यकतानुसार लोपागमादि अवगन्तव्य हैं ॥ १०९ ॥ 'ङि' विभक्ति के परे संख्यावाचकशब्दपूर्वक, 'वि'-शब्दपूर्वक और सायशब्दपूर्वक अह्न शब्द के स्थान में विकल्प से अहन् आदेश हो जाता है ॥ ११० ॥ ढकार का ढकार-निमित्तक और रेफ का रेफ-निमित्तक लोप होने पर पूर्ववर्ती अण् के स्थान में दीर्घ हो जाता है ॥ १११ ॥ ढकार अथवा रेफ का लोप होने पर सह धातु और वह धातु के अवर्ण के स्थान में ओकारादेश हो जाता है ॥ ११२ ॥ साढ्यै, साढ्वा और साढा इन तीन निगमविषयक प्रयोगों का निपातन है ॥ ११३ ॥ अब से 'संहितायाम्' (= संहिताविषय में) का अधिकार समझना चाहिए ॥११४॥ यदि कर्ण शब्द उत्तरपद हो तो विष्ट, अष्टन्, पञ्चन्, मणि, भिन्न, छिन्न, छिद्र, स्रुव और स्वस्तिक शब्दों से अतिरिक्त लक्षणवाचक शब्दों को दीर्घ आदेश हो जाता है ॥ ११५ ॥ क्विप्-प्रत्ययान्त नह, वृत, वृष, व्यध, रुच, सह और तन् धातुओं में से किसी के उत्तरपद होने पर पूर्वपद को दीर्घ हो जाता है ॥ ११६ ॥ संज्ञाविषय में कोटर आदि शब्दों को वन शब्द के और किंशुलक आदि शब्दों को गिरि शब्द के उत्तरपद होने पर दीर्घ हो जाता है ॥ ११७ ॥ बल शब्द यदि उत्तरपद हो तो भी पूर्वपद को दीर्घ हो जाता है ॥ ११८ ॥ अजिर आदि

१२० शरादीनां च।
१२१ इको वहेऽपीलोः।
१२२ उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्
१२३ इकः काशे।
१२४ दस्ति।
१२५ अष्टनः संज्ञायाम्।
१२६ छन्दसि च।
१२७ चितेः कपि।
१२८ विश्वस्य वसुराटोः।
१२९ नरे संज्ञायाम्।
१३० मित्रे चर्षौ।
१३१ मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य मतौ।
१३२ ओषधेश्च विभक्तावप्रथमायाम्
१३३ ऋचितुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याणाम्।

शब्दों से भिन्न बह्वच् शब्दों को मतुप् प्रत्यय के परे दीर्घ हो जाता है ॥११९॥ प्रयोग यदि संज्ञाविषयक हो तो मतुप् प्रत्यय के परे शर आदि शब्दों को भी दीर्घ हो जाता है ॥ १२० ॥

'वह' शब्द यदि उत्तरपद हो तो पील शब्द से भिन्न इगन्त पूर्वपद को भी दीर्घ हो जाता है ॥ १२१ ॥ यदि समुदाय मनुष्यार्थक न हो तो घञ्-प्रत्ययान्त उत्तरपद के परे उपसर्ग को भी बहुलरूप में दीर्घ हो जाता है ॥ १२२ ॥ काश शब्द के उत्तरपद होने पर इगन्त उपसर्ग को भी दीर्घ हो जाता है ॥ १२३ ॥ दा धातु के स्थान में हुए तकारादि आदेश के परे भी इगन्त उपसर्ग को दीर्घ हो जाता है ॥ १२४ ॥ संज्ञाशब्द-सिध्यर्थ उत्तरपद के परे अष्टन् शब्द को भी दीर्घ हो जाता है ॥ १२५ ॥ छन्दोविषय में भी उत्तरपद के परे अष्टन् शब्द को दीर्घ हो जाता है ॥ १२६ ॥ कप् प्रत्यय के परे चिति शब्द को भी दीर्घ हो जाता है ॥ १२७ ॥ वसु शब्द या राट् शब्द यदि उत्तरपद हो तो विश्व शब्द को भी दीर्घ हो जाता है ॥ १२८ ॥

संज्ञाविषय में नर शब्द के उत्तरपद होने पर विश्व शब्द को भी दीर्घ हो जाता है ॥ १२९ ॥ यदि समुदाय का अभिधेय ऋषिविशेष हो तो मित्र शब्द के उत्तरपद होने पर भी विश्व शब्द को दीर्घ हो जाता है ॥ १३० ॥ मन्त्रविषय में मतुप् प्रत्यय के परे सोम, अश्व, इन्द्रिय और विश्वदेव्य शब्दों को दीर्घ हो जाता है ॥ १३१ ॥ मन्त्रविषय में प्रथमाविभक्ति से भिन्न विभक्तियों के परे ओषधि शब्द को भी दीर्घ हो जाता है ॥ १३२ ॥ ऋग्विषय प्रयोग में तु, नु, घ, मक्षु, तङ् (='थ' के स्थान में ङित्वातिदेशविशिष्ट 'त' आदेश), कु,

१३४ इकः सुञि ।
१३५ द्व्यचोऽतस्तिङः ।
१३६ निपातस्य च ।
१३७ अन्येषामपि दृश्यते ।
१३८ चौ ।
१३९ संप्रसारणस्य ।

चतुर्थः पादः

१ अङ्गस्य ।
२ हलः ।
३ नामि ।
४ न तिसृचतसृ ।
५ छन्दस्युभयथा ।
६ नृ च ।
७ नोपधायाः ।

त्र और उरुष्य शब्दों को भी दीर्घ हो जाता है ॥ १३३ ॥ सुञ् इस निपात के परे भी मन्त्रविषय में इगन्त शब्द को दीर्घ हो जाता है ॥ १३४ ॥ अदन्त द्व्यच् तिङन्त पद को भी ऋग्विषय प्रयोग में दीर्घ हो जाता है ॥ १३५ ॥ ऋग्विषय प्रयोग में निपात को भी दीर्घ हो जाता है ॥ १३६ ॥ अन्य शब्दों को भी दीर्घ देखा जाता है ॥ १३७ ॥ लुप्तनकारक अञ्च् धातु (= 'च्') के परे भी पूर्वपद को दीर्घ हो जाता है ॥ १३८ ॥ उत्तरपद के परे सम्प्रसारणान्त पूर्वपद को भी दीर्घ हो जाता है ॥ १३९ ॥

षष्ठाध्याय का तृतीय पाद समाप्त ।

षष्ठाध्याय का चतुर्थ पाद

इस पाद की समाप्ति तक 'अङ्गस्य'[1] का अधिकार है ॥ १ ॥ अङ्गसंज्ञक शब्द के अवयवभूत हल् से उत्तरवर्त्ती जो सम्प्रसारण तदन्त अङ्ग को दीर्घ हो जाता है ॥२॥ 'नाम्' (=न् + आम्) के परे अङ्ग को दीर्घ हो जाता है ॥ ३ ॥ किन्तु 'नाम्' के परे रहते भी अङ्गसंज्ञक तिसृ और चतसृ शब्दों को दीर्घ नही होता ॥ ४ ॥ छन्दोविषयक प्रयोग में नाम् के परे अङ्गसंज्ञक तिसृ और चतसृ शब्दों को दीर्घ तथा दीर्घाभाव दोनों देखे जाते ॥ ५ ॥ नाम् के परे नृ शब्द को भी विकल्प से दीर्घ हो जाता है ॥६॥ किन्तु नाम् के परे नकारान्त अङ्गसंज्ञक की

---

१. यहाँ सम्बन्ध-सामान्य मे विहित षष्ठी का आवश्यकतानुसार विपरिणाम अवगन्तव्य है ।

८ सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ।
९ वा षपूर्वस्य निगमे।
१० सान्तमहतः संयोगस्य।
११ अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्।
१२ इन्हन्पूषार्यम्णां शौ।
१३ सौ च।
१४ अत्वसन्तस्य चाधातोः।
१५ अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति।
१६ अज्झनगमां सनि।
१७ तनोतेर्विभाषा।
१८ क्रमश्च क्त्वि।
१९ च्छ्वोः शूडनुनासिके च।
२० ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च

उपधा[1] को दीर्घ नहीं होता ॥ ७ ॥ सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थानसंज्ञक विभक्तियों के परे नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ हो जाता है ॥ ८ ॥ किन्तु निगमविषयक प्रयोग में सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान विभक्तियों के परे रहते नकारान्त अङ्गसंज्ञक शब्द की षकारपूर्वक उपधा अच् के स्थान में विकल्प से ही दीर्घ होता है ॥९॥ सकारान्त संयोग तथा महत् शब्द के अवयवभूत नकार के सम्बन्धी उपधा के स्थान में भी सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान विभक्तियों के परे रहते दीर्घ हो जाता है ॥१०॥ सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान विभक्तियों के परे अङ्गसंज्ञक अप्, तृन्प्रत्ययान्त शब्द, स्वसृ, नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षत्तृ, होतृ, पोतृ और प्रशास्तृ शब्दों की उपधा को भी दीर्घ हो जाता है ॥ ११ ॥ 'शि' विभक्ति के परे अङ्गसंज्ञक इन्-शब्दान्त, हन्-शब्दान्त, पूषन्-शब्दान्त और अर्यमन्-शब्दान्त शब्दों की उपधा को भी दीर्घ हो जाता है ॥ १२ ॥ सम्बुद्धिभिन्न सु विभक्ति के परे भी पूर्वसूत्रोक्त शब्दों की उपधा को दीर्घ हो जाता है ॥ १३ ॥ धात्ववयवभिन्न अतु शब्द अथवा अस् शब्द जिनके अन्त में हो उन अङ्गसंज्ञक शब्दों की उपधा को भी सम्बुद्धिभिन्न सु विभक्ति के परे रहते दीर्घ हो जाता है ॥ १४ ॥ क्वि प्रत्यय और झलादि कित् और झलादि ङित् प्रत्ययों के परे अनुनासिकान्त अङ्ग की उपधा को भी दीर्घ हो जाता है ॥ १५ ॥ झलादि सन् प्रत्यय के परे अजन्त, हन् एवं गम् धातुओं (के अच्) को भी दीर्घ हो जाता है ॥१६॥ झलादि सन् प्रत्यय के परे अङ्गसंज्ञक तन् धातु (के अच्) को भी विकल्प से दीर्घ हो जाता है ॥ १७ ॥ झलादि क्त्वा प्रत्यय के परे क्रम् धातु (के उपधाभूत अच्) को भी दीर्घ हो जाता है ॥ १८ ॥ अनुनासिकादि प्रत्यय, क्वि प्रत्यय और झलादि कित्-ङित्-प्रत्ययों के परे भी तुगागमविशिष्ट 'छ' (= च्छ) और वकार के स्थान में क्रमशः श् और ऊठ् आदेश हो जाते हैं ॥ १९ ॥ ज्वर, त्वर, स्रिवि, अवि और मव धातुओं की वकारसहित

१. उपधा का अर्थ उपधाभूत अच् समझना चाहिए।

२१ राल्लोपः ।
२२ असिद्धवदत्राभात् ।
२३ श्नान्नलोपः ।
२४ अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति ।
२५ दंशसञ्जस्वञ्जां शपि ।
२६ रञ्जेश्च ।
२७ घञि च भावकरणयोः ।
२८ स्यदो जवे ।
२९ अवोदैधौद्मप्रश्रथहिमश्रथाः ।
३० नाञ्चेः पूजायाम् ।
३१ क्त्वि स्कन्दिस्यन्दोः ।
३२ जान्तनशां विभाषा ।
३३ भञ्जेश्च चिणि ।
३४ शास इदङ्हलोः ।

उपधा के स्थान में क्वि प्रत्यय, झलादि[1] प्रत्यय तथा अनुनासिकादि प्रत्ययों के परे ऊठ् आदेश हो जाता है ॥ २० ॥

क्वि प्रत्यय, झलादि प्रत्यय और अनुनासिकादि प्रत्ययों के परे रेफ से उत्तरवर्ती 'छ' और 'व' का लोप हो जाता है ॥ २१ ॥ यहाँ से लेकर 'भस्य' इस अधिकार की समाप्ति तक समानाश्रय कार्य यदि कर्त्तव्य हो तो समानाश्रय पूर्वविहित कार्य असिद्धवत् हो जाता है ॥ २२ ॥ श्नम् के 'श्न' के परवर्ती नकार का लोप हो जाता है ॥ २३ ॥ इदित् से भिन्न हलन्त अङ्गों की उपधा नकार का कित् और ङित् प्रत्ययों के परे लोप हो जाता है ॥ २४ ॥ शप् प्रत्यय के परे अङ्गसंज्ञक दंश, सञ्ज और स्वञ्ज धातुओं के उपधाभूत नकार का भी लोप हो जाता है ॥ २५ ॥ रञ्ज धातु के उपधाभूत नकार का भी शप् के परे लोप हो जाता है ॥ २६ ॥ भावार्थक और करणार्थक घञ् प्रत्यय के परे भी रञ्ज धातु क उपधाभूत नकार का लोप हो जाता है ॥ २७ ॥ समुदाय से जव (= वेग) के अभिधानार्थ घञ् प्रत्यय के परे स्यन्द् धातु के नकार का लोप और वृद्धि का अभाव निपातनीय है ॥ २८ ॥ घञ्-प्रत्ययान्त अवोद, एध, ओध, प्रश्रथ और हिमश्रथ शब्द निपातनीय हैं ॥ २९ ॥ किन्तु पूजार्थक अञ्च् धातु के उपधाभूत नकार का पूर्वप्राप्त लोप नहीं होता ॥ ३० ॥ क्त्वा प्रत्यय के परे स्कन्द और स्यन्द् धातुओं के नकार का भी लोप नहीं होता ॥ ३१ ॥ जकारान्त अङ्गों तथा नश धातु के नकार का क्त्वा प्रत्यय के परे विकल्प से लोप नहीं होता ॥ ३२ ॥ चिण् प्रत्यय के परे भञ्ज् धातु के नकार का भी विकल्प से ही लोप होता है ॥ ३३ ॥ अङ् प्रत्यय तथा हलादि कित्-ङित् प्रत्ययों के परे शास् धातु की उपधा को (ह्रस्व)

१. काशिकाकार 'झलादौ क्ङिति' ऐसा मानते हैं। किन्तु 'अव' धातु से 'ओतुः' इस तुन्-प्रत्ययान्त रूप के प्रसिद्ध होने से 'क्ङिति' यह अंश अनुचित प्रतीत होता है।

३५ शा हौ।
३६ हन्तेर्जः।
३७ अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति।
३८ वा ल्यपि।
३९ न क्तिचि दीर्घश्च।
४० गमः क्वौ।
४१ विड्वनोरनुनासिकस्यात्।
४२ जनसनखनां सञ्झलोः।
४३ ये विभाषा।
४४ तनोतेर्यकि।
४५ सनः क्तिचि लोपश्चास्यान्यतरस्याम्।
४६ आर्धधातुके।
४७ भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम्।
४८ अतो लोपः।
४९ यस्य हलः।
५० क्यस्य विभाषा।

इकारादेश हो जाता है ॥ ३४ ॥ हि प्रत्यय के परे शास् धातु को शा आदेश हो जाता है ॥ ३५ ॥ हि प्रत्यय के परे हन् धातु को 'ज' आदेश हो जाता है ॥ ३६ ॥ औपदेशिक अनुदात्त अङ्गों, वन धातु और तन् आदि धातुओं के अनुनासिक अवयव का झलादि कित्-ङित् प्रत्ययों के परे लोप हो जाता है ॥ ३७ ॥ किन्तु उक्त अनुनासिक-लोप ल्यप् प्रत्यय के परे विकल्प से ही होता है ॥ ३८ ॥ परन्तु क्तिच् प्रत्यय के परे न तो अनुनासिक लोप ही होता है और न दीर्घ हीं ॥ ३९ ॥ क्वि प्रत्यय के परे गम् धातु के भी अनुनासिक अवयवय का लोप हो जाता है ॥ ४० ॥

अनुनासिकान्त अङ्ग को विट् और वन् प्रत्ययों के परे आकारादेश हो जाता है ॥ ४१ ॥ झलादि सन् प्रत्यय और झलादि कित्-ङित् प्रत्ययों के परे जन्, सन् और खन धातुओं को भी आकारादेश हो जाता है ॥ ४२ ॥ यकारादि कित्-ङित् प्रत्ययों के परे भी जन् आदि तीन धातुओं को विकल्प से आकारादेश हो जाता है ॥ ४३ ॥ यक् प्रत्यय के परे तन् धातु को भी विकल्प से आकारादेश हो जाता है ॥ ४४ ॥ क्तिच् प्रत्यय के परे अङ्ग-संज्ञक सन् धातु को विकल्प से आकारादेश भी हो जाता है और (अनुनासिकावयव का) लोप भी ॥ ४५ ॥ अब से 'न ल्यपि' सूत्र से पूर्व तक 'आर्धधातुके' का अधिकार अवगन्तव्य है ॥ ४६ ॥ भ्रस्ज् धातु की उपधा और रेफ के स्थान में विकल्प से रम् आदेश हो जाता है ॥ ४७ ॥ आर्धधातुकोपदेश में अदन्त धातु के अत् का आर्धधातुक के परे लोप हो जाता है ॥ ४८ ॥ आर्धधातुक के परे हल् से उत्तर विद्यमान यकार का भी लोप हो जाता है ॥ ४९ ॥ किन्तु हल् से उत्तर विद्यमान क्य

५१ णेरनिटि।
५२ निष्ठायां सेटि।
५३ जनिता मन्त्रे।
५४ शमिता यज्ञे।
५५ अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु।
५६ ल्यपि लघुपूर्वात्।
५७ विभाषापः।
५८ युप्लुवोर्दीर्घश्छन्दसि।
५९ क्षियः।
६० निष्ठायामण्यदर्थे।
६१ वाक्रोशदैन्ययोः।
६२ स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च।
६३ दीङो युडचि क्ङिति।
६४ आतो लोप इटि च।

प्रत्यय का आर्धधातुक के परे विकल्प से ही लोप होता है ॥ ५० ॥ अनिट् आर्धधातुक के परे णि का लोप हो जाता है ॥ ५१ ॥ इडागमविशिष्ट निष्ठा-संज्ञक प्रत्ययों के परे भी णि का लोप हो जाता है ॥ ५२ ॥ इड्विशिष्ट तृच् प्रत्यय के परे भी मन्त्रविषय प्रयोग मे जन् धातु से विहित णि का लोप निपातनीय है ॥५३॥ यज्ञ-सम्बन्धी प्रयोग के लिए इड्विशिष्ट तृच् प्रत्यय के परे शम धातु से विहित णि का भी लोप निपातनीय है ॥ ५४ ॥ आम् , अन्त, आलु, आय्य, इत्नु और इष्णु के परे णि के स्थान में अय् आदेश हो जाता है ॥ ५५ ॥ ल्यप प्रत्यय के परे लघुस्वरपूर्वक वर्ण से परवर्ती णि के स्थान में भी अय् आदेश हो जाता है ॥ ५६ ॥

किन्तु आप् धातु से विहित णि के स्थान में ल्यप् प्रत्यय के परे अयादेश विकल्प से ही होता है ॥५७॥ छन्दोविषय में ल्यप् प्रत्यय के परे 'यु' और 'प्लु' धातु को दीर्घ आदेश हो जाता है ॥ ५८ ॥ ल्यप् प्रत्यय के परे 'क्षि' धातु को भी दीर्घ हो जाता है ॥ ५९ ॥ ण्यत् प्रत्यय के अर्थ—भाव और कर्म—को छोड़ कर अन्य अर्थों में विहित निष्ठा-संज्ञक प्रत्ययों के परे भी 'क्षि' धातु को दीर्घ हो जाता है ॥ ६० ॥

परन्तु यदि आक्रोश गम्यमान हो तब पूर्वसूत्रोक्त दीर्घ विकल्प से ही होता है ॥ ६१ ॥ भावविषयक तथा कर्मविषयक स्य, सिच् , सीयुट् और तासि प्रत्ययों के परे उपदेश में अजन्त अङ्गों तथा हन् , ग्रह और दृश् धातुओं का चिण्वद्भाव तथा उसके साथ-साथ इन्हें इट् का आगम भी हो जाता है ॥६२॥ अजादि क्ङित् प्रत्ययों के परे दीङ् धातु को युट् का आगम हो जाता है ॥ ६३ ॥ इट् तथा अजादि आर्धधातुक कित्-ङित् प्रत्ययों के परे भी अकारान्त अङ्ग का लोप

६५ ईद्यति ।
६६ घुमास्थागापाजहातिसां हलि ।
६७ एर्लिङि ।
६८ वान्यस्य संयोगादेः ।
६९ न ल्यपि ।
७० मयतेरिदन्यतरस्याम् ।
७१ लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ।
७२ आडजादीनाम् ।
७३ छन्दस्यपि दृश्यते ।
७४ न माङ्योगे ।
७५ बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि ।
७६ इरयो रे ।
७७ अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ।
७८ अभ्यासस्यासवर्णे ।
७९ स्त्रियाः ।

(= अन्त्यलोप) हो जाता है ॥ ६४ ॥ यत् प्रत्यय के परे आकारान्त अङ्ग को ईकारादेश हो जाता है ॥६५॥ हलादि कित्-ङित् प्रत्ययों के परे 'घु'-संज्ञक धातुओं, मा, स्था, गा, पा, हा (= 'ओहाक्') और सा (= 'षो') धातुओं को भी इकारादेश हो जाता है ॥ ६६ ॥ पूर्वसूत्रोक्त धातुओं को लिङ् के परे एकारादेश हो जाता है ॥ ६७ ॥ किन्तु उक्त धातुओं से भिन्न संयोगादि आकारान्त धातुओं को लिङ् के परे रहते एकारादेश विकल्प से ही होता है ॥ ६८ ॥ ल्यप् प्रत्यय के परे 'घु'-संज्ञक आदि धातुओं के स्थान में ६६-६७ सूत्रों द्वारा विहित आदेश नहीं होते ॥ ६९ ॥ ल्यप् प्रत्यय के परे मेङ् धातु को विकल्प से इकारादेश हो जाता है ॥७०॥ लुङ्, लङ् और लृङ् लकारों के परे अङ्गसंज्ञक धातुओं को उदात्तत्व-विशिष्ट अट् का आगम हो जाता है ॥ ७१ ॥ किन्तु यदि धातु अजादि हों तब उदात्त आट् का आगम होता है ॥ ७२ ॥ परन्तु छन्दोविषयक प्रयोग मे आट् का आगम अजादिभिन्न धातुओं को भी देखा जाता है ॥ ७३ ॥ यदि माङ् (= मा) के साथ योग हो तब उक्त अट् या आट् का आगम नही होता ॥ ७४ ॥ किन्तु छन्दोविषयक प्रयोग में अट् आदि का विधि-प्रतिषेध बहुल रूप में—अर्थात् माङ् का योग न रहने पर भी अट्-आट् का अभाव और योग रहने पर भी उनका भाव—देखा जाता है ॥ ७५ ॥ छन्दोविषय में इरे के स्थान में बहुल रूप मे 'रे' आदेश हो जाता है ॥ ७६ ॥ श्नु-प्रत्ययान्त अङ्गों, इवर्णान्त और उवर्णान्त धातुओं और भ्रू शब्द को अच के परे रहते इयङ् और उवङ् आदेश हो जाते हैं ॥ ७७ ॥ इवर्णान्त तथा उवर्णान्त अभ्याससंज्ञक शब्दों को भी अच् के परे क्रमशः इयङ् और उवङ् आदेश हो जाते हैं ॥ ७८ ॥ अजादि प्रत्ययों के परे स्त्री शब्द को भी इयङ् आदेश हो

८० वाम्शसोः ।
८१ इणो यण् ।
८२ एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ।
८३ ओः सुपि ।
८४ वर्षाभ्वश्च ।
८५ न भूसुधियोः ।
८६ छन्दस्युभयथा ।
८७ हुश्नुवोः सार्वधातुके ।
८८ भुवो वुग्लुङ्लिटोः ।
८९ ऊदुपधाया गोहः ।
९० दोषो णौ ।
९१ वा चित्तविरागे ।
९२ मितां ह्रस्वः ।
९३ चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम् ।
९४ खचि ह्रस्वः ।
९५ ह्लादो निष्ठायाम् ।

जाता है ॥ ७९ ॥ किन्तु अम् तथा शश् प्रत्ययों के परे स्त्री शब्द को इयङ् आदेश विकल्प से ही होता है ॥ ८० ॥

अजादि प्रत्ययों के परे अङ्गसंज्ञक इण् धातु को यण् आदेश हो जाता है ॥ ८१ ॥ जिसके पूर्व धात्ववयवभूत संयोग न हो उस इवर्ण मे समाप्त होने वाले (= इवर्णान्त) अनेकाच् अङ्ग को भी अजादि प्रत्ययों के परे यण् आदेश हो जाता है ॥८२॥ धात्ववयवसंयोगपूर्वक से भिन्न उवर्ण जिस अनेकाच् अङ्ग के अन्त में हो उसे भी अजादि सुप् प्रत्यय के परे यणादेश हो जाता है ॥ ८३ ॥ अजादि सुप् प्रत्यय के परे वर्षाभू शब्द को भी यण् आदेश हो जाता है ॥ ८४ ॥ किन्तु भू शब्द और सुधी शब्द को यणादेश नहीं होता ॥ ८५ ॥ परन्तु छन्दोविषय प्रयोग मे भू और सुधी शब्दों को यणादेश देखा भी जाता है और नही भी ॥ ८६ ॥

अजादि सार्वधातुक प्रत्ययों के परे हु धातु और श्नु-प्रत्ययान्त असंयोग-पूर्वक अनेकाच् धातुओं को भी यणादेश हो जाता है ॥ ८७ ॥ लुङ् तथा लिट् के सम्बन्धी अच् के परे भू धातु को वुक् का आगम हो जाता है ॥ ८८ ॥ अजादि प्रत्ययों के परे अङ्गसंज्ञक गोह धातु की उपधा को ऊकारान्तादेश हो जाता है ॥ ८९ ॥ णिच् के परे दोष् धातु की उपधा को भी ऊकारादेश हो जाता है ॥ ९० ॥ किन्तु चित्तविकारार्थ में प्रयुक्त दोष् धातु की उपधा को ऊकारादेश विकल्प से ही होता है ॥ ९१ ॥ मित् धातुओं की उपधा को ह्रस्व हो जाता है ॥९२॥ चिण्-परक और णमुल्-परक णिच् के परे रहते भी अङ्गसंज्ञक मित् धातुओं की उपधा को विकल्प से दीर्घ हो जाता है ॥ ९३ ॥ किन्तु खच्-परक णिच् के परे उपधा को ह्रस्व आदेश हो जाता है ॥ ९४ ॥ निष्ठा-संज्ञक प्रत्ययों के परे

९६ छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य।
९७ इस्मन्त्रन्क्विषु च।
९८ गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि।
९९ तनिपत्योश्छन्दसि।
१०० घसिभसोर्हलि च।
१०१ हुझल्भ्यो हेर्धिः।
१०२ श्रुशृणुपॄकृवृभ्यश्छन्दसि।
१०३ अङितश्च।
१०४ चिणो लुक्।
१०५ अतो हेः।
१०६ उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्।
१०७ लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः।
१०८ नित्यं करोतेः।
१०९ ये च।
११० अत उत्सार्वधातुके।

अङ्गसंज्ञक ह्लाद धातु की उपधा को भी ह्रस्व आदेश हो जाता है ९५॥ दो उपसर्गों से रहित णिज्-विशिष्ट छद धातु (= छादि धातु) की उपधा को भी 'घ' प्रत्यय के परे ह्रस्वादेश हो जाता है ॥ ९६ ॥ इस्, मन्, त्रन् और क्वि प्रत्ययों के परे भी 'छादि' धातु की उपधा को ह्रस्वादेश हो जाता है ॥ ९७ ॥ अङ् से भिन्न अजादि कित् और ङित् प्रत्ययों के परे अङ्गसंज्ञक गम्, हन, जन्, खन और घस् धातुओं का उपधाओं का लोप हो जाता है ॥ ९८ ॥ छन्दोविषय प्रयोग में तो तन् और पत् धातुओं की उपधा का भी लोप हो जाता है ॥ ९९ ॥ किन्तु घस् और भस् धातुओं की उपधा का अजादि कित्-ङित् तथा हलादि कित्-ङित् प्रत्ययों के परे भी लोप हो जाता है ॥ १०० ॥

हु धातु और झलन्त धातुओं से परवर्त्ती हलादि हि के स्थान में धि आदेश हो जाता है ॥ १०१ ॥ छन्दोविषय में तो श्रु, शृणु, पॄ, कृ और वृ धातुओं से परवर्त्ती (= विहित) हि के स्थान में भी धि आदेश हो जाता है ॥ १०२ ॥ जो धातु ङित् न हों उनसे विहित हि के स्थान में भी (छन्दोविषय में) धि आदेश हो जाता है ॥ १०३ ॥ चिण् से परवर्ती प्रत्यय का लुक् हो जाता है ॥ १०४ ॥ अदन्त अङ्ग से उत्तरवर्त्ती हि का भी लुक् हो जाता है ॥ १०५ ॥ असंयोगपूर्वक जो उकार तदन्त प्रत्यय से परवर्त्ती हि का भी लुक् हो जाता है ॥ १०६ ॥ और असंयोगपूर्वक-उकारान्त प्रत्यय का वकारादि तथा मकारादि प्रत्ययों के परे विकल्प से लोप भी हो जाता है ॥ १०७ ॥ किन्तु कृ धातु से उत्तर विद्यमान उकार प्रत्यय का वकारादि और मकारादि प्रत्ययों के परे नित्य लोप होता है ॥१०८॥ यकारादि प्रत्यय के परे भी कृ धातु से विहित उकार प्रत्यय का लोप हो जाता है ॥ १०९ ॥ 'उ'-प्रत्ययान्त कृ धातु के अकार के स्थान में सार्वधातुक कित्-ङित् प्रत्ययों के परे उकारादेश हो जाता

१११ श्नसोरल्लोपः ।
११२ श्नाभ्यस्तयोरातः ।
११३ ई हल्यघोः ।
११४ इद्दरिद्रस्य ।
११५ भियोऽन्यतरस्याम् ।
११६ जहातेश्च ।
११७ आ च हौ ।
११८ लोपो यि ।
११९ घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ।
१२० अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ।
१२१ थलि च सेटि ।
१२२ तॄफलभजत्रपश्च ।

है ॥ ११० ॥ श्नम् प्रत्यय और अस् धातु के अकार का सार्वधातुक कित्-ङित् प्रत्ययों के परे लोप हो जाता है ॥ १११ ॥ श्ना प्रत्यय तथा अभ्यस्त-संज्ञक अङ्गों (धातुओं) के आकार का भी सार्वधातुक कित्-ङित् प्रत्ययों के परे लोप हो जाता है ॥ ११२ ॥ श्ना-प्रत्ययान्त अङ्गों तथा 'घु'-संज्ञक-भिन्न अभ्यस्त-संज्ञक धातुओं के आकार के स्थान में हलादि सार्वधातुक कित्-ङित् प्रत्ययों के परे ईकारादेश हो जाता है ॥ ११३ ॥ हलादि कित-ङित् सार्वधातुक प्रत्ययों के परे दरिद्रा धातु के आकार के स्थान में इकारादेश हो जाता है ॥ ११४ ॥ हलादि कित्-ङित् सार्वधातुक प्रत्ययों के परे अङ्गसंज्ञक 'भी' धातु को भी विकल्प से इकारादेश हो जाता है ॥ ११५ ॥ अङ्ग-संज्ञक हा (= ओहाक्) धातु को भी हलादि कित्-ङित् सार्वधातुक प्रत्ययों के परे विकल्प से इकारादेश हो जाता है ॥११६॥ किन्तु हि प्रत्यय के परे अङ्गसंज्ञक हा धातु को विकल्प से आकारादेश भी हो जाता है और इकारादेश भी ॥ ११७ ॥ यकारादि कित्-ङित् सार्वधातुक प्रत्ययों के परे अङ्गसंज्ञक हा धातु का (अन्त्य-) लोप हो जाता है ॥ ११८ ॥ 'घु'-संज्ञक अङ्ग एवम् अस् धातु को भी हि प्रत्यय के परे यकारादेश हो जाता है और अभ्यास का लोप भी ॥ ११९ ॥ लिट् के परे रहते जिसका आद्य अवयव आदेशरूप न हो उस अङ्गसंज्ञक धातु के असहाय (= एक) दो अल् के मध्य में विद्यमान अकार के स्थान में कित् और ङित् लिट् के परे एकारादेश भी हो जाता है और अभ्यास का लोप भी ॥ १२० ॥

(पूर्वसूत्रोक्त) ये दोनों कार्य इड्विशिष्ट थल् के परे भी होते हैं ॥ १२१ ॥ कित् और ङित् लिट् और इड्विशिष्ट थल् के परे अङ्गसंज्ञक तॄ, फल, भज और

१. वृत्तिकार ने 'गमहन' सूत्र से 'क्ङिति' की अनुवृत्ति मानकार ऐसा ही अर्थ किया है। परन्तु इन सूत्रों में ङित् की अनुवृत्ति का कोई प्रयोजन नहीं है—यह तथ्य ज्ञातव्य है।

१२३ राधो हिंसायाम् ।
१२४ वा जॄभ्रमुत्रसाम् ।
१२५ फणां च सप्तानाम् ।
१२६ न शसददवादिगुणानाम् ।
१२७ अर्वणस्त्रसावनञः ।
१२८ मघवा बहुलम् ।
१२९ भस्य ।
१३० पादः पत् ।
१३१ वसोः सम्प्रसारणम् ।
१३२ वाह ऊठ् ।
१३३ श्वयुवमघोनामतद्धिते ।
१३४ अल्लोपोऽनः ।
१३५ षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि ।

त्रप् धातुओं के स्थान में भी एकारादेश और अभ्यासलोप हो जाते हैं ॥१२२॥ हिंसार्थक राध् धातु के अवर्ण के स्थान में कित्-ङित् लिट् और इड्विशिष्ट थल् के परे अकारादेश और अभ्यासलोप हो जाते हैं ॥ १२३ ॥ कित्-ङित् लिट् और इड्विशिष्ट थल् प्रत्यय के परे जॄ, भ्रम् और त्रस धातुओं के अत् के स्थान में भी विकल्प से एकारादेश और अभ्यासलोप हो जाते हैं ॥ १२४ ॥ उक्त प्रत्ययों के परे फण आदि सात[२] धातुओं के अवर्ण के स्थान में भी विकल्प से एकारादेश और अभ्यासलोप हो जाते हैं ॥ १२५ ॥ किन्तु शश, दद और वकारादि धातुओं के गुणादेशस्वरूप अकार के स्थान में न तो एकारादेश होता है और न अभ्यास-लोप हीं ॥ १२६ ॥ यदि अङ्गसंज्ञक अर्वन् शब्द नञ्-पूर्वक न हो तथा उससे विहित विभक्ति 'सु' (प्र० ए० व०) न हो तो उसे 'तृ' आदेश हो जाता है ॥ १२७ ॥ अङ्गसंज्ञक मघवत् शब्द को भी बहुल रूप में 'तृ' आदेश हो जाता है ॥ १२८ ॥ अब से इस अध्याय की समाप्ति तक "भस्य" (='भ'-संज्ञक के स्थान मे) का अधिकार है ॥ १२९ ॥ पाद्-शब्दान्त 'भ'-संज्ञक अङ्ग के स्थान में पत् आदेश हो जाता है ॥ १३० ॥ वसु-प्रत्ययान्त 'भ'-संज्ञक शब्द को सम्प्रसारण हो जाता है ॥ १३१ ॥

'भ'-संज्ञक वाह शब्द को (सम्प्रसारण के रूप में) ऊठ् आदेश हो जाता है ॥ १३२ ॥ श्वन्, युवन् और मघवन् इन 'भ'-संज्ञक अङ्गों को भी तद्धित-भिन्न प्रत्ययों के परे सम्प्रसारण हो जाता है ॥ १३३ ॥ अन्-शब्दान्त 'भ'-संज्ञक शब्दों के अकार का लोप हो जाता है ॥ १३४ ॥ 'भ'-संज्ञक षकारपूर्वक अन् शब्द तथा हन् एवं धृतराजन् के अवयव अन् शब्द के अकार का भी अण् प्रत्यय के

२. ये सात धातु हैं—फण, राजृ, टुभ्राजृ (भ्राज्), टुभ्राशृ (भ्राश्), स्यमु, स्वन और ध्वन ।

१३६ विभाषा ङिश्योः ।
१३७ न संयोगाद्वमन्तात् ।
१३८ अचः ।
१३९ उद ईत् ।
१४० आतो धातोः ।
१४१ मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः ।
१४२ ति विंशतेर्डिति ।
१४३ टेः ।
१४४ नस्तद्धिते ।
१४५ अह्नष्टखोरेव ।
१४६ ओर्गुणः ।
१४७ ढे लोपोऽकद्र्वाः ।
१४८ यस्येति च ।
१४९ सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः ।
१५० हलस्तद्धितस्य ।
१५१ आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति ।

परे रहते लोप हो जाता है ॥१३५॥ किन्तु ङि प्रत्यय और शी प्रत्यय (=औङ् > शी) के परे अन के अकार का लोप विकल्प से ही होता है ॥१३६॥ वकारान्त एवं मकारान्त संयोग से उत्तर विद्यमान अन् के अकार का तो लोप नहीं होता ॥ १३७ ॥ अच्-(=लुप्तनकारक अञ्च् धातु-) शब्दान्त 'भ'-संज्ञक के अकार का भी लोप हो जाता है ॥ १३८ ॥ उत् से उत्तरवर्ती अच् शब्द के (अकार के) स्थान में ईकारादेश हो जाता है ॥ १३९ ॥ अकारान्त जो धातु तदन्त 'भ'-संज्ञक अङ्ग का लोप (= अन्त्यलोप) हो जाता है ॥ १४० ॥

मन्त्रविषय प्रयोग में आङ् के परे 'भ'-संज्ञक आत्मन् शब्द के आदि आकार का भी लोप हो जाता है ॥ १४१ ॥ डित् प्रत्ययों के परे 'भ'-संज्ञक विंशति शब्द के 'ति' का भी लोप हो जाता है ॥ १४२ ॥ डित् प्रत्यय के परे 'टि'-संज्ञक का भी लोप हो जाता है ॥ १४३ ॥ तद्धित प्रत्यय के परे नकारान्त 'भ'-संज्ञक शब्द के 'टि' का भी लोप हो जाता है ॥ १४४ ॥ किन्तु अहन् शब्द के 'टि' का लोप केवल 'ट' और 'ख' प्रत्ययों के परे होता है ॥ १४५ ॥ तद्धित प्रत्ययों के परे 'भ'-संज्ञक उवर्णान्त शब्द को गुणादेश हो जाता है ॥ १४६ ॥ 'ढ' प्रत्यय के परे 'भ'-संज्ञक कद्रू-शब्द से भिन्न उवर्णान्त शब्दों का (अन्त्य-) लोप हो जाता है ॥१४७॥ ईकार और तद्धित प्रत्ययों के परे 'भ'-संज्ञक इवर्णान्त और अवर्णान्त शब्द का भी (अन्त्य-) लोप हो जाता है ॥ १४८ ॥ ईकार और तद्धित प्रत्ययों के परे सूर्य, तिष्य, अगस्त्य और मत्स्य शब्दों के उपधाभूत यकार (= य्) का लोप हो जाता है ॥ १४९ ॥ ईकार के परे हल् से उत्तर विद्यमान तद्धितसंज्ञक उपधाभूत यकार का भी लोप हो जाता है ॥ १५० ॥ आकारादि तद्धित प्रत्ययों से भिन्न तद्धित प्रत्ययों के परे हल् से उत्तर विद्यमान अपत्याधिकारविहित यकार का भी

१५२ क्यच्व्योश्च ।
१५३ बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक् ।
१५४ तुरिष्ठेमेयःसु ।
१५५ टेः ।
१५६ स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः ।
१५७ प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः ।
१५८ बहोर्लोपो भू च बहोः ।
१५९ इष्ठस्य यिट् च ।
१६० ज्यादादीयसः ।
१६१ र ऋतो हलादेर्लघोः ।
१६२ विभाषर्जोश्छन्दसि ।
१६३ प्रकृत्यैकाच् ।

लोप हो जाता है ॥ १५१ ॥ क्य और च्वि प्रत्ययों के परे भी हल् से उत्तर विद्यमान आपत्य यकार का लोप हो जाता है ॥ १५२ ॥ 'भ'-संज्ञक बिल्वकादि शब्दों से विहित 'छ' प्रत्यय का भी तद्धित प्रत्ययों के परे लोप हो जाता है ॥ १५३ ॥ इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन प्रत्ययों के परे 'तृ' शब्द का भी लोप हो जाता है ॥ १५४ ॥ इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे 'भ'-संज्ञक शब्दों के 'टि' का भी लोप हो जाता है ॥ १५५ ॥ इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे स्थूल, दूर, युव, ह्रस्व, क्षिप्र और क्षुद्र शब्दों के यण् से आरब्ध उत्तर भाग का लोप भी हो जाता है और यण् से पूर्ववर्ती स्वरों के स्थान में गुणादेश भी ॥ १५६ ॥ उक्त तीन प्रत्ययों के परे प्रिय, स्थिर, स्फिर, उरु, बहुल, गुरु, वृद्ध, तृप्र, दीर्घ और वृन्दारक शब्दों के स्थान में क्रमशः प्र, स्थ, स्फ, वर्, बंहि, गर, वर्षि, त्रप्, द्राघि और वृन्द आदेश हो जाते हैं ॥ १५७ ॥ बहु शब्द से उत्तर विद्यमान इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्ययों का लोप हो जाता है और बहु शब्द के स्थान में 'भू' आदेश भी ॥ १५८ ॥ बहु शब्द से विहित इष्ठन् प्रत्यय को (पूर्व-विहित लोप का अपवादभूत) यिट्[1] का आगम भी हो जाता है और बहु शब्द के स्थान में 'भू' आदेश भी ॥ १५९) ज्य शब्द से उत्तर विद्यमान ईयसुन् के (ईकार के) स्थान में आकारादेश हो जाता है ॥ १६० ॥

हलादि लघु ऋकार के स्थान में इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे 'र' आदेश हो जाता है ॥१६१॥ छन्दोविषय में उक्त प्रत्ययों के परे ऋजु शब्द के ऋकार के स्थान में विकल्प से रेफादेश हो जाता है ॥ १६२ ॥ किन्तु 'भ'-संज्ञक

१. अत एव इष्ठन् का पूर्वसूत्र से लोप नहीं होता। विधान तो लोप का एकयोग-निर्दिष्ट इष्ठन् की अनुवृत्ति होने के कारण किया गया है।

१६४ इनण्यनपत्ये ।
१६५ गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च
१६६ संयोगादिश्च ।
१६७ अन् ।
१६८ ये चाभावकर्मणोः ।
१६९ आत्माध्वानौ खे ।
१७० न मपूर्वोऽपत्येऽवर्मणः ।
१७१ ब्राह्मोऽजातौ ।
१७२ कार्मस्ताच्छील्ये ।
१७३ औक्षमनपत्ये ।
१७४ दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेयवाशिना-

एकाच् (= एक स्वर से घटित शब्द) प्रकृतिवत् ही बना रहता है—उसमे किसी प्रकार का आदेशादि परिवर्तन नहीं होता ॥ १६३ ॥ अपत्यार्थभिन्न अण् प्रत्यय के परे 'भ'-संज्ञक अन्-शब्दान्त शब्द भी प्रकृतिवत् हीं बना रहता है ॥ १६४ ॥

किन्तु गाथिन, विदाथिन्, केशिन्, गणिन्, और पणिन् शब्द अपत्यार्थक अण् प्रत्यय के परे भी प्रकृतिवत् ही बने रहते ॥१६५॥ जिस इन् के आदि में संयोग हो तदन्त शब्द भी अण् प्रत्यय के परे प्रकृतिवत् बना रहता है ॥ १६६ ॥ अपत्यार्थक तथा तद्भिन्नार्थक अण् प्रत्यय के परे अन्शब्दान्त 'भ'-संज्ञक शब्द भी प्रकृतिवत् हीं बने रहते ॥ १६७ ॥ भाव तथा कर्म[1] अर्थ से भिन्न अर्थवाले यकारादि तद्धित प्रत्ययों के परे भी अन्-शब्दान्त शब्द प्रकृतिवत् बने रहते ॥ १६८ ॥ 'ख' प्रत्यय के परे आत्मन् और अध्वन् शब्द भी प्रकृतिवत् बने रहते हैं ॥१६९॥

किन्तु वर्मन्-शब्द को छोड़कर, मकारपूर्वक अन् शब्द जिनके अन्त में हों वे शब्द अपत्यार्थक अण् प्रत्यय के परे प्रकृतिवत् नहीं बने रहते ॥ १७० ॥ अपत्यार्थकभिन्न अण् प्रत्यय के परे ब्रह्मन् शब्द के 'टि' का लोप और अपत्यार्थक अण् प्रत्यय के परे जातिवाचक (ब्राह्मणशब्द-प्रकृतिभूत) ब्रह्मन् शब्द के 'टि' के लोप का अभाव निपातनीय है ॥ १७१ ॥ ताच्छील्यार्थक (ण) प्रत्यय के परे कर्मन् शब्द के 'टि' के लोप का निपातन करना चाहिए ॥ १७२ ॥ अपत्यार्थकभिन्न अण् प्रत्यय के परे उक्षन् शब्द के 'टि' का लोप भी निपातनीय है ॥ १७३ ॥ दाण्डिनायन, हास्तिनायन, आथर्वणिक, जैह्माशिनेय, वाशिनायनि, भ्रौणहत्य, धैवत्य, सारव, ऐक्ष्वाक, मैत्रेय और हिरण्मय इन तद्धितान्त शब्दों का निपातन

१. भाव = प्रकारीभूत धर्म, कर्म = क्रिया ।

यनिश्रौणहत्यधैवत्यसारवैद्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि ।

१७५ ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि च्छन्दसि ।

॥ इति षष्ठाध्यायः ॥

अवगन्तव्य है ॥ १७४ ॥ छन्दोविषयक प्रयोग के लिए ऋत्व्य, वास्त्व्य, वास्त्व, माध्वी और हिरण्यय शब्दों का भी निपातन अवगन्तव्य है ॥ १६५ ॥

षष्ठाध्याय का चतुर्थ पाद समाप्त ।

षष्ठाध्याय समाप्त ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

प्रथमः पादः ।

१ युवोरनाकौ ।
२ आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् ।
३ झोऽन्तः ।
४ अदभ्यस्तात् ।
५ आत्मनेपदेष्वनतः ।
६ शीङो रुट् ।
७ वेत्तेर्विभाषा ।
८ बहुलं छन्दसि ।
९ अतो भिस ऐस् ।
१० बहुलं छन्दसि ।
११ नेदमदसोरकोः ।
१२ टाङसिङसामिनात्स्याः ।
१३ ङेर्यः ।

सप्तमाध्याय का प्रथम पाद

'यु' और 'वु' के स्थान में क्रमशः अन और अक आदेश हो जाते हैं ॥१॥ प्रत्ययों के आद्य फ, ढ़, ख, छ और घ के स्थान में क्रमशः आयन्, एय्, ईन्, ईय् और इय् आदेश हो जाते हैं ॥ २ ॥ प्रत्यय के अवयव 'झ' के स्थान में 'अन्त' आदेश हो जाता है ॥ ३ ॥ किन्तु अभ्यस्तसंज्ञक अङ्ग से उत्तर विद्यमान (= विहित) 'झ' के स्थान मे अत् आदेश हो जाता है ॥४॥ जो अङ्ग नकारान्त न हो उससे उत्तर विद्यमान आत्मनेपदसम्बन्धी 'झ' के स्थान में भी अत् आदेश हो जाता है ॥ ५ ॥ अङ्गसंज्ञक शीङ् धातु से विहित 'झ' के स्थान में आदेशभूत अत् को रुट् का आगम हो जाता है ॥ ६ । विद धातु से विहित 'झ' के स्थान में आदेशभूत अत् को भी विकल्प से रुट् का आगम हो जाता है ॥ ७ ॥ किन्तु छन्दोविषयक प्रयोग में रुडागम बहुल रूप में ही होता है ॥ ८ ॥ अदन्त अङ्ग से उत्तर विद्यमान भिस् के स्थान में ऐस् आदेश हो जाता है ॥ ९ ॥ किन्तु छन्दोविषय प्रयोग में भिस् के स्थान में ऐस् आदेश बहुल रूप मे ही होता है ॥ १० ॥ प्रत्ययावयव ककार से रहित इदम् और अदस् शब्दों से विहित भिस् के स्थान में ऐस् आदेश नहीं होता ॥ ११ ॥ अकारान्त अङ्गों से विहित टा, ङसि और ङस् के स्थान में क्रमशः इन, आत् और स्य आदेश हो जाते हैं ॥ १२ ॥ अकारान्त अङ्ग से विहित ङे के स्थान में 'य' आदेश हो जाता है ॥ १३ ॥

१४ सर्वनाम्नः स्मै ।	२२ षड्भ्यो लुक् ।
१५ ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ ।	२३ स्वमोर्नपुंसकात् ।
१६ पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ।	२४ अतोऽम् ।
१७ जसः शी ।	२५ अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः ।
१८ औङ आपः ।	२६ नेतराच्छन्दसि ।
१९ नपुंसकाच्च ।	२७ युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् ।
२० जश्शसोः शिः ।	२८ ङेप्रथमयोरम् ।
२१ अष्टाभ्य औश् ।	२९ शसो न ।

किन्तु अकारान्त सर्वनामसंज्ञक शब्दों से विहित ङे के स्थान में स्मै आदेश हो जाता है ॥ १४ ॥ अकारान्त सर्वनामसंज्ञक शब्दों से विहित ङसि और ङि के स्थान में क्रमशः स्मात् और स्मिन् आदेश हो जाते हैं ॥ १५ ॥ पूर्व आदि नौ सर्वनाम शब्दों से विहित ङसि और ङि के स्थान में भी विकल्प से क्रमशः स्मात् और स्मिन् आदेश हो जाते हैं ॥ १६ ॥ अकारान्त सर्वनाम से विहित जस् के स्थान मे 'शी' आदेश हो जाता है ॥ १७ ॥ आबन्त अङ्ग से विहित औङ् के स्थान में भी 'शी' आदेश हो जाता है ॥ १८ ॥ नपुंसकलिङ्गवृत्ती अङ्ग से विहित औङ् के स्थान में भी 'शी' आदेश हो जाता है ॥ १९ ॥ नपुंसकलिङ्गवृत्ती अङ्ग से विहित जश् और शश् के स्थान मे 'शि' आदेश हो जाता है ॥ २० ॥

अकारादेशविशिष्ट अष्टन् शब्द से उत्तर विद्यमान जश् और शश् के स्थान में औश् आदेश हो जाता है ॥ २१ ॥ 'षट्'-संज्ञक शब्दों से विहित जश् और शश् का लुक् हो जाता है ॥ २२ ॥ नपुंसकलिङ्गवृत्ती शब्दों से विहित सु और अम् विभक्तियों का भी लुक् हो जाता है ॥ २३ ॥ किन्तु नपुंसकलिङ्गवृत्ती अदन्त शब्दों से विहित सु और अम् विभक्तियों के स्थान में अम् आदेश हो जाता है ॥ २४ ॥ डतर (-प्रत्ययान्त), डतम (-प्रत्ययान्त), अन्य, अन्यतर और 'इतर' शब्दों से विहित सु और अम् विभक्तियों के स्थान में अद्ड् आदेश हो जाता है ॥ २५ ॥ किन्तु 'इतर' शब्द से विहित सु और अम् के स्थान में छन्दो-विषय में अद्ड् आदेश नहीं होता ॥ २६ ॥ युष्मद् और अस्मद् शब्दों से विहित ङस् के स्थान में अस् आदेश हो जाता है ॥ २७ ॥ युष्मद् और अस्मद् शब्दों से विहित प्रथमा, द्वितीया और 'ङे' विभक्तियों के स्थान में अश् आदेश हो जाता है ॥ २८ ॥ युष्मद् और अस्मद् शब्दों से विहित शश् विभक्ति के स्थान में 'न'

३० भ्यसो भ्यम् ।
३१ पञ्चम्या अत् ।
३२ एकवचनस्य च ।
३३ साम आकम् ।
३४ आत औ णलः ।
३५ तुह्योस्तातङाशिष्यन्यतरस्याम् ।
३६ विदेः शतुर्वसुः ।
३७ समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ।
३८ क्त्वाऽपि च्छन्दसि ।
३९ सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः ।
४० अमो मश् ।
४१ लोपस्त आत्मनेपदेषु ।
४२ ध्वमो ध्वात् ।
४३ यजध्वैनमिति च ।

आदेश नहीं होता ॥ २९ ॥ युष्मद् और अस्मद् शब्दों से विहित भ्यस् के स्थान में भ्यम् आदेश हो जाता है ॥ ३० ॥ किन्तु पञ्चमी के भ्यस् के स्थान में अत् आदेश हो जाता है ॥ ३१ ॥ युष्मद् और अस्मद् शब्दों से विहित पञ्चमी एकवचन विभक्ति के स्थान में भी अत् आदेश हो जाता है ॥ ३२ ॥ युष्मद् और अस्मद् शब्दों से उत्तरवर्ती साम् (=सुडागमविशिष्ट षष्ठी-बहुवचन विभक्ति-आम्) के स्थान में आकम् आदेश हो जाता है ॥ ३३ ॥ आदन्त अङ्ग से उत्तर विद्यमान णल् (लिट् > तिप् > णल्) के स्थान में औकारादेश हो जाता है ॥ ३४ ॥ आशीर्लिङ्-स्थानिक 'तु' और 'हि' के स्थान में विकल्प से तातङ् आदेश हो जाता है ॥ ३५ ॥ ज्ञानार्थक विद धातु से विहित शतृ प्रत्यय के स्थान में वसु आदेश हो जाता है ॥ ३६ ॥ नञ्-पूर्वक-भिन्न समास में क्त्वा प्रत्यय के स्थान में ल्यप् आदेश हो जाता है ॥ ३७ ॥ किन्तु छन्दोविषय[1] में उक्त स्थिति में क्त्वा के स्थान में क्त्वा आदेश भी हो जाता है और विकल्प से ल्यप् आदेश भी ॥ ३८ ॥ छन्दोविषय में सुप् (= सु—सुप्) विभक्तियों के स्थान में 'सु' आदेश, उनका लुक्, एवम् पूर्वसवर्ण, आ, आत, शे, या, डा, ड्या, याच् और याल् आदेश हो जाते हैं ॥ ३९ ॥ (मिप् के स्थान में आदेशस्वरूप) अम् के स्थान में छन्दोविषय में मश् आदेश हो जाता है ॥ ४० ॥

छन्दोविषय में आत्मनेपदसंज्ञक लकार का लोप हो जाता है ॥ ४१ ॥ छन्दोविषय में ध्वम् के स्थान में ध्वात् आदेश हो जाता है ॥ ४२ ॥ छन्दोविषय में 'यजध्वम् + एनम्' के स्थान में 'यजध्वैनम्' इस शब्द का निपातन (= ध्वम् के

१. छन्दोविषयत्व का अधिकार इस पाद के ५० वें सूत्र तक ज्ञातव्य है ।

४४ तस्य तात्।
४५ तप्तनप्तनथनाश्च।
४६ इदन्तो मसि।
४७ क्त्वो यक्।
४८ इष्ट्वीनमिति च।
४९ स्नात्व्यादयश्च।
५० आज्जसेरसुक्।
५१ अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि।
५२ आमि सर्वनाम्नः सुट्।
५३ त्रेस्त्रयः।
५४ ह्रस्वनद्यापो नुट्।
५५ षट्चतुर्भ्यश्च।
५६ श्रीग्रामण्योश्छन्दसि।
५७ गोः पादान्ते।
५८ इदितो नुम् धातोः।

मकार का लोप[२].) हो जाता है ॥४३॥ छन्दोविषय में (लोट्-मध्यमपुरुष-बहुवचन-विभक्ति) 'त' के स्थान में तात् आदेश हो जाता है॥ ४४ ॥ छन्दोविषय में हीं 'त' के स्थान मे तप्, तनप्, तन और थन आदेश भी हो जाते हैं॥ ४५॥ छन्दोविषय में मस् विभक्ति को इकारागम हो जाता है॥ ४६ ॥ छन्दोविषय में क्त्वा को यक् का आगम हो जाता है॥ ४७ ॥ छन्दोविषय में यज् धातु से विहित क्त्वा के स्थान में ईनम् यह अन्तादेश हो जाता है॥ ४८॥ स्नात्वी आदि छान्दस प्रयोगों की सिद्धि के लिए क्त्वा प्रत्यय के आकार के स्थान में ईकारादेश निपातनीय है॥ ४९॥ अवर्णान्त अङ्ग से विहित जस् को असुक् का आगम हो जाता है॥ ५०॥ आत्मप्रीतिविषय में अश्व, क्षीर, वृष और लवण शब्दों को क्यच् प्रत्यय के परे असुक् का आगम हो जाता है॥ ५१॥ अवर्णान्त सर्वनामों से उत्तरवर्त्ती आम् (ष० ब० व०) को सुट् का आगम हो जाता है॥ ५२॥ आम् के परे त्रि शब्द के स्थान् में त्रय आदेश हो जाता है॥ ५३॥ ह्रस्वान्त, नद्यन्त और आबन्त अङ्गों से विहित आम् को नुट् का आगम हो जाता है॥ ५४॥ षट्-संज्ञक शब्दों और चतुर् शब्द से विहित आम् को भी नुडागम हो जाता है॥ ५५॥ छन्दोविषय मे श्री और ग्रामणी शब्दों से विहित आम् को भी नुडागम हो जाता है॥ ५६॥ गो शब्द से विहित आम् को भी छन्दोविषय में नुडागम हो जाता है यदि वह ऋक्पादान्त में प्रयुक्त हो॥ ५७॥ इदित् (= जिसके ह्रस्व इकार की 'इत्'-संज्ञा हुई हो उस) धातु को नुम् का आगम

२. यहाँ काशिकाकार ने वकार के स्थान में यकारादेश का भी निपातन माना है। यह मान्यता 'यजध्यैनम्' ऐसा मूलपाठ मानने पर हीं संगत हो सकती है। किन्तु 'यजध्वैनम्' इसी पाठ के प्रमाणिक होने से वृत्तिकार का यह कथन अयुक्त है।

५९ शे मुचादीनाम् ।
६० मस्जिनशोर्झलि ।
६१ रधिजभोरचि ।
६२ नेट्यलिटि रधेः ।
६३ रभेरशब्लिटोः ।
६४ लभेश्च ।
६५ आङो यि ।
६६ उपात्प्रशंसायाम् ।
६७ उपसर्गात्खल्घञोः ।
६८ न सुदुर्भ्यां केवलाभ्याम् ।
६९ विभाषा चिण्णमुलोः ।
७० उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ।
७१ युजेरसमासे ।
७२ नपुंसकस्य झलचः ।
७३ इकोऽचि विभक्तौ ।

हो जाता है ॥ ५८ ॥ 'श' प्रत्यय के परे मुच आदि धातुओं को भी नुमागम हो जाता है ॥ ५९ ॥ झलादि प्रत्ययों के परे मस्ज् और नश (=णश) धातुओं को भी नुमागम हो जाता है ॥ ६० ॥

रध तथा जभ धातुओं को भी अजादि प्रत्ययों के परे नुम् का आगम हो जाता है ॥ ६१ ॥ किन्तु लिङ्-भिन्न इडादि (=इडागमविशिष्ट) प्रत्ययों के परे रध धातुको नुमागम नहीं होता ॥ ६२ ॥ शप् और लिट् से भिन्न अजादि प्रत्ययों परे अङ्ग संज्ञक रभ धातु को भी नुम् का आगम हो जाता है ॥ ६३ ॥ उक्त स्थिति में लभ धातु को भी नुमागम हो जाता है ॥ ६४ ॥ आङ् पूर्वक लभ धातु को यकारादि प्रत्ययों के विषय में भी नुम् का आगम हो जाता है ॥ ६५ ॥ 'उप' उपसर्ग से विशिष्ट लभ धातु को भी यदि प्रशंसा गम्यमान हो तो यकारादि प्रत्ययों के विषय में नुम् का आगम हो जाता है ॥ ६६ ॥ खल् और घञ् प्रत्ययों के परे तो किसी भी उपसर्ग से विशिष्ट लभ धातु को नुम् का आगम हो जाता है ॥ ६७ ॥ किन्तु यदि लभ धातु केवल 'सु' अथवा 'दुर्' उपसर्ग से विशिष्ट हो तो इसे खल् तथा घञ् प्रत्ययों के परे नुमागम नहीं होता ॥ ६८ ॥ चिण् और णमुल् प्रत्ययों के परे भी लभ धातु को विकल्प से नुम् का आगम हो जाता है ॥ ६९ ॥ सर्वनामस्थान-संज्ञक विभक्तियों के परे धातुभिन्न उगित् शब्दों और लुप्तनकारक अञ्च् धातु को भी नुम् का आगम हो जाता है ॥ ७० ॥ यदि समास का अवयव न हो तो युज् शब्द को भी सर्वनामस्थान-संज्ञक विभक्तियों के परे नुम् का आगम हो जाता है ॥ ७१ ॥ नपुंसकलिङ्गवृत्ती झलन्त और अजन्त शब्दों को भी सर्वनामस्थान-संज्ञक विभक्तियों के परे नुम् का आगम हो जाता है ॥ ७२ ॥ नपुंसकलिङ्गवृत्ती इगन्त अङ्ग को भी अजादि विभक्तियों के परे नुम् का आगम

७४ तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद्गालवस्य ।
७५ अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः ।
७६ छन्दस्यपि दृश्यते ।
७७ ई च द्विवचने ।
७८ नाभ्यस्ताच्छतुः ।
७९ वा नपुंसकस्य ।
८० आच्छीनद्योर्नुम् ।
८१ शप्श्यनोर्नित्यम् ।
८२ सावनडुहः ।
८३ दृक्स्ववस्स्वतवसां छन्दसि ।
८४ दिव औत् ।
८५ पथिमथ्यृभुक्षामात् ।
८६ इतोऽत्सर्वनामस्थाने ।
८७ थो न्थः ।

हो जाता है ॥ ७३ ॥ भाषितपुंस्क नपुंसकलिङ्गवृत्ती इगन्त अङ्ग तृतीया आदि अजादि विभक्तियों के परे पुंवत् हो जाता है ॥ ७४ ॥ (नपुंसकलिङ्गवृत्ती) अस्थि, दधि, सक्थि तथा अक्षि शब्दों को तृतीया आदि अजादि विभक्तियों परे उदात्तत्व-विशिष्ट अनङ् (अन्त-) आदेश हो जाता है ॥ ७५ ॥ किन्तु छन्दोविषय में अस्थि आदि शब्दों को उक्त अनङ् आदेश अन्य विभक्तियों के परे भी देखा जाता है ॥ ७६ ॥ द्विवचनविभक्तियों के परे अस्थि आदि चार शब्दों को छन्दोविषय में ईकार अन्तादेश हो जाता है ॥ ७७ ॥ अभ्यस्त-संज्ञक अङ्ग से विहित शतृ प्रत्यय को नुम् का आगम नहीं होता ॥ ७८ ॥ किन्तु अभ्यस्त-संज्ञक शतृ-प्रत्ययान्त शब्द यदि नपुंसकलिङ्गवृत्ती हो तो नुम् का आगम विकल्प से हो जाता है ॥ ७९ ॥ शी प्रत्यय और नदी-संज्ञक के परे अवर्णान्त अङ्ग से परवर्त्ती जो शतृ-प्रत्ययावयव तदन्त अङ्ग को विकल्प से नुम् का आगम हो जाता है ॥८०॥

शप् अथवा श्यन् प्रत्यय के अकार से उत्तर विद्यमान जो शतृ-प्रत्ययावयव तदन्त अङ्ग को तो शी प्रत्यय और नदी-संज्ञक प्रत्ययों के परे नित्य हीं नुम् का होता है ॥ ८१ ॥ 'सु' विभक्ति के परे अङ्ग-संज्ञक अनडुह् शब्द को भी नुम् का आगम हो जाता है ॥ ८२ ॥ छन्दोविषय में दृक्, स्ववस् और स्वतवस् शब्दों को भी 'सु' के परे नुम् का आगम हो जाता है ॥ ८३ ॥ दिव् शब्द के स्थान में 'सु' विभक्ति के परे औकार अन्तादेश हो जाता है ॥ ८४ ॥

'सु' प्रत्यय के परे अङ्ग-संज्ञक पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन् शब्दों के स्थान में आकार अन्तादेश हो जाता है ॥ ८५ ॥ सर्वनामस्थान-संज्ञक विभक्तियों के परे पथिन्-आदि शब्दों के इकार के स्थान में (ह्रस्व) अकारादेश हो जाता है ॥८६॥ सर्वनामस्थान-संज्ञक विभक्तियों के परे पथिन् और मथिन् शब्दों के थकार के

८८ भस्य टेर्लोपः ।
८९ पुंसोऽसुङ् ।
९० गोतो णित् ।
९१ णलुत्तमो वा ।
९२ सख्युरसम्बुद्धौ ।
९३ अनङ् सौ ।
९४ ऋदुशनस्पुरुदंशोऽनेहसां च ।
९५ तृज्वत् क्रोष्टुः ।
९६ स्त्रियां च ।
९७ विभाषा तृतीयादिष्वचि ।
९८ चतुरनडुहोरामुदात्तः ।
९९ अम्सम्बुद्धौ ।
१०० ऋत इद्धातोः ।
१०१ उपधायाश्च ।
१०२ उदोष्ठ्यपूर्वस्य ।
१०३ बहुलं छन्दसि ।

स्थान में 'न्थ' आदेश हो जाता है ॥ ८७ ॥ 'भ'-संज्ञक पथिन् आदि शब्दों के 'टि' का लोप हो जाता है ॥८८॥ सर्वनामस्थान-संज्ञक विभक्तियों के परे पुंस् शब्द को असुङ् आदेश हो जाता है ॥ ८९ ॥ गो शब्द से विहित सर्वनामस्थान-संज्ञक विभक्तियाँ णिद्वत्—णित् प्रत्यय के समान कार्यभागी—हो जाती हैं ॥ ९० ॥ उत्तमपुरुष का णल् आदेश भी विकल्प में णिद्वत् हो जाता है ॥ ९१ ॥ सखि शब्द से परवर्त्ती सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान-संज्ञक विभक्तियाँ भी णिद्वत् हो जाती हैं ॥ ९२ ॥ सखि शब्द को सम्बुद्धिभिन्न 'सु' विभक्ति के परे अनङ् आदेश हो जाता है ॥ ९३ ॥ सम्बुद्धिभिन्न 'सु' विभक्ति के परे ऋदन्त, उशनस्, पुरुदंशस् और अनेहस् शब्दों को भी अनङ् आदेश हो जाता है ॥ ९४ ॥ सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान विभक्तियों के परे तुन्-प्रत्ययान्त क्रोष्टृ शब्द तृच्-प्रत्ययान्त शब्दों के समान कार्यभागी (=तृज्वत्) हो जाता है ॥९५॥ स्त्रीत्वविशिष्ट क्रोष्टृ शब्द तो असर्वनामस्थान विभक्तियों के परे भी तृज्वत् हो जाता है ॥ ९६ ॥ किन्तु तृतीया आदि अजादि विभक्तियों के परे क्रोष्टृ शब्द विकल्प से ही तृज्वत् होता है ॥ ९७ ॥ सम्बद्धभिन्न सर्वनामस्थान विभक्तियों के परे चतुर् और अनडुह् शब्दों को उदात्तत्वविशिष्ट आम् का आगम हो जाता है ॥ ९८ ॥ किन्तु सम्बुद्धिविभक्ति के परे तो उक्त शब्दों को अम् का आगम ही होता है ॥ ९९ ॥ अङ्गसंज्ञक ऋदन्त धातुओं को (ह्रस्व) इकारादेश हो जाता है ॥ १०० ॥

(धातु के) उपधाभूत ऋत् के स्थान में भी इकारादेश हो जाता है ॥१०१॥ जिस अङ्गावयव ऋकार के पहले ओष्ठ्य वर्ण हो तदन्त धातु को (ह्रस्व) उकारादेश हो जाता है ॥ १०२ ॥ यह उकारादेश छन्दोविषय में बहुलरूप में ही होता है ॥ १०३ ॥

सप्तमाध्याय का प्रथम पाद समाप्त ।

द्वितीयः पादः ।

१ सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ।
२ अतो ल्रान्तस्य ।
३ वदव्रजहलन्तस्याचः ।
४ नेटि ।
५ ह्मयन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ।
६ ऊर्णोतेर्विभाषा ।
७ अतो हलादेर्लघोः ।
८ नेड् वशि कृति ।
९ तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च ।
१० एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ।
११ श्र्युकः किति ।

सप्तमाध्याय का द्वितीय पाद

परस्मैपदपरक सिच् के परे इगन्त अङ्ग के स्थान मे वृद्धि हो जाती है ॥१॥ अत् के समीप विद्यमान जो रेफ या लकार तदन्त अङ्ग के अत् के स्थान में भी परस्मैपदपरक सिच् के परे वृद्धि हो जाती है ॥ २ ॥ वद, व्रज और हलन्त अङ्ग के अच् के स्थान में भी परस्मैपदपरक सिच् के परे वृद्धि हो जाती है ॥ ३ ॥ किन्तु यदि वह सिच् इडादि (=इडागमविशिष्ट) हो तो हलन्त अङ्ग के अच् के स्थान में वृद्धि नहीं होती ॥ ४ ॥ एकारान्त, मकारान्त, यकारान्त अङ्गों, क्षण, श्वस, जागृ, नि, श्वि और एदित् धातुओं के अच् के स्थान में भी इडादि सिच् के परे वृद्धि नहीं होती ॥ ५ ॥ परस्मैपदपरक इडादि सिच् के परे ऊर्णु्ञ् धातु की भी विकल्प से वृद्धि नहीं होती[1] ॥ ६ ॥ अङ्ग के हलादि लघु अकार की भी परस्मैपदपरक इडादि सिच् के परे विकल्प से वृद्धि नहीं होती ॥ ७ ॥ वश् प्रत्याहारस्थ वर्ण जिनके आदि में हो उन कृत्-प्रत्ययों को इडागम नही होता ॥ ८ ॥ 'ति' (=क्तिन् और क्तिच्), 'तु' (=तुन्), 'त्र' (ष्ट्रन्), 'त' (औणादिक तन् प्रत्यय), 'थ' (कथन्), 'सि' (=क्सि), 'सु' (=सुक्), 'सर' (=क्सरन्), क' (=कन्) और 'स' इन कृत्-प्रत्ययों को भी इट् का आगम नही होता ॥ ९ ॥ जो धातु उपदेशावस्था मे एकाच् और अनुदात्त हो उससे परवर्ती वलादि आर्धधातुक को भी इट् का आगम नही होता ॥ १० ॥ श्रिञ् धातु और उपदेशावस्था में एकाच् उगन्त धातुओं से पर विद्यमान गित् और[2] कित् प्रत्ययों को भी इट् का आगम नही होता ॥ ११ ॥

१. निषेधविकल्प से विधिविकल्प के सिद्ध होने के कारण बहुत ग्रन्थों में विकल्प से वृद्धि का ही विधान किया गया है ।

२. यह व्याख्या श्वभूति तथा व्याडि आदि आचार्यों की है, क्योंकि इनके अनुसार 'क्क्ङिति' ऐसा पाठ है । सिद्धान्तकौमुदी आदि में भी यही कहा गया है । किन्तु काशिकाकार 'किति' इस पाठ को ही उचित मानते हैं ।

१२ सनि ग्रहगुहोश्च ।
१३ कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि ।
१४ श्वीदितो निष्ठायाम् ।
१५ यस्य विभाषा ।
१६ आदितश्च ।
१७ विभाषा भावादिकर्मणोः ।
१८ क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्ट-
विरिब्धफाण्टबाढानि मन्थमन-
स्तमःसक्ताविस्पष्टस्वरानायास
भृशेषु ।
१९ धृषिशसी वैयात्ये ।
२० दृढः स्थूलबलयोः ।
२१ प्रभौ परिवृढः ।
२२ कृच्छ्रगहनयोः कषः ।
२३ घुषिरविशब्दने ।
२४ अर्देः सन्निविभ्यः ।

ग्रह गुह और उगन्त धातुओं से परवर्त्ती सन् प्रत्यय को भी इट् का आगम नहीं होता ॥१२॥ कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु और श्रु धातुओं से पर विद्यमान लिट् को भी इट् का आगम नही होता ॥१३॥ श्वि धातु और ईदित् (= जिनके ईकार की इत्-संज्ञा हुई हो उन) धातुओं से विहित निष्ठा-संज्ञक प्रत्ययों को भी इट् का आगम नहीं होता ॥ १४ ॥ जिस धातु से विहित किसी आर्धधातुक प्रत्यय को विकल्प से इट् का आगम कहा गया हो उससे विहित निष्ठा-संज्ञक प्रत्ययों को भी विकल्प से इट् का आगम नही होता ॥ १५ ॥ आदित् (= जिनके अवयवभूत आकार की इत्-संज्ञा हुई हो उन) धातुओं की 'निष्ठा' प्रत्ययों को भी इट् का आगम नहीं होता ॥ १६ ॥ आदित् धातुओं से विहित भावार्थक और आदि-कर्मार्थक 'निष्ठा' प्रत्ययों को भी विकल्प से इडागम नही होता ॥ १७ ॥ इडागमा-भावविशिष्ट 'निष्ठा'-प्रत्ययान्त क्षुब्ध, स्वान्त, ध्वान्त, लग्न, म्लिष्ट, विरिब्ध, फाण्ट और बाढ़ शब्दों का क्रमशः मन्थ, मनस्, तमस्, सक्त, अविस्पष्ट, स्वर (= ध्वनि), अनायास और भृश अर्थों में निपातन किया जाता है ॥ १८ ॥ वैयात्य (= प्रगल्भता = धृष्टता) अर्थ में विद्यमान धृष् और शस् धातुओं से परवर्त्ती 'निष्ठा' प्रत्ययों को भी इट् का आगम नहीं होता ॥ १९ ॥ स्थूल एवं बलवान् इन दोनों अर्थों में 'दृढ़' शब्द का निपातन किया जाता है ॥ २० ॥

प्रभु अर्थ में परिवृढ़ शब्द भी निपातनीय है ॥ २१ ॥ कृच्छ्र और गहन अर्थों में कष् धातु से परवर्त्ती 'निष्ठा' प्रत्ययों को भी इट् का आगम नही होता ॥ २२ ॥ विशब्दन (= अपने अभिप्राय का शब्दों में प्रकाशन) अर्थ में घुषिर् (=घुष) धातु से परवर्त्ती 'निष्ठा' प्रत्ययों को भी इडागम नही होता ॥ २३ ॥ सम्, नि, वि इन में से किसी उपसर्ग से विशिष्ट होने पर अर्द धातु से

२५ अभेश्चाविदूर्ये ।

२६ णेरध्ययने वृत्तम् ।

२७ वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्ट-
च्छन्नज्ञप्ताः ।

२८ रुष्यमत्वरसङ्घुषास्वनाम् ।

२९ हृषेर्लोमसु ।

३० अपचितश्च ।

३१ हु ह्वरेश्छन्दसि ।

३२ अपरिह्वृताश्च ।

३३ सोमे ह्वरितः ।

३४ ग्रसितस्कभितस्तभितोत्तभित-
चत्तविकस्ता विशस्तृशंस्तृ-
शास्तृतरुतृतरूतृवरुतृवरूतृ-
वरूत्रीरुज्ज्वलितिक्षरितिवमित्य-
मितीति च ।

परवर्त्ती 'निष्ठा' प्रत्ययों को भी इट् का आगम नहीं होता ॥ २४ ॥ आविदूर्य[1] अर्थ में 'अभि'-वि[illegible] अर्द धातु से परवर्त्ती 'निष्ठा' प्रत्ययों को भी इट् का आगम नहीं होता ॥२५॥ अध्ययनार्थ में णिजन्त वृत धातु से उत्तरवर्त्ती 'क्त' प्रत्यय को इडागम का अभाव और णिलोप निपातनीय है ॥ २६ ॥ णिच्-प्रत्ययान्त दम, शम, पूरी, दस, स्पश, छद और ज्ञप धातुओं से विहित 'निष्ठा' प्रत्यय को विकल्प से इडागम का अभाव निपातनीय है ॥ २७ ॥ रुष, अम, त्वॅर, 'सम्'-पूर्वक घुष् और 'आ'-पूर्वक स्वन धातुओं से परवर्त्ती 'निष्ठा' प्रत्यय को भी विकल्प से इट् का आगम नही होता[2] ॥ २८ ॥ लोम (= केश) अर्थ में हृष् (हृषु और हृष) धातु से उत्तरवर्त्ती 'निष्ठा' प्रत्यय को भी विकल्प से इडागम नहीं होता ॥ २९ ॥ अपचित इस शब्द का भी विकल्प से निपातन—चायृ धातु से परवर्त्ती 'निष्ठा' प्रत्यय को इडागम का अभाव और 'चि' आदेश का निपातन किया जाता है ॥ ३० ॥ ह्वृ धातु को 'निष्ठा' प्रत्यय के परे छन्दोविषय में हु आदेश[3] का निपातन किया जाता है ॥३१॥ छन्दोविषय में 'अपरिह्वृताः' इस (= हु आदेश के अभाव) का भी निपातन किया जाता है ॥३२॥ छन्दोविषय में सोम के अभिधानार्थ ह्वरित शब्द का भी निपातन—'निष्ठा' प्रत्यय के परे इडागम और गुण का निपातन—किया जाता है ॥ ३३ ॥ छन्दोविषय में ग्रसित, स्कभित, स्तभित, उत्तभित, चत्त, विकस्त, विशस्त, शंस्तृ, शास्तृ, तरुतृ, तरूतृ, वरुतृ, वरूतृ, वरूत्रीः, उज्ज्वलिति, क्षरिति, वमिति और अमिति

१. अधिक दूर न होना 'आविदूर्य' शब्द का अर्थ है । अतः समीपता और अनतिदूरता इन दोनों अर्थों का समावेश हो जाता है ।

२. 'निषेधविकल्पे विधिविकल्पः ।'

३. इट्-प्रतिषेध तो अनुदात्तत्व-प्रयुक्त सिद्ध ही है ।

३५ आर्धधातुकस्येड् वलादेः ।
३६ स्नुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्ते ।
३७ ग्रहोऽलिटि दीर्घः ।
३८ वृतो वा ।
३९ न लिङि ।
४० सिचि च परस्मैपदेषु ।
४१ इट् सनि वा ।
४२ लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु ।
४३ ऋतश्च संयोगादेः ।
४४ स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा ।
४५ रधादिभ्यश्च ।
४६ निरः कुषः ।
४७ इण्निष्ठायाम् ।
४८ तीषसहलुभरुषरिषः ।

शब्दों का निपातन किया जाता है ॥३४॥ वलादि आर्धधातुक को इट् का आगम हो जाता है ॥ ३५ ॥ यदि स्नु और क्रमु धातु आत्मनेपद के निमित्त न हों तो उनके वलादि आर्धधातुक को भी इट् का आगम हो जाता है ॥ ३६ ॥ ग्रह धातु से उत्तरवर्त्ती इट् को लिङ् भिन्न प्रत्ययों के परे दीर्घ हो जाता है ॥ ३७ ॥ वृङ्, वृञ् और ऋदन्त धातुओं से उत्तरवर्ती इट् को भी लिङ्-भिन्न प्रत्ययों के परे विकल्प से दीर्घ हो जाता है ॥ ३८ ॥ किन्तु वृङ्, वृञ् तथा ऋदन्त धातुओं से परवर्ती इट् को लिङ् के परे दीर्घ नही होता ॥ ३९ ॥ परस्मैपदपरक सिच् के परे भी वृङ्, वृञ् तथा ऋदन्त धातुओं से उत्तरवर्ती इट् को दीर्घ च् नहीं होता ॥४०॥ उक्त धातुओं से विहित सन् प्रत्यय को विकल्प से इट् का आगम हो जाता है ॥ ४१ ॥ उक्त धातुओं से विहित आत्मनेपदपरक लिङ् और सिच् प्रत्ययों को भी विकल्प से इडागम हो जाता है ॥ ४२ ॥ संयोगादि ऋदन्त धातुओं से उत्तरवर्ती आत्मनेपदपरक लिङ् और सिच् प्रत्ययों को भी विकल्प से इडागम हो जाता है ॥४३॥ स्वृ, (अदादिगणपठित) षूङ्, (दैवादिक) षूङ्, (स्वादि एवं क्र्यादिगण में पठित) धुञ् और (=गाहू, गुपू आदि) ऊदित् धातुओं से उत्तरवर्ती वलादि आर्धधातुक को भी विकल्प से इट् का आगम हो जाता है ॥ ४४ ॥ रध आदि (= रध, णश, तृप, दृप, द्रुह, मुह, ष्णुह और ष्णिह) आठ धातुओं से उत्तर विद्यमान वलादि आर्धधातुक को भी विकल्प से इट् का आगम हो जाता है ॥ ४५ ॥ निर्-उपसर्गपूर्वक कुष धातु से उत्तर विद्यमान वलादि आर्धधातुक को भी विकल्प से इट् का आगम हो जाता है ॥ ४६ ॥ निर्-उपसर्गपूर्वक कुष धातु से परवर्ती 'निष्ठा' प्रत्यय को भी इट् का आगम[1] हो जाता है ॥ ४७ ॥ इष, सह,

१. अनुवृत्ति से सिद्ध होने पर भी सूत्र मे 'इट्' पद का उल्लेख इस आगम की नित्यता में प्रमाण है ।

४९ सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम् ।
५० क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः ।
५१ पूङश्च ।
५२ वसतिक्षुधोरिट् ।
५३ अञ्चेः पूजायाम् ।
५४ लुभो विमोहने ।
५५ जॄव्रश्च्योः क्त्वि ।
५६ उदितो वा ।
५७ सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः ।
५८ गमेरिट् परस्मैपदेषु ।
५९ न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ।
६० तासि च क्लृपः ।

लुभ, रुष और रिष धातुओं से परवर्ती तकारादि आर्धधातुक को भी विकल्प से इडागम हो जाता है ॥ ४८ । इव्-शब्दान्त (=दिव् आदि) धातु, ऋधु, भ्रस्ज, दम्भु, श्रिञ् , स्वृ, यु, ऊर्णुञ् , (भौवादिक) भृञ् और णिजन्त ज्ञप धातु से से विहित सन प्रत्यय को भी विकल्प से इट् का आगम हो जाता है ॥ ४९ ॥ क्लिश धातु से विहित क्त्वा प्रत्यय और 'निष्ठा' प्रत्यय को भी विकल्प से इडागम हो जाता है ॥ ५० ॥ पूङ् धातु से परवर्त्ती क्त्वा और 'निष्ठा' प्रत्ययों को भी विकल्प से इडागम हो जाता है ॥ ५१ ॥ वस और क्षुध धातुओं से परवर्त्ती क्त्वा और 'निष्ठा' प्रत्ययों को भी नित्य इडागम हो जाता है ॥ ५२ ॥ पूजार्थक अञ्च् धातु से परवर्त्ती क्त्वा और 'निष्ठा' प्रत्ययों को भी नित्य इडागम हो जाता है ॥ ५३ ॥ विमोहनार्थवृत्ती लुभ धातु से उत्तरवर्त्ती क्त्वा और 'निष्ठा' प्रत्ययों को भी नित्य इडागम हो जाता है ॥ ५४ ॥ (क्र्यादि-पठित) जॄ और व्रश्च् धातुओं से परवर्त्ती क्त्वा प्रत्यय को भी नित्य इडागम हो जाता है ॥५५॥ उदित् धातुओं से विहित क्त्वा प्रत्यय को भी विकल्प से इडागम हो जाता है ॥ ५६ ॥

कृत् (=कृती), चृत् (=चृतो), छृद् (=उच्छृदिर्), तृद् (=उतृदिर्) और नृत् (=नृती) धातुओं से विहित सिज्-भिन्न सकारादि आर्धधातुक को भी विकल्प से इडागम हो जाता है ॥ ५७ ॥ गम धातु से परवर्त्ती परस्मैपदी सकारादि आर्धधातुक को भी नित्य इट् का आगम हो जाता है ॥ ५८ ॥ किन्तु वृत् , वृध् , शृध् और स्यन्द् धातुओं से परवर्त्ती परस्मैपद-संज्ञक सकारादि आर्धधातुक को इट् का आगम नहीं होता ॥ ५९ ॥ क्लृप (=कृप्) धातु से उत्तरवर्त्ती तासि प्रत्यय तथा सकारादि आर्धधातुक को भी इट् का आगम नहीं होता ॥ ६० ॥

६१ अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्।
६२ उपदेशेऽत्वतः।
६३ ऋतो भारद्वाजस्य।
६४ बभूथाततन्थजगृम्भववर्थेति निगमे।
६५ विभाषा सृजिदृशोः।
६६ इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम्।
६७ वस्वेकाजाद्घसाम्।
६८ विभाषा गमहनविदविशाम्।
६९ सनिं ससनिवांसम्।
७० ऋद्धनोः स्ये।
७१ अञ्जेः सिचि।
७२ स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु।
७३ यमरमनमातां सक् च।
७४ स्मिपूङ्रञ्ज्वशां सनि।

तासि के परे नित्य अनिट् (=इडागमरहित) अजन्त धातुओं से विहित थल् (=लिट्>सिप्>थल्) प्रत्यय को भी तासि प्रत्यय के समान इडागम नही होता ॥ ६१ ॥ तासि प्रत्यय के परे नित्य अनिट्, औपदेशिक (ह्रस्व) अकारवान् धातुओं से विहित थल् प्रत्यय को भी तासि प्रत्यय के समान इट् का आगम नही होता ॥ ६२ ॥ तासि प्रत्यय के परे नित्य अनिट् ऋदन्त धातुओं से विहित थल् प्रत्यय को भी भारद्वाजाचार्य के मत में इडागम नहीं होता ॥६३॥ वेदविषय में बभूथ, आततन्थ, जगृम्भ और ववर्थ इन शब्दों का निपातन अवगन्तव्य है ॥ ६४ ॥ सृज और दृश् धातुओं से विहित थल् प्रत्यय को भी विकल्प से इडागम नही होता ॥ ६५ ॥ किन्तु अद, ऋ और व्येञ् धातुओं से परवर्त्ती थल् प्रत्यय को नित्य इडागम हो जाता है ॥ ६६ ॥ द्विर्वचन के बाद भी एकाच्, आदन्त और घस् (=अद्>घस्) धातुओं से विहित वसु (= क्वसु) प्रत्यय को भी इडागम हो जाता है ॥ ६७ ॥ परन्तु गम्, हन, विद् (तौदादिक लाभार्थक विद्लृ धातु) और विश् धातुओं से परवर्त्ती वसु प्रत्यय को विकल्प से ही इट् का आगम होता है ॥ ६८ ॥ 'सनिम्'-पूर्वक् सन धातु से '(सनिं-) ससनिवांसम्' पद का (अर्थात् क्वसु प्रत्यय को इट् का आगम और एत्वाभ्यासलोपाभाव का) निपातन किया जाता है ॥ ६९ ॥ ऋदन्त धातुओं एवं हन धातु से विहित स्य प्रत्यय को इट् का आगम हो जाता है ॥ ७० ॥ अञ्ज् धातु से परवर्त्ती सिच् को भी इट् का आगम हो जाता है ॥७१॥ स्तु, सु (=षुञ्) और धूञ् धातुओं से परवर्ती परस्मैपदपरक सिच् को भी इट् का आगम हो जाता है ॥ ७२ ॥ यम, रम्, नम और (=या, पा आदि) आदन्त धातुओं से परवर्त्ती परस्मैपदपरक सिच् को सक् का भी आगम हो जाता है और इट् का भी ॥७३॥ स्मिङ्, पूङ्, ऋ, अञ्जू और अशू धातुओं से परवर्त्ती सन् प्रत्यय को भी इडागम हो जाता

७५ किरश्च पञ्चभ्यः।
७६ रुदादिभ्यः सार्वधातुके।
७७ ईशः से।
७८ ईडजनोर्ध्वे च।
७९ लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य।
८० अतो येयः।
८१ आतो ङितः।
८२ आने मुक्।
८३ ईदासः।
८४ अष्टन आ विभक्तौ।
८५ रायो हलि।
८६ युष्मदस्मदोरनादेशे।
८७ द्वितीयायां च।
८८ प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्।

है ॥ ७४ ॥ कॄ आदि पाँच (= कॄ, गॄ, दृङ्, धृङ् और प्रच्छ) धातुओं से परवर्त्ती सन प्रत्यय को भी इट् का आगम हो जाता है ॥ ७५ ॥ रुद् आदि पाँच (= रुद्, स्वप्, श्वस्, अन् और जक्ष) धातुओं से परवर्त्ती वलादि सार्वधातुक को भी इट् का आगम हो जाता है ॥ ७६ ॥ ईश धातु से उत्तर विद्यमान सार्वधातुकसंज्ञक 'से' प्रत्यय को भी इट् का आगम हो जाता है ॥ ७७ ॥ किन्तु ईड और जन् धातुओं से परवर्त्ती सार्वधातुक-संज्ञक 'ध्वे' प्रत्यय को भी इट् का आगम हो जाता है (और 'से' प्रत्यय को भी) ॥ ७८ ॥ सार्वधातुकसंज्ञक लिङ् लकार के अवयव अनन्त्य (= अन्त्यभिन्न) सकार का लोप हो जाता है ॥ ७९ ॥ अदन्त से परवर्त्ती सार्वधातुक-संज्ञक 'या' के स्थान में इय् आदेश हो जाता है ॥ ८० ॥

अत् से परवर्त्ती ङित् के आकार के स्थान में भी इय् आदेश हो जाता है ॥ ८१ ॥ 'आन' प्रत्यय के परे रहते अङ्गसंज्ञक के अत् को मुक् का आगम हो जाता है ॥ ८२ ॥ आस धातु से उत्तरवर्त्ती आन प्रत्यय को ईकारादेश[1] हो जाता है ॥ ८३ ॥ विभक्ति के परे रहते अष्टन् शब्द (के अन्त्य नकार) के स्थान में आकारादेश हो जाता है ॥ ८४ ॥ हलादि विभक्ति के परे रहते रै शब्द के (ऐकार के) स्थान में भी आकारादेश हो जाता है ॥ ८५ ॥ आदेशभिन्न विभक्ति के परे युष्मद् और अस्मद् शब्दों के (अन्त्य अल् के) स्थान में भी आकारादेश हो जाता है ॥ ८६ ॥ किन्तु द्वितीयाविभक्ति यदि आदेश स्वरूप भी हो तो भी युष्मद् और अस्मद् शब्दों को आकारादेश हो ही जाता है ॥ ८७ ॥ भाषाविषय प्रयोग में प्रथमाद्विवचनविभक्ति के परे रहते भी युष्मद् और अस्मद् शब्दों को

१. 'आदेः परस्य' इस नियम के अनुसार यह आदेश 'आन' के आद्य वर्ण—आकार के स्थान में ही पर्यवसित होता है।

८९ योऽचि ।
९० शेषे लोपः ।
९१ मपर्यन्तस्य ।
९२ युवावौ द्विवचने ।
९३ यूयवयौ जसि ।
९४ त्वाहौ सौ ।
९५ तुभ्यमह्यौ ङयि ।
९६ तवममौ ङसि ।
९७ त्वमावेकवचने ।
९८ प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ।
९९ त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ ।
१०० अचि र ऋतः ।
१०१ जराया जरसन्यतरस्याम् ।
१०२ त्यदादीनामः ।
१०३ किमः कः ।
१०४ कु तिहोः ।

आकारादेश हो जाता है॥८८॥ आदेशभिन्न अजादि विभक्तियों के परे रहते युष्मद् और अस्मद् शब्दों को यकारादेश हो जाता है ॥ ८९ ॥ शेष[1] विभक्तियों के परे रहते युष्मद् और अस्मद् शब्दों के अन्त्य अस् का लोप हो जाता है ॥९०॥ इसके बाद 'युष्मद् और अस्मद् शब्दों के मकार तक के स्थान में' इसका अधिकार समझना चाहिए ॥ ९१ ॥ द्विवचनविषयक युष्मद् और अस्मद् शब्दों के (मकारपर्यन्त अंश के) स्थान में क्रमशः युव और आव आदेश हो जाते हैं ॥ ९२ ॥ जस् विभक्ति के परे क्रमशः यूय और वय आदेश हो जाते हैं ॥९३॥ सु विभक्ति के परे क्रमशः त्व और अह आदेश हो जाते हैं ॥ ९४ ॥ ङे विभक्ति के परे क्रमशः तुभ्य और मह्य आदेश हो जाते हैं ॥ ९५ ॥ ङस् विभक्ति के परे क्रमशः तव और मम आदेश हो जाते हैं ॥ ९६ ॥ अन्य एकवचनवृत्ती युष्मद् और अस्मद् शब्दों के मपर्यन्त अंश के स्थान में क्रमशः त्व और म आदेश हो जाते हैं ॥ ९७ ॥ एकत्वविशिष्टार्थवृत्ती युष्मद् और अस्मद् शब्दों के स्थान में प्रत्यय और उत्तरपद के परे रहते भी क्रमशः त्व और म आदेश हो जाते हैं ॥ ९८ ॥ स्त्रीत्वविशिष्ट अर्थ में वृत्ती त्रि और चतुर् शब्दों के स्थान में विभक्ति के परे रहते क्रमशः तिसृ और चतसृ आदेश हो जाते हैं ॥ ९९ ॥ अजादि विभक्ति के परे तिसृ और चतसृ शब्दों के ऋकार के स्थान में रेफादेश हो जाता है ॥ १०० ॥ अजादि विभक्ति के परे रहते जरा शब्द के स्थान में विकल्प से जरस् आदेश हो जाता है ॥ १०१ ॥ विभक्ति के परे रहते त्यत् आदि सर्वनाम शब्दों के (अन्त्य अल् के) स्थान में अकारादेश हो जाता है ॥ १०२ ॥ विभक्ति के परे रहते किम् शब्द स्थान में 'क' आदेश हो जाता है ॥१०३॥ किन्तु तकारादि

१. आकारादेश और यकारादेश के निमित्तभूत विभक्तियों से भिन्न विभक्तियाँ शेष है।

१०५ क्वाति।	११२ अनाप्यकः।
१०६ तदोः सः सावनन्त्ययोः।	११३ हलि लोपः।
१०७ अदस औ सुलोपश्च।	११४ मृजेर्वृद्धिः।
१०८ इदमो मः।	११५ अचो ञ्णिति।
१०९ दश्च।	११६ अत उपधायाः।
११० यः सौ।	११७ तद्धितेष्वचामादेः।
१११ इदोऽय् पुंसि।	११८ किति च।

और हकारादि विभक्तियों के परे रहते किम् शब्द के स्थान में 'कु' आदेश हो जाता है ॥ १०४ ॥ अत्-(=ह्रस्वाकार-) स्वरूप विभक्ति के परे रहते किम् शब्द के स्थान में क्व आदेश हो जाता है ॥ १०५ ॥ त्यत् आदि सर्वनाम शब्दों के अन्त्य से भिन्न तकार और दकार के स्थान में सकारादेश हो जाता है ॥ १०६ ॥ 'सु' विभक्ति के परे अदस् शब्द के सकार के स्थान मे औकारादेश और 'सु' विभक्ति का लोप भी हो जाता है ॥ १०७ ॥ 'सु' विभक्ति के परे इदम् शब्द के अन्त्य मकार के स्थान मे मकारादेश हो जाता है ॥ १०८ ॥ (अन्य) विभक्तियों के परे रहते इदम् शब्द के दकार के स्थान मे मकारादेश हो जाता है ॥ १०९ ॥ इदम् शब्द के मकार के स्थान में 'सु' विभक्ति के परे रहते यकारादेश हो जाता है ॥ ११० ॥ पुंस्त्वविशिष्टार्थवृत्ती इदम् शब्द के इद् स्थान में 'सु' विभक्ति के परे रहते अय् आदेश हो जाता है ॥ १११ ॥ आप् (=टा—सुप) विभक्तियों के परे ककारप्रत्यय-रहित इदम् शब्द के इद् के स्थान में अन् आदेश हो जाता है ॥ ११२ ॥ किन्तु हलादि विभक्तियों के परे रहते ककाररहित इदम् शब्द के इद् का लोप हो जाता है ॥ ११३ ॥ अङ्ग-संज्ञक मृज् धातु के इक् (=ऋकार) के स्थान में धातुविहित प्रत्ययों के परे रहते वृद्धि हो जाती है ॥ ११४ ॥ ञित् और णित् प्रत्ययों के परे रहते अजन्त अङ्ग को भी वृद्धि हो जाती है ॥ ११५ ॥ ञित् और णित् प्रत्ययो के परे रहते अङ्ग-संज्ञक के उपधाभुत अत् के स्थान में भी वृद्धि हो जाती है ॥ ११६ ॥ तद्धित संज्ञक ञित् और णित् प्रत्ययों के परे रहते अङ्ग-संज्ञक शब्द के आद्य अच् के स्थान मे वृद्धि हो जाती है ॥ ११७ ॥ कित् तद्धित प्रत्यय के परे रहते भी अङ्ग-संज्ञक शब्द के आद्य अच् के स्थान में वृद्धि हो जाती है ॥ ११८ ॥

सप्तमाध्याय का द्वितीय पाद समाप्त।

तृतीयः पादः ।

१ देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात् ।
२ केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः ।
३ न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ।
४ द्वारादीनां च ।
५ न्यग्रोधस्य च केवलस्य ।
६ न कर्मव्यतिहारे ।
७ स्वागतादीनां च ।
८ श्वादेरिञि ।
९ पदान्तस्यान्यतरस्याम् ।
१० उत्तरपदस्य ।
११ अवयवादृतोः ।

सप्तमाध्याय का तृतीय पाद

तद्धितसंज्ञक ञित् , णित् और कित् प्रत्ययों के परे रहते देविका, शिंशपा, दित्यवाह, दीर्घसत्र और श्रेयस् शब्दों के आदि अच् के स्थान में वृद्धि के प्रसङ्ग मे (अर्थात् वृद्धि के बदले) आकारादेश हो जाता है ॥ १ ॥ उक्त प्रत्ययों के परे रहते केकय, मित्रयु और प्रलय शब्दों के यकारादि भागों के स्थान में इय आदेश हो जाता है ॥ २ ॥ उक्त प्रत्ययों के परे रहते यकार और वकार से परवर्त्ती आदि अच् के स्थान में प्राप्त वृद्धि नही होती, परन्तु यकार और वकार के पूर्व ऐच्—यकार के पूर्व एकार का और वकार के पूर्व औकार—का आगम हो जाता है ॥ ३ ॥ उक्त प्रत्ययों के परे रहते द्वार आदि शब्दों के यकार तथा वकार से पर विद्यमान आदि अच् के स्थान में भी वृद्धि नही होती किन्तु पूर्ववत् यकार-वकार के पूर्व ऐच् का आगम हो जाता है ॥ ४ ॥ केवल—समासाघटक—न्यग्रोध शब्द के यकारोत्तरवर्त्ती आदि अच् के स्थान में वृद्धि का अभाव किन्तु यकार के पूर्व ऐच् का आगम हो जाता है ॥ ५ ॥ परन्तु कर्मव्यतिहार में उक्त वृद्धि-प्रतिषेध तथा ऐच् का आगम नहीं होता ॥ ६ ॥ स्वागत आदि शब्दों में भी वृद्धि-प्रतिषेध तथा ऐजागम नही होता ॥ ७ ॥ जिनका आद्यावयव श्वन्, शब्द हो उन शब्दों के विषय में भी तद्धितसंज्ञक इञ् प्रत्यय के परे वृद्धि-प्रतिषेध तथा ऐजागम नहीं होता ॥ ८ ॥ किन्तु श्वन्-शब्दपूर्वपदक शब्द का उत्तरपद यदि 'पद' शब्द हो तो वृद्धि-प्रतिषेध तथा ऐजागम का निषेध विकल्प से ही होता है ॥९॥ 'हनस्तो चिण्णलोः' सूत्र तक 'उत्तरपदस्य' का अधिकार समझना चाहिए ॥ १० ॥ अवयववाचक शब्द अथवा ऋतुवाचक शब्द जिनका पूर्वपद हो उन उत्तरपदों के आदि अच् की तद्धितसंज्ञक ञित् , णित् और कित् प्रत्ययों

१२ सुसर्वार्धाज्जनपदस्य।	१९ हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च।
१३ दिशोऽमद्राणाम्।	२० अनुशतिकादीनां च।
१४ प्राचां ग्रामनगराणाम्।	२१ देवताद्वन्द्वे च।
१५ संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च	२२ नेन्द्रस्य परस्य।
१६ वर्षस्याभविष्यति।	२३ दीर्घाच्च वरुणस्य।
१७ परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः।	२४ प्राचां नगरान्ते।
१८ जे प्रोष्ठपदानाम्।	

के परे रहते वृद्धि हो जाती है ॥ ११ ॥ उक्त प्रत्ययों के परे सु, सर्व अथवा अर्ध शब्दों से पर विद्यमान जनपदवाचक उत्तरपदों के आदि अच् के स्थान में वृद्धि हो जाती है ॥ १२ ॥ दिग्वाचक-शब्द-पूर्व-पदक मद्रशब्द-भिन्न जनपद-वाचक उत्तरपदों के आदि अच् के स्थान में भी उक्त प्रत्ययों के परे वृद्धि हो जाती है ॥ १३ ॥ दिग्वाचक शब्द से परवर्ती प्राच्यदेशस्थ ग्राम अथवा नगर के वाचक उत्तरपदों के आदि अच् की भी उक्त प्रत्ययों के परे रहते वृद्धि हो जाती है ॥ १४ ॥ संख्यावाचक शब्द से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय सम्वत्सर शब्द एवं संख्यावाचक शब्दों के आदि अच् की भी उक्त प्रत्ययों के परे रहते वृद्धि हो जाती है ॥ १५ ॥ यदि उक्त प्रत्यय भविष्यदर्थक न हों तो उनके परे रहते संख्या-वाचक शब्द से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय वर्ष शब्द के भी आदि अच् की वृद्धि हो जाती है ॥ १६ ॥ संख्यावाचक शब्द से उत्तरवर्त्ती परिमाणार्थक-प्रत्ययान्त शाणशब्द-भिन्न उत्तरपद के आदि अच् की भी समुदाय का संज्ञा-शब्द के रूप में प्रयोग न होने पर वृद्धि हो जाती है ॥ १७ ॥ जातार्थक ञित्, णित् तथा कित् तद्धित प्रत्ययों के परे रहते प्रोष्ठपद शब्द के उत्तरपद—'पद' शब्द—के भी आदि अच् की वृद्धि हो जाती है ॥ १८ ॥ ञित्, णित् तथा तद्धित प्रत्ययों के परे अङ्ग-संज्ञक शब्द यदि हृत्-शब्दान्त, भग-शब्दान्त अथवा सिन्धु-शब्दान्त हो तो पूर्वपद तथा उत्तरपद दोनों के आदि अच् के स्थान में वृद्धि हो जाती है ॥१९॥ उक्त प्रत्ययों के परे अनुशतिक आदि शब्दों के भी पूर्व तथा उत्तर पदों के आदि अच् की वृद्धि हो जाती है ॥ २० ॥

उक्त प्रत्ययों के परे रहते देवताद्वन्द्व के भी उभय पदों के आदि अच् की वृद्धि हो जाती है ॥ २१ ॥ परन्तु देवताद्वन्द्व में उत्तरपद के रूप में प्रयुक्त इन्द्र शब्द के आदि अच् की वृद्धि नहीं होती ॥२२॥ देवताद्वन्द्व में दीर्घ स्वर से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय वरुण शब्द के भी आदि स्वर की वृद्धि नहीं होती ॥२३॥ पूर्वोक्त

२५ जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम् ।
२६ अर्धात् परिमाणस्य पर्वस्य तु वा ।
२७ नातः परस्य ।
२८ प्रवाहणस्य ढे ।
२९ तत्प्रत्ययस्य च ।
३० नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् ।
३१ यथातथयथापुरयोः पर्यायेण ।
३२ हनस्तोऽचिण्णलोः ।
३३ आतो युक्चिण्कृतोः ।
३४ नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः ।

तद्धित प्रत्ययों के परे रहते प्राच्यदेशवृत्ती नगर-शब्द से अन्त होने वाले अङ्ग के भी उभय पदों के आदि अच् की वृद्धि हो जाती है ॥ २४ ॥ जंगलशब्दान्त, धेनुशब्दान्त और वलजशब्दान्त अङ्गों के भी पूर्वपद के आदि अच् की नित्य और उत्तरपद के आदि अच् की वैकल्पिक वृद्धि हो जाती है ॥ २५ ॥ उक्त तद्धित प्रत्ययों के परे रहते अर्ध शब्द से परवर्त्ती परिमाणवाचक उत्तरपद के आदि अच् के स्थान में और विकल्प से पूर्वपद के आदि अच् के स्थान में भी वृद्धि हो जाती है ॥ २६ ॥ परन्तु यदि अर्ध शब्द से परवर्त्ती परिमाणवाचक उत्तरपद का आद्य अच् अत्-स्वरूप हो तो उसकी वृद्धि नहीं होती, पूर्वपद के आदि अच् की तो विकल्प से हो ही जाती है ॥ २७ ॥ ढक् प्रत्यय के परे रहते प्रवाहण शब्द के उत्तरपद (= वाहन) के आदि अच् की नित्य और पूर्वपद (= प्र) के आदि अच् की विकल्प से वृद्धि हो जाती है ॥ २८ ॥ ढक्-प्रत्ययान्त प्रवाहण (= प्रावाहणेय अथवा प्रवाहणेय) शब्द के भी उत्तरपद के आदि अच् की नित्य और पूर्वपद के आदि अच् की विकल्प से उक्त तद्धित प्रत्ययों के परे रहते वृद्धि हो जाती है ॥ २९ ॥ उक्त तद्धित प्रत्ययों के परे रहते नञ् से परवर्त्ती उत्तरपदस्थानीय शुचि, ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, कुशल और निपुण शब्दों के आदि अच् की नित्य और इनके पूर्वपद के आदि अच् की विकल्प से वृद्धि हो जाती है ॥३०॥ उक्त तद्धित प्रत्ययों के परे रहते नञ् से उत्तरवर्त्ती यथातथ तथा यथापुर शब्दों के उत्तरपद होने पर क्रमशः उत्तरपद और पूर्वपद के आदि अच् की वृद्धि—कदाचित् उत्तरपद के आदि अच् की ही वृद्धि और कदाचित् पूर्वपद के आदि अच् की ही वृद्धि—हो जाती है ॥ ३१ ॥ ञित् एवं चिण् और णल् से भिन्न णित् प्रत्ययों के परे हन धातु के स्थान में तकारान्तादेश हो जाता है ॥३२॥ चिण् एवं कृत्-संज्ञक ञित् तथा णित् प्रत्ययों के परे रहते आकारान्त अङ्ग को युक् का आगम हो जाता है ॥३३॥ आङ्-पूर्वक चम् धातु से भिन्न उदात्तोपदेश मकारान्त

३५ जनिवध्योश्च ।	४१ स्फायो वः ।
३६ अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ् णौ ।	४२ शदेरगतौ तः ।
३७ शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् ।	४३ रुहः पोऽन्यतरस्याम् ।
३८ वो विधूनने जुक् ।	४४ प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः ।
३९ लीलोर्नुग्लुकावन्यतरस्यां स्नेहविपातने ।	४५ न यासयोः ।
४० भियो हेतुभये षुक् ।	४६ उदीचामातःस्थाने यकपूर्वायाः ।
	४७ भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वा नञ्पूर्वा-

धातुओं की उपधा की चिण् एवं कृत्संज्ञक ञित् और णित् प्रत्ययों के परे रहते वृद्धि नही होती ॥ ३४ ॥ उक्त प्रत्ययों के परे रहते जन् और वध धातु की भी उपधा की वृद्धि नही होती ॥ ३५ ॥ णिच् प्रत्यय के परे रहते ऋ, ह्री, व्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी और आदन्त धातुओं को पुक् का आगम हो जाता है ॥३६॥ सिच् के परे रहते शो, छो, षो, ह्वेञ् , व्येञ् ,वेञ् और 'पा' धातुओं को युक् का आगम हो जाता है ॥ ३७ ॥ विधूनन (=कम्पन) अर्थ में वर्तमान 'वा' धातु को णिच् के परे रहते जुक् का आगम हो जाता ॥ ३८ ॥ स्नेह (=घृतादि पदार्थ) के विपातन (=पिघलाना) अर्थ में वर्त्तमान 'ली' और 'ला' धातुओं को णिच् के परे रहते क्रमशः नुक् और लुक् का आगम हो जाता है ॥ ३९ ॥ णिच् प्रत्यय के परे रहते 'भी' धातु को, यदि धात्वर्थभूत भय प्रयोजक कर्त्ता से जन्य हो तो, षुक् का आगम हो जाता है ॥ ४० ॥

णिच् प्रत्यय के परे रहते स्फाय् (=स्फायी) धातु को वकारान्तादेश हो जाता है ॥ ४१ ॥ गतिभिन्नार्थक शद् (=शद्लृ) धातु को णिच् प्रत्यय के परे रहते तकारान्तादेश हो जाता है ॥ ४२ ॥ णिच् प्रत्यय के परे रुह् धातुको विकल्प से पकार अन्तादेश हो जाता है ॥ ४३ ॥ जिस आप् (=टाप्) के बाद सुप् विभक्ति न हो उसके परे रहते प्रत्ययस्थ ककार से उत्तरवर्त्ती अत् के स्थान में इत् आदेश हो जाता है ॥ ४४ ॥ किन्तु यत् और तत् शब्दों के अकार को इकारादेश नही होता ॥ ४५ ॥ उदीच्य आचार्यों के मत में यकारपूर्वक तथा ककारपूर्वक आत् के स्थान में आए अत् को भी इकारादेश हो जाता है ॥ ४६ ॥ उदीच्य आचार्यों के मतानुसार भस्त्रा, एषा, अजा, ज्ञा, द्वा, स्वा शब्दों और (एषा एवं द्वा को छोड़ कर) भस्त्रा आदि शब्दों के नञ्-पूर्वक अभस्त्रा आदि स्वरूपों के भी आकारस्थानीय अत् को इकारादेश नही होता ॥ ४७ ॥

णामपि ।
४८ अभाषितपुंस्काच्च ।
४९ आदाचार्याणाम् ।
५० ठस्येकः ।
५१ इसुसुक्तान्तात् कः ।
५२ चजोः कु घिण्ण्यतोः ।
५३ न्यङ्क्वादीनां च ।
५४ हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ।
५५ अभ्यासाच्च ।
५६ हेरचङि ।
५७ सन्लिटोर्जेः ।
५८ विभाषा चेः ।
५९ न क्वादेः ।
६० अजिव्रज्योश्च ।
६१ भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोः ।
६२ प्रयाजानुयाजौ यज्ञाङ्गे ।

अभाषितपुंस्क शब्दों से विहित आकार के स्थान में विहित अत् को भी उदीच्य आचार्यों के मत में इकारादेश नही होता ॥ ४८ ॥ अन्य आचार्यों अथवा पाणिनि के[1] आचार्य के मत में तो अभाषितपुंस्क शब्दों के आत् के स्थान में विहित अत् को आत् आदेश ही होता है ॥ ४९ ॥ अङ्ग-संज्ञानिमित्तभूत 'ठ' प्रत्यय के स्थान में इक आदेश हो जाता है ॥ ५० ॥ इस्-शब्दान्त, उस्-शब्दान्त उक्-प्रत्याहारान्त एवम् तकारान्त अङ्गों से परवर्त्ती 'ठ' प्रत्यय के स्थान में 'क' आदेश हो जाता है ॥ ५१ ॥ घित् (=जिसके अवयवभूत घकार की इत्-संज्ञा हुई हो) और ण्यत् प्रत्ययों के परे रहते चकार और जकार के स्थान में कवर्गादेश हो जाता है ॥ ५२ ॥ न्यङ्कु आदि शब्दों की सिद्धि के लिए भी कवर्गादेश हो जाता है ॥ ५३ ॥ ञित् और णित् प्रत्ययों और नकार के परे रहते हन धातु के हकार के स्थान मे भी कवर्गादेश हो जाता है ॥ ५४ ॥ हन धातु के अभ्यास से परवर्त्ती हकार के स्थान में भी कवर्गादेश हो जाता है ॥ ५५ ॥ चङ् से भिन्न प्रत्ययों के परे 'हि' धातु के अभ्यासोत्तरवर्ती हकार के स्थान में भी कवर्गादेश हो जाता है ॥ ५६ ॥ सन् और लिट् प्रत्ययों के परे अङ्गसंज्ञक 'जि' धातु के अभ्यासोत्तरवर्त्ती जकार के स्थान में भी कवर्गादेश (=गकार) हो जाता है ॥ ५७ ॥ 'चि' धातु के अभ्यासोत्तरवर्त्ती चकार के स्थान में भी उक्त प्रत्ययों के परे विकल्प से कवर्गादेश हो जाता है ॥ ५८ ॥ किन्तु कवर्गादि धातुओं के चकार और जकार के स्थान में कवर्गादेश नहीं होता ॥५९ ॥ अज एवं व्रज धातुओं के जकार के स्थान में भी यकारादेश नही होता ॥६०॥ हस्त तथा रोग अर्थों में क्रमशः भुज एवं न्युब्ज शब्दों का निपातन किया जाता है ॥ ६१ ॥ यज्ञाङ्ग के वाचक प्रयाज एवं अनुयाज शब्दों का भी निपातन

१. देखिए—पदमञ्जरी ७।३।४९

६३ वञ्चेर्गतौ।
६४ ओक उचः के।
६५ ण्य आवश्यके।
६६ यजयाचरुचप्रवचर्चश्च।
६७ वचोऽशब्दसंज्ञायाम्।
६८ प्रयोज्यनियोज्यौ शक्यार्थे।
६९ भोज्यं भक्ष्ये।
७० घोर्लोपो लेटि वा।
७१ ओतः श्यनि।
७२ क्सस्याचि।
७३ लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये।
७४ शमामष्टानां दीर्घः श्यनि।
७५ ष्ठिवुक्लमुचमां शिति।
७६ क्रमः परस्मैपदेषु।
७७ इषुगमियमां छः।

कर्त्तव्य है॥ ६२॥ गत्यर्थक वञ्च् धातु के चकार के स्थान में भी कवर्गादेश नही होता॥ ६३॥ 'क' प्रत्यय के परे रहते उच् धातु से ओक (शब्द की निष्पत्ति के लिए कुत्व और गुण) का निपातन कर्त्तव्य है॥ ६४॥ आवश्यकता-प्रतिपादक 'ण्य' प्रत्यय के परे रहते कवर्गादेश नही होता॥ ६५॥ 'ण्य' प्रत्यय के परे यज, याच, रुच्, प्र+वच, ऋच धातुओं के भी चकार के स्थान में ककारादेश नहीं होता॥ ६६॥ शब्द-संज्ञा से भिन्न अर्थ वाले वच धातु के भी चकार के स्थान में ण्यत् प्रत्यय के परे रहते ककारादेश नहीं होता॥ ६७॥ शक्यार्थ में[1] प्रयोज्य एवं नियोज्य शब्दों का निपातन किया जाता है॥ ६८॥ भक्ष्य अर्थ में भोज्य शब्द का भी निपातन कर्त्तव्य है॥ ६९॥ लेट् लकार के परे रहते 'घु'-संज्ञक धातुओं (के आकार) का विकल्प से लोप हो जाता है॥ ७०॥ श्यन् प्रत्यय के परे ओकारान्त अङ्ग (के ओकार) का लोप हो जाता है॥ ७१॥ अजादि प्रत्ययों के परे क्स प्रत्यय (के अकार) का लोप हो जाता है॥ ७२॥ आत्मनेपद-परक दन्त्यवर्णादि प्रत्ययों के परे रहते दुह, दिह, लिह और गुह धातुओं से विहित क्स प्रत्यय (के अकार) का भी विकल्प से लोप हो जाता है॥ ७३॥ श्यन् प्रत्यय के परे रहते शम् आदि आठ[2] धातुओं को दीर्घ हो जाता है॥ ७४॥ शित् प्रत्ययों के परे रहते ष्ठिव्, क्लम् और आ+चम् धातुओं को भी दीर्घ हो जाता है ७५॥ परस्मैपदपरक शित् प्रत्यय के परे क्रम् धातु को भी दीर्घ हो जाता है॥ ७६॥ शित् प्रत्यय के परे रहते इष, गम् और यम धातु को छकारादेश हो

---

१. शक्यार्थकप्रत्ययान्त प्रयोज्यादि शब्दों का निपातन अभिप्रेत है।
२. शमु, तमु, दमु, श्रमु, क्षमु, भ्रमु, क्लमु और मदी धातु ग्राह्य हैं।

७८ पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्त्तिसर्त्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः ।
७९ ज्ञाजनोर्जा ।
८० प्वादीनां ह्रस्वः ।
८१ मीनातेर्निगमे ।
८२ मिदेर्गुणः ।
८३ जुसि च ।
८४ सार्वधातुकार्धधातुकयोः ।
८५ जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु ।
८६ पुगन्तलघूपधस्य च ।
८७ नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ।
८८ भूसुवोस्तिङि ।
८९ उतो वृद्धिर्लुकि हलि ।
९० ऊर्णोतेर्विभाषा ।
९१ गुणोऽपृक्ते ।
९२ तृणह इम् ।
९३ ब्रुव ईट् ।

जाता है ॥ ७७ ॥ शित् प्रत्यय के परे पा, घ्रा, ध्मा, स्था, म्ना, दाण्, दृश्, ऋ, सृ, शद् और सद् धातुओं को क्रमशः पिब, जिघ्र, धम, तिष्ठ, मन, यच्छ, पश्य, ऋच्छ, धौ, शीय और सीद आदेश हो जाते हैं ॥ ७८ ॥ शित् प्रत्यय के परे ज्ञा और जन् धातुओं को जा आदेश हो जाता है ॥ ७९ ॥ शित् प्रत्यय के परे रहते 'पू' आदि धातुओं को ह्रस्वादेश हो जाता है ॥ ८० ॥

निगमविषयक प्रयोग में (क्र्यादिगणपठित) मीञ् धातु को भी शित् प्रत्यय के परे ह्रस्वादेश हो जाता है ॥ ८१ ॥ शित् प्रत्यय के परे अङ्ग-संज्ञक मिद् धातु के इक् के स्थान में गुणादेश हो जाता है ॥ ८२ ॥ जुस् प्रत्यय के परे भी इगन्त अङ्ग को गुण हो जाता है ॥ ८३ ॥ सार्वधातुक एवम् आर्धधातुक प्रत्ययों के परे भी इगन्त अङ्ग को गुण हो जाता है ॥८४॥ वि (= क्विन्), चिण्, णल् और ङित् प्रत्ययों से भिन्न (सार्वधातुक और आर्धधातुक) प्रत्ययों के परे जागृ धातु को भी गुण हो जाता है ॥ ८५ ॥ सार्वधातुक और आर्धधातुक प्रत्ययों के परे रहते पुगन्त एवं लघूपध को भी गुण हो जाता है ॥ ८६ ॥ किन्तु अजादि-पित् सार्वधातुक प्रत्यय के परे अभ्यस्तसंज्ञक लघूपध अङ्ग को गुण नहीं होता ॥ ८७ ॥ तिङ्स्वरूप सार्वधातुक प्रत्ययों के परे भू एवं (अदादिक) सू धातु को भी गुण नहीं होता ॥ ८८ ॥ हलादि पित् सार्वधातुक के परे लुक् होने पर उदन्त अङ्ग की वृद्धि हो जाती है ॥ ८९ ॥ ऊर्णुञ् धातु की वृद्धि विकल्प से ही होती है ॥९०॥ किन्तु अपृक्त-संज्ञक हलादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय के परे ऊर्णुञ् धातु का गुण हो जाता है ॥ ९१ ॥ हलादि पित् सार्वधातुक के परे अङ्गसंज्ञक तृणह शब्द को इम् का आगम हो जाता है ॥ ९२ ॥ ब्रू धातु से परवर्त्ती हलादि पित् सार्वधातुक

९४ यङो वा।
९५ तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके।
९६ अस्तिसिचोऽपृक्ते।
९७ बहुलं छन्दसि।
९८ रुदश्च पञ्चभ्यः।
९९ अड् गार्ग्यगालवयोः।
१०० अदः सर्वेषाम्।
१०१ अतो दीर्घो यञि।
१०२ सुपि च।
१०३ बहुवचने झल्येत्।
१०४ ओसि च।
१०५ आङि चापः।
१०६ सम्बुद्धौ च।

को ईट् का आगम हो जाता है ॥ ९३ ॥ यङ् प्रत्यय से उत्तर विद्यमान हलादि पित् सार्वधातुक को भी विकल्प से ईट् का आगम हो जाता है ॥ ९४ ॥ 'तु', 'रु', स्तु, शम और अम धातुओं से परवर्ती हलादि[1] सार्वधातुक को भी विकल्प से ईट् का आगम हो जाता है॥ ९५ ॥ विद्यमान सिच् एवम् अस् धातु से परवर्ती अपृक्त[2]-संज्ञक हल् प्रत्यय को भी ईट् का आगम हो जाता है ॥ ९६ ॥ यह पूर्व-सूत्रोक्त ईडागम छन्दोविषय में भी बहुल रूप में होता है ॥ ९७ ॥ रुद् आदि पाँच (स्वप्, श्वस, अन और जक्ष) धातुओं से भी परवर्ती हलादि पित् अपृक्त सार्वधातुक को ईट् का आगम हो जाता है ॥ ९८ ॥ परन्तु गार्ग्य तथा गालव आचार्यों के मत में इन पाँच धातुओं से परवर्ती हलादि पित् अपृक्त सार्वधातुक को अट् का ही आगम होता है ॥९९॥ किन्तु (भक्षणार्थक) अद धातु से परवर्ती हलादि अपृक्त पित् सार्वधातुक को सब आचार्यों के मत में अडागम हो जाता है ॥ १९९ ॥

यञादि सार्वधातुक के परे रहते अदन्त अङ्ग का दीर्घ हो जाता है ॥१०१॥ यञादि सुप्-प्रत्यय के परे रहते भी अदन्त अङ्ग का दीर्घ हो जाता है ॥ १०२ ॥ बहुवचनस्थ झलादि सुप्-प्रत्यय के परे अदन्त अङ्ग को एकारादेश हो जाता है ॥ १०३ ॥ ओस् प्रत्यय के परे भी अदन्त अङ्ग को एकारादेश हो जाता है ॥ १०४ ॥ आङ् (= टा) तथा ओस् प्रत्ययों के परे आबन्त (= टाबन्त) अङ्ग को भी एकारादेश हो जाता है ॥ १०५ ॥ सम्बुद्धि-संज्ञक विभक्ति के परे भी

१. 'सार्वधातुके (७।३।९५) इति वर्त्तमाने पुनः सार्वधातुकग्रहणमपिदर्थम्'—काशिका।

२. 'अपृक्तस्य सार्वधातुकस्य' यह काशिकाकार का कथन अयुक्त है, क्योंकि तब तो 'देषिपि' इत्यादि में अतिव्याप्ति स्पष्ट है। साथ ही इस विशेषण का कोई व्यावर्त्य भी नहीं मिलता।

१०७ अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः ।
१०८ ह्रस्वस्य गुणः ।
१०९ जसि च ।
११० ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ।
१११ घेर्ङिति ।
११२ आण्नद्याः ।
११३ याडापः ।
११४ सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ।
११५ विभाषा द्वितीयातृतीयाभ्याम् ।
११६ ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ।
११७ इदुद्भ्याम् ।
११८ औत् ।
११९ अच्च घेः ।
१२० आङो नाऽस्त्रियाम् ।

आबन्त अङ्ग को एकारादेश हो जाता है ॥ १०६ ॥ सम्बुद्धिविभक्ति के परे अम्बार्थक तथा 'नदी'-संज्ञकान्त शब्दों को ह्रस्वादेश हो जाता है ॥ १०७ ॥ सम्बुद्धि-विभक्ति के परे रहते ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण हो जाता है ॥ १०८ ॥ जस् विभक्ति के परे भी ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण हो जाता है ॥ १०९ ॥ 'ङि' एवं सर्वनामस्थान-संज्ञक विभक्तियों के परे रहते ऋदन्त अङ्ग को भी गुणादेश हो जाता है ॥ ११० ॥ ङित् प्रत्ययों के परे 'घि'-संज्ञक अङ्ग को भी गुणादेश हो जाता है ॥ १११ ॥ 'नदी'-संज्ञकान्त अङ्ग से उत्तरवर्त्ती ङित् प्रत्ययों को आट् का आगम हो जाता है ॥ ११२ ॥ आबन्त (= टाबन्त) अङ्ग से उत्तरवर्त्ती ङित् प्रत्ययों को याट् का आगम हो जाता है ॥ ११३ ॥ सर्वनाम-संज्ञक आबन्त अङ्ग से उत्तरवर्त्ती ङित् प्रत्ययों को स्याट् का आगम भी हो जाता है और आबन्त अङ्ग को ह्रस्वादेश भी ॥ ११४ ॥ किन्तु द्वितीया और तृतीया शब्दों से परवर्त्ती ङित् प्रत्ययों को स्याडागम तथा आप् के स्थान में ह्रस्वादेश विकल्प से ही होता है ॥ ११५ ॥ नद्यन्त, आबन्त तथा नी-शब्दान्त अङ्गों से परवर्त्ती ङि विभक्ति को आम् आदेश हो जाता है ॥ ११६ ॥ इदन्त एवम् उदन्त 'नदी'-संज्ञक शब्दों से परवर्त्ती ङि विभक्ति को भी आम् आदेश हो जाता है ॥ ११७ ॥ 'नदी'-संज्ञक और 'घि'-संज्ञक से भिन्न इदन्त एवम् उदन्त अङ्गों से परवर्त्ती ङि विभक्ति के स्थान में औकारादेश हो जाता है ॥ ११८ ॥ 'घि' संज्ञक अङ्ग से उत्तरवर्त्ती ङि विभक्ति के स्थान में औकारादेश भी हो जाता है और 'घि'-संज्ञक शब्द को अत् आदेश भी ॥ ११९ ॥ 'घि'-संज्ञक शब्दों से परवर्त्ती आङ् (= टा) के स्थान में, स्त्रीलिङ्ग से भिन्न लिङ्गों में, ना आदेश हो जाता है ॥ १२० ॥

सप्तमाध्याय का तृतीय पाद समाप्त ।

चतुर्थः पादः ।

१ णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ।
२ नाग्लोपिशास्वृदिताम् ।
३ भ्राजभासभाषदीपजीवमील-
पीडामन्यतरस्याम् ।
४ लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य ।
५ तिष्ठतेरित् ।
६ जिघ्रतेर्वा ।
७ उर्ऋत् ।
८ नित्यं छन्दसि ।
९ दयतेर्दिगि लिटि ।
१० ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ।
११ ऋच्छत्यृताम् ।
१२ शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा ।
१३ केऽणः ।
१४ न कपि ।

सप्तमाध्याय का चतुर्थ पाद

जिसके बाद चङ् प्रत्यय हो उस णिच् प्रत्यय के परे रहते अङ्ग-संज्ञक की उपधा को ह्रस्वादेश हो जाता है ॥ १ ॥ किन्तु चङ्-परक णिच् प्रत्यय के परे रहते जिन अङ्ग-संज्ञकों के अक् का लोप हुआ हो उनकी, शास् धातु की और ऋदित् धातुओं की उपधा को ह्रस्वादेश नहीं होता ॥ २ ॥ चङ्-परक णिच् प्रत्यय के परे रहते अङ्ग-संज्ञक भ्राज्, भास्, भाष, दीप्, जीव, मील और पीड धातुओं की उपधा को विकल्प से ह्रस्वादेश नहीं होता ॥ ३ ॥ चङ्-परक णिच् के परे अङ्ग-संज्ञक (पानार्थक) पा धातु की उपधा का लोप भी हो जाता है और अभ्यास को ईकारादेश भी ॥ ४ ॥ चङ्-परक णिच् प्रत्यय के परे स्था धातु की उपधा को इकारादेश हो जाता है ॥ ५ ॥ किन्तु घ्रा धातु की उपधा को यह ह्रस्वादेश विकल्प से होता है ॥ ६ ॥ चङ्-परक णिच् प्रत्यय के परे रहते उपधाभूत ऋकार के स्थान में विकल्प से ऋत् (=ह्रस्व ऋकार) आदेश हो जाता है ॥ ७ ॥ किन्तु उक्त ऋत् आदेश छन्दोविषयक प्रयोग में नित्य ही होता है ॥ ८ ॥ लिट् लकार के परे रहते अङ्ग-संज्ञक दय धातु के स्थान में दिगि आदेश हो जाता है ॥९॥ लिट् के परे रहते संयोगादि ऋदन्त अङ्ग को गुणादेश हो जाता है ॥१०॥ लिट् लकार के परे रहते अङ्ग-संज्ञक ऋच्छ धातु, ऋ धातु और ऋदन्त धातुओं को भी गुणादेश हो जाता है ॥ ११ ॥ लिट् के परे अङ्ग-संज्ञक शॄ, दॄ और पॄ धातुओं को विकल्प से ह्रस्वादेश हो जाता है ॥ १२ ॥ 'क' प्रत्यय के परे रहते अण् (=अ, इ, उ) को भी ह्रस्वादेश हो जाता है ॥१३॥ किन्तु कप् प्रत्यय के परे

१५ आपोऽन्यतरस्याम् ।
१६ ऋदृशोऽङि गुणः ।
१७ अस्यतेस्थुक् ।
१८ श्वयतेरः ।
१९ पतः पुम् ।
२० वच उम् ।
२१ शीङः सार्वधातुके गुणः ।
२२ अयङ् यि क्ङिति ।
२३ उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः ।
२४ एतेर्लिङि ।
२५ अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ।
२६ च्वौ च ।
२७ रीङ् ऋतः ।
२८ रिङ्शयग्लिङ्क्षु ।
२९ गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः ।
३० यङि च ।

ह्रस्वादेश नहीं होता ॥ १४ ॥ कप् प्रत्यय के परे रहते आबन्त अङ्ग को विकल्प से ह्रस्वादेश हो जाता है ॥ १५ ॥ (च्लि >) अङ् प्रत्यय के परे रहते ऋवर्णान्त धातु और दृश् धातु को गुणादेश हो जाता है ॥ १६ ॥ (क्षेपणार्थक) असु धातु को अङ् प्रत्यय के परे रहते थुक् का आगम हो जाता है ॥ १७ ॥ अङ् प्रत्यय के परे श्वि (= टुओश्वि) धातु को अकारादेश हो जाता है ॥१८॥ पत् (= पत्लृ) धातु को अङ् प्रत्यय के परे रहते पुम् का आगम हो जाता है ॥ १९ ॥ वच् धातु को अङ् प्रत्यय के परे रहते उम् का आगम हो जाता है ॥ २० ॥

सार्वधातुक प्रत्ययों के परे रहते शीङ् धातु को गुणादेश हो जाता है ॥ २१ ॥ यकारादि कित् और यकारादि ङित् प्रत्ययों के परे रहते अङ्ग-संज्ञक शीङ् धातु के स्थान में अयङ् आदेश हो जाता है ॥ २२ ॥ यकारादि कित्-ङित् प्रत्ययों के परे रहते उपसर्गपूर्वक ऊह धातु को ह्रस्वादेश हो जाता है ॥ २३ ॥ उपसर्ग-पूर्वक इण् धातु (के अण्) को यकारादि कित् (और ङित्) लिङ् (= आशीर्लिङ्) के परे रहते ह्रस्वादेश हो जाता है । २४ ॥ कृत्संज्ञक-भिन्न और सार्वधातुक-संज्ञक-भिन्न यकारादि (कित्-ङित्) प्रत्ययों के परे अजन्त अङ्ग को दीर्घादेश हो जाता है ॥ २५ ॥ च्वि प्रत्यय के परे भी अजन्त अङ्ग को दीर्घादेश हो जाता है ॥ २६ ॥ कृत् तथा सार्वधातुक से भिन्न यकारादि प्रत्ययों और च्वि प्रत्यय के परे रहते भी ऋदन्त अङ्ग को रीङ् आदेश हो जाता है ॥ २७ ॥ 'श', यक् और यकारादि-आर्धधातुक लिङ् के परे रहते ऋदन्त अङ्ग को रिङ् आदेश हो जाता है ॥ २८ ॥ ऋ धातु एवं संयोगादि ऋदन्त धातुओं को यक् एवम् यकारादि आर्धधातुक लिङ् के परे रहते गुणादेश हो जाता है ॥ २९ ॥ यङ् प्रत्यय के परे रहते भी पूर्वसूत्रोक्त धातुओं को गुणादेश हो जाता है ॥ ३० ॥

३१ ई घ्राध्मोः।

३२ अस्य च्वौ।

३३ क्यचि च।

३४ अशनायोदन्यधनाया बुभुक्षा-पिपासागर्धेषु।

३५ न छन्दस्यपुत्रस्य।

३६ दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यति रिषण्यति।

३७ अश्वाघस्यात्।

३८ देवसुम्नयोर्यजुषि काठके।

३९ कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः।

४० द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति।

४१ शाच्छोरन्यतरस्याम्।

४२ दधातेर्हिः।

४३ जहातेश्च क्त्वि।

४४ विभाषा छन्दसि।

४५ सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीय च।

प्रत्यय के परे रहते घ्रा और ध्मा धातुओं को ईकारादेश हो जाता है ॥ ३१ ॥ च्वि प्रत्यय के परे अवर्ण को भी ईकारादश हो जाता है ॥ ३२ ॥ क्यच् प्रत्यय के परे रहते भी अवर्ण के स्थान में ईकारादेश हो जाता है ॥ ३३ ॥ बुभुक्षा, पिपासा और गर्ध (= लोभ) अर्थों में क्रमशः अशनाय, उदन्य और धनाय शब्दों का निपातन कर्त्तव्य है ॥ ३४ ॥ छन्दोविषयक प्रयोग में पुत्र शब्द को छोड़ कर अन्य अवर्णान्त अङ्ग क्यच् के परे रहते विहित पूर्वोक्त कार्यों के आश्रय नही होते ॥ ३५ ॥ छन्दोविषय में दुरस्युः, द्रविणस्युः, वृषण्यति और रिषण्यति शब्दों का निपातन कर्त्तव्य है ॥ ३६ ॥ छन्दोविषय में क्यच् प्रत्यय के परे अश्व और अघ शब्दों को आकारादेश हो जाता है ॥३७॥ यजुर्वेद की कठशाखा के अन्तर्गत देव और सुम्न शब्दों के स्थान में क्यच् प्रत्यय के परे रहते आकारादेश अवगन्तव्य है ॥ ३८ ॥ ऋग्वेदविषय में कव्य, ध्वर, पृतना शब्दों का क्यच् प्रत्यय के परे रहते (अन्त्य-) लोप हो जाता है ॥३९॥ तकारादि कित् प्रत्ययों के परे दो, षो, मा[1] और स्था धातुओं को इकारादश हो जाता है ॥ ४० ॥

शो और छो धातुओं को भी तकारादि कित् प्रत्ययों के परे रहते विकल्प से इकारादेश हो जाता है ॥ ४१ ॥ तकारादि कित् प्रत्ययों के परे धा धातु को 'हि' आदेश हो जाता है ॥ ४२ ॥ क्त्वा प्रत्यय के परे रहते ओहाक् धातु को भी 'हि' आदेश हो जाता है ॥ ४३ ॥ छन्दोविषयक प्रयोग में ओहाक् को 'हि' आदेश विकल्प से होता है ॥ ४४ ॥ सुधित, वसुधित, नेमधित, धिष्व और धिषीय

१. 'गामादाग्रहणेष्वविशेषः' इस परिभाषा के अनुसार मा, माङ् और मेङ् ये तीनों ही धातु ग्राह्य हैं।

४६ दो दद्धोः ।
४७ अच उपसर्गात्तः ।
४८ अपो भि ।
४९ सः स्यार्धधातुके ।
५० तासस्त्योर्लोपः ।
५१ रि च ।
५२ ह एति ।
५३ यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः ।
५४ सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस् ।
५५ आप्ज्ञप्यृधामीत् ।
५६ दम्भ इच्च ।
५७ मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा ।
५८ अत्र लोपोऽभ्यासस्य ।
५९ ह्रस्वः ।
६० हलादिः शेषः ।

इन छान्दस शब्दों का निपातन अवगन्तव्य है ।। ४५ ।। तकारादि कित् प्रत्ययों के परे 'घु'-संज्ञक दो धातु के स्थान में दद् आदेश हो जाता है ।। ४६ ।। तकारादि कित् प्रत्ययों के परे रहते अजन्त उपसर्ग से विशिष्ट दा धातु के अच् स्थान में 'त'[1] आदेश हो जाता है ।। ४७ ।। भकारादि प्रत्यय के परे अप् शब्द को भी तकारादेश हो जाता है ४८ ।। सकारादि आर्धधातुक के परे रहते 'स' को तकारादेश हो जाता है ।। ४९ ।। तकारादि प्रत्यय के परे रहते तास् प्रत्यय और अस् धातु के सकार का लोप हो जाता है ।। ५० ।। रेफादि प्रत्यय के परे रहते भी तास् प्रत्यय और अस् धातु के सकार का लोप हो जाता है ।। ५१ ।। किन्तु एत् (= एकार) के परे रहते तास् प्रत्यय और अस् धातु के सकार के स्थान में हकारादेश हो जाता है ।। ५२ ।। यकार और इवर्ण के परे रहते दीधीङ् और वेवीङ् धातुओं का (अन्त्य-) लोप हो जाता है ।। ५३ ।। सकारादि सन् प्रत्यय के परे मी, मा, 'घु'-संज्ञक धातु, रभ, लभ, शक , पत् और पद धातुओं के अच् के स्थान में इस् आदेश हो जाता है ।। ५४ ।। सकारादि सन् प्रत्यय के परे रहते आप, ज्ञप और ऋध धातुओं के अच् के स्थान मे ईकारादेश हो जाता है ।। ५५ ।। सकारादि सन् प्रत्यय के परे दम्भ् धातु के अच् के स्थान में इकारादेश भी हो जाता है और विकल्प से ईकारादेश भी ।। ५६ ।। सकारादि सन् प्रत्यय के परे रहते अकर्मक मुच् धातु (के इक्) को विकल्प से गुण हो जाता है ।।५७।। "सनि मीमा०" सूत्र से लेकर "मुचोऽकर्मकस्य०" सूत्र तक व्याप्त प्रकरण में अभ्यास-संज्ञक का लोप हो जाता है ।। ५८ ।। अभ्यास-संज्ञक को ह्रस्वादेश हो जाता है ।। ५९ ।। अभ्यास संज्ञक का आदि हल् अवशिष्ट रहता है और अन्य

१. इसमें अकार के उच्चारणार्थक होने से आदेश केवल 'त्' है ।

६१ शपूर्वाः खयः।

६२ कुहोश्चुः।

६३ न कवतेर्यङि।

६४ कृपेश्छन्दसि।

६५ दाधर्तिदर्धर्तिदर्धर्षिबोभूतुतेतिक्तेऽलर्ष्यापनीफणत्संसनिष्यदत्करिक्रत्कनिक्रदद्भरिभ्रद्दविध्वतोदविद्युतत्तरित्रतः सरीसृपतंवरीवृजन्मर्मृज्यागनीगन्तीति च।

६६ उरत्।

६७ द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्।

६८ व्यथो लिटि।

६९ दीर्घ इणः किति।

७० अत आदेः।

७१ तस्मान्नुड् द्विहलः।

७२ अश्नोतेश्च।

का लोप हो जाता है॥ ६०॥

अभ्यास-संज्ञक का वह खय् (= खय्-प्रत्याहारस्थवर्ण), जिसके पूर्व शर् प्रत्याहारस्थ वर्ण हो, अवशिष्ट रहता है और अन्य का लोप हो जाता है॥ ६१॥ अभ्यास-संज्ञक के कवर्ग और हकार के स्थान में चवर्गादेश हो जाता है॥ ६२॥ किन्तु यङ् प्रत्यय के परे रहते (भ्वादिगण-पठित) कुङ् धातु के अभ्यास के स्थान में चवर्गादेश नहीं होता ॥६३॥ छन्दोविषयक प्रयोग में यङ् प्रत्यय के परे रहते कृप धातु के भी अभ्यास के स्थान में चवर्गादेश नही होता॥ ६४॥ छन्दोविषय मे दाधर्ति, दर्धत्ति, दर्धर्षि, बोभूतु, तेतिक्ते, अलर्षि, आपनीफणत्, संसनिष्यदत्, करिक्रत्, कनिक्रदत्, भरिभ्रत्, दविध्वतः, दविद्युतत्, तरित्रतः, सरीसृपतम्, वरीवृजत्, मर्मृज्य और आगनीगन्ति इन शब्दों का निपातन अवगन्तव्य है॥ ६५॥ अभ्यासगत ऋवर्ण के स्थान में अत् (= अकार) आदेश हो जाता है॥ ६६॥ द्युत और स्वापि (= स्वप् + णिच्) धातुओं के अभ्यास को सम्प्रसारण हो जाता है॥ ६७॥ लिट् लकार के परे रहते व्यथ धातु के भी अभ्यास को सम्प्रसारण हो जाता है॥ ६८॥ किन्तु लिट् के परे रहते इण् धातु के अभ्यास को दीर्घादेश हो जाता है॥ ६९॥ अभ्यास के आदि अत् के स्थान में भी लिट् लकार के परे रहते दीर्घादेश हो जाता है॥ ७०॥ कृतदीर्घ अभ्यासस्थ अत् से परवर्ती हल्द्वयघटित[1] अङ्ग को नुट् का आगम हो जाता है॥ ७१॥ अश् (स्वादिगण पठित) धातु के भी दीर्घीभूत अभ्यास से उत्तरवर्ती अंश को नुट् का आगम हो

1. इसका तात्पर्यार्थ 'अनेकहल्घटित' है।

७३ भवतेरः ।
७४ ससूवेति निगमे ।
७५ निजां त्रयाणां गुणः श्लौ ।
७६ भृञामित् ।
७७ अर्तिपिपर्त्योश्च ।
७८ बहुलं छन्दसि ।
७९ सन्यतः ।
८० ओः पुयण्ज्यपरे ।
८१ स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा ।
८२ गुणो यङ्लुकोः ।
८३ दीर्घोऽकितः ।
८४ नीग्वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दाम् ।
८५ नुगतोऽनुनासिकान्तस्य ।

जाता है ॥ ७२ ॥ भू धातु के अभ्यास को लिट् के परे रहते अकारादेश हो जाता है ॥ ७३ ॥ लिट् के परे षूङ् धातु से निगमविषयक 'ससूव' पद का निपातन कर्त्तव्य है (= षूङ् धातु को लिट् लकार में परस्मैपद में वुक् का आगम और अभ्यास का अत्त्व निपातनीय है) ॥७४॥ श्लु होने पर निज् (= णिजिर्), विज् (विजिर्) और विष् (= विष्लृ) धातुओं के अभ्यास को गुणादेश हो जाता है ॥ ७५ ॥ भृञ्, माङ् और ओहाङ् धातुओं के अभ्यास को, श्लु होनेपर, इत् (= इकार) आदेश हो जाता है ॥७६॥ श्लु होनेपर ऋ और पृ धातुओं के अभ्यास को भी इकारादेश हो जाता है ॥७७॥ किन्तु श्लु होने पर भी छन्दोविषय में अभ्यास को इकारादेश बहुल रूप में ही होता है ॥ ७८ ॥ सन् प्रत्यय के परे रहते भी अदन्त अभ्यास को इकारादेश हो जाता है ॥ ७९ ॥ सन् प्रत्यय के परे अङ्गसंज्ञक के अभ्यासावयव उकार के स्थान मे, अवर्णपरक (= अवर्ण हो पर जिनके उन) पवर्ग, यण् और जकार के परे रहते, इकार हो जाता है ॥ ८० ॥ सन् प्रत्यय के परे रहते अङ्गसंज्ञक स्रु, श्रु, द्रु, प्रुङ्, प्लुङ् और च्युङ् धातुओं के अभ्यासगत उकार के स्थान में अवर्णपरक धात्वक्षर (= यण्)[१] के परे रहते विकल्प से इकारादेश हो जाता है ॥८१॥ यङ् के परे एवं यङ्लुक् में अभ्यासभूत इक् के स्थान में गुणादेश हो जाता है ॥ ८२ ॥ यङ् प्रत्यय और यङ्लुक् होने पर अकित् (= किद्भिन्न) के अभ्यास को दीर्घादेश हो जाता है ॥ ८३ ॥ यङ् प्रत्यय अथवा यङ्लुक् होने पर वञ्चु, स्रंसु, ध्वंसु, भ्रंशु, कस, पत, पद और स्कन्द् धातुओं के अभ्यास को नीक् का आगम हो जाता है ॥ ८४ ॥ यङ् अथवा

१. 'येन नाव्यवधानम् तेन व्यवहितेऽपि' इस न्याय के अनुसार सकारादि वर्णों के व्यवधान में भी इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है। इससे पूर्वसूत्र की अव्यवहित में ही प्रवृत्ति सिद्ध है।

८६ जपजभदहदशभञ्जपशां च।	९२ ऋतश्च।
८७ चरफलोश्च।	९३ सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे।
८८ उत्परस्यातः।	९४ दीर्घो लघोः।
८९ ति च।	९५ अत्स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशाम्
९० रीगृदुपधस्य च।	९६ विभाषा वेष्टिचेष्ट्योः।
९१ रुग्रिकौ च लुकि।	९७ ई च गणः।

यङ्लुक् होने पर अनुनासिकान्त अङ्ग का जो अदन्त अभ्यास उसे नुक् का आगम हो जाता है ८५ ॥ जप, जभ्, दह, दश (= दन्श), भञ्ज् और पश (सौत्र धातु) के अभ्यास को भी नुक् का आगम हो जाता है ॥ ८६ ॥ चर और फल धातुओं के अभ्यास को भी नुक् का आगम हो जाता है ॥ ८७ ॥ चर और फल धातुओं के अभ्यास से परवर्ती अवर्ण को यङ् या यङ्लुक् होने पर उकारादेश हो जाता है ॥ ८८ ॥ तकारादि प्रत्ययों के परे रहते भी चर और फल धातुओं के अभ्यासोत्तरवर्ती अवर्ण के स्थान में उकारादेश हो जाता है ॥८९॥ यङ् अथवा यङ्लुक् होने पर ऋकारोपध धातुओं के अभ्यास को रीक् का आगम हो जाता है ॥ ९० ॥ यङ्लुक् होने पर ऋकारोपध धातुओं के अभ्यास को विकल्प से रुक् और रिक् का आगम भी हो जाता है और रीक् का आगम भी ॥९१॥ यङ्लुक् होने पर ऋदन्त अङ्ग के अभ्यास को विकल्प से उक्त तीनों आगम हो जाते हैं ॥९२॥ जिसके बाद चङ् आया हो उस (= चङ्परक) णिच् के परे जो अङ्गसंज्ञक उसका लघुपरक (= जिसके बाद लघु स्वर हो उस) अभ्यास, यदि णिच् के परे अक् का लोप न हुआ हो तो, सन् प्रत्यय होने पर विहित कार्यों का आश्रय हो जाता है ॥ ९३ ॥ सन्वद्भाव के विषय में लघु अभ्यास को दीर्घादेश हो जाता है ॥ ९४ ॥ चङ्परक णिच् के परे रहते स्मृ, दृ, त्वर, प्रथ, म्रद, स्तृ, और स्पश धातुओं के अभ्यास को अत् (= अकार) आदेश हो जाता है ॥ ९५ ॥ चङ्परक णिच् के परे रहते वेष्ट और चेष्ट धातुओं के भी अभ्यास को विकल्प से अकारादेश हो जाता है ॥ ९६ ॥ चङ्परक णिच् के परे रहते गण धातु के अभ्यास को ईकारादेश भी हो जाता है और अकारादेश भी ॥ ९७ ॥

सप्तमाध्याय का चतुर्थ पाद समाप्त।

सप्तमाध्याय समाप्त।

अथाष्टमोऽध्यायः

प्रथमः पादः ।

१ सर्वस्य द्वे ।
२ तस्य परमाम्रेडितम् ।
३ अनुदात्तं च ।
४ नित्यवीप्सयोः ।
५ परेर्वर्जने ।
६ प्रसमुपोदः पादपूरणे ।
७ उपर्यध्यधसः सामीप्ये ।
८ वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूया-
सम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु ।
९ एकं बहुव्रीहिवत् ।
१० आबाधे च ।
११ कर्मधारयवदुत्तरेषु ।
१२ प्रकारे गुणवचनस्य ।
१३ अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतर-
स्याम् ।

अष्टमाध्याय का प्रथम पाद

अब से 'सर्वस्य' (= सबके स्थान में) और 'द्वे' (द्विर्वचन=द्वित्व हो जाता है) का अधिकार अवगन्तव्य है ॥१॥ द्विरुक्त शब्द के परवर्ती स्वरूप की संज्ञा आम्रेडित है ॥ २ ॥ आम्रेडित-संज्ञक शब्द अनुदात्त भी हो जाता है ॥ ३ ॥ नित्यता (= आभीक्ष्ण्य=क्रिया का पौनःपुन्य) तथा वीप्सा अर्थ में वर्त्तमान शब्दों का द्वित्व हो जाता है ॥ ४ ॥ वर्जनार्थवृत्ती परि शब्द का भी द्विर्वचन ज्ञातव्य है ॥ ५ ॥ प्र, सम्, उप, उत्—इन शब्दों का भी द्विर्वचन कर्त्तव्य है यदि द्विर्वचन से छन्दःपाद की पूर्त्ति होती हो ॥ ६ ॥ सामीप्य (= कालकृत अथवा देशकृत प्रत्यासत्ति) विवक्षित होने पर उपरि, अधि और अधः शब्द का भी द्विर्वचन करना चाहिए ॥ ७ ॥ यदि किसी वाक्य से असूया, संमति, कोप, कुत्सन अथवा भर्त्सन गम्यमान हो तो उस वाक्य के आदि में विद्यमान आमन्त्रित-संज्ञक शब्द का भी द्विर्वचन करना चाहिए ॥ ८ ॥ वीप्साविषय में कृतद्विर्वचन 'एक' शब्द बहुव्रीहिवत् कार्याश्रय हो जाता है ॥९॥ पीड़ा द्योत्य होने पर शब्दमात्र का द्विर्वचन तथा बहुव्रीहिवद्भाव अवगन्तव्य है ॥१०॥ इसके बाद विहित द्विर्वचन कर्मधारयवत् कार्याश्रय होता है ॥ ११ ॥ सादृश्य (= प्रकार) के द्योत्य होने पर गुणवचन शब्द का द्विर्वचन करना चाहिए ॥ १२ ॥ यदि अकृच्छ्र (= दुःखाभाव) द्योत्य हो तो प्रिय और सुख शब्दों का भी विकल्प से

१४ यथास्वे यथायथम्।
१५ द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु।
१६ पदस्य।
१७ पदात्।
१८ अनुदात्तं सर्वमपादादौ।
१९ आमन्त्रितस्य च।
२० युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावौ।
२१ बहुवचनस्य वस्नसौ।
२२ तेमयावेकवचनस्य।
२३ त्वामौ द्वितीयायाः।
२४ न चवाहाहैवयुक्ते।
२५ पश्यार्थैश्चानालोचने।

द्विर्वचन करना चाहिए ॥ १३ ॥ यथास्व (=स्वभावानुरूप और आत्मीयानुरूप) अर्थ में यथायथ शब्द का निपातन किया जाता है ॥ १४ ॥ रहस्य अर्थ एवं मर्यादावचन, व्युत्क्रमण, यज्ञपात्र के प्रयोग और अभिव्यक्ति विषयों में द्वन्द्व शब्द भी निपातनीय है ॥ १५ ॥ "अपदान्तस्य" इस अधिकार से पूर्व तक 'पदस्य' (=यथासम्भव 'पद'-संज्ञक' के अवयव एवं 'पद'-संज्ञक के स्थान में) का अधिकार अवगन्तव्य है ॥१६॥ 'कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ' सूत्र से पूर्व तक 'पदात्' (='पद' से परवर्त्ती) का अधिकार ज्ञातव्य है ॥ १७ ॥ अब से पादसमाप्तिपर्यन्त 'अनुदात्तम्', 'सर्वम्' और 'अपादादौ'[1] इन तीनों का अधिकार समझना चाहिए ॥ १८ ॥ पद से परवर्त्ती ऋक्पादादि में न रहने वाले आमन्त्रित संज्ञक सब पद अनुदात्त हो जाते हैं ॥ १९ ॥ षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्तियों से सम्बद्ध युष्मद् और अस्मद् शब्दों को क्रमशः वाम् और नौ आदेश और इनका अनुदात्तत्व भी हो जाता है ॥ २० ॥

किन्तु यदि उक्त विभक्तियों के बहुवचन से ये शब्द सम्बद्ध हों तो क्रमशः वस् और नस् आदेश हो जाते हैं ॥ २१ ॥ और षष्ठी एवं चतुर्थी के एकवचन से सम्बद्ध होने पर क्रमशः ते और मे आदेश हो जाते हैं ॥ २२ ॥ परन्तु द्वितीयैकवचन-सम्बद्ध होने पर क्रमशः त्वा और मा आदेश हो जाते हैं ॥ २३ ॥ यदि युष्मद् और अस्मद् शब्दों का योग च, वा, ह, अह अथवा एवं शब्द से हो तो वाम्, नौ आदि आदेश नहीं होते ॥ २४ ॥ चाक्षुषज्ञान-भिन्नदर्शनार्थक शब्दों के

१. यहाँ पाद के अर्थ ऋक्पाद और श्लोकपाद दोनों ही हैं।
२. एकवचन और बहुवचन मे अन्य आदेश विहित होने से ये आदेश द्विवचन में ही प्रतिफलित होते हैं। इन सूत्रों में "अनुदात्तं सर्वमपादादौ" इस की अनुवृत्ति भी होती ही है। अतः अर्थ में इन सब बातों का समावेश ज्ञातव्य है।

२६ सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा ।
२७ तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः ।
२८ तिङ्ङतिङः ।
२९ न लुट् ।
३० निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेच्चण्कच्चिद्यत्रयुक्तम् ।
३१ नह प्रत्यारम्भे ।
३२ सत्यं प्रश्ने ।
३३ अङ्गात् प्रातिलोम्ये ।
३४ हि च ।
३५ छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम् ।
३६ यावद्यथाभ्याम् ।
३७ पूजायां नानन्तरम् ।

साथ सम्बन्ध होने पर भी युष्मद् और अस्मद् शब्दों को पूर्वोक्त वाम्, नौ आदि आदेश नहीं होते ॥२५॥ जिस प्रथमान्त पद के पूर्व कोई शब्द विद्यमान हो उससे परवर्त्ती युष्मद् और अस्मद् शब्दों को (अन्वादेश में भी) वाम्, नौ आदि आदेश विकल्प से नहीं होते ॥ २६ ॥ तिङन्त पद से उत्तरवर्त्ती कुत्सनार्थवृत्ती और आभीक्ष्ण्यार्थवृत्ती गोत्र आदि शब्द अनुदात्त हो जाते हैं ॥ २७ ॥ तिङन्त भिन्न पद से परवर्ती तिङन्त पद भी अनुदात्त हो जाता है ॥ २८ ॥ किन्तु उक्त परिस्थिति में भी लुडन्त तिङन्त पद अनुदात्त नहीं होता ॥ २९ ॥ यत्, यदि, हन्त, कुवित्, नेत्, चेत्, चण्, कच्चित् और यत्र[1] इन निपातों में किसी से युक्त[2] तिङन्त पद भी अनुदात्त नहीं होता ॥ ३० ॥ प्रत्यारम्भ (= पुनरारम्भ) विषय में प्रयुज्यमान तिङन्त पद यदि 'न ह' इस निपातसमुदाय से युक्त हो तो भी अनुदात्त नही होता ॥ ३१ ॥ प्रश्नविषयक तिङन्त पद यदि 'सत्यम्' पद से युक्त हो तो भी अनुदात्त नही होता ॥ ३२ ॥ अनुकूलता गम्यमान होने पर 'अङ्ग' शब्द से युक्त तिङन्त पद भी अनुदात्त नही होता ॥ ३३ ॥ 'हि' इस निपात से युक्त तिङन्त पद भी अनुकूलता गम्यमान होने पर अनुदात्त नही होता ॥ ३४ ॥ छन्दोविषय में 'हि' से युक्त परस्पर-साकांक्ष अनेक तिङन्त भी अनुदात्त नही होते ॥ ३५ ॥ यावत् अथवा यथा शब्द से युक्त तिङन्त पद भी अनुदात्त नही होता ॥ ३६ ॥ किन्तु पूजाविषय में वर्तमान तिङन्त पद, यदि उससे योग रखने वाला यावत् अथवा यथा शब्द अनन्तर

१. इन निपातों के अर्थ को समझने के लिए निम्नलिखित पद्य द्रष्टव्य हैं :—

यद्यदार्थे च हेतौ च विचारे यदि-चेच्चणः ।
हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः ॥
कच्चित् प्रश्ने नेन्निषेधे प्रशंसायां कुवित् स्मृतम् ।
यत्राधारे निपातत्वं (यदादीनां विशेषणम्) ॥

२. युक्त=अर्थतः साक्षात्सम्बद्ध ।

३८ उपसर्गव्यपेतं च।
३९ तुपश्यपश्यताहैः पूजायाम्।
४० अहो च।
४१ शेषे विभाषा।
४२ पुरा च परीप्सायाम्।
४३ नन्वित्यनुज्ञैषणायाम्।
४४ किं क्रियाप्रश्नेऽनुपसर्गमप्रतिषिद्धम्।
४५ लोपे विभाषा।
४६ एहि मन्ये प्रहासे लृट्।
४७ जात्वपूर्वम्।
४८ किंवृत्तं च चिदुत्तरम्।
४९ आहो उताहो चानन्तरम्।

(= अव्यवहित पूर्ववृत्ती) हो तो अनुदात्त हो ही जाता है ॥ ३७ ॥ यदि यावत् अथवा यथा से युक्त पूजावृत्ती तिङन्त शब्द केवल उपसर्ग द्वारा व्यवहित हो तो भी वह अनुदात्त हो ही जाता है ॥ ३८ ॥ किन्तु पूजाविषय में तिङन्त पद यदि 'तु', पश्य, पश्यत अथवा 'अह' शब्द से युक्त हो तो वह अनुदात्त नहीं होता ॥ ३९ ॥ 'अहो' इस निपात से युक्त पूजाविषयक तिङन्त पद भी अनुदात्त नही होता ॥ ४० ॥

पूजा से भिन्न विषय में भी तिङन्त पद यदि अहो इस निपात से युक्त हो तो विकल्प से अनुदात्त नही होता ॥ ४१ ॥ परीक्षा (=शीघ्रता) के गमक पुरा शब्द से युक्त तिङन्त पद भी विकल्प से अनुदात्त नहीं होता ॥४२॥ अनुज्ञा के लिए की गई प्रार्थना के विषय में ननु शब्द से युक्त तिङन्त पद भी अनुदात्त नही होता ॥ ४३ ॥ क्रियाविषयक प्रश्न के लिए प्रयुक्त किम् शब्द से युक्त, निषेध का अविषय (= अप्रतिषिद्ध) और उपसर्गरहित तिङन्त पद भी अनुदात्त नही होता ॥ ४४ ॥ यदि किम् शब्द के प्रयोग के बिना भी प्रकरणादि की सहायता से क्रियाविषयक प्रश्न गम्यमान हो तो (प्रश्नविषयीभूत क्रिया के वाचक) उपसर्गरहित एवम् अप्रतिषिद्ध तिङन्त पद विकल्प से ही अनुदात्त नही होता ॥४५॥ यदि प्रकृष्ट हास गम्यमान हो तो 'एहि मन्ये' इस समुदाय से युक्त लृडन्त पद भी अनुदात्त नही होता ॥ ४६ ॥ जिसके पूर्व कोई शब्द न हो (= अपूर्व) उस 'जातु' (= कदाचित्) शब्द से युक्त तिङन्त पद भी अनुदात्त नही होता ॥ ४७ ॥ जिस अपूर्व किम्-शब्दप्रकृतिक पद अथवा डतरप्रत्ययान्त या डतमप्रत्ययान्त किम् शब्द (= कतर और कतम शब्द) से अव्यवहितोत्तर चित् शब्द का प्रयोग हुआ हो (जैसे—किञ्चित् , कतरश्चित् आदि) उससे युक्त तिङन्त पद भी अनुदात्त नही होता ॥ ४८ ॥ जिस अपूर्व आहो या उताहो शब्द और इससे

५० शेषे विभाषा ।
५१ गत्यर्थलोटा लृण्न चेत्कारकं-
सर्वान्यत् ।
५२ लोट् च ।
५३ विभाषितं सोपसर्गमनुत्तमम् ।
५४ हन्त च ।
५५ आम एकान्तरमामन्त्रित-
मनन्तिके ।
५६ यद्धितुपरं छन्दसि ।
५७ चनचिदिवगोत्रादितद्धिता-
म्रेडितेष्वगतेः ।
५८ चादिषु च ।

युक्त तिङन्त पद के बीच व्यवधान न हो वह तिङन्त पद भी अनुदात्त नही होता ॥ ४९ ॥ किन्तु यदि दोनों के बीच व्यवधान हो तो अनुदात्तत्वप्रतिषेध विकल्प से ही होता है ॥ ५० ॥ जिस कर्त्ता अथवा कर्म कारक का अभिधान गत्यर्थक धातु से विहित लोट् लकार करता हो उससे युक्त[1] लृट् लकार से निष्पन्न तिङन्त पद अनुदात्त नही होता है यदि वह लृट् लकार लोड्-वाच्य कर्त्ता अथवा कर्म से सर्वथा[2] भिन्न कर्त्ता या कर्म का अभिधायक न हो तो ॥५१॥ उक्त (५१ सूत्रोक्त) स्थिति में गत्यर्थक लोडन्त पद से युक्त अन्य लोडन्त पद भी अनुदात्त नही होता ॥५२॥ किन्तु यदि गत्यर्थक लोडन्त से युक्त अन्य लोडन्त पद उपसर्ग-विशिष्ट एवम् उत्तमपुरुषत्वरहित हो तो उक्त परिस्थिति में निर्दिष्ट अनुदात्तत्व-प्रतिषेध विकल्प से ही होता है ॥ ५३ ॥ 'हन्त' इस निपात से युक्त सोपसर्ग उत्तमपुरुषत्व-रहित लोडन्त पद भी विकल्प से ही अनुदात्त नही होता ॥ ५४ ॥ 'आम्' इस निपात से उत्तरवर्त्ती, एक पदान्तर से व्यवहित, अनन्तिक (=दूरवर्त्ती या जो न दूर हो और न समीप) आमन्त्रित-संज्ञकान्त (=आम्—एक अन्य पद—आमन्त्रितान्त पद) पद भी अनुदात्त नही होता ॥ ५५ ॥ जिसके उत्तर यत्, हि अथवा तु शब्द हो वह तिङन्तपद भी छन्दोविषय में अनुदात्त नही होता ॥ ५६ ॥ चन, चिद्, इव, गोत्र आदि शब्दों, तद्धित प्रत्यय और आम्रेडित-संज्ञक शब्द के परे रहते वह तिङन्त अनुदात्त नही होता जो गति-संज्ञक से उत्तरवर्त्ती (=विशिष्ट) न हो ॥५७॥ च आदि (वा, ह, अह और एव) निपातों के परे रहते भी गतिसंज्ञक से अविशिष्ट तिङन्त पद अनुदात्त नही होता

१. युक्त होने का अभिप्राय अर्थद्वारक निमित्तनैमित्तिकभाव सम्बन्ध है। उदाहरण मे लोडन्तपद का वाच्यार्थ निमित्त और लृडन्त पद का वाच्यार्थ नैमित्तिक है।
२. 'सर्वथा' इस विशेषण के कारण ही यदि लृडन्त लोडर्थमात्र का प्रतिपादक न होकर लोडर्थ एवं तदितर कर्त्ता अथवा कर्म का भी प्रतिपादक हो तो भी अनुदात्तत्वप्रतिषेध हो ही जाता है।

५६ चवायोगे प्रथमा ।
६० हेति क्षियायाम् ।
६१ अहेति विनियोगे च ।
६२ चाहलोप एवेत्यवधारणम् ।
६३ चादिलोपे विभाषा ।
६४ वै वावेति च च्छन्दसि ।
६५ एकान्याभ्यां समर्थाभ्याम् ।
६६ यद्वृत्तान्नित्यम् ।
६७ पूजनात्पूजितमनुदात्तम् ।

॥ ५८ ॥ च और वा से योग[1] होने पर दो तिङन्तों में प्रथमोच्चरित तिङन्त पद अनुदात्त नहीं होता ॥५९॥ यदि क्षिया (=धर्मोल्लंघन) गम्यमान हो तो 'ह' इस निपात से युक्त प्रथमोच्चरित तिङन्त पद भी अनुदात्त नहीं होता ॥ ६० ॥ यदि वाक्य से विनियोग (= अनेक प्रयोजन में नियोग = प्रेषणा = प्रेरणा) भी (और क्षिया भी) गम्यमान हो तो 'अह' इस निपात से युक्त प्रथम तिङन्त पद भी अनुदात्त नहीं होता ॥ ६१ ॥ च और अह का यदि प्रयोग के बिना भी अर्थ गम्यमान (=लोप[2]) हो और अवधारणार्थ में एव शब्द का प्रयोग हुआ हो तो च तथा अह के अर्थ से युक्त प्रथम तिङन्त पद भी अनुदात्त नहीं होता ॥ ६२ ॥

च आदि (वा, ह, अह और एव) का यदि लोप (= प्रयोग के बिना भी प्रकरणादि से उनके अर्थ का अवगम) हुआ हो तो भी प्रथमोच्चरित तिङन्त पद विकल्प से अनुदात्त नहीं होता ॥ ६३ ॥ छन्दोविषय में वै और वाव शब्द से युक्त होने पर भी प्रथमोच्चरित तिङन्त पद विकल्प से अनुदात्त नहीं होता ॥ ६४ ॥ 'अन्य'-शब्द अथवा 'अन्यशब्दसमानार्थक 'एक'[3] शब्द से युक्त होने पर भी छन्दोविषय में प्रथमोच्चरित तिङन्त पद विकल्प से अनुदात्त नहीं होता ॥ ६५ ॥ 'यत्'-शब्द से घटित पद से अव्यवहित अथवा व्यवहित उत्तर में विद्यमान तिङन्त पद भी अनुदात्त नहीं होता ॥ ६६ ॥ पूजनार्थक काष्ठ[4] आदि

१. अत एव 'च' और 'वा' के पूर्व अथवा पर में विद्यमान होने पर भी अनुदात्तत्व-प्रतिषेध हो जाता है ।

२. 'च' का अर्थ समुच्चय है और अह का केवल । जहाँ प्रथमोच्चरित और पश्चादुच्चरित तिङन्तों का कर्त्ता एक होता है वहाँ 'च' का और दोनों के भिन्न-भिन्न कर्त्ता होने पर अह का लोप होता है ।

३. एक शब्द के अर्थ इस कारिका मे संकलित हैं :—

एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा ।
साधारणे समानेऽल्पे संख्यायां च प्रयुज्यते ॥

४. सर्वं एते काष्ठादयोऽद्भुतपर्यायाः पूजनवचना भवन्ति । अद्भुतं योऽधीते स काष्ठाध्यायक इत्युच्यते (न्यास) ।

६८ सगतिरपि तिङ् ।
६९ कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ ।
७० गतिर्गतौ ।
७१ तिङि चोदात्तवति ।
७२ आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत् ।
७३ नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम् ।
७४ विभाषितं विशेषवचने ।

शब्दों से अव्यवहित उत्तर में विद्यमान पूजिततत्त्ववाचक शब्द अनुदात्त हो जाता है ॥६७॥ पूजनार्थक काष्ठ आदि शब्दों से अव्यवहितोत्तर मे विद्यमान पूजितार्थक तिङन्त पद, गति-संज्ञकसहित हो या तद्रहित, अनुदात्त हो जाता है ॥ ६८ ॥ गोत्रादि-शब्द-भिन्न कुत्सनार्थक, सुबन्त के परे रहते गति संज्ञकसहित अथवा तद्रहित तिङन्त पद भी अनुदात्त हो जाता है ॥ ६९ ॥ गति-संज्ञक के परे रहते पूर्ववर्त्ती गति-संज्ञक[1] शब्द भी अनुदात्त हो जाता है ॥ ७० ॥ उदात्तस्वरविशिष्ट तिङन्त पद के परे रहते भी पूर्ववर्त्ती गति-संज्ञक शब्द[2] अनुदात्त हो जाता है ॥ ७१ ॥ कार्याश्रयीभूत शब्द से पूर्ववर्त्ती जो आमन्त्रित-संज्ञक (तदन्त) शब्द अविद्यमानवत् हो जाता है—इसके रहने पर जो कार्य प्राप्त होता है वह नही होता और न रहने पर पर जो कार्य होना चाहिए वह हो जाता है ॥ ७२ ॥ किन्तु समानाधिकरण (=एकार्थविशेष्यक बोध का जनक) आमन्त्रितान्त के परे रहते पूर्ववर्त्ती सामान्यार्थक[3] आमन्त्रितान्त पद अविद्यमानवत् नहीं होता ॥ ७३ ॥ किन्तु विशेषार्थक समानाधिकरण आमन्त्रितान्त शब्द के परे रहते पूर्ववर्त्ती (बहुवचनान्त) आमन्त्रितान्त शब्द विकल्प से ही अविद्यमानवत् नही होता ॥ ७४ ॥

अष्टमाध्याय का प्रथम पाद समाप्त ।

---

१. इस प्रसङ्ग में—

अन्योऽन्यापेक्षया नास्ति गतित्वं यद्यपि द्वयोः ।
क्रियां प्रति गतित्वात्तु निहतोऽभिर्गतिर्गतौ ॥

यह श्लोक ध्यातव्य है ।

२. 'जिस धातु के प्रति 'प्र' आदि की गति-संज्ञा हुई हो उस धातु से घटित उदात्त-स्वरयुक्ततिङन्त पद के परे' ऐसा अर्थ विवक्षित है ।

३. सामान्य विशेष की अपेक्षा रखता है । अतः एक विशेषवाचक शब्द भी अन्य विशेषवाचक शब्द की अपेक्षा समान्यवचन हो सकता है ।

सूत्र की व्याख्या मे समानाधिकरण पद का कृत्य दिखलाते हुए 'देवदत्त' 'पिण्डत यज्ञदत्त' यह उल्लिखित है । इसमे देवदत्त शब्द को यौगिक मान कर ही व्याख्या की संगति हो सकती है, रूढ़ शब्द मानने पर नहीं ।

द्वितीयः पादः ।

१ पूर्वत्रासिद्धम् ।
२ नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति ।
३ न मु ने ।
४ उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य ।
५ एकादेश उदात्तेनोदात्तः ।
६ स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ ।
७ नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ।
८ न ङिसम्बुद्ध्योः ।
९ मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ।
१० झयः ।
११ संज्ञायाम् ।
१२ आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती ।

अष्टमाध्याय का द्वितीय पाद

प्रथमाध्याय से लेकर सवा सात अध्यायों (= सपादसप्ताध्यायी) तक वर्णित विधियों के कर्तव्य होने पर अष्टमाध्याय के अन्तिम तीन पादों (= त्रिपादी) में निर्दिष्ट विधियाँ और त्रिपादीनिर्दिष्ट विधियों में भी पूर्वनिर्दिष्ट विधियों के प्रति परनिर्दिष्ट विधियाँ असिद्ध हो जाती हैं ॥ १ ॥ सुब्विधि, स्वरविधि, संज्ञाविधि तुग्विधि और कृत्संज्ञक प्रत्ययों के कर्तव्य होने पर नकारलोप असिद्ध हो जाता है ॥ २ ॥ किन्तु ना आदेश यदि कर्तव्य हो तो 'मु' आदेश असिद्ध नही होता ॥३॥ उदात्तस्थानिक तथा स्वरितस्थानिक यण् से उत्तरवर्त्ती अनुदात्त स्वर स्वरित हो जाता है ॥ ४ ॥ उदात्त स्वर के साथ सम्पन्न अनुदात्तस्वर का एकादेश उदात्त हो जाता है ॥ ५ ॥ परवर्त्ती पदादि अनुदात्त स्वर का पूर्ववर्त्ती उदात्त स्वर के साथ सम्पन्न एकादेश भी विकल्प से स्वरित हो जाता है ॥ ६ ॥ प्रातिपदिक-संज्ञक पद के अन्त्य नकार का लोप हो जाता है ॥ ७ ॥ किन्तु ङि विभक्ति और सम्बुद्धि-संज्ञक विभक्ति के परे नकार का लोप नही होता ॥ ८ ॥ कन्तु यव आदि शब्दों से उत्तरवत्ती मतुप् के मकार को छोड़ कर अन्य मकारान्त, मकारोपध, अवर्णान्त और अवर्णोपध प्रातिपदिक से उत्तरवर्त्ती मतुप् के मकार के स्थान में मकारादेश हो जाता है ॥ ९ ॥ झयन्त से उत्तरवर्त्ती मतुप् के मकार को भी वकारादेश हो जाता है ॥ १० ॥ संज्ञाविषय में भी मतुप् के मकार को वकारादेश हो जाता है ॥ ११ ॥ संज्ञा-विषय में आसन्दीवत्, अष्ठीवत्, चक्रीवत्,

१३ उदन्वानुदधौ च ।
१४ राजन्वान् सौराज्ये ।
१५ छन्दसीरः ।
१६ अनो नुट् ।
१७ नाद्धस्य ।
१८ कृपो रो लः ।
१९ उपसर्गस्यायतौ ।
२० ग्रो यङि ।
२१ अचि विभाषा ।
२२ परेश्च घाङ्कयोः ।
२३ संयोगान्तस्य लोपः ।
२४ रात्सस्य ।
२५ धि च ।
२६ झलो झलि ।

कक्षीवत्, रुमण्वत् और चर्मण्वती इन शब्दों का निपातन[1] करना चाहिए ॥ १२ ॥ संज्ञाविषय में ही उदधि का वाचक मतुबन्त उदन्वान् शब्द निपातनीय है ॥१३॥ सौराज्य अर्थ में राजन्वान् शब्द भी निपातनीय है ॥ १४ ॥ छन्दोविषय में इवर्णान्त और रेफान्त शब्दों से उत्तरवर्ती मतुप् के मकार के स्थान में भी वकारादेश हो जाता है ॥ १५ ॥ छन्दोविषय में अन्-शब्दान्त शब्द से उत्तरवर्ती (= विहित) मतुप् को नुट् का आगम हो जाता है ॥१६॥ नकारान्त शब्द से उत्तरवर्ती 'घ'-संज्ञक प्रत्ययों को भी नुट् का आगम हो जाता है ॥ १७ ॥ कृप् धातु के अवयव ऋकार में श्रूयमाण रेफसदृश ध्वनि और ऋकारस्थानिक आदेश 'अर्' के अवयव रेफ के स्थान से क्रमशः लकारसदृश तथा लकार आदेश हो जाते हैं ॥ १८ ॥ अय धातु के परे रहते उपसर्ग के भी रेफ के स्थान में लकारादेश हो जाता है ॥ १९ ॥ यङ् प्रत्यय के परे रहते गॄ धातु के भी रेफ के स्थान में स्थान में लकारादेश हो जाता है ॥ २० ॥

अजादि प्रत्ययों के परे रहते भी गॄ धातु के रेफ के स्थान में विकल्प से लकारादेश हो जाता है ॥ २१ ॥ 'घ' शब्द और अङ्क शब्द के परे रहते 'परि' इस उपसर्ग के अवयवभूत रेफ के स्थान में भी लकारादेश हो जाता है ॥ २२ ॥ संयोगान्त पद का (अन्त्य-) लोप हो जाता है ॥ २३ ॥ संयोगान्तपदघटक रेफ से उत्तरवर्ती सकार का ही लोप होता है ॥ २४ ॥ धकारादि प्रत्ययों के परे रहते भी सकार का लोप हो जाता है ॥ २५ ॥ झल् प्रत्याहार से परवर्ती सकार

१. यह निपातन वकारादेश का नहीं, क्योंकि यह कार्य तो "संज्ञायाम्" सूत्र से ही सिद्ध है । अतः आसन, अस्थि, चक्र, कक्ष्या, लवण शब्दों के स्थान में मतुप् प्रत्यय के परे क्रमशः आसन्दी, अष्ठी, चक्री, कक्षी, रुमण् आदेश और चर्मन्-शब्दावयव नकार के लोप का अभाव ही प्रकृत निपातन के विषय हैं ।

२७ ह्रस्वादङ्गात्।
२८ इट ईटि।
२९ स्कोः संयोगाद्योरन्ते च।
३० चोः कुः।
३१ हो ढः।
३२ दादेर्धातोर्घः।
३३ वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्।
३४ नहो धः।
३५ आहस्थः।
३६ व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः।
३७ एकाचो बशो भष्झषन्तस्य स्ध्वोः।
३८ दधस्तथोश्च।

का झल् के परे रहते लोप हो जाता है॥ २६ ॥ ह्रस्वान्त अङ्ग से उत्तरवर्त्ती सकार का भी लोप हो जाता है ॥ २७ ॥ इट् से उत्तरवर्त्ती सकार का भी आगमस्वरूप ईट् के परे रहते लोप हो जाता है ॥ २८ ॥ पदान्त में तथा झल् प्रत्याहार के परे रहते जो संयोग[1] उसके आद्य सकार और ककार भी लोप हो जाता है ॥२९॥ झल् के परे रहते और पदान्तस्थ चवर्ग के स्थान में कवर्गादेश हो जाता है ॥ ३० ॥ झल् के परे रहते अथवा पदान्तस्थ हकार के स्थान मे ढकारादेश हो जाता है ।३१॥ किन्तु दकारादि धातुओं के घटक हकार के स्थान में झल् के परे रहते अथवा हकार के पदान्तस्थ होने पर घकारादेश हो जाता है ॥ ३२ ॥ द्रुह, मुह, ष्णुह और ष्णिह धातुओं के घटक हकार के स्थान में भी झल् के परे रहते या हकार के पदान्तस्थ होने पर विकल्प से घकारादेश हो जाता है ॥३३॥ नह धातु के हकार के स्थान में झल् के परे रहते अथवा हकार के पदान्तस्थ होने पर धकारादेश हो जाता है ॥ ३४ ॥ आह धातु (= ब्रू > आह) के हकार के स्थान मे झल् के परे रहते थकारादेश हो जाता है ॥ ३५ ॥ व्रश्च्, भ्रस्ज, सृज, मृज्, यज, राज् और भ्राज् धातुओं और छकारान्त तथा शकारान्त धातुओं के (अन्त्य अल् के) स्थान में झल् के परे रहते अथवा पदान्त होने पर षकारादेश हो जाता है ॥ ३६ ॥ धातु का जो झष्-प्रत्याहारान्त एकस्वरघटित अंश तदवयवभुत बश् प्रत्याहार के स्थान मे सकार अथवा 'ध्व' शब्द के परे रहते या उस बश् के पदान्तस्थ होने पर भष्-प्रत्याहारस्थवर्णस्वरूप आदेश (= भष्-भाव) हो[1] जाता है ॥ ३७ ॥ द्विर्वचन तथा तत्सम्बद्ध कार्य से विशिष्ट

१. इस प्रसङ्ग में 'यत्र बहूनां संयोगः तत्र प्रत्येकं द्वयोर्द्वयोः संयोगसंज्ञा' इस सिद्धान्त का स्मरण करना चाहिए।

१. यद्यपि बश्-प्रत्याहारस्थ डकार के उदाहरण में अप्राप्त होने से चार आदेशों का व्यवहारतः तीन स्थानियों के साथ यथासंख्यान्वय सम्भव नहीं प्रतीत होता,

३९ झलां जशोऽन्ते ।
४० झषस्तथोर्धोऽधः ।
४१ षढोः कः सि ।
४२ रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ।
४३ संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ।
४४ ल्वादिभ्यः ।
४५ ओदितश्च ।
४६ क्षियो दीर्घात् ।
४७ श्योऽस्पर्शे ।
४८ अञ्चोऽनपादाने ।

झषन्त धा (= दध) धातु के बश् के स्थान में तकार, थकार, सकार अथवा 'ध्व' शब्द के परे रहते भष् आदेश हो जाता है ॥ ३८ ॥ पदान्तस्थ झल् के स्थान में जश् आदेश हो जाता है ॥ ३९ ॥ धा धातु से भिन्न स्थलों में झष् प्रत्याहार से उत्तरवर्त्ती तकार और थकार के स्थान में धकारादेश हो जाता है ॥ ४० ॥

सकार के परे रहते षकार और ढकार के स्थान में ककारादेश हो जाता है ॥ ४१ ॥ रेफ और दकार से उत्तरवर्त्ती 'निष्ठा' प्रत्यय के तकार के स्थान में और उससे पूर्ववर्त्ती दकार के स्थान में भी नकारादेश हो जाता है ॥४२॥ संयोगादि, यण्विशिष्ट आकारान्त धातु से भी उत्तरवर्त्ती 'निष्ठा' प्रत्यय के तकार के स्थान में नकारादेश हो जाता है ॥ ४३ ॥ लूञ् आदि धातुओं (= लूञ् से वृ धातु तक) से भी उत्तरवर्त्ती 'निष्ठा' के तकार के स्थान में नकारादेश हो जाता है ॥ ४५ ॥ जिस धातु के ओकार को इत्संज्ञा हुई हो उससे भी उत्तरवर्त्ती (= विहित) 'निष्ठा' प्रत्यय के तकार को नकारादेश हो जाता है ॥ ४५ ॥ कृतदीर्घ क्षि (= क्षी) धातु से भी विहित 'निष्ठा' प्रत्यय के तकार को नकारादेश हो जाता है ॥४६॥ स्पर्श से भिन्न अर्थ मे प्रयुक्त श्यै धातु से भी विहित 'निष्ठा' प्रत्यय के तकार के स्थान में नकारादेश हो जाता है ॥ ४७ ॥ यदि अञ्च्-धातुनिमित्तक

तथापि प्रत्याहार-शास्त्रीय स्थिति में दोनों के चार-चार होने से यथासंख्यान्वय उपपन्न है । अतएव आदेश के रूप में ढकार कभी प्राप्त नहीं होता । देखिए—

(पूर्वपक्ष)

चत्वारो भष आदेशाः स्थानिनस्तु बशस्त्रयः ।
ढकारस्य तु न क्वापि सम्भवोऽस्ति कथञ्चन ॥

(उत्तरपक्ष)

शास्त्रप्रतीतिवेलायां संख्यासाम्यस्य सम्भवात् ।
प्रवर्त्तते यथासंख्यमनुष्ठाने स्वसम्भवः ॥

४९ दिवोऽविजिगीषायाम्।
५० निर्वाणोऽवाते।
५१ शुषः कः।
५२ पचो वः।
५३ क्षायो मः।
५४ प्रस्त्योऽन्यतरस्याम्।
५५ अनुपसर्गात्फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः।
५६ नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम्।
५७ न ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम्।
५८ वित्तो भोगप्रत्यययोः।
५९ भित्तं शकलम्।
६० ऋणमाधमर्ण्ये।

अपादान कारक का प्रयोग वाक्य में न हुआ हो तो इससे भी उत्तरवर्ती 'निष्ठा' प्रत्यय के तकार को नकारादेश हो जाता है ॥ ४८ ॥ विजिगीषा (=विजय की इच्छा) से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त दिव् धातु से भी उत्तरवर्ती 'निष्ठा' प्रत्यय के तकार के स्थान में नकारादेश हो जाता है ॥ ४९ ॥ यदि प्रत्ययान्त वात (=वायु) का अभिधायक न हो तो निस्पूर्वक 'वा' धातु से विहित 'निष्ठा' प्रत्यय के तकार को भी नकारादेश हो जाता है ॥ ५० ॥ शुष धातु से उत्तरवर्त्ती 'निष्ठा' प्रत्यय के तकार को ककारादेश हो जाता है ॥ ५१ ॥ पच धातु से विहित 'निष्ठा' प्रत्यय के तकार के स्थान में वकारादेश हो जाता है ॥ ५२ ॥ क्षै धातु से विहित 'निष्ठा'-तकार के स्थान में मकारादेश हो जाता है ॥ ५३ ॥ 'प्र'-पूर्वक स्त्यै धातु से भी विहित 'निष्ठा'-तकार को विकल्प से मकारादेश हो जाता है ॥ ५४ ॥ उपसर्ग-रहित फल्, क्षीव्, कृश और उत्[1]-पूर्वक लाघ धातुओं से क्रमशः क्त-प्रत्ययान्त फुल्ल, क्षीव, कृश और उल्लाघ शब्द निपातनीय हैं ॥ ५५ ॥ नुद, विद, उन्द्, त्रा, घ्रा और ह्री धातुओं से भी विहित 'निष्ठा'-प्रत्यय के तकार को विकल्प से नकारादेश हो जाता है ॥ ५६ ॥ किन्तु ध्या, ख्या,[2] पॄ, मूर्च्छा और मद् धातुओं से विहित 'निष्ठा'-तकार को नकारादेश नहीं होता ॥ ५७ ॥ भोग तथा प्रत्यय (=प्रतीति) अर्थों में विद् (=विद्लृ) धातु से भी विहित 'निष्ठा' प्रत्यय के तकार के स्थान में नकारादेश का अभाव निपातनीय है ॥ ५८ ॥ प्रत्ययान्त से शकल (=खण्ड) के अभिधानार्थ भिद् धातु से भी विहित क्त प्रत्यय के तकार को नकारादेश का अभाव निपातनीय है ॥ ५९ ॥ आधमर्ण्य अर्थ के अभिधानार्थ ऋ धातु से विहित क्त-प्रत्यय के तकार के स्थान में नकारादेश निपातनीय है ॥ ६० ॥

---

१. निर्देशबल से उपसर्गान्तररहित होना ही इस धातु के लिए अपेक्षित है।
२. प्रकथनार्थक ख्या और चक्षिङ् के स्थान में आदेशभूत ख्या—दोनों ही ग्राह्य हैं।

६१ नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्तसूर्तगूर्तानि छन्दसि ।
६२ क्विन्प्रत्ययस्य कुः ।
६३ नशेर्वा ।
६४ मो नो धातोः ।
६५ म्वोश्च ।
६६ ससजुषो रुः ।
६७ अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च ।
६८ अहन् ।
६९ रोऽसुपि ।
७० अम्नरूधरवरित्युभयथा छन्दसि
७१ भुवश्च महाव्याहृतेः ।
७२ वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः ।
७३ तिप्यनस्तेः ।
७४ सिपि धातो रुर्वा ।
७५ दश्च ।

छन्दोविषय में क्त-प्रत्ययान्त नसत्त, निषत्त, अनुत्त, प्रतूर्त, सूर्त और गूर्त शब्दों का निपातन कर्तव्य है ।। ६१ ॥ क्विन्-प्रत्ययान्त शब्दों (के अन्त्य अल्) को कुत्व हो जाता है ॥ ६२ ॥ (क्विप्-प्रत्ययान्त) 'नश्' शब्द के (अन्त्य अल् के) स्थान में भी विकल्प से कुत्व हो जाता है ॥ ६३ ॥ पदान्त-विषय में मकारान्त धातु (के मकार) को नकारादेश हो जाता है ॥ ६४ ॥ मकार अथवा वकार के परे रहते भी मकारान्त धातु को नकारादेश हो जाता है ६५ ॥ पदान्त सकार और सजूष् शब्द के षकार के स्थान में 'रु' आदेश हो जाता है ॥ ६६ ॥ सम्बोधनप्रथमैकवचनान्त अवयाः, श्वेतवाः, पुरोडाः (और उक्थशाः) शब्द निपातनीय हैं ॥ ६७ ॥ पदान्तविषय में अहन् शब्द के नकार को 'रु' आदेश हो जाता है ।। ६८ ॥ सुप् विभक्ति के परे न रहने पर अहन् शब्द के नकार को रेफादेश हो जाता है ।। ६९ ॥ छन्दोविषय में अम्नस्, ऊधस् और अवस् शब्दों के सकार के स्थान में 'रु'[1] आदेश भी देखा जाता है और रेफादेश भी ॥७०॥ महाव्याहृतिस्वरूप भुवस् शब्द के सकार के स्थान में भी छन्दोविषय में 'रु' और रेफ दोनों ही आदेश देखे जाते हैं ॥ ७१ ॥ पदान्तविषय मे सान्त, वस्वन्त, स्रंसु, ध्वंसु और अनडुह् शब्दों (के अन्त्य अल्) को दकारादेश हो जाता है ॥ ७२ ॥ अस् धातु के अवयव से भिन्न पदान्त सकार के स्थान में भी दकारादेश हो जाता है ।।७३॥ धात्ववयवभूत पदान्त सकार को भी विकल्प से 'रु' आदेश (और दकारादेश) हो जाता है ॥ ७४ ॥ धात्ववयवभूत पदान्त दकार

१. इसके परिणामस्वरूप 'अम्न एव' इस स्थल मे 'भोभगो०' सूत्र से यकारादेश तथा 'लोपः शाकल्यस्य' सूत्र से वकार का लोप उपपन्न है। रेफादेश पक्ष मे तो यकारादेश न होने से 'अम्नरेव' यही प्रयोग साधु है।

७६ र्वोरुपधाया दीर्घ इकः।
७७ हलि च।
७८ उपधायां च।
७९ न भकुर्छुराम्।
८० अदसोऽसेर्दादु दो मः।
८१ एत ईद्बहुवचने।
८२ वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः।
८३ प्रत्यभिवादेऽशूद्रे।
८४ दूराद्धूते च।
८५ हैहेप्रयोगे हैहयोः।
८६ गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम्।
८७ ओमभ्यादाने।
८८ ये यज्ञकर्मणि।

को भी विकल्प से 'र' आदेश हो जाता है ॥ ७५ ॥ रेफान्त और वकारान्त धातुओं के उपधाभूत इक् के स्थान में पदान्तविषय में दीर्घादेश हो जाता है ॥ ७६ ॥ हल् के परे रहते भी रेफान्त और वान्त धातुओं के उपधाभूत इक् के स्थान में दीर्घादेश हो जाता है ॥ ७७ ॥ जिनके उत्तर हल् हो उन धातूपधाभूत रेफ और वकार के परे रहते भी इक् के स्थान में दीर्घादेश हो जाता है ॥७८॥ किन्तु 'भ'-संज्ञक रेफान्त और वकारान्त धातुओं, कुर् और धुर् धातुओं की उपधाभूत इक् को दीर्घादेश नहीं होता ॥ ७९ ॥ सकारान्त-भिन्न अदस् शब्द के अवयवभूत दकार से परवर्ती वर्ण के स्थान में उकारादेश और उस पूर्ववर्ती दकार के स्थान में मकारादेश हो जाते हैं ॥ ८० ॥

किन्तु बहुवचन-विषय में सकारान्त-भिन्न अदस् शब्द के दकार से परवर्ती एकार के स्थान में ईकारादेश और पूर्ववर्ती दकार के स्थान में मकारादेश हो जाते हैं ॥ ८१ ॥ अब से इस पाद की समाप्ति तक 'वाक्यस्य टेः', 'प्लुतः' और 'उदात्तः' का अधिकार अवगन्तव्य है ॥ ८२ ॥ शूद्र-भिन्न-विषयक प्रत्यभिवादन-वाक्य के 'टि' से सम्बद्ध अच् प्लुत भी हो जाता है और उदात्त भी ॥ ८३ ॥ दूर से सम्बोधनार्थ प्रयुक्त वाक्य के 'टि' का सम्बन्धी अच् भी प्लुत एवं उदात्त हो जाता है ॥८४॥ किन्तु यदि दूर से सम्बोधनार्थ प्रयुक्त वाक्य में 'है' अथवा 'हे' शब्द का प्रयोग हुआ हो तो 'है' अथवा 'हे' का घटक स्वर ही प्लुत-उदात्त होता है ॥ ८५ ॥ दूर से सम्बोधनार्थ प्रयुक्त वाक्य के ऋत् से भिन्न अनन्त्य गुरु स्वर और कभी अन्त्य 'टि' भी, प्राच्यदेशीय आचार्यों के मत में, विकल्प से प्लुत-उदात्त हो जाते हैं ॥ ८६ ॥ अभ्यादान (= स्वाध्यायादि के प्रारम्भ) में वर्तमान ओम् शब्द (का घटक ओकार) प्लुत-उदात्त हो जाता है ॥ ८७ ॥ यज्ञ में प्रयोग करते समय ('ये यजामहे' के घटक) 'ये' शब्द का

८९ प्रणवष्टेः ।

९० याज्यान्तः ।

९१ ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानामादेः ।

९२ अग्नीत्प्रेषणे परस्य च ।

९३ विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः ।

९४ निगृह्यानुयोगे च ।

९५ आम्रेडितं भर्त्सने ।

९६ अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्क्षम् ।

९७ विचार्यमाणानाम् ।

९८ पूर्वं तु भाषायाम् ।

९९ प्रतिश्रवणे च ।

स्वर भी प्लुत-उदात्त हो जाता है ॥ ८८ ॥ यज्ञ में प्रयोग करते समय वाक्य के 'टि' के स्थान में प्रणव (= ओम्) आदेश हो जाता है ॥ ८९ ॥ 'याज्या'[1] नामक मन्त्रों का अन्त्य 'टि' भी प्लुत हो जाता है ॥ ९० ॥ यज्ञकर्म में प्रयुज्यमान ब्रूहि, प्रेष्य, श्रौषट्, वौषट् और आवह शब्दों के भी आदि स्वर प्लुत हो जाते हैं ॥ ९१ ॥

'अग्नीत्' नामक ऋत्विज् की प्रेषणा यदि हो तो पद का आदि स्वर भी प्लुत हो जाता है और उससे अव्यवहितपरवर्त्ती स्वर भी ॥ ९२ ॥ प्रश्न के उत्तर में कहे गए वाक्य का अवयव जो 'हि' उसका भी अवयवभूत स्वर (= 'टि') विकल्प से प्लुत हो जाता है ॥ ९३ ॥ निगृह्यानुयोगविषयक[2] वाक्य का 'टि' भी विकल्प से प्लुत हो जाता है ॥ ९४ ॥ भर्त्सना के लिए किए गए द्विर्वचन के परिणामस्वरूप आम्रेडित-संज्ञक शब्द का (और कदाचित् उसके पूर्व स्वरूप का भी) 'टि' प्लुत हो जाता है ॥ ९५ ॥ 'अङ्ग' इस शब्द से युक्त वाक्य के साथ आकाङ्क्षा रखनेवाला तिङन्त पद (भर्त्सना-विषय में) प्लुत हो जाता है ॥९६॥ जिसके बारे मे विचार कर्त्तव्य हो उस पदार्थ को विषय बनाने वाले वाक्य का भी 'टि' प्लुत हो जाता है ॥ ९७ ॥ किन्तु भाषा-विषयक प्रयोग में तो विचार्यमाण-विषयक वाक्य के पूर्ववर्त्ती[3] पद का 'टि' ही प्लुत होता है[4] ॥९८॥ प्रतिश्रवण (= अभ्युपगम, प्रतिज्ञान और श्रवणार्थ प्रवृत्त) में वर्तमान वाक्य का भी

---

१. द्रष्टव्य—मैत्रायणी संहिता—४।१०–१४
इस सन्दर्भ को याज्यानुवाक्या काण्ड कहा जाता है ।

२. किसी व्यक्ति के अभिमत का निराकरण (= निग्रह) कर उसे कोशने या उसका उपहास करने के लिए उससे उसके निराकृत मन्तव्य को पुनः प्रकट करने के लिए कहना निगृह्यानुयोग है ।

३. यहाँ पूर्वत्व प्रयोगापेक्ष है ।

४. इस नियमसूत्र से यह सिद्ध है कि 'विचार्यमाणानाम्' सूत्र छन्दोविषयक है ।

१०० अनुदात्तं प्रश्नान्ताभि-
पूजितयोः।
१०१ चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने।
१०२ उपरि स्विदासीदिति च।
१०३ स्वरितमाम्रेडितेऽसूयासम्मति-
कोपकुत्सनेषु।
१०४ क्षियाशीःप्रैषेषु तिङाकाङ्क्षम्।
१०५ अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः।
१०६ प्लुतावैच इदुतौ।
१०७ एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते
पूर्वस्यार्धस्यादुत्तरस्येदुतौ।
१०८ तयोर्य्वावचि संहितायाम्।

'टि' प्लुत हो जाता है ॥९९॥ किन्तु प्रश्नवाक्य के अन्त में प्रयुक्त पद (=प्रश्नान्त) तथा अभिपूजितार्थक वाक्य का 'टि' प्लुत-अनुदात्त[1] हो जाता है ॥ १०० ॥

उपमार्थ में प्रयुज्यमान 'चित्' शब्द से घटित वाक्य का भी 'टि' प्लुत-अनुदात्त हो जाता है ॥ १०१ ॥ 'उपरिस्विदासीत्' इस वाक्यका भी 'टि' प्लुत-अनुदात्त हो जाता है ॥ १०२ ॥ वाक्य से यदि असूया, सन्मति, कोप अथवा कुत्सा गम्यमान हो तो आम्रेडित-संज्ञक शब्द के परे रहते पूर्वस्वरूप का 'टि' प्लुत-स्वरित हो जाता है ॥ १०३ ॥ क्षिया (=आचारोल्लङ्घन), आशीः (= इष्टाशंसन) अथवा प्रैष (=शाब्द-प्रेरणा) यदि वाक्य से गम्यमान हो (तिङन्तान्तर-) साकाङ्क्ष तिङन्त पद का भी 'टि' स्वरित-प्लुत हो जाता है ॥ १०४ ॥ वाक्य से प्रश्न अथवा आख्यान यदि गम्यमान हो तो वाक्यघटक अन्त्यभिन्न पद (और अन्त्य पद) का भी 'टि' स्वरित[2]-प्लुत हो जाता है ॥ १०५ ॥ 'गुरोरनृतोनन्त्यस्य०' सूत्र से विहित दूराह्वाननिमित्तक ऐच् का प्लुतत्व प्राप्त होने पर ऐच् के अवयव (यथासम्भव) ऐकार और औकार भी प्लुत हो जाते हैं[3] ॥ १०६ ॥ दूराह्वान से भिन्न प्रसङ्ग मे प्रगृह्यसंज्ञकेतर एच् का प्लुतत्व यदि प्राप्त हो तो वहाँ ऐच् के पूर्वार्ध के स्थान में आकार और उत्तरार्ध के स्थान में (यथासम्भव) इत् और उत् आदेश हो जाते हैं ॥ १०७ ॥ संहिता-विषय में पूर्वसूत्रविहित इत् और उत् के स्थान मे अच् के परे रहते क्रमशः यकार और वकार आदेश हो जाते हैं ॥ १०८ ॥

अष्टमाध्याय का द्वितीय पाद समाप्त।

---

१. इसके पूर्व सूत्र तक 'उदात्तः' की अनुवृत्ति है। अतः वृत्ति मे उल्लिखित न होने पर भी यह विषय ध्यातव्य है।

२. 'अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः' इस सूत्र के प्रामाण्य के आधार पर प्रश्नप्रतिपादक वाक्य के अन्त्य पद का 'टि' पाक्षिक अनुदात्त-प्लुत भी हो जाता है।

३. इस प्रकार इस एच् मे प्रथमावयव अवर्ण की एक मात्रा और उत्तरावयवभूत प्लुत

तृतीयः पादः ।

१ मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि ।
२ अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा ।
३ आतोऽटि नित्यम् ।
४ अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः ।
५ समः सुटि ।
६ पुमः खय्यम्परे ।
७ नश्छव्यप्रशान् ।
८ उभयथर्क्षु ।

अष्टमाध्याय का तृतीय पाद

मतुप्-प्रत्ययान्त और वसु-प्रत्ययान्त पदों को सम्बुद्धि-संज्ञक विभक्ति के परे रहते छन्दोविषय में 'रु' आदेश हो जाता है ॥ १ ॥ इस प्रकरण में जिसे 'रु' आदेश का विधान किया गया हो उससे पूर्ववर्त्ती वर्ण विकल्प से अनुनासिक हो जाता है ॥ २ ॥ अट् के परे रहते 'रु' से पूर्ववर्त्ती आकार का तो अनुनासिकत्व नित्य ही होता है ॥ ३ ॥ 'रु'-आदेशप्रयुक्त अनुनासिकत्व के अभाव में 'रु' से पूर्ववर्त्ती वर्ण (= स्वर) के बाद (स्वर के उत्तरावयव रूप मे) अनुस्वार का आगम हो जाता है ॥ ४ ॥ सुट् के परे रहते 'सम्' उपसर्ग को 'रु' आदेश हो जाता है ॥ ५ ॥ जिस खय् प्रत्याहार के उत्तर अम् प्रत्याहार[1] हो उस खय् के परे रहते पुम् शब्द को भी 'रु' आदेश हो जाता है ॥ ६ ॥ जिसके बाद अम् प्रत्याहार हो उस छव् प्रत्याहार के परे रहते प्रशान्-शब्द-भिन्न नकारान्त पद को भी 'रु' आदेश हो जाता है ॥ ७ ॥ किन्तु अम्-परक छव् प्रत्याहार के परे रहते भी ऋग्विषयक प्रयोग में नकारान्त पद के स्थान में दोनों देखे जाते हैं—

इकार अथवा उकार की तीन मात्राओं के सम्मिलित होने से समुदाय मे चार मात्राएँ हो जाती हैं—यह महाभाष्यकार का कथन है। इसके मूल मे एकारादि के प्रथमार्ध के रूप मे अकार और उत्तरार्ध के रूप यथासम्भव इकार या उकार की मान्यता (= समप्रविभाग-पक्ष) है। एकारादि मे अवर्ण की केवल आधी मात्रा और इकारादि की डेढ़ मात्राएं हैं—इस सिद्धान्त के अनुसार तो साढ़े तीन मात्राएँ ही प्रकृतसूत्रविहित प्लुतत्व से विशिष्ट एच् में होंगी। किन्तु अग्रिम सूत्र मे 'पूर्वस्यार्धस्वाद' इस सूत्रकारोक्ति से समप्रविभाग पक्ष का ही समर्थन होता है।

१. प्रत्याहार का तात्पर्य-विषय प्रत्याहारघटक वर्णविशेष है।

९ दीर्घादटि समानपादे।
१० नॄन्पे।
११ स्वतवान्पायौ।
१२ कानाम्रेडिते।
१३ ढो ढे लोपः।
१४ रो रि।
१५ खरवसानयोर्विसर्जनीयः।
१६ रोः सुपि।
१७ भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि।

कदाचित् 'रु' आदेश भी और कदाचित् नकार भी ॥ ८ ॥ दीर्घ स्वर से उत्तरवर्त्ती पदान्त नकार के स्थान मे भी अट् प्रत्याहार के परे रहते (विकल्प से) 'रु' आदेश हो जाता है यदि निमित्त और निमित्ती (= कार्य) समान[1] (= एक) ऋक्पाद में स्थित हों ॥ ९ ॥ 'नॄन्' इस पद (के भी अन्त्य नकार) के स्थान मे पकार[2] के परे रहते (विकल्प से) 'रु' आदेश हो जाता है ॥ १० ॥ पायु शब्द के परे रहते स्वतवान् शब्द के भी (नकार के) स्थान मे 'रु' आदेश हो जाता है ॥ ११ ॥ आम्रेडित के परे रहते पूर्ववर्त्ती 'कान्' पद के भी (नकार के) स्थान मे 'रु' आदेश हो जाता है ॥ १२ ॥ ढकार[3] के परे रहते पूर्व रेफ[4] का लोप हो जाता है ॥ १४ ॥ खर् प्रत्याहार के परे रहते या अवसान मे विद्यमान पदान्त रेफ के स्थान में विसर्ग हो जाता है ॥ १५ ॥ सुप् (सप्तमीबहुवचनविभक्ति[5]) के परे रहते भी 'रु' के रेफ के स्थान में विसर्ग हो जाता है ॥ १६ ॥ भोस्-पूर्वक, भगोस्-पूर्वक अघोस्-पूर्वक और अवर्ण-पूर्वक 'रु' के रेफ के स्थान में अश् प्रत्याहार के परे रहते यकारादेश हो जाता है

१. एक शब्द को छोड़ कर समान शब्द के प्रयोग से कदाचित् निमित्त और निमित्ती के भिन्न-भिन्न पाद मे वर्त्तमान होने पर भी 'रु' आदेश सिद्ध हो जाता है।
२. निमित्तत्व व्यञ्जनमात्र 'प्' मे है, सूत्रनिर्दिष्ट अकार उच्चारणार्थ है। अत एव 'प्रपथे' आदि के उत्तरपद होने पर भी 'नॄन्' के नकार का रुत्व उपपन्न है।
३. निमित्तता व्यञ्जनमात्र 'ढ्' मे है, स्वरविशिष्ट मे नहीं। स्वर तो केवल उच्चारणार्थ निर्दिष्ट है। अत एव लीढ्वा, लेढि इत्यादि प्रयोगों मे भी ढलोप उपपन्न है।
४. सूत्र मे 'रोः+रि' और 'रः+रि' दोनो ही प्रकार से विच्छेद सम्भव है। किन्तु द्वितीय विच्छेद ही इष्ट है, अन्यथा 'नीरक्तम्' आदि प्रयोग उपपन्न नहीं होंगे। वर्णग्रहण मे 'निरनुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य (ग्रहणम्)' इस परिभाषा की प्रवृत्ति न होने से द्वितीय पक्ष मानने पर 'रु' के रेफ का भी ग्रहण हो जाता है। अतः एव 'अग्नीरथः' आदि प्रयोग भी सिद्ध हो जाते हैं।
५. यह विषय व्याख्यानमूलक है।

१८ व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य।
१९ लोपः शाकल्यस्य।
२० ओतो गार्ग्यस्य।
२१ उञि च पदे।
२२ हलि सर्वेषाम्।
२३ मोऽनुस्वारः।
२४ नश्चापदान्तस्य झलि।
२५ मो राजि समः क्वौ।
२६ हे मपरे वा।
२७ नपरे नः।
२८ ङ्णोः कुक्टुक् शरि।

॥ १७ ॥ भोस्-पूर्वक, भगोस्-पूर्वक, अघोस्-पूर्वक और अवर्ण-पूर्वक पदान्त वकार और यकार के स्थान में अश् प्रत्याहार के परे रहते शाकटायन के मत में लघुप्रत्यत्नतर[1] वकार और यकार आदेश हो जाते हैं ॥ १८ ॥ अवर्ण-पूर्वक पदान्त वकार और यकार का अश् प्रत्याहार के परे रहते शाकल्याचार्य के मत मे लोप हो जाता है ॥ १९ ॥ ओकारोत्तरवर्ती यकार का भी अश् के परे रहते गार्ग्य के मतानुसार लोप हो जाता है ॥ २० ॥

पद-संज्ञक[2] उञ् के परे रहते भी अवर्ण-पूर्वक पदान्त यकार-वकार का लोप हो जाता है ॥ २१ ॥ भोस्-आदि-पूर्वक यकार का, चाहे वह लघुप्रयत्नतर हो या अलघुप्रयत्नतर, हल् के परे रहते सभी आचार्यों के मतानुसार लोप हो जाता है ॥ २२ ॥ मकारान्त पद (के मकार) को हल् के परे रहते अनुस्वार हो जाता है ॥ २३ ॥ झल् के परे रहते तो पदान्तभिन्न मकार और नकार को भी अनुस्वार हो जाता है ॥ २४ ॥ क्विप्प्रत्ययान्त राज् धातु के परे रहते 'सम्' के मकार के स्थान मकारादेश ही हो जाता है ॥ २५ ॥ मकार जिसके पर हो उस हकार के परे रहते (पदान्त) मकार के स्थान में मकारादेश ही विकल्प से हो जाता है ॥ २६ ॥ किन्तु नकार-परक हकार के परे रहते मकार के स्थान में विकल्प से नकारादेश भी हो जाता है ॥ २७ ॥ पदान्त ङकार और णकार को शर् प्रत्याहार के परे रहते विकल्प से क्रमानुसार कुक् (= क्)

१. जिसके उच्चारण में तात्वादि उच्चारणस्थान और जिह्वा के अग्र, उपाग्र, मध्य और मूल ये करण शिथिल हो जाते हैं वही लघुप्रयत्न वर्ण है। 'अतिशयेन लघुप्रयत्नः = लघुप्रयत्नतरः।'

२. 'लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्' इस परिभाषा के कारण प्रतिपदोक्त 'उञ्' इस निपात का ही ग्रहण हो सकता है, 'वेञ्' धातु के स्थान मे सम्प्रसारण से सम्पन्न उञ् का नहीं। एवञ्च 'पदे' इस निर्देश के विना भी 'तन्त्र उतम्' और 'तन्त्र युतम्' इन प्रयोगों में इस सूत्र से नित्यलोप की सम्भावना निरस्त हो

२९ डः सि धुट् ।	३४ विसर्जनीयस्य सः ।
३० नश्च ।	३५ शर्परे विसर्जनीयः ।
३१ शि तुक् ।	३६ वा शरि ।
३२ ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् ।	३७ कुप्वोः ≍क≍पौ च ।
३३ मय उञो वो वा ।	३८ सोऽपदादौ ।

और टुक् (= ट्) का आगम हो जाता है ॥ २८ ॥ डकारान्त पद से उत्तरवर्त्ती सकारादि पद[1] (के आद्य सकार) को विकल्प से धुट् (= ध्) का आगम हो जाता है ॥ २९ ॥ नकारान्त पद से उत्तरवर्त्ती सकार को भी विकल्प से धुट् का आगम हो जाता है ॥ ३० ॥ नकारान्त पद (के अन्त्य नकार को) शकार के परे रहते तुक् का आगम हो जाता है ॥ ३१ ॥ ह्रस्व स्वर से परवर्ती जो ङम् प्रत्याहार तदन्त जो पद उससे परवर्त्ती अच् को यथासंख्येन नित्य ङमुट् (= ङुट्, णुट् और नुट्) आगम हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ मय् प्रत्याहार से उत्तरवर्ती उञ् के स्थान में अच् के परे रहते विकल्प से नकारादेश हो जाता है ॥ ३३ ॥ खर्[2] प्रत्याहार के विसर्ग के स्थान में सकारादेश (=स्) हो जाता है ॥ ३४ ॥ किन्तु जिस खर् प्रत्याहार के उत्तर शर् प्रत्याहार हो उस (खर्) के परे रहते विसर्ग के स्थान में विसर्ग ही आदेश होता है ॥ ३५ ॥ शर् प्रत्याहार के परे रहते भी विसर्ग के स्थान में विकल्प से- विसर्गादेश ही हो जाता है ॥ ३६ ॥ पदादि कवर्ग और पवर्ग के परे रहते विसर्ग के स्थान में यथाक्रम ≍क और ≍प आदेश भी होते हैं और विकल्प से विसर्गादेश भी ॥ ३७ ॥ किन्तु पदादिभिन्न कवर्ग और पवर्ग यदि बाद में हो तब तो पूर्व-

जाती है । ऐसी दशा में 'ङमो ह्रस्वात्०' इस सूत्र में अनुवृत्त्यर्थ 'पदे' यह सार्थक है । परन्तु 'पदस्य' के अधिकृत होने से 'ङमो ह्रस्वात्०' सूत्र का—'ह्रस्व से परवर्त्ती जो ङम् प्रत्याहार तदन्त जो पद उससे परवर्त्ती अच् को नित्य……' —ऐसा अर्थ कर देने पर किसी अनुपपत्ति के अभाव मे 'पदे' को उत्तरार्थ मानना भी उचित नहीं प्रतीत होता है ।

१. 'उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान्' इस परिभाषा के बल से 'डः' इसकी व्याख्या 'तस्मादित्युत्तरस्य' इस नियम के अनुसार ही करनी पड़ती है । इसके अनुरोध से परवर्त्ती को स्थानी मानना है । अत एव-'सि' इसमें सप्तमी का षष्ठी मे विपरिणाम भी इष्ट है ।

२. 'खरवसानयोः०' सूत्र से मण्डूकप्लुतिन्याय के अनुसार 'खरि' की अनुवृत्ति हुई है । 'शर्परे विसर्जनीयः' यह सूत्र प्रकृत मण्डूकप्लुति मे एक प्रमाण है ।

३९ इणः षः ।
४० नमस्पुरसोर्गत्योः ।
४१ इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य ।
४२ तिरसोऽन्यतरस्याम् ।
४३ द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे ।
४४ इसुसोः सामर्थ्ये ।

गामी विसर्ग के स्थान में सकारादेश ही होता है ॥ ३८ ॥ पदादिभिन्न कवर्ग और पवर्ग के परे रहते इण् प्रत्याहार से उत्तर विद्यमान विसर्ग के स्थान में षकारादेश हो जाता है ॥ ३९ ॥[1] कवर्ग और पवर्ग के परे रहते गति-संज्ञक नमस्[2] और पुरस् शब्दों के अवयव विसर्ग के स्थान में सकारादेश हो जाता है ॥ ४० ॥

ह्रस्व इकार अथवा ह्रस्व उकार जिसकी उपधा हो उस समुदाय के प्रत्यय-सम्बधिभिन्न (अथवा प्रत्ययभिन्न) विसर्ग के स्थान में कवर्ग अथवा पवर्ग के परे रहते षकारादेश हो जाता है ॥ ४१ ॥ तिरस्-शब्दावयव विसर्ग के स्थान में भी कवर्ग अथवा पवर्ग के परे रहते विकल्प से षकारादेश हो जाता है ॥ ४२ ॥ क्रियाभ्यावृत्तिगणनस्वरूप कृत्वसुच्-प्रत्ययार्थ में वर्तमान द्विः, त्रिः और चतुः शब्दों के विसर्ग के स्थान मे भी कवर्ग अथवा पवर्ग के परे रहते विकल्प से षकारादेश हो जाता है ॥ ४३ ॥ यदि व्यपेक्षारूप[3] सामर्थ्य निमित्त (= कवर्ग और पवर्ग) से

१. यहाँ 'अपदाद्योः' का अधिकार नहीं है ।

२. 'साक्षात्-प्रभृतीनि च' इस सूत्र से नमस् शब्द की 'गति'-संज्ञा विहित है और पुरस् शब्द की 'पुरोऽव्ययम्' सूत्र से ।

३. सामर्थ्य दो प्रकार का है—व्यपेक्षा और एकार्थीभाव । स्वार्थपर्यवसन्न पदों का आकाङ्क्षादिमूलक (अर्थद्वारक) परस्पर सम्बन्ध व्यपेक्षा है । 'राज्ञः पुरुषः' इत्यादि वाक्य के घटक पदों मे ही साधारणतः यह पाई जाती है । नित्यसापेक्षस्थल मे तो वृत्ति में भी यह बनी रहती है । जैसे—'देवदत्तस्य गुरुकुलम् ।' यह बात भर्तृहरि ने भी कही है—

सम्बन्धिशब्दः सापेक्षो नित्यं सर्वः समस्यते ।
वाक्यवत् सा व्यपेक्षा हि वृत्तावपि न हीयते ॥

वहीं पक्षान्तर भी निर्दिष्ट है—

समुदायेन सम्बन्धो येषां गुरुकुलादिना ।
संस्पृश्यावयवांस्ते तु युज्यन्ते तद्वता सह ॥

व्यपेक्षा के विपरीत एकार्थीभाव केवल वृत्ति (= समासादि) मे मिलती है । प्रक्रिया-दशा—विग्रहावस्था—मे स्वतन्त्रार्थप्रतिपादक पदों के रूप में अवगत शब्दों का वृत्त्यवस्था मे विशिष्टैकार्थत्व एकार्थीभाव है । विशेष ग्रन्थान्तर मे द्रष्टव्य है ।

४५ नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य ।
४६ अतः कृकमिकंसकुम्भपात्र-
कुशाकर्णीष्वनव्ययस्य ।
४७ अधःशिरसी पदे ।
४८ कस्कादिषु च ।
४९ छन्दसि वाऽप्राम्रेडितयोः ।
५० कःकरत्करतिकृधिकृतेष्वनदितेः
५१ पञ्चम्याः परावध्यर्थे ।
५२ पातौ च बहुलम् ।
५३ षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपय-
स्पोषेषु ।
५४ इडाया वा ।
५५ अपदान्तस्य मूर्धन्यः ।

घटित पद के अर्थ और नैमित्तिक-कार्याश्रय-(इस्-सम्बन्धी एवम् उस्-सम्बन्धी विसर्ग) से घटित पद के अर्थ के बीच विद्यमान हो तो कवर्ग और पवर्ग के परे रहते इस्-सम्बन्धी एवं उस्-सम्बन्धी विसर्गों के स्थान में भी विकल्प से षकारादेश हो जाता है ॥ ४४ ॥ समास-विषय में उत्तरपद से भिन्न पद के अवयव इस्-सम्बन्धी और उस्-सम्बन्धी विसर्ग के स्थान में कवर्ग अथवा पवर्ग के परे रहते नित्य षकारादेश हो जाता है ॥ ४६ ॥ समासविषय में अनुत्तरपदस्थ अधस् शब्द से सम्बद्ध और शिरस् शब्द से सम्बद्ध विसर्गों के स्थान मे 'पद' शब्द के परे रहते सकारादेश हो जाता है ॥ ४७ ॥ 'कस्क' आदि शब्दों मे कवर्ग अथवा पवर्ग के परे रहते इण् प्रत्याहार से परवर्ती विसर्ग के स्थान मे षकारादेश और अन्य विसर्गों के स्थान मे सकारादेश हो जाता है ॥ ४८ ॥ छन्दोविषय में 'प्र'-शब्द तथा आम्रेडित-संज्ञक पद में विद्यमान कवर्ग अथवा पवर्ग से अन्य कवर्ग अथवा पवर्ग के परे रहते विसर्ग के स्थान मे विकल्प से सकारादेश हो जाता है ॥ ४९ ॥ अदिति-शब्द से भिन्न शब्दों से सम्बद्ध विसर्गों को छन्दो-विषय में 'कः', करत्, करति, कृधि और कृत शब्दों के परे रहते सकारादेश हो जाता है ॥ ५० ॥ छन्दोविषय में 'अधि' के अर्थ (= ऊपर) में प्रयुक्त 'परि' शब्द के परे रहते पञ्चमीसम्बद्ध विसर्ग के स्थान में भी सकारादेश हो जाता है ॥ ५१ ॥ छन्दोविषय में पञ्चमीसम्बद्ध विसर्ग के स्थान में 'पा' धातु के परे रहते भी बहुल रूप में सकारादेश हो जाता है ॥ ५२ ॥ छन्दोविषय मे षष्ठी-सम्बद्ध विसर्ग के स्थान में पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस् और पोष शब्दों के परे रहते सकारादेश हो जाता है ॥ ५३ ॥ किन्तु पति आदि शब्दों के परे रहते इडा-शब्दसम्बद्ध षष्ठी-विसर्ग के स्थान में सकारादेश विकल्प से ही होता है ॥ ५४ ॥ अब से 'अपदान्तस्य' (= पदान्तभिन्न के स्थान में) और 'मूर्धन्यः'

५६ सहेः साडः सः ।
५७ इण्कोः ।
५८ नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ।
५९ आदेशप्रत्ययोः ।
६० शासिवसिघसीनां च ।
६१ स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात् ।
६२ सः स्विदिस्वदिसहीनां च ।
६३ प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि ।
६४ स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य ।

(= मूर्धन्यादेश) इन दोनों का, इस पाद की समाप्ति तक, अधिकार समझना चाहिए ॥ ५५ ॥ 'सह' धातु से निष्पन्न 'साड्' शब्द के अवयव सकार के स्थान मे मूर्धन्य (= षकार) आदेश हो जाता है ॥ ५६ ॥ अब से 'इण् से अव्यहितोत्तर वर्ण के स्थान मे' और 'कवर्ग से अव्यवहितोत्तर वर्ण के स्थान मे' इन दोनों का अधिकार समझना चाहिए ॥ ५७ ॥ इण् एवं कवर्ग और इनसे उत्तरवर्ती सकार के बीच यदि नुम्, विसर्जनीय अथवा शर् प्रत्याहारस्थ वर्ण विद्यमान भी हो तब भी मूर्धन्यादेश हो ही जाता है ॥ ५८ ॥ आदेशस्वरूप अथवा प्रत्ययावयव[1] सकार यदि इण् अथवा कवर्ग से (नुमादि मे से किसी एक द्वारा व्यवहित होकर भी) उत्तर विद्यमान हो तो उसे षकारादेश हो जाता है ॥ ५९ ॥ इण् अथवा कवर्ग से उत्तरवर्ती शासु, वस और घस्[2] धातु के अवयव सकार के स्थान मे भी मूर्धन्यादेश हो जाता है ॥ ६० ॥

स्तु धातु और णिजन्त धातुओं के अभ्यासावयवभूत इण् से उत्तरवर्ती आदेशस्वरूप सकार के स्थान में कृतषत्व सन् प्रत्यय के परे रहते षकारादेश हो जाता है ॥ ६१ ॥ किन्तु णिजन्त स्विदि, स्वदि और सहि धातुओं के अभ्यासावयव इण् से उत्तरवर्ती सकार के स्थान में कृतषत्व सन् प्रत्यय के परे रहते भी सकारादेश ही होता है ॥ ६२ ॥ 'परिनिविभ्यः सेवसित०' इस सूत्र से पूर्व तक जिन मूर्धन्यादेशों का विधान किया जाएगा वे इण् और कवर्ग तथा सकार के मध्य (आगमीभूत) अट् के विद्यमान होने पर भी होते हैं (और विद्यमान न होने पर भी) ॥ ६३ ॥ अग्रिम (= उपसर्गात् सुनोति०) सूत्र में

१. 'ओसि च' इस सूत्र में ओकार से अव्यवहितोत्तरवर्ती ओस्-प्रत्ययावयव सकार के स्थान मे षत्व न करके सूत्रकार ने यह संकेत दे दिया है कि प्रकृत्यर्थ से अन्वित स्वार्थ के प्रतिपादनार्थ लक्ष्य में प्रयुक्त प्रत्यय का अवयव सकार ही इस आदेश का स्थानी है, प्रत्ययाधिकार में निर्दिष्ट प्रत्यय का अथवा उसके अनुकरण का नहीं ।

२. विरल-प्रयोग के कारण केवल 'घस्लृ अदने' इसका ही ग्रहण इष्ट है अद् > घस् का नहीं । यह पदमञ्जरीकार का कथन है । किन्तु न्यासकार दोनों का ग्रहण मानते हैं ।

६५ उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम्।
६६ सदिरप्रतेः।
६७ स्तम्भेः।
६८ अवाच्चालम्बनाविदूर्ययोः।
६९ वेश्च स्वनो भोजने।
७० परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम्।

निर्दिष्ट स्था धातु से लेकर "परिनिविभ्यः सेवसित०" इस सूत्र मे उल्लिखित सित धातु से पूर्व तक (= सेव-धातुपर्यन्त) के धातुओं के अवयभूत सकार यदि अभ्याससंज्ञक शब्द द्वारा इण्-कवर्ग से व्यवहित भी हों तो भी उनके स्थान में (षकारादेश हो हीं जाता है) और अभ्यास के अवयवभूत सकार के स्थान मे भी षकारादेश हो जाता है ॥ ६४ ॥ उपसर्गस्थ निमित्त (= इण् और कवर्ग) से परवर्त्ती सु (= षुञ्-स्वादि), सु (= षु-तुदादि), सो (= षो-दिवादि), स्तु (=ष्टुञ्-अदादि), स्तुभ (ष्टुभ—भ्वादि), स्था, सेनय,[1] सिध (= षिध और षिधू—भ्वादि), सिच (= षिचिर्—), सञ्ज और स्वञ्ज धातुओं के सकार के भी स्थान मे स्थान मे षकारादेश हो जाता है ॥ ६५ ॥ 'प्रति' को छोड़कर अन्य उपसर्गों में विद्यमान निमित्त (= इण्-कवर्ग) से उत्तरवर्त्ती सद् (= षद्लृ) धातु के भी सकार के स्थान मे षकारादेश हो जाता है ॥ ६६ ॥ उपसर्गस्थ निमित्त से उत्तरवर्त्ती स्तम्भ धातु के सकार के भी स्थान में षकारादेश हो जाता है ॥ ६७ ॥ 'अव' इस उपसर्ग से परवर्त्ती स्तम्भ धातु के सकार के स्थान मे भी आलम्बन (= आश्रयण) और अविदूरता अर्थों में षकारादेश हो जाता है ॥ ६८ ॥ 'वि' और 'अप' इनमें से किसी भी उपसर्ग से परवर्त्ती भोजनार्थक स्वन धातु के भी सकार के स्थान में षकारादेश हो जाता है ॥ ६९ ॥ 'परि', 'नि' अथवा 'वि' उपसर्ग से उत्तरवर्त्ती सेव् (=सेवृ और षेवृ धातु), सित[2] (= क्त-प्रत्ययान्त षिञ् धातु), सय (=अच्-प्रत्ययान्त

---

१. 'सेनय' धातु 'सेनयाऽभियातुमिच्छति' इस अर्थ में 'सत्यापपाशरूपवीणा'''सेना०' इस सूत्र से विहित णिच् प्रत्यय से व्युत्पन्न है।

२. 'सित' को कुछ लोग 'षो' धातु का भी रूप मानते हैं। इस पक्ष में 'उपसर्गात्सुनोति०' सूत्र से षत्व के सिद्ध हो जाने से प्रकृत सूत्र द्वारा यही नियम किया जाता है कि इन्हीं तीन उपसर्गों से परवर्त्ती सित शब्द के सकार को षकारादेश होता है।

७१ सिवादीनां वाऽड्व्यवायेऽपि ।
७२ अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु ।
७३ वेः स्कन्देरनिष्ठायाम् ।
७४ परेश्च ।
७५ परिस्कन्दः प्राच्यभरतेषु ।
७६ स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः ।
७७ वेः स्कभ्नातेर्नित्यम् ।
७८ इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् ।
७९ विभाषेटः ।
८० समासेऽङ्गुलेः सङ्गः ।
८१ भीरोः स्थानम् ।

षिञ् धातु), सिव् (= षिवु धातु), सह (=षह धातु), सुट्-आगम, स्तु और स्वञ्ज धातुओं के सकार के स्थान में भी षकारादेश हो जाता है ॥ ७० ॥ पूर्वसूत्र में निर्दिष्ट सिव् आदि धातुओं के सकार के स्थान में उक्त उपसर्गों तथा सकार के बीच अडागम के विद्यमान होने पर भी विकल्प से षकारादेश हो ही जाता है ॥ ७१ ॥ अनु, 'वि', परि, अभि अथवा 'नि' उपसर्ग से परवर्ती स्यन्द् धातु के सकार को भी यदि वह प्राणिविषयक न हो तो, विकल्प से षकारादेश हो जाता है ॥ ७२ ॥ 'वि' उपसर्ग से उत्तरवर्ती निष्ठा-संज्ञक-प्रत्ययान्तभिन्न स्कन्द् धातु के भी सकार को विकल्प से मूर्धन्यादेश हो जाता है ॥ ७३ ॥ 'परि' उपसर्ग से परवर्ती होने पर भी स्कन्द् धातु के सकार को विकल्प से षकारादेश हो जाता[1] है ॥ ७४ ॥ प्राच्यदेशीयान्त भरतदेश में प्रयोग के लिए षत्वाभावविशिष्ट परिस्कन्द[2] शब्द का निपातन करना चाहिए ॥ ७५ ॥ निस्, 'नि' अथवा 'वि' उपसर्ग से उत्तरवर्ती स्फुर और स्फुल धातुओं के भी सकार के स्थान में विकल्प से षकारादेश हो जाता है ॥ ७६ ॥ 'वि' उपसर्ग से उत्तरवर्ती स्कम्भ धातु के सकार को नित्य मूर्धन्यादेश हो जाता है ॥ ७७ ॥ इणन्त अङ्ग से उत्तरवर्ती 'षीध्वम्', लुङ्-सम्बन्धी और लिट्-सम्बन्धी धकारों के स्थान मे मूर्धन्यादेश (= ढकार) हो जाता है ॥ ७८ ॥ किन्तु यदि 'षीध्वम्' आदि के धकार इण् से परवर्ती इट् से उत्तरवर्ती हों तब तो मूर्धन्यादेश विकल्प से हीं होता है ॥ ७९ ॥ समासघटक अङ्गुलिशब्दोत्तरवर्ती सङ्ग शब्द के सकार के स्थान भी मूर्धन्यादेश हो जाता है ॥ ८० ॥

१. पृथक्-सूत्र करने से यह सिद्ध है कि यह सूत्र निष्ठान्त स्कन्द धातु में भी प्रवृत्त होता है।
२. 'अचि निपातनम् । अथवा निष्ठातकारस्य लोपः'—काशिका ।

८२ अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः।
८३ ज्योतिरायुषः स्तोमः।
८४ मातृपितृभ्यां स्वसा।
८५ मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम्।
८६ अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम्
८७ उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः।
८८ सुविनिदुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः।
८९ निनदीभ्यां स्नातेः कौशले।
९० सूत्रं प्रतिष्णातम्।
९१ कपिष्ठलो गोत्रे।
९२ प्रष्ठोऽग्रगामिनि।
९३ वृक्षासनयोर्विष्टरः।

समासविषय मे भीरु-शब्द से उत्तरवर्त्ती स्थान शब्द के सकार को भी मूर्धन्यादेश हो जाता है ॥ ८१ ॥ समासविषय मे अग्नि शब्द से उत्तरवर्त्ती स्तुत्, स्तोम और सोम शब्द के सकारों के स्थान में भी मूर्धन्यादेश हो जाता है ॥ ८२ ॥ समासविषय में ज्योतिस् और आयुस् शब्दों से उत्तरवर्त्ती स्तोम शब्द के सकार के स्थान में भी षकारादेश हो जाता है ॥ ८३ ॥ समास मे मातृ अथवा पितृ शब्द से उत्तरवर्त्ती स्वसृ शब्द के सकार के स्थान मे भी षकारादेश हो जाता है ॥ ८४ ॥ किन्तु मातुर् अथवा पितुर् शब्द से उत्तरवर्त्ती स्वसृ शब्द के सकार के स्थान में षकारादेश विकल्प से ही होता है ॥ ८५ ॥ अभि और निस् इन दोनों उपसर्गों से उत्तरवर्त्ती स्तन धातु के सकार के स्थान मे भी, यदि समुदाय शब्द की संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होता हो तो षकारादेश हो जाता है ॥ ८६ ॥ उपसर्गस्थ निमित्त (= इण् और कवर्ग) से और प्रादुस् शब्द से परवर्ती अस् धातु के सकार के स्थान में यदि उस सकार के अव्यहितोत्तर स्थान में 'य्' अथवा अच् (= स्वर) हो तो षकारादेश हो जाता है ॥ ८७ ॥ 'सु', 'वि', 'निर्' अथवा 'दुर्' उपसर्ग से उत्तरवर्ती सुपि[1], सूति और सम शब्दों के सकार के स्थान में भी षकारादेश हो जाता है ॥ ८८ ॥ कौशल (= नैपुण्य) गम्यमान होने पर 'नि' और नदी शब्दों से उत्तरवर्त्ती स्ना धातु के भी सकार को षकारादेश हो जाता है ॥ ८९ ॥ यदि समुदाय—प्रत्ययान्त शब्द—सूत्र से सम्बद्ध हो तो 'प्रति' उपसर्ग से उत्तरवर्त्ती क्त-प्रत्ययान्त स्ना धातु के सकार के स्थान में भी षकारादेश निपातनीय है॥ ९० ॥ गोत्राभिधान के रूप में कपिष्ठल शब्द भी निपातनीय है ॥ ९१ ॥ अग्रगामी अर्थ में प्रष्ठ शब्द भी निपातनीय है ॥ ९२ ॥ वृक्ष और आसन अर्थों में विष्टर शब्द भी निपातनीय

१. सम्प्रसारणविशिष्ट स्वप् धातु विवक्षित है। सूति और सम शब्दों के तो स्वरूप ही ग्राह्य हैं।

९४ छन्दोनाम्नि च ।
९५ गवियुधिभ्यां स्थिरः ।
९६ विकुशमिपरिभ्यः स्थलम् ।
९७ अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्क्वङ्गुमञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः ।
९८ सुषामादिषु च ।
९९ एतिसंज्ञायामगात् ।
१०० नक्षत्राद्वा ।
१०१ ह्रस्वात्तादौ तद्धिते ।
१०२ निसस्तपतावनासेवने ।
१०३ युष्मत्तत्ततक्षुष्वन्तःपादम् ।

है ॥ ९३ ॥ छन्दस् के नाम के रूप में विष्टार शब्द भी निपातनीय है ॥ ९४ ॥ गवि[1] और युधि शब्दों से उत्तरवर्त्ती 'स्थिर' शब्द के सकार को भी मूर्धन्यादेश हो जाता है ॥ ९५ ॥ 'वि', 'कु', 'शमि'[2] और 'परि' शब्द से उत्तरवर्त्ती स्थल शब्द के सकार को भी षकारादेश हो जाता है ॥ ९६ ॥ अम्ब, आम्ब, गो, भूमि, सव्य, अप, द्वि, त्रि, कु, शेकु, शङ्कु, अङ्गु, मञ्जि, पुञ्जि, परमे, बर्हिस्, दिवि और अग्नि शब्द से उत्तरवर्त्ती 'स्थ'[3] शब्द के सकार के स्थान में भी षकारादेश हो जाता है ॥ ९७ ॥ सुषामा आदि शब्दों की सिद्धि के लिए भी सकार के स्थान में षकारादेश हो जाता है ॥ ९८ ॥ इण् और गकारातिरिक्त कवर्ग से परवर्त्ती एकारपरक सकार (= से) के स्थान में भी संज्ञा-विषय में षकारादेश हो जाता है[4] ॥ ९९ ॥ किन्तु नक्षत्रवाचक शब्द (में विद्यमान इण् तथा गकारभिन्न कवर्ग) से उत्तरवर्त्ती एकारपरक सकार के स्थान में विकल्प से ही षकारादेश होता है ॥१००॥ ह्रस्व से उत्तरवर्त्ती सकार के स्थान में भी तकारादि तद्धित प्रत्ययों के परे रहते षकारादेश हो जाता है ॥ १०१ ॥ यदि वारम्वार तपाने की क्रिया न की जाती हो तो तप धातु से अव्यवहितपूर्ववर्त्ती 'निस्' उपसर्ग के सकार के स्थान में भी षकारादेश हो जाता है ॥१०२॥ युष्मत्शब्द के स्थान में विहित त्व-प्रभृति तकारादि आदेश, तकारादि तत् और ततक्षुस् शब्दों के परे रहते ऋक्पादा-

१. इसी षत्वविधि के प्रभाव से प्रकृत उदाहरण में गो शब्द से विहित सप्तमी का लुक् नहीं हो पाता ।

२. शमि+स्थल में षष्ठीतत्पुरुष समास है । 'ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्' से ह्रस्वत्व के कारण शमी के स्थान शमि हो गया है ।

सूत्र मे ह्रस्वान्त शमि शब्द के निर्देश से यह सिद्ध है कि ह्रस्वाभावपक्ष में षत्व भी नहीं होता है—शमीस्थलम् ।

३. यहाँ 'स्थः' इस प्रथमान्त शब्दस्वरूप का ग्रहण है । अत एव 'गोस्थानम्' आदि प्रयोगों मे षत्व नही देखा जाता ।

४. इसका और अग्रिम सूत्र का सूत्रत्व विप्रतिपन्न है ।

१०४ यजुष्येकेषाम्।
१०५ स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि।
१०६ पूर्वपदात्।
१०७ सुञः।
१०८ सनोतेरनः।
१०९ सहेः पृतनर्ताभ्यां च।
११० न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम्।
१११ सात्पदाद्योः।
११२ सिचो यङि।
११३ सेधतेर्गतौ।
११४ प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च।

न्तर्गत सकार के भी स्थान में षकारादेश हो जाता है ॥ १०३ ॥ यजुर्विषय में भी कुछ आचार्यों के मतानुसार त्व-आदि पूर्वसूत्रोक्त शब्दों के परे रहते पूर्ववर्त्ती सकार के स्थान में षकारादेश हो जाता है ॥ १०४ ॥ कुछ आचार्यों के मत में पूर्वपदस्थ इण्-कवर्गस्वरूप निमित्त से उत्तरवर्त्ती स्तुत और स्तोम शब्दों के सकार के स्थान में भी छन्दोविषय मे षकारादेश हो जाता है ॥ १०५ ॥ छन्दोविषय में पूर्वपदस्थ निमित्त (= इण्[1]-कवर्ग) से उत्तरवर्त्ती सकारमात्र के स्थान में भी कुछ आचार्यों के अनुसार षकारादेश हो जाता है ॥ १०६ ॥ पूर्वपदस्थ निमित्त से उत्तरवर्त्ती 'सुञ्' इस निपात के सकार को भी छन्दोविषय में षकारादेश हो जाता है ॥ १०७ ॥ नकारान्तभिन्न सन धातु के भी सकार के स्थान में उसके इण् अथवा कवर्ग से परवर्त्ती होने पर षकारादेश हो जाता है ॥ १०८ ॥ पृतना अथवा ऋत शब्द से उत्तरवर्त्ती सह धातु के सकार के स्थान में भी षकारादेश हो जाता है ॥ १०९ ॥ किन्तु जिस सकार के अव्यवहितोत्तर स्थल में रेफ हो उसके और सृप्, सृज, स्पृश, स्पृह धातुओं के और सवन आदि शब्दों के सकार के स्थान में मूर्धन्यादेश नहीं होता ॥ ११० ॥ इण् प्रत्याहार अथवा कवर्ग से उत्तरवर्त्ती सात् (= साति प्रत्यय) के सकार और पदादिभूत सकार के स्थान मे भी मूर्धन्यादेश नहीं होता ॥१११॥ यङ् प्रत्यय के परे रहते सिच् (=सेसिच्य) धातु के सकार के स्थान में भी षकारादेश नहीं होता ॥ ११२ ॥ गत्यर्थ में प्रयुज्यमान सिध धातु के सकार के स्थान में भी षकारादेश नहीं होता ॥११३॥ 'प्रति' अथवा 'नि' उपसर्ग से परवर्त्ती क्त-प्रत्ययान्त स्तम्भ धातु के सकार को

१. विशेषविधान के बिना सर्वत्र षकारादेश के इन निमित्तों का अनुसन्धान करना चाहिए। यह बात 'इण्कोः' इस अधिकार से ही स्पष्ट है।

११५ सोढः ।
११६ स्तम्भुसिवुसहां चङि ।
११७ सुनोतेः स्यसनोः ।
११८ सदेः परस्य लिटि ।
११९ निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वा छन्दसि ।

चतुर्थः पादः

१ रषाभ्यां नो णः समानपदे ।
२ अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।
३ पूर्वपदात्संज्ञायामगः ।
४ वनं पुरगामिश्रकासिध्रकासारिकाकोटराग्रेभ्यः ।

भी षकारादेश नहीं होता ॥ ११४ ॥ षत्वनिमित्तोत्तरवर्ती ऊढ्विशिष्ट सह धातु के सकार के स्थान में भी षकारादेश नहीं होता ॥ ११५ ॥ चङ् प्रत्यय के परे रहते स्तम्भ, सिव् और सह धातुओं के सकार के स्थान में भी षकारादेश नही होता ॥ ११६ ॥ सु (= षुञ्–स्वादि) धातु के सकार के स्थान में भी स्य प्रत्यय और सन् प्रत्यय के परे रहते षकारादेश नहीं होता ॥ ११७ ॥ अभ्यासोत्तरवर्त्ती सकार के स्थान में भी लिट् के परे रहते षकारादेश नहीं होता ॥ ११८ ॥ छन्दोविषय में 'नि', 'वि' और 'अभि' उपसर्ग से उत्तरवर्ती सकार यदि अडागम से व्यवहित हो तो भी पूर्वसूत्रों से प्राप्त मूर्धन्यादेश विकल्प से नहीं होता ॥११९॥

अष्टमाध्याय का तृतीय पाद समाप्त ।

अष्टमाध्याय का चतुर्थ पाद

रेफ अथवा षकार (=निमित्त) से अव्यवहितोत्तरवर्त्ती नकार के (= निमित्ती) के स्थान में निमित्त और निमित्ती के एकपदस्थ होने पर णकारादेश हो जाता है ॥ १ ॥ निमित्त और निमित्ती के बीच अट् प्रत्याहार, कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम्[1] के यथासम्भव व्यस्त या समस्त रूप में विद्यमान होने पर भी णकारादेश हो ही जाता है ॥ २ ॥ संज्ञाविषय में, पूर्वपदस्थ निमित्त से उत्तरवर्ती (उत्तरपदस्थ) नकार के स्थान में भी, निमित्त-निमित्ती के बीच गकार यदि विद्यमान न हो तो णकारादेश हो जाता है ॥ ३ ॥ संज्ञाविषय में पुरगा, मिश्रगा, सिध्रका, सारिका, कोटरा और अग्रे इन पूर्वपदों से उत्तरवर्ती वन शब्द के नकार

१. नुम् अनुस्वार का भी उपलक्षण है । 'इजादेः सनुमः' सूत्र में भी यही स्थिति है ।

५ प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्य-खदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि।
६ विभाषौषधिवनस्पतिभ्यः।
७ अह्नोऽदन्तात्।
८ वाहनमाहितात्।
९ पानं देशे।
१० वा भावकरणयोः।
११ प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च
१२ एकाजुत्तरपदे णः।

के स्थान में भी णकारादेश हो जाता है ॥ ४ ॥ किन्तु 'प्र', निर्, अन्तर्, शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्र, कार्ष्य, खदिर और पीयूक्षा इन पूर्वपदों मे उत्तरवर्त्ती वन शब्द के नकार के स्थान में संज्ञा तथा असंज्ञा दोनों विषयों में णकारादेश हो जाता है ॥ ५ ॥ ओषधिवाचि-पूर्वपद अथवा वनस्पतिवाचि-पूर्वपद (मे विद्यमान निमित्त) से उत्तरवर्त्ती वन शब्द के नकार को भी विकल्प से णकारादेश हो जाता है ॥ ६ ॥ अदन्त पूर्वपदस्थ निमित्त से उत्तरवर्त्ती अह्न शब्द के नकार के स्थान में भी णकारादेश हो जाता है ॥ ७ ॥ (वाहन पर) आरोपित पदार्थ के वाचक पूर्वपद में णत्वनिमित्तभूत तत्त्व के वर्त्तमान होने पर वाहनवाचक उत्तरपद में विद्यमान नकार के स्थान मे भी णकारादेश हो जाता है ॥ ८ ॥ समुदाय से देश का अभिधान करने के लिए पूर्वपदस्थ निमित्त[2] से उत्तरवर्त्ती पान शब्द के अवयवभूत नकार के स्थान में भी णकारादेश हो जाता है ॥९॥ (संज्ञा तथा असंज्ञा दोनों विषयो में) पूर्वपदस्थ निमित्त से उत्तरवर्त्ती भावसाधन और करणसाधन पान शब्द के नकार के स्थान में विकल्प से णकारादेश ह जाता है ॥ १० ॥ पूर्वपदस्थ निमित्त से उत्तरवर्ती (उत्तरपदस्थ) प्रातिपदिकान्त नकार, नुम्-घटक नकार और विभक्ति-घटक नकार के स्थान में भी विकल्प से णकारादेश हो जाता है ॥ ११ ॥ किन्तु जिस समास का उत्तरपद एक स्वर से ही घटित (=एकाच्) हो उस समास के घटक पूर्वपद में विद्यमान निमित्त से उत्तरवर्ती (उत्तरपदस्थ) प्रातिपदिकान्त, नुम्-घटक और विभक्ति-घटक नकार

---

१. यद्यपि—फली वनस्पतिर्ज्ञेयो वृक्षाः पुष्पफलोपगाः।
ओषध्यः फलपाकान्ता लतागुल्माश्च वीरुधः॥
इस वचन के प्रामाण्य से वनस्पति एवं वृक्ष में अन्तर है तथापि प्रकृत सूत्र में वनस्पति शब्द से दोनों का ग्रहण इष्ट हैं। अत एव 'शिरीषवणम्' और 'शिरीषवनम्' ये दोनों शिष्टप्रयोग उपपन्न हैं।

२. निमित्तघटित पूर्वपद से उत्तरवर्ती—यह भी कहा जा सकता है।

१३ कुमति च ।
१४ उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ।
१५ हिनु मीना ।
१६ आनि लोट् ।
१७ नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिपु च ।

के स्थान में नित्य णकारादेश होता है ॥ १२ ॥ कवर्गघटित उत्तरपद के घटक प्रातिपदिकान्तादि नकार के स्थान में भी णकारादेश हो जाता है ॥ १३ ॥ उपसर्गस्थ निमित्त से उत्तरवर्ती णोपदेश (=जिनके औपदेशिक स्वरूप में णकार आद्यावयव रहा हो जिसके स्थान में "णो नः" सूत्र से नकारादेश हो जाता है) धातुओं के नकार को समास तथा असमास दोनों ही दशाओं में णकारादेश हो जाता है ॥ १४ ॥ हिनु[1] (= श्नु-प्रत्ययान्त 'हि' धातु) और मीना (= श्ना-प्रत्ययान्त 'मी' धातु) के नकार के स्थान में भी उपसर्गस्थ निमित्त से उसके परवर्ती होने पर णकारादेश हो जाता है ॥१५॥ उपसर्गस्थ निमित्त से उत्तरवर्ती लोट् के स्थान में आदेशभूत मिप् के स्थान मे विहित 'आनि' के नकार को भी णकारादेश हो जाता है ॥ १६ ॥ उपसर्गस्थ निमित्त से परवर्ती 'नि' उपसर्ग के नकार के स्थान मे भी गद[2], नद, पत, पद धातुओं, 'घु'-संज्ञक[3] धातुओं, मा[4] (= माङ् और मेङ्) धातु, स्यति (=षो धातु), हन्ति (=हन् धातु), याति

१. यद्यपि सूत्र में स्वरूपग्रहण के कारण 'प्रहिणुतः', 'प्रमीणाति' आदि प्रयोगों में ही णत्व की उपपत्ति हो पाती है, 'प्रहिणोति', 'प्रमीणीतः' आदि में नहीं तथापि अजादेश (णु > णो और णा > णी) के स्थानिवत्त्व के कारण 'प्रहिणोति' आदि में भी णत्व की उपपत्ति ज्ञातव्य है । 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' की भी शरण ली जा सकती है ।

२. गद आदि ४ धातुओं का विकरण शप् (= अ) के साथ और पो आदि ११ धातुओं का श्तिप् प्रत्यय द्वारा निर्देश यङ्लुक् होने पर इस णत्वविधि की प्रवृत्ति का अभाव प्रमाणित करता है । इस प्रसङ्ग में—

'श्तिपा शपाऽनुबन्धेन निर्दिष्टं यद् गणेन च ।
यत्रैकाज्-ग्रहणं चैव पञ्चैतानि न यङ्लुकि ॥'

यह कारिका स्मरणीय है ।

३. इसके अन्तर्गत डुदाञ्, दाण्, दो और देङ्, धेट् और डुधाञ् ये छः धातु ग्राह्य हैं ।

४. माङ् और मेङ् धातुओं का ही ग्रहण लक्ष्यानुरोधमूलक है ।

१८ शेषे विभाषा कखादावषान्त उपदेशे।

१९ अनितेः।

२० अन्तः।

२१ उभौ साभ्यासस्य।

२२ हन्तेरत्पूर्वस्य।

२३ वमोर्वा।

२४ अन्तरदेशे।

२५ अयनं च।

(= 'या' धातु), वाति (= 'वा' धातु), द्राति (= द्रा धातु), प्साति (= प्सा धातु) वपति (= वप धातु), वहति (= वह धातु), शाम्यति (= शम धातु), चिनोति (= चि धातु) और देग्धि (= दिह धातु) के परे रहते (अट् आगम से निमित्त और निमित्ती के बीच व्यवधान होने पर भी), णकारादेश हो जाता है ॥ १७ ॥ किन्तु शेष—ककारादिभिन्न, खकारादिभिन्न और षकारान्तभिन्न धातुओं के परे रहते उपसर्गस्थ निमित्त से परवर्ती 'नि' के नकार को विकल्प से ही णकारादेश होता है ॥ १८ ॥ उपसर्गस्थ निमित्त से उत्तरवर्ती अन[1] धातु के नकार के स्थान में भी णकारादेश हो जाता है ॥ १९ ॥ उपसर्गस्थ निमित्त से परवर्ती अन धातु के पदान्त नकार के स्थान में भी णकारादेश हो जाता है ॥ २० ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से उत्तरवर्ती अभ्यासविशिष्ट अन धातु के दोनों नकारों—अभ्यासगत तथा अभ्यासोत्तरस्थ नकारों—के स्थान में णकारादेश हो जाता है ॥ २१ ॥ उपसर्गस्थ निमित्त से उत्तरवर्ती हन धातु के अकारपूर्वक नकार के स्थान में भी णकारादेश हो जाता है ॥ २२ ॥ किन्तु इसके अकारपूर्वक-वकारपरक तथा अकारपूर्वक-मकारपरक नकार के स्थान में विकल्प से[2] ही णकारादेश होता है ॥ २३ ॥ अन्तर् शब्द में उत्तरवर्ती हन धातु के अत्पूर्वक नकार के स्थान में देशभिन्नार्थ में[3] ही णत्व होता है ॥ २४ ॥ देशभिन्नार्थ के अभिधानार्थ अन्तर्

1. सूत्र में 'अनितेः' इस श्तिप्-प्रत्ययान्त का निर्देश मात्र धातु-निर्देशार्थ है, यङ्लुङ्निवृत्त्यर्थ नहीं, क्योंकि हलादि धातुओं से ही यङ् प्रत्यय विहित होने से अजादि अन धातु से यङ् और उसके लुक् की प्राप्ति होती ही नहीं।

2. इससे 'शेषे विभाषा०' और 'वमोर्वा' इन दोनों विकल्पविधियों के बीच की णत्वविधियों का नित्यत्व प्रमाणित हो जाता है।

3. 'अन्तःशब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम्' इस व्यवस्था के अनुसार णत्व तो 'हन्तेरत्पूर्वस्य' सूत्र से ही सिद्ध है। अतः प्रकृत सूत्र का देशार्थ में णत्व का प्रतिषेध ही विवक्षित अर्थ है। अप्-प्रत्ययान्त हन धातु के नकार के स्थान में तो देशाभिधान होने पर भी 'अन्तर्घणो देशे' इस निपातन के कारण णत्व हो ही जाता है।

२६ छन्दस्यृदवग्रहात् ।
२७ नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः ।
२८ उपसर्गाद् बहुलम्* ।
२९ कृत्यचः ।
३० णेर्विभाषा ।
३१ हलश्चेजुपधात् ।
३२ इजादेः सनुमः ।
३३ वा निंसनिक्षनिन्दाम् ।

शब्द से उत्तरवर्त्ती अयन शब्द के नकार को भी णकारादेश हो जाता है ॥ २५ ॥ छन्दोविषय में अवग्रह (= अलग पढ़े गए[1] अथवा पढ़े जाने योग्य) पूर्वपद (में विद्यमान ह्रस्व ऋवर्णात्मक निमित्त) से उत्तरवर्त्ती नकार को भी णकारादेश हो जाता है ॥ २६ ॥ धातुस्थ निमित्त, ऊरु शब्द और 'षु' (= कृतषत्व सप्तमीबहुवचन नहीं) शब्दों से परवर्ती नस् (= नासिका>नस् और णुञ् धातु, अस्मद्>नस्) के नकार को भी छन्दोविषय में णकारादेश हो जाता है ॥ २७ ॥ उपसर्गस्थ निमित्त से उत्तरवर्त्ती नस्[2] शब्द के नकार को भी बहुल रूप में णकारादेश हो जाता है ॥ २८ ॥ उपसर्गस्थ निमित्त से उत्तरवर्त्ती अच्-पूर्वक कृत्-प्रत्ययस्थ नकार के स्थान में भी णकारादेश हो जाता है ॥ २९ ॥ किन्तु पूर्वसूत्रनिर्दिष्ट नकार यदि णिजन्त धातु से विहित हो तो नकारादेश विकल्प से ही होता है ॥ ३० ॥ जिनकी उपधा इच्-प्रत्याहार हो उन हलादि[3] धातुओं से विहित (उपसर्गस्थ निमित्त से उत्तरवर्त्ती) कृत्-प्रत्ययस्थ अजुत्तरवर्ती नकार के स्थान में भी विकल्प से णकारादेश हो जाता है ॥ ३१ ॥ (उपसर्गस्थ निमित्त से परवर्त्ती) नुम्-विशिष्ट, धातुओं से विहित कृत्-प्रत्ययस्थ नकार को यदि णकारादेश होता है तो इजादि एवं हलन्त[4] धातुओं से उस कृत्-प्रत्यय के विहित होने पर ही ॥ ३२ ॥ उपसर्गस्थ निमित्त से उत्तरवर्त्ती निंस (= णिसि),

१. सूत्र में अवग्रह-ग्रहण से जो यहाँ संहिताधिकार का संकोच मानते उनके मत मे प्रथम अर्थ और मतान्तर में द्वितीय अर्थ है ।

२. पूर्वसूत्र का तो केवल अस्मद् शब्द के स्थान में आदेशभूत नस् का ही उदाहरण मिलता है किन्तु इस सूत्र के दोनो ही अर्थों में उदाहरण मिलते हैं। अतः अनुवृत्त्यर्थ पूर्वसूत्र की व्याख्या में नस् के दोनों स्वरूपों का उल्लेख किया गया है ।

३. अन्त्य अल् से पूर्व वर्ण उपधा है। यतः एक पद में अव्यवहित रूप में दो स्वरों का समावेश नही हो सकता अतः इजुपध धातुओं का हलन्त होना नियत है। ऐसी स्थिति में हलन्तअर्थ मे 'हलः' का उपादान व्यर्थ हो जाता है। इसीलिए 'हलः' में हल् का अर्थ 'हलादि' किया गया है ।

४. इजादि धातुओं का हलादि होना असम्भव है। अत एव पूर्वानुवृत्त 'हलः' के हल् का यहाँ हलन्त अर्थ किया गया है ।

* 'उपसर्गादनोत्परः' इस सूत्र के स्थान में यह भाष्यसम्मत पाठ है ।

३४ न भाभूपूकमिगमिप्यायिवेपाम्।
३५ षात्पदान्तात्।
३६ नशेः षान्तस्य।
३७ पदान्तस्य।
३८ पदव्यवायेऽपि
३९ क्षुभ्नादिषु च।
४० स्तोः श्चुना श्चुः।
४१ ष्टुना ष्टुः।
४२ न पदान्ताट्टोरनाम्।
४३ तोः षि।
४४ शात्।
४५ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा
४६ अचो रहाभ्यां द्वे।
४७ अनचि च।

निक्ष और निन्द (= णिदि) धातुओं के नकार को भी विकल्प से कृत्-प्रत्यय के परे रहते णकारादेश हो जाता है ॥ ३३ ॥ किन्तु (उपसर्गस्थ निमित्त से उत्तरवर्ती) भा, भू, पू, कमि, गमि, प्यायी और वेप धातुओं से विहित कृत्-प्रत्ययस्थ नकार के स्थान में णकारादेश नहीं होता ॥ ३४ ॥ पद में अन्त जो षकार उससे उत्तरवर्ती कृत्-प्रत्ययस्थ नकार को भी णकारादेश नहीं होता ॥ ३५ ॥ (उपसर्गस्थ निमित्त से उत्तरवर्ती) षकारान्त नश् धातु के नकार को भी णकारादेश नहीं होता ॥ ३६ ॥ पदान्त नकार को भी णकारादेश नहीं होता ॥ ३७ ॥

निमित्त और निमित्ती के पद से व्यवहित होने पर भी णकारादेश नहीं होता ॥ ३८ ॥ 'क्षुभ्ना' आदि शब्दस्वरूपों में भी णकारादेश नहीं होता ॥ ३९ ॥ शकार अथवा चवर्ग से योग होने पर सकार और तवर्ग के स्थान में क्रमशः शकार और चवर्ग आदेश हो जाते हैं ॥ ४० ॥

और षकार अथवा टवर्ग से योग होने पर सकार के स्थान में षकार और तवर्ग के स्थान मे टवर्ग आदेश (= ष्टुत्व) हो जाते हैं ॥ ४१ ॥ किन्तु पदान्त टवर्ग से उत्तरवर्ती सकार तथा 'नाम्' (= ष. ब. व.) के तवर्ग से अतिरिक्त तवर्ग को षकार-टवर्ग नहीं होता ॥ ४२ ॥ षकार के परे रहते भी तवर्ग के स्थान में ष्टुत्व (= प्रकृत में टवर्गादेश) नहीं होता ॥ ४३ ॥ शकारोत्तरवर्ती तवर्ग को भी ष्टुत्व नहीं होता ॥ ४४ ॥ पदान्त यर् प्रत्याहार के स्थान मे अनुनासिक के परे रहते विकल्प से अनुनासिक आदेश हो जाता है ॥ ४५ ॥ अच् से उत्तरवर्ती रकार अथवा हकार से पर विद्यमान यर् प्रत्याहार का द्वित्व हो जाता है ॥ ४६ ॥ अच् से परवर्ती यर् प्रत्याहार का भी द्वित्व हो जाता है, किन्तु यदि उस यर् के बाद अच् हो तो यह द्वित्व कार्य नहीं होता ॥ ४७ ॥

४८ नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य ।
४९ शरोऽचि ।
५० त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य ।
५१ सर्वत्र शाकल्यस्य ।
५२ दीर्घादाचार्याणाम् ।
५३ झलां जश् झशि ।
५४ अभ्यासे चर्च ।
५५ खरि च ।
५६ वाऽवसाने ।
५७ अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः ।
५८ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ।
५९ वा पदान्तस्य ।

अच् से परवर्ती पुत्र-शब्दावयव यर् प्रत्याहार (प्रकृत में तकार) का भी आदिनी शब्द के परे[1] रहते द्वित्व नहीं होता यदि वाक्य से आक्रोश गम्यमान हो तो ॥ ४८ ॥ अच् परे रहते शर्-प्रत्याहारस्थ वर्ण का भी द्वित्व नहीं होता ॥ ४९ ॥ तीन तथा तीन से अधिक व्यञ्जनों का संयोग होने पर भी द्वित्व नहीं होता ॥ ५० ॥

किन्तु शाकल्याचार्य[2] के मतानुसार तो तीन से कम का संयोग होने पर भी द्वित्व नहीं होता ॥ ५१ ॥ दीर्घ स्वर से उत्तरवर्ती वर्ण को प्राप्त द्वित्व भी आचार्यमतानुसार[3] नही होता ॥ ५२ ॥ झल्-प्रत्याहारस्थ वर्णों के स्थान मे झश्-प्रत्याहारस्थ वर्ण के परे रहते आदेश के रूप में जश्-प्रत्याहारस्थ वर्ण (= जश्त्व) आ जाते हैं ॥ ५३ ॥ किन्तु अभ्यास मे वर्तमान झल्-प्रत्याहारस्थ वर्णों के स्थान मे चर्-प्रत्याहारस्थ वर्ण भी आदेश के रूप में आते हैं और जश्-प्रत्याहारस्थ वर्ण भी ॥५४॥ खर्-प्रत्याहार के परे रहते भी झल्-प्रत्याहारस्थ वर्णों के स्थान मे चर्-प्रत्याहारस्थ वर्ण आ जाते हैं ॥ ५५ ॥ किन्तु अवसानस्थ झल्-प्रत्याहारस्थ वर्ण के स्थान मे विकल्प से ही चर्-प्रत्याहारस्थ वर्ण आते हैं ॥ ५६ ॥ अवसान में वर्तमान प्रगृह्य-संज्ञकभिन्न अण्-प्रत्याहारस्थ वर्ण को विकल्प से अनुनासिकादेश हो जाता है ॥ ५७ ॥ यय्-प्रत्याहारस्थ वर्ण के परे रहते अनुस्वार के स्थान में परवर्णसदृश वर्ण (= परसवर्ण) आदेश के रूप में आ जाता है ॥ ५८ ॥ किन्तु, पदान्त अनुस्वार के स्थान में परसवर्णादेश विकल्प से हो

१. यहाँ व्यवहित पर मे आदिनी शब्द की प्राप्ति की सम्भावना से व्यवहितपरत्व सामर्थ्यलब्ध है ।
२. विकल्प के सामर्थ्यसिद्ध होने से शाकल्य का उल्लेख सम्मानार्थ है ।
३. पृथक् आरम्भसामर्थ्य से ही प्रतिषेध का नित्यत्व सिद्ध है । अतः आचार्य-ग्रहण पूजार्थ है ।

६० तोलि ।
६१ उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ।
६२ झयो होऽन्यतरस्याम् ।
६३ शश्छोऽटि ।
६४ हलो यमां यमि लोपः ।
६५ झरो झरि सवर्णे ।
६६ उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः ।
६७ नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्य-
काश्यपगालवानाम् ।
६८ अ अ [इति] ।

इति अष्टमाध्याये चतुर्थः पादः ।

इति श्रीपाणिनिमुनिप्रणीतोऽष्टाध्यायीसूत्रपाठः समाप्तः ।

होता है ॥ ५९ ॥ लकार के पर रहते तवर्ग के स्थान में भी परसवर्ण (=लकार) आदेश हो जाता है ॥ ६० ॥

'उद्' उपसर्ग से उत्तरवर्ती स्था और स्तम्भ धातुओं के (आदि सकार के) स्थान मे पूर्वसवर्णादेश हो जाता है ॥ ६१ ॥ झय्-प्रत्याहार से उत्तरवर्ती हकार के स्थान मे भी विकल्प मे पूर्वसवर्णादेश हो जाता है ॥ ६२ ॥ झय्-प्रत्याहारस्थ वर्ण से उत्तरवर्ती शकार के स्थान मे अट्-प्रत्याहारस्थ वर्ण के परे रहते विकल्प से छकारादेश हो जाता है ॥६३॥ हल् से उत्तरवर्ती यम्-प्रत्याहारस्थ वर्ण का यम्-प्रत्याहारस्थ वर्ण के ही परे रहते विकल्प से लोप हो जाता है ॥६४॥ हल् से उत्तरवर्ती झर्-प्रत्याहारस्थ वर्ण का भी झर्-प्रत्याहारस्थ सवर्ण वर्ण के परे रहते विकल्प से लोप हो जाता है ॥ ६५ ॥ उदात्त स्वर से परवर्ती अनुदात्त स्वर के स्थान में स्वरित स्वर आदेश हो जाता है ॥ ६६ ॥ परन्तु जिस अनुदात्त के बाद उदात्त अथवा स्वरित स्वर हो उसके स्थान मे गार्ग्य, काश्यप और गालव आचार्यों से भिन्न आचार्यों के मतानुसार स्वरितादेश नही होता[1] ॥ ६७ ॥ (विवृत) ह्रस्व अकार के स्थान मे (संवृत) ह्रस्व अकार आदेश हो जाता है ॥ ६८ ॥

अष्टमाध्याय का चतुर्थ पाद समाप्त ।

अष्टमाध्याय समाप्त ।

---

१. 'उदय' शब्द का प्रातिशाख्य मे 'पर' अर्थ प्रसिद्ध है। अतः 'उदात्तस्वरितौ उदयौ = परौ यस्मात् स उदात्तस्वरितपरः' इस विग्रह के अनुसार 'उदात्तपरः',

प्राणादपि प्रियतरा वृतपञ्चमाब्दा
या निर्दयेन विधिनाऽपहृता सुताऽऽभा।
सङ्कल्पिता तदनुकल्पतयैव सेयं
वृत्तिर्मुदे मतिमताम्भवतात् सदाऽऽभा॥ १॥
ख्यातैः सुधीभिरपि वामन-रामचन्द्र-
भट्टोजिदीक्षितमुखैः स्खलितं कदाचित्।
तन्मादृशां मृदुधियां व्यथिताशयानां
चेतो विमुह्यति यदीह किमत्र चित्रम्॥ २॥
तच्चेद्दुरुक्तमपि किञ्चिदिह प्रसक्तं
मोहेन वा वचनशासनगौरवेण।
सर्वं समीक्ष्य सदयैर्विबुधैरुपेक्ष्य-
मिष्टापहारविकृतप्रकृतेर्जनस्य॥ ३॥
कर्षन् वपुः कथमपि प्रतिलुप्तहर्षं
वर्षं विनीय कुरुते वचनप्रसूनैः।
आभाऽवसानदिवसे विवशस्तदब्द-
कृत्यं कथञ्चिदपि किञ्चिदकिञ्चनोऽयम्॥ ४॥

अष्टाध्यायी की श्रीनारायण मिश्र-कृत 'आभा'-नामक भाषा-वृत्ति समाप्त हुई।

'स्वरितपरः' यह अर्थ निकलता है। स्पष्टतः 'पर' शब्द का उल्लेख न कर 'उदय' शब्द का प्रयोग आचार्य पाणिनि ने ग्रन्थान्त में मङ्गलार्थ ही किया है—ऐसा व्याख्याकारों का मन्तव्य है।

पाणिनीयशिक्षा

पवित्रीं सर्वविषयान् लवित्रीं सर्वसंशयान्।
सवित्रीं सर्वकामांस्तां देवीं वाचमुपास्महे ॥

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा ।
शास्त्रानुपूर्व्यं तद्विद्याद्यथोक्तं लोकवेदयोः ॥ १ ॥

अब मैं महर्षि पाणिनि के मतानुसार 'शिक्षा' नामक वेदाङ्ग का प्रवचन करने जा रहा हूँ। इस पाणिनीय मत को शास्त्रोपदेष्टाओं की परम्परा से प्राप्त लोक-वेदानुकुल समझना चाहिए ॥ १ ॥

प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातमबुद्धिभिः ।
पुनर्व्यक्तीकरिष्यामि वाच उच्चारणे विधिम् ॥ २ ॥

यद्यपि विद्वानों में साधु-शब्दोच्चारण की विधि सुप्रसिद्ध है तथापि मन्दबुद्धि को इसका स्पष्ट बोध न होने के कारण वर्णोच्चारण-विधि को पुनः प्रकट जिज्ञासुओं करने जा रहा हूँ ॥ २ ॥

त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः ।
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा ॥ ३ ॥

प्राकृत (=प्रकृतिभूत अथवा प्रकृतिप्राप्त) संस्कृत भाषा मे ब्रह्मा द्वारा साक्षादुच्चरित ६३ अथवा ६४ वर्ण ही शम्भु (= महेश्वर) के भी अभिमत हैं, अधिक नहीं ॥ ३ ॥

स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः ।
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः ॥ ४ ॥
अनुस्वारो विसर्गश्च ᳵक ᳵपौ चापि पराश्रितौ ।
दुस्स्पृष्टश्चेति विज्ञेयो ऌकारः प्लुत एव च ॥ ५ ॥

ये वर्ण हैं—२१ स्वर, २५ स्पर्श, 'य' आदि आठ, ४ यम, अनुस्वार,

विसर्ग, ककार-खकाराश्रित जिह्वामूलीय, पकार-फकाराश्रित उपध्मानीय, दुस्स्पृष्ट और प्लुत ऌकार[1] ॥ ४–५ ॥

आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥ ६ ॥

आत्मा वासनारूप में स्वनिहित पदार्थों का बौद्धिक सङ्कलन कर उच्चारणेच्छा से मन को प्रेरित करता है; वह मन जठराग्नि को आहत करता है और वह जठराग्नि प्राणवायु को प्रेरित करता है ॥ ६ ॥

मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम्।
प्रातःसवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम् ॥ ७ ॥

वह प्राणवायु हृदय-प्रदेश में सञ्चरण करता हुआ मन्द्र[2] (= गम्भीर) स्वर

---

१. इसी ऌकार को लेकर ६४ और इसे छोड़कर ६३ वर्ण पहले कहे गये हैं। इस पद्य में निर्दिष्ट २१ स्वर (= अच्) हैं—,अ', 'इ', 'उ', 'ऋ', के ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत स्वरूपों और ह्रस्व 'ऌ' का संकलित योग—१३; 'ए', 'ओ', 'ऐ' और 'औ' के दीर्घ तथा प्लुत स्वरूपों का सङ्कलित योग—८। २५ स्पर्श वर्ण हैं—पाँच व्यञ्जन वर्गों के सब व्यञ्जन, अर्थात् 'क' से 'म' तक। 'य' आदि आठ, अर्थात् 'य', 'र', 'ल', 'व', 'श', 'ष', 'स' और 'ह'। प्रत्येक व्यञ्जन-वर्ग के प्रथम चार व्यञ्जनों में से किसी एक के उत्तर यदि व्यञ्जनवर्ग का पञ्चम व्यञ्जन आवे तो पूर्ववर्त्ती तथा परवर्त्ती व्यञ्जनों के मध्य पूर्ववर्त्ती व्यञ्जन के सदृश एक अधिक अनुनासिक व्यञ्जन आ जाता है। इसी मध्यगत व्यञ्जन को 'यम' कहते हैं। यद्यपि इनकी संख्या २० है तथापि सब वर्गों के प्रथम व्यञ्जनों को एक तथा द्वितीयादि को भी एक-एक मानकर चार 'यम' कहे गए हैं। ककार और खकार से पूर्व अर्धविसर्गसदृश ध्वनि जिह्वामूलीय और पकार तथा फकार से पूर्व अर्धविसर्गसदृश ध्वनि उपध्मानीय है। दो स्वरों के मध्य आये डकार और ढकार के स्थान में श्रूयमाण ळकार और ळ्हकार दुःस्पृष्ट है। इन विषयों का अधिक विवेचन अपेक्षित है। किन्तु प्रकाशकानुरोध से इसे समाविष्ट करना सम्भव न हो सका।

२. "अथ मन्द्रं तपति तस्मान्मन्द्रया वाचा प्रातःसवने शंसेत्" इत्यादि श्रुति के आधार पर प्रातःसवनादि कर्मों में क्रमशः मन्द्रादि स्वरों का उपयोग सिद्ध है। अतः इन स्वरों का उच्चारण क्रमेण हृदयादि-प्रदेश-सञ्चरण-सापेक्ष है। अन-

(= ध्वनि) को उत्पन्न करता है जिस स्वर में गायत्रीच्छन्दोबद्ध मन्त्रों का प्रातः-सवन कर्म में पाठ विहित है ॥ ७ ॥

कण्ठे माध्यन्दिनयुगं मध्यमं त्रैष्टुभानुगम् ।
तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागतानुगम् ॥ ८ ॥

वही वायु कण्ठस्थान में परिभ्रमण करता हुआ मध्यम स्वर (= न मन्द्र और न तार ध्वनि) को (उत्पन्न करता है) जिस स्वर में माध्यन्दिन सवन कर्म में त्रिष्टुप्-छन्दोबद्ध मन्त्रों का उच्चारण विहित है और शिरःप्रदेश में पहुँच कर वहाँ परिभ्रमण करता हुआ तार स्वर को उत्पन्न करता है जिस स्वर में जगतीच्छन्दोबद्ध मन्त्रों का सायंसवन कर्म में पाठ विहित है ॥ ८ ॥

सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः ।
वर्णाञ्जनयते, तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः ॥ ९ ॥
स्वरतः कालतः स्थानात्प्रयत्नानुप्रदानतः ।
इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तन्निबोधत ॥ १० ॥

पूर्वनिर्दिष्ट वायु जब उन्मुख हो मूर्धा से टकराकर लौटता हुआ मुख (तथा ताल्वादि स्थानों) को प्राप्त करता है तब यथासम्भव अकारादि वर्णों को उत्पन्न करता है। इन वर्णों का उदात्तादि स्वर, उच्चारणकाल, उच्चारणस्थान, आभ्यन्तर-प्रयत्न और बाह्य-प्रयत्न के आधार पर पाँच वर्गों में विभाजन प्रसिद्ध है—ऐसा वर्णतत्ववेत्ता कहते हैं। अतः आप इस विषय को स्पष्ट रूप में जानें ॥ ९-१० ॥

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः ॥
ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि ॥ ११ ॥

एव नारदीयशिक्षा में उपचारतः इन तीनों सञ्चरण-स्थानों को भी 'प्रातस्सवन' आदि कहा गया है—

उरः कण्ठः शिरश्चैव स्थानानि त्रीणि वाङ्मये ।
सवनान्याहुरेतानि........................ ॥ (नारदीयशिक्षा)

स्वरों की दृष्टि से अच् तीन प्रकार के हैं— उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। काल की दृष्टि से भी ये तीन ही प्रकार के हैं—ह्रस्व (= एकमात्रिक), दीर्घ (= द्विमात्रिक) और प्लुत (= त्रिमात्रिक) ॥ ११ ॥

उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभधैवतौ ।
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः ॥ १२ ॥

इन्हीं तीन में से उदात्त में सङ्गीतशास्त्र-प्रसिद्ध निषाद और गान्धार स्वरों का, अनुदात्त में ऋषभ और धैवत स्वरों का और स्वरित में षड्ज, मध्यम तथा पञ्चम स्वरों का अन्तर्भाव ज्ञातव्य है ॥ १२ ॥

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा ।
जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकौष्ठौ च तालु च ॥ १३ ॥

वर्णों के उच्चारण स्थान आठ हैं—उरस् (= हृदय), कण्ठ, शिरस् (= मूर्धा), जिह्वामूल, दन्त, नासिका, ओष्ठ और तालु ॥ १३ ॥

ओभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफ एव च ।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ॥ १४ ॥

इसी प्रकार (विसर्गात्मक) ऊष्मा के भी आठ स्वरूप उपलब्ध होते हैं—ओकार (शिवो वन्द्यः), विवृत्ति[1] शकार (हरिश्शेते), षकार (रामष्षष्ठः), सकार (कस्कः), रेफ (अहर्पतिः), जिह्वामूलीय (क꣸करोति) और उपध्मानीय (क꣹पचति) ॥ १४ ॥

यद्योभावप्रसंधानमुकारादि परं पदम् ।
स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः ॥ १५ ॥

---

१. विसर्ग के स्थान में अन्ततोगत्वा आदेश के रूप में आये यकारादि वर्णों का लोप हो जाने पर ('क इह' आदि उदाहरणों में यकारोत्तरवर्ती अकार और 'इह'-शब्दघटक इकार स्वरूप) तथा अन्य कारणों से भी स्वरों के बीच सन्धि का अभाव विवृत्ति है। इसका एक वैदिक उदाहरण 'यऽईशे' है। द्रष्टव्य—ऋक्प्रातिशाख्य–२।३–४ ॥

यदि उकारादि उत्तरपद के होने पर एकादेशस्वरूप सन्धि के परिणामस्वरूप ओकार की उपस्थिति हुई हो तो उसे स्वरस्थानिक और अन्य ओकारों को उष्म-सम्बन्धी समझना चाहिए ॥ १५ ॥

हकारं पञ्चमैर्युक्तमन्तःस्थाभिश्च संयुतम् ।
उरस्यं तं विजानीयात्कण्ठ्यमाहुरसंयुतम् ॥ १६ ॥

पूर्ववर्णित आठ उच्चारणस्थानों में उरस् से उच्चार्यमाण (= उरस्य) है वह हकार जो कवर्गादि के पञ्चम व्यञ्जन से एवं अन्तःस्थ वर्ण (= य, र, ल, व) से संयुक्त हो । इससे भिन्न हकार तो कण्ठस्थानक (= कण्ठ्य) है ॥ १६ ॥

कण्ठ्यावहाविचुयशास्तालव्या ओष्ठजावुपू ।
स्युर्मूर्धन्या ऋटुरषा दन्त्या लृतुलसाः स्मृताः ॥ १७ ॥

अकार और पूर्वोक्त हकार कण्ठ्य हैं; इकार, चवर्ग, यकार और शकार तालव्य (= तालु से उच्चरित) हैं; उकार और पवर्ग ओष्ठोच्चरित (= ओष्ठ्य) हैं; ऋकार, टवर्ग, रेफ और षकार मूर्धन्य हैं; लृकार, तवर्ग, लकार और सकार दन्त्य हैं ॥ १७ ॥

जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तो दन्त्योष्ठ्यो वः स्मृतो बुधैः ।
एऐ तु कण्ठतालव्या ओऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ ॥१८॥

कवर्ग का उच्चारणस्थान जिह्वामूल है; वकार को विद्वानों ने (अंशतः) दन्त्य भी माना है और ओष्ठ्य भी; एकार एवम् ऐकार कण्ठ-तालु से उच्चरित हैं, ओकार और औकार कण्ठ-ओष्ठ से उच्चरित हैं ॥ १८ ॥

अर्धमात्रा तु कण्ठ्या स्यादेकारैकारयोर्भवेत् ।
ओकारौकारयोर्मात्रा तयोर्विवृतसंवृतम् ॥ १९ ॥

एकार तथा ऐकार में क्रमशः अर्धमात्रिक अवर्ण और सार्धमात्रिक इवर्ण का एवम् ओकार और औकार में अर्धमात्रिक अवर्ण और सार्धमात्रिक उवर्ण का समावेश समझना चाहिए । अथवा पूर्वद्वय में एकमात्रिक अवर्ण और एकमात्रिक इवर्ण का और उत्तरद्वय में एकमात्रिक अवर्ण और एकमात्रिक उवर्ण का

समावेश अवगन्तव्य[1] है। इनमें भी पूर्व भाग में विद्यमान अवर्ण का संवृतत्व और उत्तर भाग में विद्यमान वर्ण का विवृतत्व ज्ञातव्य है ॥ १९ ॥

संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं विवृतं तु द्विमात्रिकम् ।
घोषा वा संवृताः सर्वे अघोषा विवृताः स्मृताः ॥ २० ॥

एकमात्रिक ह्रस्व अवर्ण का (प्रयोगावस्था में) संवृतत्व और द्विमात्रिक दीर्घ अवर्ण (= आ) का (और अन्य इकारादि स्वरों का भी) विवृतत्व ज्ञातव्य है। व्यञ्जनों में भी घोष वर्ण संवृत और अघोष विवृत कहे गए हैं ॥ २० ॥

स्वराणामूष्मणां चैव विवृतं करणं स्मृतम् ।
तेभ्योऽपि विवृतावेङौ ताभ्यामैचौ तथैव च ॥ २१ ॥

स्वर और ऊष्म वर्णों का करण (= आभ्यन्तर प्रयत्न) विवृत है और एकार तथा ओकार का विवृततर तथा ऐकार एवम् औकार का विवृततम ॥२१॥

अनुस्वारयमानां च नासिका स्थानमुच्यते ।
अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः ॥ २२ ॥

अनुस्वार और यमों का उच्चारणस्थान नासिका भी है और (अनुस्वार-विसर्गजिह्वामूलीयोपध्मानीय-यम-स्वरूप) अयोगवाहों का उच्चारण आश्रयीभूत-वर्णस्थान से भी होता है ॥ २२ ॥

अलाबुवीणानिर्घोषो दन्त्यमूल्यस्वराननु ।
अनुस्वारस्तु कर्तव्यो नित्यं ह्रोः शषसेषु च ॥ २३ ॥

हकार, रेफ, शकार, षकार और सकार के परे रहते अनुस्वार का ही उच्चारण कर्तव्य है। इसका उच्चारण तुम्बी की वीणा के स्वर के समान दन्तमूल स्थान से आश्रयीभूत स्वर के सहारे करना चाहिए ॥ २३ ॥

---

१. इनमें वार्तिककार प्रथम से और भाष्यकार द्वितीय पक्ष से सहमत हैं। देखिए, महाभाष्य—१।१।४७ तथा ८।२।१०६ ॥

अनुस्वारे विवृत्त्यां तु विरामे चाक्षरद्वये ।
द्विरोष्ठ्यौ तु विगृह्णीयाद्यत्रौकारवकारयोः ॥ २४ ॥

अनुस्वार, विवृत्ति, विराम (= अवसान) और संयुक्ताक्षर के पूर्व अच् का उच्चारण करते समय ओष्ठ को दो बार उसी तरह खोलना[1] चाहिए जिस तरह औकार और वकार के उच्चारण के समय खोला जाता है ॥ २४ ॥

व्याघ्री यथा हरेत्पुत्रान्दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत् ।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान्प्रयोजयेत् ॥ २५ ॥

जिस प्रकार बाघिन और बिल्ली गिरने और छिन्न-भिन्न हो जाने के भय से अपने बच्चों को दाँतो से दबा कर स्थानान्तरित तो करती हैं किन्तु इतना नहीं दबाती कि उनके बच्चों को पीड़ा का अनुभव हो, उसी प्रकार वर्णों का उनके स्वरूपच्यवन तथा स्वरूपभङ्ग के भय से उच्चारण करते समय उनके उच्चारण-स्थानों को उतना ही व्यापृत करना चाहिए जिससे वर्णों का पीड़न (= अस्पष्ट अथवा विकृत उच्चारण) न हो ॥ २५ ॥

यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्रँ इत्यभिभाषते ।
एवं रङ्गाः प्रयोक्तव्याः खे अराँ इव खेदया ॥ २६ ॥

जिस प्रकार सौराष्ट्रदेश की नारी 'तक्रं' पद का उच्चारण 'तक्रँ' करती है उसी प्रकार 'रङ्ग'[2] वर्णों का उच्चारण करना चाहिए। जैसे "खे अराँ इव खेदया" ॥ २६ ॥

रङ्गवर्णं प्रयुञ्जीरन्नो ग्रसेत्पूर्वमक्षरम् ।
दीर्घस्वरं प्रयुञ्जीयात्पश्चान्नासिक्यमाचरेत् ॥ २७ ॥

---

१. इससे अच् का द्विमात्रिकत्व—दीर्घत्व प्रमाणित हो जाता है।

२. नकारस्थानिक और मकारस्थानिक रेफ के प्रभाव से पूर्ववर्ती उपधा-संज्ञक स्वर का अनुनासिकत्व 'रङ्ग' है। इसके दो भेद हैं—स्वरपर रङ्ग और व्यञ्जनपर रङ्ग। (लोमशशिक्षा–७)

ऋक्प्रातिशाख्य–१।३६ में भी अनुनासिक वर्ण को 'रक्त' कहा गया है।

रङ्ग का उच्चारण इस प्रकार करना चाहिए जिससे पूर्ववर्त्ती अक्षर का ग्रास न हो अर्थात् उसका भी स्वरूप रङ्ग से प्रभावित होकर विकृत न हो जाए और जिसका रङ्ग किया गया हो उस स्वर का पहले द्विमात्रिक तथा पश्चात् अनुनासिक का उच्चारण करना चाहिए ॥ २७ ॥

हृदये चैकमात्रस्त्वर्धमात्रस्तु मूर्धनि ।
नासिकायां तथार्धं च रङ्गस्यैवं द्विमात्रता ॥ २८ ॥

रङ्ग की एक मात्रा हृदय में, आधी मात्रा मूर्धा में और आधी मात्रा नासिका में उच्चरित होती है । अत एव रङ्ग की द्विमात्रिकता सिद्ध है ॥ २८ ॥

हृदयादुत्करे तिष्ठन् कांस्येन समनुस्वरन् ।
मार्दवं च द्विमात्रं च जघन्वाँ इति निदर्शनम् ॥ २९ ॥

हृदय से हस्तपरिमित ऊर्ध्वदेश में (= शिर तक) व्याप्त रङ्ग की ध्वनि कांस्यपात्र की ध्वनि की तरह मृदु और दीर्घ होनी चाहिए । यथा 'जघन्वाँ उ' (ऋ० सं० १।५२।८) ॥ २९ ॥

मध्ये तु कम्पयेत्कम्पमुभौ पार्श्वौ समौ भवेत् ।
सरङ्गं कम्पयेत्कम्पं रथ्यो वेति निदर्शनम् ॥ ३० ॥

'कम्प'[1] स्वर का उच्चारण मध्य में कम्पन और उसके आदि तथा अन्त भागों में साम्य (= कम्पनाभाव) के साथ करना चाहिए । यदि 'कम्प' स्वर 'रङ्ग' से युक्त हो तो उसका उच्चारण भी इसी प्रकार करना चाहिए । इसका उदाहरण है 'रथ्यो वयस्वतः' (ऋ० सं० ५।५४।१३) ॥ ३० ॥

---

१ 'कम्प' ऋग्वेद में सुप्रसिद्ध है । जात्य, अभिनिहित, क्षैप्र और प्रश्लिष्ट स्वरितों में ह्रस्व स्वर की प्रथम अर्धमात्रा और दीर्घ स्वर की पूर्वार्द्ध एक मात्रा उदात्त होती है (ऋक्प्राति० ३।४) और अन्तिमार्ध की आधी या एक मात्रा अनुदात्त । अन्तिमार्ध का उच्चारण उदात्तवत् (ऋक्प्राति० ३।५) होता है यदि उस स्वरित के बाद कोई उदात्त या स्वरित स्वर न हो (ऋक्प्राति०–३।६) । अतः यदि स्वरित स्वर के बाद उदात्त या स्वरित का उच्चारण करना होता है तो पूर्ववर्त्ती स्वरित के उत्तरार्द्ध अनुदात्त का उच्चारण करने में हुये असौविध्य के कारण उस अनुदात्त का सस्वर उच्चारण करना पड़ता है । इसी स्वरा को या स्वरित उच्चारित अनुदात्त स्वर को 'कम्प' कहते हैं ।

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः ।
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३१ ॥

वर्णों का उच्चारण इस प्रकार करना चाहिये जिससे वे न तो अव्यक्त रहें और न पीड़ित (= कर्कश), क्योंकि वर्णों के उचित उच्चारण से उच्चारयिता ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥ ३१ ॥

गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः ।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ॥ ३२ ॥

संगीतपूर्वक; शीघ्रता से; शिर को हिलाते हुए: जो जैसा लिखा हो उसे उसी रूप में अथवा स्वलिखित[1] को; अर्थ को समझे बिना और अत्यन्त सङ्कुचित (= शिथिल) कण्ठ से वर्णों का उच्चारण करने वाले अधम उच्चारयिता हैं ॥ ३२ ॥

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ॥ ३३ ॥

इसके विपरीत, माधुर्य, अक्षरों की सुव्यक्तता, पदच्छेद, सुस्वरता (= उदात्तादि स्वरों का यथावत् उच्चारण) धैर्य (= गाम्भीर्य अथवा मन्दगति) और लयसम्पन्नता—ये छह पाठकों के गुण हैं ॥ ३३ ॥

शङ्कितं भीतमुद्घुष्टमव्यक्तमनुनासिकम् ।
काकस्वरं शिरसिगं तथा स्थानविवर्जितम् ॥ ३४ ॥
उपांशु दष्टं त्वरितं निरस्तं विलम्बितं गद्गदितं प्रगीतम् ।
निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन्न दीनं न तु सानुनास्यम् ॥३५॥

संदिग्धरूप में, भयातुर होकर, विषम स्वर में (= एक पद के कुछ वर्णों का मन्द, कुछ का मध्यम और कुछ का तार स्वर में अथवा आवश्यक न होने

१. लेख चाहे दूसरे का हो या अपना—इसमें अशुद्धि की पूरी सम्भावना बनी रहती है । इसीलिए पाठ में भी अशुद्धि की सम्भावना से इसका प्रतिषेध किया गया जान पड़ता है ।

पर भी तार स्वर में), अस्पष्ट रूप में, अनुनासिक रूप में, काक के स्वर के समान कर्कश स्वर में, अनावश्यक रीति से मूर्धा को आहत कर, उचित उच्चारण-स्थान से भिन्न स्थान से, अत्यन्त मन्द स्वर में (जिससे श्रोता तक ध्वनि न पहुँच सके), सन्दष्ट, अर्थात् जबड़ों को नीचा करके, अत्यन्त शीघ्रता से, उच्चारणस्थान और करणों का अपकर्ष करके, अतिविलम्ब से, गद्गदित स्वर में (=तुतला कर), गाने की तरह, उच्चारणस्थान का अनावश्यक संकोच करके, जिह्वामूल में ही दबाते हुए (=बीच-बीच में पद अथवा वर्ण को व्यक्त किए विना ही), दीनभाव से तथा व्यर्थ अनुनासिकत्वयुक्त करके वर्णों का उच्चारण कदापि न करे[1] ॥ ३४–३५ ॥

प्रातः पठेन्नित्यमुरःस्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन ।
मध्यंदिने कण्ठगतेन चैव चक्राह्वसंकूजितसन्निभेन ॥३६॥

प्रातःसवन कर्म में हृदय-स्थित (=हृदयोद्भूत) स्वर में सिंह के नाद के समान और माध्यन्दिन सवन में कण्ठगत स्वर में चकवे के शब्द के समान श्रूयमाण वर्णों का उच्चारण करना चाहिये ॥ ३६ ॥

तारं तु विद्यात्सवनं तृतीयं शिरोगतं तच्च सदा प्रयोज्यम् ।
मयूरहंसान्यभृतस्वराणां तुल्येन नादेन शिरःस्थितेन ॥३७॥

सायंसवन में मयूर, हंस और कोयल के शब्द के समान श्रूयमाण मूर्धावस्थित वर्णों का तार स्वर में ही उच्चारण करना चाहिए ॥ ३७ ॥

अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषन्नेमस्पृष्टाः शलः स्मृताः ।
शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ता निबोधानुप्रदानतः ॥ ३८ ॥

अच् को अस्पृष्ट (अर्थात् स्पर्शविहीन विवृत-नामक) आभ्यन्तरप्रयत्न से, यण् को ईषत्-स्पृष्ट (और ईषद्-विवृत) से; शल् को अर्धस्पृष्ट (तथा अर्धविवृत) से और शेष हल् को स्पृष्ट से युक्त मानना चाहिये ॥ ३८ ॥

---

१. इस प्रसङ्ग में कुछ गुण-दोषों की पुनरुक्ति उनके उपादान-हान पर बल देने के लिये की गई है ।

अमोऽनुनासिका नह्वौ नादिनो हझषः स्मृताः ।
ईषन्नादा यणो जश्च श्वासिनस्तु खफादयः ॥ ३९ ॥
ईषच्छ्वासांश्चरो विद्याद् गोर्धामैतत्प्रचक्षते ।
दाक्षीपुत्रपाणिनिना येनेदं व्यापितं भुवि ॥ ४० ॥

हकार और रेफ से भिन्न अम्[1] (= ञ, म, ङ, ण, और न) को अनुनासिकत्व से युक्त; हकार, झकार और षकार को नाद (और संवार तथा घोष) से युक्त; यण् और जस् को ईषन्नाद (संवार और घोष) से युक्त तथा ख, फ, छ, ठ और थ को श्वास (विवार और अघोष) से युक्त समझना चाहिए। दाक्षी-पुत्र पाणिनि द्वारा प्रवर्तित तथा समस्त विश्व को व्याप्त करने वाले इस शास्त्र को वर्णतत्त्ववेत्ता शब्दों का स्थान (= आकर) कहते हैं ॥ ३९-४० ॥

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥ ४१ ॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४२ ॥

छन्दःशास्त्र को वेद-पुरुष के पाद, कल्पशास्त्र को हाथ, ज्योतिःशास्त्र को चक्षु, निरुक्तशास्त्र को श्रोत्र, शिक्षाशास्त्र को घ्राण, और व्याकरणशास्त्र को मुख कहा गया है। अतः साङ्ग-वेदाध्ययन कर ही अध्येता ब्रह्मलोक को प्राप्त कर वहाँ सम्मानित होता है ॥ ४१-४२ ॥

उदात्तमाख्याति वृषोऽङ्गुलीनां प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्धा ।
उपान्तमध्ये स्वरितं धृतं च कनिष्ठिकायामनुदात्तमेव ॥ ४३ ॥

तर्जनी के मूल से सम्बद्ध अग्रभाग वाला अङ्गुलिश्रेष्ठ—अङ्गुष्ठ सामवेदाश्रित उदात्त स्वर को, अनामिका के मध्य भाग में संसक्त अङ्गुष्ठ स्वरित को और कनिष्ठा के मध्य भाग में संसक्त अङ्गुष्ठ अनुदात्त को प्रकट करता है ॥ ४३ ॥

---

१. वस्तुतः यहाँ अम् प्रत्याहार ही उचित है। अतएव मूल में भी "अमोऽनु-नासिकाः" पढ़ना चाहिए।

उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यात्प्रचयं मध्यतोऽङ्गुलिम् ।
निहतं तु कनिष्ठिक्यां स्वरितोपकनिष्ठिकाम् ॥ ४४ ॥

तर्जनी को उदात्त का, मध्यमा को प्रचय का, कनिष्ठिका को अनुदात्त का और अनामिका को स्वरित का सूचक समझना चाहिए ॥ ४४ ॥

अन्तोदात्तमाद्युदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम् ।
मध्योदात्तं स्वरितं द्व्युदात्तं त्र्युदात्तमिति नव पदशय्या ॥ ४५॥

स्वरों के आश्रय नौ प्रकार के पद होते हैं—अन्तोदात्त, आद्युदात्त, उदात्त, अनुदात्त, नीचस्वरित, मध्योदात्त, स्वरित द्व्युदात्त और त्र्युदात्त ॥ ४५ ॥

अग्निः सोमः प्र वो वीर्यं हविषां स्वर्बृहस्पतिरिन्द्राबृहस्पती ।
अग्निरित्यन्तोदात्तं सोम इत्याद्युदात्तं
प्रेत्युदात्तं वइत्युदात्तं वीर्यं नीचस्वरितम् ॥४६॥
हविषां मध्योदात्तं स्वरिति स्वरितम् ।
बृहस्पतिरिति द्व्युदात्तमिन्द्राबृहस्पती इति त्र्युदात्तम् ॥ ४७ ॥

"अग्निः सोमः प्रः वो वीर्यम् हविषाम् स्वः बृहस्पतिः इन्द्राबृहस्पती" क्रमशः उक्त नवविध पदों के उदाहरण हैं । इन में 'अग्निः' अन्तोदात्त पद है, 'सोमः' आद्युदात्त, 'प्र' उदात्त, 'वः' अनुदात्त, 'वीर्यम्' नीचस्वरित, 'हविषाम्' मध्योदात्त, 'स्वः' स्वरित, 'बृहस्पतिः' द्व्युदात्त और 'इन्द्राबृहस्पती' त्र्युदात्त पद हैं ॥४६–४७॥

---

१. 'अग्निः' पद अव्युत्पत्तिपक्ष में 'फिषः' इस सूत्र से अथवा घृतादित्वात् अन्तोदात्त है, व्युत्पत्तिपक्ष में प्रत्यय स्वर से । 'सोमः' पद 'वृषादीनां च' सूत्र से आद्युदात्त है । 'प्र' शब्द निपातत्वप्रयुक्त आद्युदात्त है । एक ही स्वर से युक्त होने के कारण इसका सर्वोदात्तत्व स्पष्ट है । 'वः' 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' के अनुसार अनुदात्त है । 'वीर्यम्' यह पद 'बिल्वभक्ष्यवीर्याणि छन्दसि' (फिट्सू० ७७) से अन्तस्वरित—(नीचस्वरित) है । 'हविषाम्' इस पद में हविस् शब्द फिट्स्वर से अन्तोदात्त है, आम्विभक्ति 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' से अनुदात्त होकर पश्चात् 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' के अनुसार स्वरित हो जाती है । इस प्रकार इस

अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो मूर्ध्न्युदात्त उदाहृतः।
स्वरितः कर्णमूलीयः सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः ॥ ४८ ॥

अनुदात्त स्वर का स्थान हृदय को, उदात्त का मूर्धा को, स्वरित का कर्णमूल को और प्रचय (= स्वरितोत्तरवर्त्ती अनुदात्त) का समस्त मुख (नासाग्रभाग से तात्पर्य है) को समझना चाहिए। तदनुसार तत्तत्स्थान में तत्तत् स्वर के उच्चारण के समय हस्तसञ्चार करना चाहिए ॥ ४८ ॥

चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रं त्वेव वायसः।
शिखी रौति त्रिमात्रं तु नकुलस्त्वर्धमात्रकम् ॥ ४९ ॥

चाष (नीलकण्ठ) पक्षी का एकमात्राकालिक, काक का द्विमात्राकालिक, मयूर का त्रिमात्राकालिक और नकुल (= नेवला) का अर्धमात्राकालिक वर्णोच्चारण प्रसिद्ध है ॥ ४९ ॥

कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम्।
न तस्य पाठे मोक्षोऽस्ति पापाहेरिव किल्बिषात् ॥ ५० ॥
सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नाय्यं सुव्यवस्थितम्।
सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ॥ ५१ ॥

आचारविहीन शिक्षक से शिक्षित (वेद) शास्त्र निःसत्त्व, अशुद्धवर्णयुक्त और विकलाङ्ग होता है। अत एव उस शास्त्र का पाठ करने वाले को पाप से उसी प्रकार मोक्ष नहीं मिलता जिस प्रकार दुष्ट सर्प से आक्रान्त व्यक्ति को उससे मोक्ष नहीं मिलता ॥ ५० ॥

पद के 'वि' के इकार के उदात्तत्व के कारण यह पद मध्योदात्त है। 'स्वः' पद 'न्यङ्स्वरौ स्वरितौ' (फिट्सूत्र ७४) से स्वरित है। 'बृहस्पतिः' पद द्व्युदात्त है, क्योंकि 'उभे वनस्पत्यादिषु युगपत्' सूत्र से दोनों पदों—'बृहत्' और 'पतिः' का आद्युदात्तत्व विहित है। 'इन्द्राबृहस्पती' यह पद त्र्युदात्त है, इन्द्र पद का इकार और बृहस्पति पद के ऋकार तथा पकारोत्तरवर्ती अकार के उदात्त होने से देवताद्वन्द्व समास में उभयपदप्रकृतिस्वरत्व विहित है।

इसके विपरीत, सदाचारनिष्ठ आचार्य से सम्प्राप्त शास्त्र सुस्पष्ट, सम्प्रदायशुद्ध और सुव्यवस्थित होता है। इस प्रकार का वेदशास्त्र सुकण्ठ से सुस्वर उच्चारण किए जाने पर सुशोभित होता है ॥ ५१ ॥

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥५२॥

स्वर तथा वर्ण से हीन मन्त्र मिथ्याप्रयुक्त होने के कारण अपने विवक्षित अर्थ को प्रकट नही कर पाता अपि तु वह वाग्वज्र बनकर यजमान का विनाश कर देता है। इसका उदाहरण स्वरापराधकृत 'इन्द्रशत्रु'[1] पद का उच्चारण है ॥ ५२ ॥

अनक्षरमनायुष्यं विस्वरं व्याधिपीडितम्।
अक्षता शस्त्ररूपेण वज्रं पतति मस्तके ॥ ५३ ॥

वेद वर्ण-दुष्ट होने पर यजमान को अल्पायु बना देता है, स्वर-विहीन होने पर यजमान को रोगी बना देता है। इस प्रकार का वज्रभूत वेदशास्त्र अप्रतिहत शस्त्र के रूप में यजमान के मस्तक पर गिरकर उसे विनष्ट कर देता है ॥ ५३ ॥

हस्तहीनं तु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम्।
ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति ॥ ५४ ॥

---

१. त्वष्टा नामक एक असुर का एक पुत्र था विश्वरूप। उसके तीन शिर थे। उसकी कठोर तपश्चर्या से क्षुब्ध इन्द्र ने उसे मार डाला। इस पर त्वष्टा बहुत ही क्रुद्ध हुआ और इन्द्र का वध करने वाले 'वृत्र' नामक पुत्र की कामना से उसने एक आभिचारिक यज्ञ किया। उसमें 'इन्द्रशत्रुविर्विर्धस्व' इस मन्त्र से ऋत्विजों ने हवन किया। 'इन्द्रशत्रु' शब्द 'इन्द्रः शत्रुर्यस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास से यदि निष्पन्न हो तो आद्युदात्त (=इन्द्र के इकार का उदात्तत्व) होगा और यदि 'इन्द्रस्य शत्रुः' इस विग्रह में षष्ठीसमास से निष्पन्न हो तो अन्तोदात्त (='त्रु' के उकार का उदात्तत्व, शेष का अनुदात्तत्व) होगा। ऋत्विजों का अभीष्ट तो षष्ठीसमास-व्युत्पन्न इन्द्रशत्रु शब्द का उच्चारण था, परन्तु भ्रम से उन्होंने आद्युदात्त पद का उच्चारण कर दिया। इस स्वरदोष के कारण 'वृत्त' का इन्द्र ही शत्रु (=घातक) हो गया। यह स्वरदोष का शास्त्र में सुप्रसिद्ध उदाहरण है।

जो व्यक्ति पूर्ववर्णित विधि के अनुकूल हस्त द्वारा स्वरों का निर्देश किए बिना ही वेदों का पाठ करता है वह तेज—ऋग्यजुःसामवेदाग्नि—से जल कर नीच योनि में जन्म लेता है ॥ ५४ ॥

हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम् ।
ऋग्यजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ५५ ॥

इसके विपरीत, जो व्यक्ति विधिवत् हस्तसञ्चारपूर्वक वेदपाठ करता है वह ऋग्यजुःसामवेद-स्वरूप ज्योति से परिभुत होकर ब्रह्मलोक में सम्मानित होता है ॥ ५५ ॥

शङ्करः शाङ्करीं प्रादाद्दाक्षीपुत्राय धीमते ।
वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचमिति स्थितिः ॥ ५६ ॥

भगवान् शङ्कर ने समस्त वाङ्मय से सार निकाल कर इस, शाङ्करी दिव्य वाणी का दाक्षीपुत्र पाणिनि को उपदेश दिया है—यही इस शास्त्र के बारे में वास्तविकता है ॥ ५६ ॥

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥ ५७ ॥

भगवान् शङ्कर से इस अक्षर-समाम्नाय को प्राप्त कर जिन महर्षि पाणिनि ने सम्पूर्ण—सर्वाङ्गपूर्ण व्याकरणशास्त्र का प्रवचन किया है उन्हें प्रणाम हो ॥ ५७ ॥

येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः ।
तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः ॥ ५८ ॥

जिन्होंने जनसाधारण की वाणी को साधुशब्दस्वरूप निर्मल जल से प्रक्षालित किया और अज्ञानान्धकार को साधुशब्द-स्वरूप परम-ज्योति से नष्ट कर दिया है उन महर्षि पाणिनि को प्रणाम हो ॥ ५८ ॥

अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै पाणिनये नमः ॥ ५९ ॥

जिन्होने अज्ञानान्ध जीवलोक के नेत्रों को ज्ञानाञ्जनशलाका द्वारा उन्मीलित किया है उन महर्षि पाणिनि को प्रणाम हो ॥ ५९ ॥

त्रिनयनमुखनिःसृतामिमां
य इह पठेत्प्रयतः सदा द्विजः।
स भवति धनधान्य(पशुपुत्र)कीर्तिमा-
नतुलं च सुखं समश्नुते दिवि(इति दिवीति) ॥ ६० ॥

त्रिलोचन भगवान् शङ्कर के मुख से निस्सृत इस शिक्षा-शास्त्र को जो द्विज नियमपूर्वक सर्वदा पढ़ता है वह धन-धान्य-कीर्त्ति से सम्पन्न होकर स्वर्गलोक में अतुलनीय सुख प्राप्त करता है ॥ ६० ॥

अथ शिक्षामात्मोदात्तश्च हकारं स्वराणां यथा
गीत्यचोस्पृष्टोदात्तं चापस्तु शङ्कर एकादश ॥ ६१ ॥

इस शिक्षा में 'अथ शिक्षाम्...' से प्रथम, 'आत्मा बुद्ध्या' से द्वितीय, 'उदात्तश्चानुदात्तश्च' से तृतीय, 'हकारं पञ्चमैर्युक्तम्' से चतुर्थ, 'स्वराणामूष्मणाञ्चैव' से पञ्चम, 'यथा सौराष्ट्रिका' से षष्ठ, 'गीती शीघ्री' से सप्तम, 'अचोऽस्पृष्टाः' से अष्टम, 'उदात्तमाख्याति' से नवम, 'चापस्तु' से दशम और 'शङ्करः शाङ्करीं प्रादात्' से एकादश खण्ड का आरम्भ हुआ है[1] ॥ ६१ ॥

संक्षिप्य विवृता शिक्षा पाणिनीयतयोदिता।
श्रीनारायणमिश्रेण बालान् शिक्षयितुं सुखम् ॥
मासि भाद्रपदे शुक्ले दले षष्ठ्यां समापिता।
'आभा' सुता च वृत्तिश्च काश्यां शून्यभृता सता ॥

इति सवृत्तिः पाणिनीयशिक्षा समाप्ता।

---

१. इससे स्पष्ट है कि इस शिक्षा में प्रकृत संग्रह-पद्य को लेकर के ५६ पद्य होने चाहिये। किन्तु सम्प्रति ६१ पद्य मिलते हैं। अतः इनमें पाँच पद्यों को प्रक्षिप्त होना चाहिये। सम्भवतः प्रकृत संस्करण के २८, ३४, ४४, ५२ और ५४ पद्य प्रक्षिप्त हैं। वस्तुतः संग्रहवाक्य का पद्य होना भी संदिग्ध है।

अथ गणपाठः

प्रथमोऽध्यायः

सर्वादीनि सर्वनामानि । १ । १ । २७ ॥ सर्व विश्व उभ उभय डतर डतम अन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सम सिम । पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् । स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् । अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः । त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम् ॥ **इति सर्वादिः** ॥ १ ॥

स्वरादिनिपातमव्ययम् । १ । १ । ३७ ॥ स्वर् अन्तर् प्रातर्—**अन्तोदात्ताः** । पुनर् सनुतर् उच्चैस् नीचैस् शनैस् ऋधक् ऋते युगपत् आरात् (अन्तिकात्) पृथक्—**आद्युदात्ताः** । ह्यस् श्वस् दिवा रात्रौ सायम् चिरम् मनाक् ईषत् (शश्वत्) जोषम् तूष्णीम् वहिस् (अधस्) अवस् समया निकषा स्वयम् मृषा नक्तम् नञ् हेतौ (हे है) इद्धा अद्धा सामि—**अन्तोदात्ताः** । वत्—ब्राह्मणवत् क्षत्रियवत् , सना सनत् सनात् उपधा तिरस्—**आद्युदात्ताः** । अन्तरा—**अन्तोदात्तः** । अन्तरेण (मक्) ज्योक् (योक् नक्) कम् शम् सहसा (श्रद्धा) अलम् स्वधा वषट् विना नाना स्वस्ति अन्यत् अस्ति उपांशु क्षमा विहायसा दोषा मृधा दिष्टया वृथा मिथ्या । **क्त्वातोसुन्कसुनः** । **कृन्मकारसंध्यक्षरान्तोऽव्ययीभावश्च** । पुरा मिथो मिथस् प्रायस् मुहुस् प्रवाहुकम् प्रवाहिका आर्यहलम् अभीक्षणम् साकम् सार्धम् । (सत्रम् समम्) नमस् हिरुक् । **तसिलादयस्तद्धिता एधाच्पर्यन्ताः** (५ । ३ । ७–४६) **शस्तसी कृत्वसुच् सुच् आच्थालौ** । **च्व्यर्थाश्च** (अथ) अम् आम् प्रताम् प्रतान् प्रशान् । **आकृतिगणोऽयम्** । तेनान्येऽपि । तथाहि—माङ् श्रम् कामम् (प्रकामम्) भूयस् परम् साक्षात् साचि (सावि) सत्यम् मंक्षु सम्वत् अवश्यम् सपदि प्रादुस् आविस् अनिशम् नित्यम् नित्यदा सदा अजस्रम् सन्ततम् उषा ओम् भूर् भुवर् झटिति तरसा सुष्ठु कु अञ्जसा अ मिथु (अमिथु) विथक् भाजक् अन्वक् चिराय चिरम् चिररात्राय चिरस्य चिरेण चिरात्

अस्तम् आनुषक् अनुषक् अनुषट् अम्नस् (अम्भस्) अम्नर् (अम्भर्) स्थाने वरम् दुष्ठु बलात् शु अर्वाक् शुदि वदि इत्यादि । तसिलादयः प्राक्पाशपः (६ । ३ । ३६) शस्प्रभृतयः प्राक्समासान्तेभ्यः (५ । ४ । ४३–६८) । मान्तः । कृत्वोर्थाः । तशिवती । नानाञाविति ॥ इति स्वरादिः ॥ २ ॥

चादयोऽसत्त्वे । १ । ४ । ५७ ॥ च वा ह अह एव एवम् नूनम् शश्वत् युगपत् भूयस् सूपत् कूपत् कुवित् नेत् चेत् चण कच्चित् यत्र तत्र नह हन्त माकिम् माकीम् माकिर् नकिम् नकिर् आकीम् माङ् नञ् तावत् यावत् त्वा त्वै द्वै न्वै रै (रे) श्रौषट् वौषट् स्वाहा स्वधा ओम् तथा तथाहि खलु किल अथ सुष्ठु स्म अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ आदह उञ् उकञ् वेलायाम् मात्रायाम् यथा यत् तत् किम् पुरा बधा (वध्वा) धिक् हाहा हेहै (हहै) पाट् प्याट् आहो उताहो हो अहो नो (नौ) अथो ननु मन्ये मिथ्या असि ब्रूहि तु नु इति इव वत् वात् वन वत (सम् वशम्, शिकम् दिकम्) सनुकम् शंवट् (छम्वट्) शङ्के शुकम् खम् सनात् सनुतर् नहिकम् सत्यम् ऋत्तम् अद्धा इद्धा नोचेत् नचेत् नहि जातु कथम् कुतः कुत्र अव अनु हा हे (है) आहोस्वित् शम् कम् खम् दिष्टचा पशु नट् सह (आनुषट्) आनुषक् अङ्ग फट् ताजक् भाजक् अये अरे वाट् (चाटु) कुम् खुम् घुम् अम् ईम् सीम् सिम् सि वै । उपसर्गविभक्तिस्वर-प्रतिरूपकाश्च निपाताः । **आकृतिगणोऽयम् ॥ इति चादयः ॥ ३ ॥**

प्रादयः । १ । ४ । ५४ । प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अति सु उद् अभि प्रति परि उप ॥ **इति प्रादयः ॥ ४ ॥**

ऊर्यादिच्विडाचश्च । १ । ४ । ६१ । ऊरी उररी तन्थी ताली आताली वेताली धूसी शकला शंसकला ध्वंसकला भ्रंशकला गुलगुधा सजुस् फलू फली विक्ली आक्ली आलोष्ठी कराली (केवाली केवासी सेवासी पर्याली) शेवाली वर्षाली अत्यूमशा वश्मसा मश्मसा मसमसा वौषट् श्रौषट् वषट् स्वाहा स्वधा पापी प्रादुस् श्रत् आविस् ॥ **इत्यूर्यादयः ॥ ५ ॥**

साक्षात्प्रभृतीनि च । १ । ४ । ७४ । साक्षात् मिथ्या चिन्ता भद्रा रोचना आस्था अमा अद्धा प्राजर्या प्राजरुहा बीजर्या बीजरुहा संसर्या अर्थे लवणम्

उष्णम् शीतम् उदकम् आर्द्रम् अग्नौ वशे विकसने विहसने प्रतपने प्रादुस् नमस्। आकृतिगणोयम् ॥ इति साक्षात्प्रभृतयः ॥ ६ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च । २ । १ १७ । तिष्ठद्गु वहद्गु आयतीगवम् खलेयवम् खलेबुसम् लूनयवम् लूयमानयवम् पूतयवम् पूयमानयवम् संहृतयवम् संह्रियमाणयवम् संहृतबुसम् . संह्रियमाणबुसम् समभूमि समपदाति सुषमम् विषमम् दुःषमम् निःषमम् अपसमम् आयतीसमम् (प्रोढम्) पापसमम् पुण्यसमम् प्राह्णम् प्ररथम् प्रमृगम् प्रदक्षिणम् (अपरदक्षिणम्) सम्प्रति असंप्रति । इच्प्रत्ययः समासान्तः (५ । ४ । १२७–१२८) ॥ इति तिष्ठद्गुप्रभृतयः ॥ १ ॥

सप्तमी शौण्डैः । २ । १ । ४० । शौण्ड धूर्त कितव व्याड प्रवीण संवीतः अन्तर अधि पटु पण्डित कुशल चपल निपुण ॥ इति शौण्डादयः ॥ २ ॥

पात्रेसमितादयश्च । २ । १ । ४८ । पात्रेसमिताः पात्रेबहुलाः उदुम्बरमशकः उदुम्बरकृमिः कूपकच्छपः अवटकच्छपः कूपमण्डूकः कुम्भमण्डूकः उदपानमण्डूकः नगरकाकः नगरवायसः मातरिपुरुषः पिण्डीशूरः पितरिशूरः गेहेशूरः गेहेनर्दी गेहेक्ष्वेडी गेहेविजिती गेहेव्याडः गेहेमेही गेहेदाही गेहेदृप्तः गेहेधृष्टः गर्भेतृप्तः आखनिकवकः गोष्ठेशूरः गोष्ठेविजिती गोष्ठेक्ष्वेडी गोष्ठेपटुः गोष्ठेपण्डितः गोष्ठेप्रगल्भः कर्णेटिरिटिरा कर्णेचुरुचुरा । आकृतिगणोऽयम् । इति पात्रेसमितादयः ॥ ३ ॥

उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे । २ । १ । ३६ । व्याघ्र सिंह ऋक्ष ऋषभ चन्दन वृक वृष वराह हस्तिन् तरु कुञ्जर रुरु पृषत् पुण्डरीक पलाश कितव ॥ इति व्याघ्रादयः । आकृतिगणोऽयम् । तेन मुखपद्मम् मुखकमलम् करकिसलयम् पार्थिवचन्द्रः इत्यादि ॥ ४ ॥

श्रेण्यादयः कृतादिभिः । २ । १५९ । १—श्रेणि एक पूग मुकुन्द राशि निचय विषम निधान पर इन्द्र देव मुण्ड भूत श्रमण वदान्य अध्यापक अभिरूपक ब्राह्मण क्षत्रिय (विशिष्ट) पटु पण्डित कुशल चपल निपुण कृपण ॥ इति श्रेण्यादयः ॥ ५ ॥

२—कृत मित मत भूत उक्त (युक्त) समाज्ञात समाम्नात समाख्यात संभावित (संसेवित) अवधारित अवकल्पित निराकृत उपकृत उपाकृत

(दृष्ट कलित दलित उदाहृत विश्रुत उदित) । आकृतिगणोऽयम् ॥ इति कृतादयः ॥ ६ ॥

[**शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानम्**–२ । १ । ६० । शाकपार्थिव कुतपसौश्रुत अजातौल्वलि । **आकृतिगणोऽयम्** । कृतापकृत भुक्तविभुक्त पीतविपीत गतप्रत्यागत यातानुयात क्रयाक्रयिका पुटापुटिका फलाफलिका मानोन्मानिका ॥ **इति शाकपार्थिवादिः ॥ ७ ॥**]

कुमारः श्रमणादिभिः । २ । १ । ७० । श्रमणा प्रव्रजिता कुलटा गर्भिणी तापसी दासी बन्धकी अध्यापक अभिरूपक पण्डित पटु मृदु कुशल चपल निपुण ॥ **इति श्रमणादयः** ॥ ८ ॥

मयूरव्यंसकादयश्च । २ । १ । ७२ । मयूरव्यंसक छात्रव्यंसक कम्बोजमुण्ड यवनमुण्ड । छन्दसि । हस्तेगृह्य (हस्तगृह्य) पादेगृह्य (पादगृह्य) लाङ्गूलेगृह्य (लाङ्गूलगृह्य) पुनर्दाय । एहीडादयोऽन्यपदार्थे । एहीडम् एहियवम् एहिवाणिजा क्रिया अपेहिवाणिजा प्रेहिवाणिजा एहिस्वागता अपेहिस्वागता एहिद्वितीया अपेहिद्वितीया प्रेहिद्वितीया एहिकटा अपेहिकटा प्रेहिकटा आहरकरटा प्रेहिकर्दमा प्रोहकर्दमा विधमचूडा उद्धमचूडा (उद्धरचूडा आहरचेला) आहरवसना (आहरसेना) आहरवनिता (आहरविनता) कृन्तविचक्षणा उद्धरोत्सृजा उद्धरावसृजा उद्धमविधमा उत्पचनिपचा उत्पतनिपता उच्चावचम् उच्चनीचम् आचोपचम् आचपराचम् (नखप्रचम्) निश्चप्रचम् अकिञ्चन स्नात्वाकालक पीत्वास्थिरक भुक्त्वासुहित प्रोष्यपापीयान् उत्पत्यपाकला निपत्यरोहिणी निपण्णश्यामा अपेहिप्रघसा एहिविघसा इहपञ्चमी इहद्वितीया । जहि कर्मणा बहुलमाभीक्ष्ण्ये कर्तारं चाभिदधाति । जहिजोडः (जहिजोडम्) जहिस्तम्बम् (जहिस्तम्बः उज्जहिस्तम्बम्) आख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये । अश्नीतपिबता पचतभृज्जता खादतमोदता खादतवमता खादतचमता आहरनिवपा आहरनिष्किरा (आवपनिष्करा) उत्पचविपचा भिन्धिलवणा कृन्धिविचक्षणा पचलवणा पचप्रकूटा । **आकृतिगणोऽयम्** । तेन–अकुतोभयः कान्दिशीकः (कान्देशीकः) आहोपुरुषिका अहमहमिका यदृच्छा एहिरेयाहिरा उन्मृजावमृजा द्रव्यान्तरम् अवश्यकार्यम् ॥ **इति मयूरव्यंसकादयः** ॥ ९ ॥

याजकादिभिश्च । २ । २ । ९ ॥ याजक पूजक परिचारक परिवेषक

(परिषेचक) स्नापक अध्यापक उत्साह उद्वर्तक होतृ भर्तृ रथगणक पत्तिगणक ॥ इति याजकादयः ॥ १० ॥

राजदन्तादिषु परम् । २ । २ । ३१ ॥ राजदन्तः अग्रेवणम् लिप्तवासितम् नग्नमुषितम् सिक्तसंसृष्टम् मृष्टलुञ्चितम् अवक्लिन्नपक्वम् अर्पितोतम् (अर्पितोप्तम्) उप्तगाढम् उलूखलमुसलम् तण्डुलकिण्वम् दृषदुपलम् आरड्वायनि (आरग्वायनबन्धकी) चित्ररथबाह्लीकम् अवन्त्यश्मकम् शूद्रार्यम् स्नातकराजानौ विष्वक्सेनार्जुनौ अक्षिभ्रुवम् दारगवम् शब्दार्थौ धर्मार्थौ कामार्थौ अर्थशब्दौ अर्थधर्मौ अर्थकामौ वैकारिमतम् गाजवाजम् (गोजवाजम्) गोपालिधानपूलासम् (गोपालधानीपूलासम्) पूलासकारण्डम् (पूलासककुरण्डम्) स्थूलासम् (स्थूलपूलासम्) उशीरबीजम् (जिज्ञास्थि) सिञ्जास्थम् (सिञ्जाश्वत्थम्) चित्रास्वाती (चित्रस्वाती) भार्यापती दम्पती जम्पती जायापती पुत्रपती पुत्रपशू केशश्मश्रू शिरोबिजु (शिरोबीजम्) शिरोजानु सर्पिर्मधुनी मधुसर्पिषी । (आद्यन्तौ) अन्तादी गुणवृद्धी वृद्धिगुणौ । इति राजदन्तादिः ॥ ११ ॥

वाहिताग्न्यादिषु । २ । २ । ३७ ॥ आहिताग्नि जातपुत्र जातदन्त जातश्मश्रु तैलपीत घृतपीत (मद्यपीत) ऊढभार्य गतार्थ ॥ आकृतिगणोऽयम् । तेन—गडुकण्ठ अस्युद्यत (अस्मुद्यत) दण्डपाणिप्रभृतयोऽपि ॥ इत्याहिताग्न्यादयः ॥ १२ ॥

कडाराः कर्मधारये । २ । २ । ३८ ॥ कडार गडुल खञ्ज खोड काण कुण्ठ खलति गौर वृद्ध भिक्षुक पिङ्ग पिङ्गुल (पिङ्गल) तड तनु (जठर) वधिर मठर कञ्ज वर्वर ॥ इति कडारादयः ॥ १३ ॥

[**नौकाकान्नशुकश्रृगालवर्जेषु २ । ३ । १७ ॥** नौ काक अन्न शुक श्रृगाल । इति नावादयः ॥]

[**प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् २ । ३ । १ । ८ ॥** प्रकृति प्राय गोत्र सम विषम विद्रोण पञ्चक साहस्र ॥ इति प्रकृत्यादयः ॥ १५ ॥]

गवाश्वप्रभृतीनि च । २ । ४ । ११ ॥ गवाश्वम् गवाविकम् गवैडकम् अजाविकम् (अजैडकम्) कुब्जवामनम् कुब्जकिरातम् पुत्रपौत्रम् श्वचण्डालम् स्त्रीकुमारम् दासीमाणवकम् शाटीपटीरम् शाटीप्रच्छदम् शाटीपट्टिकम् उष्ट्रखरम् उष्ट्रशशम् मूत्रशकृत् मूत्रपुरीषम् यकृन्मेदः मांसशोणितम् दर्भशरम् दर्भपूतीकम्,

अर्जुनशिरीषम् अर्जुनपुरुषम् तृणोपलम् (तृणोलपम्) दासीदासम् कुटीकुटम् भागवतीभागवतम् ॥ इति गवाश्वप्रभृतीनि ॥ १६ ॥

न दधिपयआदीनि । २ । ४ । १४ ॥ दधिपयसी सर्पिर्मधुनी मधुसर्पिषी ब्रह्मप्रजापती शिववैश्रवणौ स्कन्दविशाखौ परिव्राजककौशिकौ (परिव्राट्-कौशिकौ) प्रवर्ग्योपसदौ शुक्लकृष्णौ इध्माबर्हिषी दीक्षातपसी (श्रद्धातपसी मेधातपसी) अध्ययनतपसी उलूखलमुसले आद्यवसाने श्रद्धामेधे ऋक्सामे वाङ्मनसे ॥ इति दधिपयआदीनि ॥ १७ ॥

अर्धर्चाः पुंसि च । २ । ४ । ३१ ॥ अर्धर्च गोमय कषाय कार्षापण कुतप (कुसप कुणप) कपाट शङ्ख चक्र गूथ यूथ ध्वज कबन्ध पद्म गृह सरक कंस दिवस यूष अन्धकार दण्ड कमण्डलु मण्ड भूत द्वीप द्यूत चक्र धर्म कर्मन् मोदक शतमान यान नख नखर चरण पुच्छ दाडिम हिम रजत सक्तु पिधान सार पात्र घृत सैन्धव औषध आढक चषक द्रोण खलीन पात्रीव षष्टिक वारबाण (वारवारण) प्रोथ कपित्थ (शुष्क) शाल शील शुक्ल (शुल्क) शीधु कवच रेणु (ऋण) कपट शीकर मुसल सुवर्ण वर्ण पूर्व चमस क्षीर कर्ष आकाश अष्टापद मङ्गल निधन निर्यास जृम्भ वृत्त पुस्त बुस्त क्ष्वेडित शृङ्ग निगड (खल) मूलक मधु मूल स्थूल शराव नाल वप्र विमान मुख प्रग्रीव शूल वज्र कटक कण्टक (कर्पट) शिखर कल्क (वल्कल) नटमक (नाटमस्तक) वलय कुसुम तृण पङ्क कुण्डल किरीट (कुमुद) अर्बुद अंकुश तिमिर अश्राय भूषण इक्कस (इष्वास) मुकुल वसन्त तटाक (तडाग) पिटक विटङ्क विडङ्ग पिण्याक माष कोश फलक दिन दैवत पिनाक समर स्थाणु अनीक उपवास शाक कर्पास (विशाल) चपाल (चखाल) खण्ड दर विटप (रण बल मक) मृणाल हस्त आर्द्र हल (सूत्र) ताण्डव गाण्डीव मण्डप पटह सौध योध पार्श्व शरीर फल (छल) पुर (पुरा) राष्ट्र अम्बर बिम्ब कुट्टिम मण्डल (कुक्कुट) कुडप ककुद खण्डल तोमर तोरण मञ्चक पञ्चक पुङ्ख मध्य (बाल) छाल वल्मीक वर्ष वस्त्र वसु देह उद्यान उद्योग स्नेह स्तेन (स्तन स्वर) सङ्गम निष्क क्षेम शूक क्षत्र पवित्र (यौवन कलह) मालक (पालक) मूषिक (मण्डल वल्कल) कुज (कुञ्ज) विहार लोहित त्रिपाण भवन अरण्य पुलिन दृढ आसन ऐरावत शूर्प तीर्थ लोमन (लोमश) तमाल लोह दण्डक शपथ प्रतिसर दारु धनुष् मान वर्चस्क

कूर्च तण्डक मठ सहस्र ओदन प्रवाल शकट अपराह्ण नीड शकल तण्डुल ॥ इत्यर्धर्चादिः ॥ १८ ॥

पैलादिभ्यश्च । २ । ४ ५९ ॥ पैल शालङ्कि सात्यकि सात्यंकामि राहवि रावणि औदञ्चि औदन्नजि औदमेघि औदव्यज्रि (औदमज्जि) औदभृज्जि दैवस्थानि पैङ्गलोदायनि राहक्षति भौलिङ्गि राणि औदन्यि औद्‌गाहमानि औज्जिहानि औदशुद्धि तद्राजाच्चाणः (तद्राज) आकृतिगणोऽयम् । इति-पैलादिः ॥ १९ ॥

न तौल्वलिभ्यः । २ । ४ । ६१ । तौल्वलि धारणि पारणि रावणि दैलीपि दैवपि वार्कलि नैवति (नैवकि) दैवमित्रि (दैवमति) दैवयज्ञि चाफट्टकि वैल्वकि वैकि (वैङ्कि) आनुहारति (आनुराहति) पौष्करसादि आनुरोहति आनुति प्रादोहनि नैमिश्री प्राडाहति वान्धकि वान्वकि वैशोति आसिनासि आहिंसि आसुरि नैमिषि आमिवन्धकि पौष्पि कारेणुपालि वैकर्णि वैरकि वैहति ॥ इति तौल्वल्यादिः ॥ २० ॥

यस्कादिभ्यो गोत्रे । २ । ४ । ६३ । यस्क लह्य द्रुह्य अयस्थूण (अयः-स्थूण) तृणकर्ण सदामत्त कम्बलहार बहिर्योग पर्णाढक कर्णाढक पिण्डीजङ्घ वकसक्थ (वकसक्थ) विश्रि कुद्रि अजवस्ति मित्रयु रक्षोमुख जङ्घारथ उत्कास कटुक मथक (मन्थक) पुष्करट् (पुष्करसद्) विषपुट उपरिमेखल क्रोष्टुकमान (क्रोष्टुमाद) क्रोष्टुपाद क्रोष्टुमाय शीर्षमाय खरप पदक वर्षुक भलन्दन भडिल भण्डिल भडित भण्डित । एते यस्कादयः । २१ ।

न गोपवनादिभ्यः । २ । ४ । ६७ । गोपवन शैग्रु (शिग्रु) बिन्दु भाजन अश्वावतान श्यामक (श्योमाक) श्यामाक श्यापर्ण ॥ **विदाद्यन्तर्गणोऽयम्** (४।१।१०४) ॥ इति गोपवनादिः ॥ २२ ।

तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे । २ । ४ । ६८ । तिककितवाः वङ्खभण्डीरथाः उपकलमकाः पफकनरकाः वकनखगुदपरिणद्धाः उब्जककुभाः लङ्कशान्तमुखाः उत्तरशलङ्कटाः कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः भ्राष्ट्रककपिष्ठलाः अग्निवेशदशेरकाः ॥ इति तिककितवादयः ॥ २३ ॥

उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे । २ । ४ । ६९ । उपक लमक भ्रष्टक (भ्राष्ट्रक) कपिष्ठल कृष्णाजिन कृष्णसुन्दर चूडारक आडारक गडुक उदङ्क सुधायुक अवन्धक पिङ्गलक पिष्ट सुपिष्ट (सुपिष्ठ) मयूरकर्ण खरीजङ्घ

शलायल पतञ्जल पदञ्जल कठेरणि कुषीतक काशकृत्स्न (काशकृत्स्न) निदाघ कलशीकण्ठ दामकण्ठ कृष्णपिङ्गल कर्णक पर्णक जटिरक बधिरक जन्तुक अनुलोम अनुपद प्रतिलोम जपजग्ध प्रतान अनभिहित कमक वराटक लेखाभ्र कमन्दक पिञ्जूल वर्णक मसूरकर्ण मदाघ कबन्तक कमन्तक कदामत दामकण्ठ ॥ एते उपकादयः ॥ २४ ॥

तृतीयोऽध्यायः

भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः । ३ । १ । १२ । भृश शीघ्र चपल मन्द पण्डित उत्सुक सुमनस् दुर्मनस् अभिमनस् उन्मनस् रहस् रोहत् रेहत् संश्चत् तृपत् शश्वत् भ्रमत् वेहत् शुचिस् शुचिवर्चस् अण्डर वर्चस् ओजस् सुरजस् अरजस् ॥ एते भृशादयः ॥ १ ॥

लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् । ३ । १ । १३ । लोहित चरित नील फेन मद्र हरित दास मन्द ॥ लोहितादिराकृतिगणः ॥ २ ॥

सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम् । ३ । १ । १८ । सुख दुःख तृप्त कृच्छ्र अस्र आस्र अलीक प्रतीप करुण सोढ । इति सुखादीनि ॥ ३ ॥

कण्ड्वादिभ्यो यक् । ३ । १ । २७ । कण्डूञ् मन्तु हृणीङ् वल्गु असु (मनस्) महीङ् लाट् लेट् इरस् इरज् इरञ् उषस् उपस् वेट् मेधा कुषुभ (नमस्) मगध तन्तस् पम्पस् (पपस्) सुख दुःख (भिक्ष चरण चरम अवर) सपर अरर (अरर्) भिषज् भिष्णुज् (अपर आर) इषुध वरण चुरण तुरण भुरण गद्गद एला केला खेला (वेला शेला) लिट् लोट् (लेखा लेख) रेखा द्रवस् तिरस् अगद उरस् तरण (तरिण) पयस् सम्भूयस् सम्वर ॥ आकृतिगणोऽयम् ॥ इति कण्ड्वादिः ॥ ४ ॥

नन्दि[१]ग्रहि[२]पचा[३]दिभ्यो ल्युणिन्यचः । ३ । १ । १३४ ।

१—नन्दिवाशिमदिदूषिसाधिवर्धिशोभिरोचिभ्यो ण्यन्तेभ्यः संज्ञायाम् । नन्दनः वाशनः मदनः दूषणः साधनः वर्धनः शोभनः रोचनः । सहितपिदमः संज्ञायाम् । सहनः तपनः दमनः । जल्पनः रमणः दर्पणः संक्रन्दनः संकर्षणः संहर्षणः जनार्दनः यवनः मधुसूदनः विभीषणः लवणः चित्तविनाशनः कुलदमनः (शत्रुदमनः) । इति नन्द्यादिः । ५ ॥

२—ग्राही उत्साही उद्दासी उद्भासी स्थायी मन्त्री संमर्दी । रक्षश्रुवपशां नौ । निरक्षी निश्रावी निवापी निशायी । याचृव्याहृव्रजवदवसां प्रतिषिद्धानाम् ।

अयाची अव्याहारी अनव्याहारी अव्राजी अव्रादी अवासी। अचामचित्त-कर्तृकाणाम्। अकारी अहारी अविनायी (विशायी विपायी) विशयी विषयी देशे। विशयी विषयी देशः। अभिभावी भूते। अपराधी उपरोधी परिभवी परिभावी॥ इति ग्रहादिः॥ ६॥

३—पच वच वप वद चल पत नदट् भषट् प्लवट् चरट् गरट् तरट् चोरट् गाहट् सूरट् देवट् (दोषट्) जर (रज) मर (मद) क्षम (क्षप) सेव मेष कोप (कोष) मेधनर्त व्रण दर्श सर्प (दम्भ दर्प) जार भर श्वपच॥ पचादिराकृतिगणः॥ १७॥

[*कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम्* । ३ । २ । ५ । मूलविभुज नखमुच काकगुह कुमुद महीध्र कुध्र गिध्र॥ आकृतिगणोऽयम्॥ इति मूलविभुजादयः॥ ८॥]

[*पार्श्वादिषूपसंख्यानम्* । ३ । २ । १५ । पार्श्व उदर पृष्ठ उत्तान अव-मूर्धन्॥ इति पार्श्वादिः॥ ९॥]

भविष्यति गम्यादयः। ३ । ३ । ३॥ गमी आगमी भावी प्रस्थायी प्रति-रोधी प्रतियोधी प्रतिबोधी प्रतियोगी॥ एते गम्यादयः॥ १०॥

संपदादिभ्यः क्विप् ३ । ३ । ९४॥ संपद् विपद् आपद् प्रतिपद् परिषद्॥ एते संपदादयः॥ ११॥

षिद्भिदादिभ्योऽङ्। ३ । १०४॥ भिदा विदारणे। छिदा द्वैधीकरणे। विदा क्षिपा। गुहा गिर्योषध्योः। श्रद्धा मेधा गोधा। आरा शस्त्र्याम्। हारा। कारा बन्धने। क्षिया। तारा ज्योतिषि। धारा प्रपातने। रेखा चूडा पीडा वपा वसा मृजा। क्रपेः संप्रसारणं च, कृपा॥ इति भिदादिः॥ १२॥

भीमादयोऽपादाने। ३ । ४ । ७४॥ भीम भीष्म भयानक वहचर (वहचर) प्रस्कन्दन प्रपतन (प्रपतन) समुद्र स्रुव स्रुक् वृष्टि (दृष्टि) रक्षः संकसुक (शंकुसुक) मूर्ध्न खलति। आकृतिगणोऽयम्॥ इति भीमादिः॥१३॥

चतुर्थोऽध्यायः

अजाद्यतष्टाप्। ४ । १ । ४॥ अजा एडका कोकिला चटका अश्वा मूषिका बाला होडा पाका वत्सा मन्दा विलाता पूर्वापहाणा (पूर्वापहाणा) अपराप-हाणा। संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात्। सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्।

शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः । क्रुञ्चा उष्णिहा देवविशा ज्येष्ठा कनिष्ठा । मध्यमा पुंयोगेऽपि । मूलान्नञः । दंष्ट्रा ॥ एतेऽजादयः ॥ १ ॥

न षट्स्वस्रादिभ्यः । ४ । १ । १० ॥ स्वसृ दुहितृ ननान्दृ यातृ मातृ तिसृ चतसृ ॥ **इति स्वस्रादिः** ॥ २ ॥

नित्यं सपत्न्यादिषु । ४ । १ । ३५ ॥ समान एक वीर पिण्ड श्व (शिरी) भ्रातृ भद्र पुत्र । दासाच्छन्दसि ॥ **इति समानादिः** ॥ ३ ॥

षिद्गौरादिभ्यश्च । ४ । १ । ४१ ॥ गौर मत्स्य मनुष्य शृङ्ग पिङ्गल हय गवय मुकय ऋष्य (पुट तूण) द्रुण द्रोण हरिण कोकण (काकण) पटर उणक (आमल) आमलक कुवल विम्ब वदर फर्करक (कर्करक) तर्कार शर्कार पुष्कर शिखण्ड सलद शष्कण्ड सनन्द सुषम सुषव अलिन्द गडुल षाण्डश आढक आनन्द आश्वत्थ सृपाट आखुक (आपच्चिक) शष्कुल सूर्य (सूर्म) शूर्प सूच यूष (पूष) यूथ सूप मेथ वल्लक धातक सल्लक मालक मालत साल्वक वेतस वृक्ष (वृस) अतस (उभय) भृङ्ग मह मेह छेद पेश मेद श्वन् तक्षन् अनडुही अनडवाही । एषणः करणे । देह देहल काकादन गवादन तेजन रजन लवण औद्गाहमानि (आद्गाहमानि) गोतम (गौतम) (पारक) अयस्थूण (अयःस्थूण) भौरिकि भौलिकि भौलिङ्गि यान मेध आलम्बि आलजि आलब्धि आलक्षि केवाल आपक आरट नट नोट मूलाट शातन (पोतन) पातन पाठन (पानठ) आस्तरण अधिकरण अधिकार अग्रहायणी (आग्रहायणी) प्रत्यवरोहिणी (सेचन) सुमङ्गलात्संज्ञायाम् । अण्डर सुन्दर मण्डल मन्थर मङ्गल पट पिण्ड (षण्ड) उर्द गुर्द शम सूद औड (आर्द्र) ह्लद (ह्रद) पाण्ड (भाण्डल) भाण्ड (लोहाण्ड) कदर कन्दर कदल तरुण तलुन कल्माष बृहत् महत् (सोम) सौधर्म । रोहिणी नक्षत्रे । रेवती नक्षत्रे । (विकल) निष्कल पुष्कल । कटाच्छ्रोणिवचने । पिप्पल्यादयश्च । पिप्पली हरितकी (हरीतकी) कोशातकी शमी वरी शरी पृथिवी क्रोष्टु मातामह पितामह । **इति गौरादिः** ॥ ४ ॥

बह्वादिभ्यश्च । ४ । १ । ४५ । बहु पद्धति अञ्चति अङ्कति अंहति शकटि (शकति) शक्तिः शस्त्रे । शारि वारि राति राधि (शाधि) अहि कपि यष्टि मुनि । इतः प्राण्यङ्गात् । कृदिकारादक्तिनः । सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके । चण्ड अराल कृपण कमल विकट विशाल विशङ्कट भरुज ध्वज । चन्द्र-

भागान्नद्याम् (चन्द्रभागा नद्याम्) कल्याण उदार पुराग अहन् क्रोड नख खुर शिखा वाल शफ गुद ॥ आकृतिगणोऽयम् ॥ तेन—भग गल राग इत्यादि ॥ इति बह्वादयः ॥ ४ ॥

शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् । ४ । १ । ७३ । शार्ङ्गरव कापटव गौग्गुलव ब्राह्मण वैद गौतम कामण्डलेय ब्राह्मणकृतेय (आनिचेय) आनिधेय आशोकेय वात्स्यायन मौञ्जायन कैकस काप्य (काव्य) शैव्य एहि पर्येहि आश्मरथ्य औदपान अराल चण्डाल वतण्ड । भोगवद्गौरिमतोः संज्ञायां घादिषु (६ । ३ । ४३) नित्यं ह्रस्वार्थम् । नृनरयोर्वृद्धिश्च ॥ इति शार्ङ्गरवादिः ॥ ६ ॥

क्रौड्यादिभ्यश्च । ४ । १ । ८० । क्रौडि लाडि व्याडि आपिशलि आपक्षिति (चौपयत चैटयत वैटयत) सैकयत वैल्वयत सौधातकि । सूत युवत्याम् । भोज क्षत्रिये । यौतकि कौटि भौरिकि भौलिकि (शाल्मलि) शालास्थलि कापिष्ठलि गौकक्ष्य । इति क्रौड्यादिः ॥ ७ ॥

अश्वपत्यादिभ्यश्च । ४ । १ । ८४ । अश्वपति (ज्ञानपति) शतपति धनपति गणपति (स्थानपति यज्ञपति) राष्ट्रपति कुलपति गृहपति (पशुपति) धान्यपति धन्वपति (बन्धुपति धर्मपति) सभापति प्राणपति क्षेत्रपति ॥ इत्यश्वपत्यादिः ॥ ८ ॥

उत्सादिभ्योऽञ् । ४ । १ । ८६ । उत्स उदपान विकर विनद महानद महानस महाप्राण तरुण तलुन । वष्कयासे । पृथिवी (धेनु) पंक्ति जगती त्रिष्टुप् अनुष्टुप् जनपद भरत उशीनर ग्रीष्म पीलुकुण । उदस्थान देशे । पृषदंश भल्लकीय. रथन्तर मध्यंदिन बृहत् महत् सत्त्वत् कुरु पञ्चाल इन्द्रावसान उष्णिह् ककुभ् सुवर्ण देव । ग्रीष्मादच्छन्दसि ॥ इत्युत्सादिः ॥ ९ ॥

बाह्वादिभ्यश्च । ४ । १ । ९६ । बाहु उपबाहु उपवाकु निवाकु शिवाकु वटाकु उपनिन्दु (उपबिन्दु) वृषली वृकला चूडा बलाका मूषिका कुशला भगला (छगला) ध्रुवका (धुवका) सुमित्रा दुर्मित्रा पुष्करसद् अनुहरत् देवशर्मन् अग्निशर्मन् (भद्रशर्मन् सुशर्मन्) कुनामन् (सुनामन्) पञ्चन् सप्तन् अष्टन् । अमितौजसः सलोपश्च । सुधावत् उदञ्चु शिरस् माष शराविन् मरीची क्षेमवृद्धिन् शृङ्खलतोदिन् खरनादिन् नगरमर्दिन् प्राकारमर्दिन् लोमन् अजीगर्त कृष्ण युधिष्ठिर अर्जुन साम्ब गद प्रद्युम्न रत्नम् (उदङ्क) । उदकः

संज्ञायाम्। संभूयोम्भसोः सलोपश्च। आकृतिगणोऽयम्। तेन—सात्यकिः जाङ्घिः ऐन्दशर्मिः आजधेनविः इत्यादि ॥ इति बाह्वादयः ॥ १० ॥

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्।४।१।९८। कुञ्ज ब्रध्न शङ्ख भस्मन् गण लोमन् शठ शाक शुण्डा शुभ विपाश् स्कन्द स्कम्भ। इति कुञ्जादिः ॥ ११ ॥

नडादिभ्यः फक्।४।१।९९। नड चर (वर) बक मुञ्ज इतिक इतिश उपक (एक) लमक। शलंकु शलङ्कं च। सप्तल वाजप्य तिक। अग्निशर्मन्वृषगणे। प्राण नर सायक दास मित्र द्वीप पिङ्गर पिङ्गल किङ्कर किङ्कल (कातर) कातल काश्यप (कुश्यप) काश्य काल्य (काव्य) अज अमुष्य (अमुष्म) कृष्णरणौ ब्राह्मणवासिष्ठे। अमित्र लिगु चित्र कुमार। क्रोष्टु क्रोष्टं च। लोह दुर्ग स्तम्भ शिंशपा अग्र तृण शकट सुमनस् मसुत मिमत ऋच् जलंधर अध्वर युगंधर हंसक दण्डिन् हस्तिन् (पिण्ड) पञ्चाल चमसिन् सुकृत्य स्थिरक ब्राह्मण चटक बदर अश्वल खरप लङ्क इन्ध अस्त्र कामुक ब्रह्मदत्त अदुम्बर शोण अलोह दण्डप ॥ इति नडादिः ॥ १२ ॥

अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्।४।१।१०४। विद उर्व कश्यप कुशिक भरद्वाज उपमन्यु किलात कन्दर्प (किंदर्भ) विश्वानर (ऋष्टषेण) ऋष्टिषेण ऋतभात हर्यश्व प्रियक आपस्तम्ब कूचवार शरद्वत् शुनक (शुनक्) धेनु गोपवन शिग्रु विन्दु (भोगक) भाजन (शमिक) अश्वावतान श्यामाक श्यामक (श्यावलि) श्यापर्ण हरित किन्दास बह्यस्क अर्कजूष (अर्कलूष) वध्योग विष्णु वृद्ध प्रतिबोध (रथीतर) रथन्तर गविष्ठिर निषाद (शबर अनस) मठर (मृडाकु) सृपाकु मृदु पुनर्भू पुत्र दुहितृ ननान्दृ। परस्त्री परशुं च ॥ इति बिदादिः ॥ १३ ॥

गर्गादिभ्यो यञ्।४।१।१०५। गर्ग वत्स। वाजासे। संकृति अज व्याघ्रपात् विदधृत् प्राचीनयोग (अगस्ति) पुलस्ति चमस रेभ अग्निवेश शङ्ख शट शक धूम एक अवट मनस् धनञ्जय वृक्ष विश्वावसु जरमाण लोहित शंसित बभ्रु वल्गु मण्डु गण्डु शङ्ख लिगु गुहलु मन्तु मङ्क्षु अलिगु जिगीषु मनु तन्तु मनायी सूनु कथक कन्थक ऋक्ष तृक्ष (वृक्ष) (तनु) तरुक्ष तलुक्ष तण्ड वतण्ड कपिकत (कपिकत) कुरुकत अनडुह कण्व शकल गोकक्ष अगस्त्य कण्डिनी यज्ञवल्क पर्णवल्क अभयजात विरोहित वृषगण रहूगण शण्डिल वर्णक (चणक) चुलुक मुद्गल मुसल जमदग्नि पराशर जतूकर्ण

(जातूकर्ण) महित मन्त्रित अश्मरथ शर्कराक्ष पूतिमाप स्थूरा अदरक (अररक) एलाक पिङ्गल कृष्ण गोलन्द उलूक तितिक्ष भिषज (भिषज्) (भिष्णज) भडित भण्डित दल्भ चेकित चिकित्सित देवहू इन्द्रहू एकलु पिप्पलू बृहदग्नि (सुलोहिन्) सुलाभिन् उक्थ कुटीगु ॥ इति गर्गादिः ॥१४॥

अश्वादिभ्यः फञ्। ४ । १ । ११० । अश्व अश्मन् शङ्ख शूद्रक विद पुट रोहिण खर्जूर (खजूर) (खज्जार वस्त) पिञ्जूल भडिल भण्डिल भडित भण्डित (प्रकृत रामोद) क्षान्त (काश तीक्ष्ण गोलाङ्क अर्क स्वर स्फुट चक्र श्रविष्ठ) पविन्द पवित्र गोमिन् श्याम धूम धूम्र वाग्मिन् विश्वानर कुट । शप आत्रेये । जन जड खड ग्रीष्म अर्ह कित विशम्प विशाल गिरि चपल चुप दासक वैल्य (बैल्व) प्राच्य (धर्म्य) आनडुह्य । पुंसि जाते । अर्जुन (प्रहृत) सुमनस् दुर्मनस् मन (मनस्) (प्रान्त) ध्वन । आत्रेय भरद्वाजे । भरद्वाज आत्रेये । उत्स आतव कितव (वद धन्य पाद) शिव खदिर । इत्यश्वादिः ॥ १५ ॥

शिवादिभ्योऽण्। ४ । १ । ११२ । शिव प्राष्ठ प्रेष्ठिक चण्ड जम्भ भूरि दण्ड कुठार ककुभ् (ककुभा) अनभिम्लान कोहित मुख सुख संधि मुनि ककुत्स्थ कहोड कोहड कहूय कहय रोध कपिञ्जल (कुपिञ्जल) खञ्जन वतण्ड तृणकर्ण क्षीरह्रद जलह्रद परिल (पथिक) पिष्ट हैहय (पार्षिका) गोपिका कपिलिका जटिलिका बधिरिका मञ्जीरक (मजिरक) वृष्णिक खञ्जास खञ्जाइ (कर्मार) रेख लेख आलेखन विश्रवण रवण वर्तनाक्ष ग्रीवाक्ष (विटप पिटक) विटाक तृक्षाक नभाक ऊर्णनाभ जरत्कारु (पृथा उत्क्षेप) पुरोहितिका सुरोहितिका सुरोहिका आर्यश्वेत (अर्यश्वेत) सुपिष्ट मसुरकर्ण मयूरकर्ण (खर्जुरकर्ण) कदूरक तक्षन् ऋष्टिकेण गङ्गा विपाश यस्क लह्य द्रुह्य अयस्थूण तृणकर्ण (तृण कर्ण) पर्ण भलन्दन विरूपाक्ष भूमि इला सपत्नी । द्व्यचो नद्याः । त्रिवेणी त्रिवणं च । इति शिवादिः ॥ आकृतिगणः ॥ १६ ॥

शुभ्रादिभ्यश्च। ४ । १ । १२३ । शुभ्र विष्ट पुर (विष्टपुर) ब्रह्मकृत शतद्वार शलाथल शलाकाभ्रू लेखाभ्रू (लेखाभ्र) विकसा (विकास) रोहिणी रुहिणी धर्मिणी दिश् शालूक अजवस्ति शकन्धि विमातृ विधवा शुक विश देवतर शकुनि शुक्र उग्रज्ञातल (शतल) बन्धकी सृकण्डु विस्ति अतिथि

गोदन्त कुशाम्ब मकष्टु शातातर मकष्टुरिक सुनामन्। लक्ष्मणश्यामयोर्वासिष्ठे। गोधा कृकलास अणीव प्रवाहण भरत (भारत) भरम मृकण्डु कर्पूर इतर अन्यतर आलीढ सुदन्त सुदक्ष सुवक्षस् सुदामन् कद्रु तुद अकशाय कुमारिका कुठारिका किशोरिका अम्बिका जिह्माशिन् परिधि वायुशकल शलाका खड्डूर कुबेरिका दन्त अशोका अन्धपिङ्गला खडोन्मत्ता अनुदृष्टिन् (अनुदृष्टि) जरतिन् वलीवर्दिन् विग्र बीज जीव श्वन् अश्मन् अश्व अजिर॥ इति शुभ्रादिः॥ आकृतिगणः॥ १७॥

कल्याण्यादीनामिनङ् च। ४।१।१२६। कल्याणी सुभगा दुर्भगा बन्धकी अनुदृष्टि अनुसृति (अनुसृष्टि) जरती वलीवर्दी ज्येष्ठा कनिष्ठा मध्यमा परस्त्री॥ इति कल्याण्यादिः॥ १८॥

गृष्ट्यादिभ्यश्च। ४। १। १३६। गृष्टि हृष्टि बलि हलि विश्रि कुद्रि अजबस्ति मित्रयु॥ इति गृष्ट्यादिः॥ १९॥

रेवत्यादिभ्यष्ठक्। ४। १। १४६। रेवती अश्वपाली मणिपाली द्वारपाली वृकवञ्चिन् वृकबन्धु वृकग्राह कर्णग्राह दण्डग्राह कुक्कुटाक्ष (ककुदाक्ष) चामरग्राह॥ इति रेवत्यादिः॥ २७॥

कुर्वादिभ्यो ण्यः। ४। १। १५१। कुरु गर्गर मङ्गुष अजमार रथकार वावदूक। सम्राजः क्षत्रिये। कवि मति (विमति) कापिञ्जलादि वाक् वामरथ पितृमत् इन्द्रजाली एजि वातकि दामोष्णीषि गणकारि कैशोरि कुट शालाका (शलाका) मुर पुर एरका शुभ्र अभ्र दर्भ केशिनी। वेनाच्छन्दसि। शूर्पणाय श्यावनाय श्यावरथ शावपुत्र सत्यङ्कर वडभीकार पथिकार मूढ शकन्धु शंकु शाक शालिन् शालीन कर्तृ हर्तृ इन पिण्डि तक्षन्। वामरथस्य कण्वादिवत्स्वरवर्जम्॥ इति कुर्वादिः॥ २१॥

तिकादिभ्यः फिञ्। ४। १। १५४। तिक कितव संज्ञाकालशिख (सज्ञा वाला शिखा) उरस् शाठ्य सैन्धव यमुन्द रूप्य ग्राम्य नील अमित्र गोकक्ष (गौकक्ष्य) कुरु देवरथ तैतिल औरस कौरव्य भौरिकि भौलिकि चौपयत चैटयत शीकयत क्षैतयत ध्राजयत चन्द्रमस् शुभ गङ्गा वरेण्य सुपामन् आरब्ध बाह्यक स्वल्पक वृष लोमक वादन्य उदन्य यज्ञ॥ इति तिकादिः॥ २२॥

वाकिनादीनां कुक्च। ४। १। १५८। वाकिन गौधेर कार्कश काक लङ्का। चर्मिवर्मिणोर्नलोपश्च॥ इति वाकिनादिः॥ २३॥

कम्बोजाल्लुक् । ४ । १७५ । कम्बोज चोल केरल शक यवन ॥ इति कम्बोजादिः ॥ २४ ॥

न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः । ४ । १ । १७८ । १—भर्ग करूश केकय कश्मीर साल्व सुस्थाल उरस् कौरव्य ॥ इति भर्गादिः ॥ २५ ॥

२—यौधेय शौक्रेय शौभ्रेय ज्यावाणेय धौर्तेय धार्तेय त्रिगर्त भरत उशीनर ॥ इति यौधेयादिः ॥ २६ ॥

भिक्षादिभ्योऽण् । ४ । २ । ३८ । भिक्षा गर्भिणी क्षेत्र करीष अङ्गारचर्मिन् धर्मिन् सहस्र युवति पदाति पद्धति अथर्वन् दक्षिणा भरत विषय श्रोत्र ॥ इति भिक्षादिः ॥ २७ ॥

खण्डिकादिभ्यश्च । ४ । २ । ४५ । खण्डिका वडवा क्षुद्रकमालवात् सेनासंज्ञायाम् । भिक्षुक शुक उलूक श्वन् अहन् युगवरत्रा हलबन्धा ॥ इति खण्डिकादिः ॥ २८ ॥

पाशादिभ्यो यः । ४ । २ । ४९ । पाश तृण धूम वात अङ्गार पाटल पोत गल पिटक पिटाक शकट हल नट वन ॥ इति पाशादिः ॥ २९ ॥

[**खलादिभ्य इनिर्वक्तव्यः** ४ । २ । ५१ । खल डाक कुटुम्ब शाक कुण्डलिनी ॥ इति खलादिः ॥ आकृतिगणः ॥ ३० ॥]

राजन्यादिभ्यो वुञ् । ४ । २ । ५३ । राजन्य आनृत बाभ्रव्य शालङ्कायन दैवयातव (देवयात्) (अव्रीड वरत्रा) जालंधरायण (राजायन) तेलु आत्मकामेय अम्बरीषपुत्र वसाति बैल्ववन शैलूष उदुम्बर तीव्र बैल्वल आर्जुनायन संप्रिय दाक्षि ऊर्णनाभ ॥ इति राजन्यादिः ॥ आकृतिगणः ॥ ३१ ॥

भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ । ४ । २ । ५४ ।

१—भौरिकि भौलिकि चौपयत चौटयत (चैटयत) काणेय वाणिजक वाणिकाज्य (वालिकाज्य) सैकयत वैकयत ॥ इति भौरिक्यादिः ॥ ३२ ॥

२—ऐषुकारि सारस्यायन (सारसानन) चान्द्रायण द्व्याक्षायण त्र्याक्षायण औडायन नौलायन खाडायन दासमित्रि दासमित्रायण शौद्रायण शापण्डायन (शायण्डायन) ताक्ष्यायण शौभ्रायण सौवीर (सौवीरायण) शपण्ड (शयण्ड) शौण्ड शयाण्डि (शयाण्ड) वैश्वमानव वैश्वध्येनव (वैश्वधेनव) नड तुण्डदेव विश्वदेव (सापिण्डि) । इति ऐषुकार्यादिः ॥ ३३ ॥

क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् । ४ । २ । ६० । उक्थ लोकायत न्याय न्यास पुनरुक्त निरुक्त निमित्त द्विपदा ज्योतिष अनुपद अनुकल्प यज्ञ धर्म चर्चा क्रमेतर श्लक्ष (श्लक्ष्ण) संहिता पदक्रम सङ्घट (सङ्घट्ट) वृत्ति परिषद् संग्रह गण (गुण) आयुर्देव (आयुर्वेद) । **इत्युक्थादिः** ॥ ३४ ॥

क्रमादिभ्यो वुन् । ४ । २ । ६१ । क्रम पद शिक्षा मीमांसा सामन् ॥ **इति क्रमादिः** ॥ ३५ ॥

वसन्तादिभ्यष्ठक् । ४ । २ । ६३ । वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरद् शरत् हेमन्त शिशिर प्रथम गुण चरम अनुगण अथर्वन् अथर्वण ॥ **इति वसन्तादिः** ॥ ३६ ॥

सङ्कलादिभ्यश्च । ४ । २ । ७५ । सङ्कल पुष्कल उत्तम उडुप उद्वेप उत्पुट कुम्भ निधान सुदक्ष सुदत्त सुभूत सुपूत सुनेत्र सुमङ्गल सुपिङ्गल सूत सिकत पूतिका (पूतिक) पूलास कूलास पलाश निवेश गवेश (गवेष) गम्भीर इतर आन् अहन् लोमन् वेमन् चरण (वरुण) बहुल सद्योज अभिषिक्त गोभृत् राजभृत् भल्ल मल्ल माल ॥ **इति सङ्कलादिः** ॥ ३७ ॥

सुवास्त्वादिभ्योऽण् । ४ । २ । ७७ । सुवास्तु (सुवस्तु) वर्णु भण्डु खण्डु सेवालिन् कर्पूरिन् शिखण्डिन् गर्त कर्कश शकटीकर्ण कृष्णकर्ण (कर्क) कर्कन्धुमती गोह अहिसक्थ ॥ **इति सुवास्त्वादिः** ॥ ३८ ॥

वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकोऽरीहण[1]कृशाश्व[2]र्श्य[3]कुमुद[4]काश[5]तृण[6]प्रेक्षा[7]श्म[8]सखि[9]संकाश[10]बल[11]पक्ष[12]कर्ण[13]सुतंगम[14]प्रगदिन्[15]वराह[16]कुमुदादिभ्यः[17] ।४।२।८०।

१—अरीहण (अहीरण) द्रुघण द्रुहण भलग (भगल) उलन्द किरण सांपरायण क्रौष्ट्रायण औष्ट्रायण त्रैगर्तायन मैत्रायण भास्त्रायण वैमतायण (वैमतायन) गौमतायन सौमतायन सौसायन धौमतायन सौमायन ऐन्द्रायण कौद्रायण (कौन्द्रायण) खाडायन शाण्डिल्यायन रायस्पोष विपथ विपाश उद्दण्ड उदञ्चन खाण्डवीरण वीरण काशकृत्स्न जाम्बवत शिंशपा रैवत (रेवत) बिल्व सुयज्ञ शिरीष वधिर जम्बु खदिर सुशर्मन् (सशर्मन्) भलतृ भलन्दन खण्डु कालन यज्ञदत्त ॥ **इत्यरीहणादिः** ॥ ३९ ॥

२—कृशाश्व अरिष्ट अरिश्म वेश्मन् विशाल लोमश रोमश लोमक रोमक शबल कूट वर्चल सुवर्चल सुकर सूकर प्रातर (प्रतर) सदृश पुरग पुराग मुख धूम अजिन विनत अवनत (कुविद्यास) (कुविद्यास) पराशर अरुस् अयस् मौद्गल्याकर (मौद्गल्युकर) । **इति कृशाश्वादिः** ॥ ४० ॥

३—ऋश्य (हृश्य) न्यग्रोध शर निलीन (निवास निवात) निधान निवन्धन (निवन्ध) (विवद्ध) परिगूढ (उपगूढं) असनि सित मत वेश्मन् उत्तरास्नन् अश्मन् स्थूल बाहु खदिर शर्करा अनुडुह (अनडुह्) अरडु परिदश वेणु पीरण खण्ड दण्ड परिवृत्त कर्दम अंशु ॥ इत्यश्यादिः ॥ ४१ ॥

४—कुमुद शर्करा न्यग्रोध इकट संकट कंकट गर्त बीज परिवाप निर्यास शकट कच मधु शिरीष अश्व अश्वस्थ वल्बज यवास कूप विकङ्कट दृशग्राम ॥ इति कुमुदादिः ॥ ४२ ॥

५—काश पाश अश्वत्थ पलाश पीयूक्षा चरण वास नड वन कर्दम कच्छूल कङ्कट गुह विस तृण कर्पूर बर्बर मधुर ग्रह जतु सीपाल ॥ इति काशादिः ॥ ४३ ॥

६—तृण नड मूल वन पर्ण वर्ण वराण विल पुल फल अर्जुन अर्ण सुवर्ण बल चरण बुस । इति तृणादिः ॥ ४४ ॥

७—प्रेक्षा फलका (हलका) बन्धुका ध्रुवका क्षिपका न्यग्रोध इक्कट ककंट संकट कट कूप बुक पुक पुट मह परिवाप यवषि धुवका गर्त कूपक हिरण्य ॥ इति प्रेक्षादिः ॥ ४५ ॥

८—अश्मन् यूथ ऊष मीन् नद दर्भ वृन्द गुद खण्ड नग शिखा कीट पाम कन्द कान्द कुल गह्व गुड गुण कुण्डल पीन गुह ॥ इत्यश्मादिः ॥ ४६ ॥

९—सखि अग्निदत्त वायुदत्त सखिदत्त (गोपिल) भल्लपाल (भल्ल पाल) चक्र चक्रवाक छगल अशोक करवीर वासव वीर पूर वज्र कुशीकर-शीहर (सीहर) सरक सरस समर समल सुरस रोह तमाल कदल ससल ॥ इति सख्यादिः ॥ ४७ ॥

१०—सङ्काश कपिल कश्मीर (समीर) शूरसेन सरक सूर । सुपथिन्पन्थ च । यूप (यूथ) अंश अङ्ग नासा पलित अनुनास अश्मन् कूट मलिन दश कुम्भ शीर्ष चिरन्त (विरत) समल सीर पञ्जर मन्थ नल रोमन् लोमन् पुलिन सुपरि कटिप सकर्णक वृष्टि तीर्थ अगस्ति विकर नासिका ॥ इति सङ्काशादिः ॥ ४८ ॥

११—बल चुल नल दल वट लकुल उरल मुख (पुल) मूल उलडुल (उल डुल) वनकुल ॥ इति बलादिः ॥ ४९ ॥

१२—पक्ष तुक्ष तुष कुण्ड अण्ड कम्बलिका वलिक चित्र अस्ति। पथः पन्थ च। कुम्भ सीरक सरक सकल सरस समल अतिश्वन् रोमन् लोमन् हस्तिन् मकर लोमक शीर्ष निर्वात पाक सहक (सिंहक) अंकुश सुवर्णक हंसक हिंसक कुत्स बिल खिल यमल हस्त कला सकर्णका ॥ इति पक्षादिः ॥ ५० ॥

१३—कर्ण वशिष्ठ अर्कलूष द्रुपद आनडुह्य पाञ्चजन्य स्फिग् (स्फिज्) कुम्भी कुन्ती जित्वन् जीवन्त कुलिश आण्डीवत् (आण्डीवत) जव जैत्र आकन (आनक) ॥ इति कर्णादिः ॥ ५१ ॥

१४—सुतंगम मुनिचित विप्रचित्त महाचित्त महापुत्र स्वन श्वेत गडिक (खडिक) शुक्र विप्र वीजवापिन् (वीज वापिन्) अर्जुन श्वन् अजिर जीव खण्डित वर्ण विग्रह ॥ इति सुतङ्गमादिः ॥ ५२ ॥

१५—प्रगदिन् मगदिन् मर्दादिन् कविल खण्डित गदित चूडार मडार मन्दार कोविदार ॥ इति प्रगद्यादिः ॥ ५३ ॥

१६—वराह (पलाश) शेरीष (शिरीष) पिनद्ध निबद्ध बलाह स्थूल विदग्ध (विजग्ध) विभग्न (निमग्न) बाहु खदिर शर्करा ॥ इति वराहादिः ॥ ५४ ॥

१७—कुमुद गोमथ रथकार दशग्राम अश्वत्थ शाल्मलि (शिरीष) मुनिस्थल कुण्डल कुट मधुकर्ण घासकुन्द शुचिकर्ण ॥ इति कुमुदादिः ॥ ५५ ॥

वरणादिभ्यश्च । ४ । २ । ८२ । वरणा शृङ्गी शाल्मलि शुण्डी शयाण्डी पर्णी ताम्रपर्णी गोद आलिङ्ग्यायन जालपदी (जानपदी) जम्बू पुष्कर चम्पा पम्पा वल्गु उज्जयनी मथुरा तक्षशिला उरसा गोमती वलभी ॥ इति वरणादिः ॥ ५६ ॥

मध्वादिभ्यश्च । ४ । २ । ८६ । मधु बिस स्थाणु वेणु कर्कन्धु शमी करीर हिम किशरा शर्याण मरुत् वार्दाली शर इष्टका आसुति शक्ति आसन्दी शकल शलाका आमिषी इक्षु रोमन् रुष्टि रुप्य तक्षशिला खड वट वेट ॥ इति मध्वादिः ॥ ५७ ॥

उत्करादिभ्यश्छः । ४ । २ । ९० । उत्कर संफल शफर पिप्पल पिप्पलीमूल अश्मन् सुवर्ण खलाजिन तिक कितव अणक त्रैवण पिचुक अश्वत्थ काश क्षुद्र भस्त्रा शाल जन्या अजिर चर्मन् उत्क्रोश क्षान्त खदिर शूर्पणाय श्यावनाय

नैनाकव तृण वृक्ष शाक पलाश विजिगीषा अनेक आतप फल संपर अर्क गर्त अग्नि वैराणक इडा अरण्य निशान्त पर्ण नीचायक शङ्कर अवरोहित क्षार विशाल वेत्र अरीहण खण्ड वातागार मन्त्रणार्ह इन्द्रवृक्ष निनान्तवृक्ष आर्द्रवृक्ष ॥ इत्युत्करादिः ॥ ५८ ॥

नडादीनां कुक्च । ४ । २ । ९१ । नड प्लक्ष बिल्व वेणु वेत्र वेतस इक्षु काष्ट कपोत तृण । क्रुञ्चा ह्रस्वत्वं च । तक्षन्नलोपश्च ॥ **इति नडादिः** ॥५९॥

कत्र्यादिभ्यो ढकञ् । ४ । २ । ९६ । कत्त्रि उम्भि पुष्कर पुष्कल मोदन कुम्भी कुण्डिन नगरी माहिष्मती वर्मती उख्या ग्राम । कुड्याया यलोपश्च ॥ **इदि कत्र्यादिः** ॥ ६० ॥

नद्यादिभ्यो ढक् । ४ । २ । ९७ । नदी मही वाराणसी श्रावस्ती कौशाम्बी वन-कौशाम्बी काशपरी काशफारी (काशफरी) खादिरी पूर्वनगरी पाठा माया शाल्वदार्वा सेतकी । वडवाया वृषे ॥ **इति नद्यादिः** ॥ ६१ ॥

प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् । ४ । १ । ११० । पलदी परिषद् रोमक वाहीक कलकीट वहुकीट जालकीट कमलकीट कमलकीकर कमलभिदा गौष्ठी नैकती परिखा शूरसेन गोमती पटच्चर उदपान यकृल्लोम ॥ **इति पलद्यादिः** ॥ ६२ ॥

काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ । ४ । २ । ११६ । काशि चेदि (वेदि) सांयाति संवाह अच्युत मोदमान शकुलाद हस्तिकर्पू कुनामन् हिरण्य करण गोवासन भारङ्गी अरिंदम अरित्र देवदत्त दशग्राम शौवावतान युवराज उपराज देवराज मोदन सिन्धुमित्र दासमित्र सुधामित्र छागमित्र साधमित्र (सधमित्र) । आपदादिपूर्वपदात्कालान्तात् । आपद् ऊर्ध्व । **इति काश्यादिः** ॥ ६३ ॥

धूमादिभ्यश्च । ४ । २ । १२६ । धूम षाण्ड शशादन आर्जुनाव माहकस्थली आनकस्थली माहिषस्थली मानस्थली अट्टस्थली मद्रकस्थली समुद्रस्थली दाण्डायनस्थली राजस्थली विदेह राजगृह सात्रासाह शष्प मित्रवर्ध्र (मित्रवर्ध) मज्जाली मद्रकूल आजीकूल द्व्यहव (द्व्याहाव) त्र्यहव (त्र्याहव) संस्फाय वर्बर वर्ज्य गर्त आनत माठर वाथेय घोष पल्ली आराज्ञी धार्कराज्ञी आवय तीर्थ । कूलात्सौवीरेषु । समुद्रान्नावि मनुष्ये च । कुक्षि अन्तरीप द्वीप अरण उज्जयनी पट्टार दक्षिणापथ साकेत ॥ **इति धूमादिः** ॥ ६४ ॥

कच्छादिभ्यश्च । ४ । २ । १३२ । कच्छ सिन्धु वर्ण वर्णु गन्धार मधुमत् कम्बोज काश्मीर साल्व कुरु अनुषण्ड द्वीप अनूप अजवाह विजापक कलूतर रङ्कु ॥ इति कच्छादिः ॥ ६५ ॥

गहादिभ्यश्च । ४ । २ । १३८ । गह अन्तस्थ सम विषम मध्य मध्यंदिन चरणे । उत्तम अङ्ग वङ्ग मगध पूर्वपक्ष अपरपक्ष अधमशाख उत्तमशाख एकशाख समानशाख समानग्राम एकवृक्ष एकपलाश इष्वग्र इष्वनीक अवस्यन्दन कामप्रस्थ खाडायन काठेरणि लावेरणि सौमित्रि शौशिरि आसुत् दैवशर्मि श्रौति आहिंसि आमित्रि व्याडि वैजि आध्यश्वि आनृशंसि शौङ्गि आग्निशर्मि भौजि वाराटकी वाल्मिकि (वाल्मीकि) क्षैमवृद्धि आश्वत्थि औद्गाहमानि ऐकबिन्दवि दन्ताग्र हंस तत्त्वग्र (तन्त्वग्र) उत्तर अन्तर (अनन्तर) मुखपार्श्वतसोर्लोपः जनपरयोः कुक्च । देवस्य च । इति गहादिः ॥ वेणुकादिभ्यश्छण् ॥ आकृतिगणः ॥ ६६ ॥

संधिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् । ४ । ३ । १६ । संधिवेला संध्या अमावास्या त्रयोदशी चतुर्दशी पञ्चदशी पौर्णमासी प्रतिपत् । संवत्सरात्फलपर्वणोः ॥ इति संधिवेलादिः ॥ ६७ ॥

दिगादिभ्यो यत् । ४ । ३ । ५४ । दिश् वर्ग पूग गण पक्ष धाय्य मित्र मेधा अन्तर पथिन् रहस् अलीक उखा साक्षिन् देश आदि अन्त मुख जघन मेघ यूथ । उदकात्संज्ञायाम् । ज्ञाय (न्याय) वंश वेश काल आकाश ॥ इति दिगादिः ॥ ६८ ॥

[**परिमुखादिभ्यश्च ४ । ३ । ५९ ।** परिमुख परिहनु पर्योष्ठ पर्युलूखल परिसीर उपसीर उपस्थूण उपकलाप अनुपथ अनुपद अनुगङ्ग अनुतिल अनुसीत अनुसाय अनुसीर अनुमाष अनुयव अनुयूप अनुवंश प्रतिशाख । इति परिमुखादिः ॥ ६९ ॥]

[**अध्यात्मादिभ्यश्च ४ । ३ । ६० ।** अध्यात्म अधिदेव अधिभूत इहलोक परलोक ॥ इत्यध्यात्मादिः ॥ आकृतिगणः ॥ ७० ॥]

ऋगयनादिभ्यः । ४ । ३ । ७३ । ऋगयन पदव्याख्यान छन्दोमान छन्दोभाषा छन्दोविचिति न्याय पुनरुक्त निरुक्त व्याकरण निगम वास्तुविद्या क्षत्रविद्या अङ्गविद्या विद्या उत्पात उत्पाद उद्याव संवत्सर मुहूर्त उपनिषद् निमित्त शिक्षा भिक्षा ॥ इति ऋगयनादिः ॥ ७१ ॥

शुण्डिकादिभ्योऽण् । ४ । ३ । ७६ । शुण्डिक कृकण कृपण स्थण्डिल उदपान उपल तीर्थ भूमि तृण पर्ण ॥ इति शुण्डिकादिः ॥ ७२ ॥

शण्डिकादिभ्यो ञ्यः । ४ । ३ । ९२ । शण्डिक सर्वसेन सर्वकेश शक शट रक शंख बोध ॥ इति शण्डिकादिः ॥ ७३ ॥

सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ । ४ । ३ । ९३ ।

१—सिन्धु वर्णु मधुमत् कम्बोज साल्व कश्मीर गन्धार किष्किन्धा उरसा दरद (दरद्) गन्दिका ॥ इति सिन्ध्वादिः ॥ ७४ ॥

२—तक्षशिला वत्सोद्धरण कैर्मेदुर ग्रामणी छगल क्रोष्टुकर्ण सिंहकर्ण सङ्कुचित किन्नर काण्डधार पर्वत अवसान वर्वर कंस ॥ इति तक्षशिलादिः ॥ ७५ ॥

शौनकादिभ्यश्छन्दसि । ४ । ३ । १०६ । शौनक वाजसनेय शार्ङ्गरव शापेय शाष्पेय खाडायन स्तम्भ स्कन्ध देवदर्शन रज्जुभार रज्जुकण्ठ कठशाठ कषाय तल दण्ड पुरुषांसक अश्वपेज ॥ इति शौनकादिः ॥ ७६ ॥

कुलालादिभ्यो वुञ् । ४ । ३ । ११८ । कुलाल वरुड चाण्डाल निषाद कर्मार सेना सिरिन्ध्र (सिरिध्र) सैरिन्ध्र देवराज पर्षत् (परिषत्) वधू मधु रुरु रुद्र अनडुह् ब्रह्मन् कुम्भकार श्वपाक वैजवापि ॥ इति कुलालादिः ॥ ७७ ॥

रैवतिकादिभ्यश्छः । ४ । ३ । १३१ । रैवतिक स्वापिशि क्षैमवृद्धि (गौरग्रीवि) औदमेघि औदवापि वैजवापि ॥ इति रैवतिकादिः ॥ ७८ ॥

बिल्वादिभ्योऽण् । ४ । ३ । १३६ । बिल्व व्रीहि काण्ड मुद्ग मसूर गोधूम इक्षु वेणु गवेधुका कर्पासी पाटली कर्कन्धु कुठीर ॥ इति बिल्वादिः ॥ ७९ ॥

पलाशादिभ्यो वा । ४ । ३ । १४१ । पलाश खदिर शिंशपा स्पन्दन पूलाक करीर शिरीष यवास विकङ्कत ॥ इति पलाशादिः ॥ ८० ॥

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः । ४ । ३ । १४४ ॥ शर दर्भ मृद् (मृत्) कुटी तृण सोम वल्वज ॥ इति शरादिः ॥ ८१ ॥

तालादिभ्योऽण् । ४ । ३ । १५२ ॥ तालाद्धनुषि । बार्हिण इन्द्रालिश इन्द्रावृश इन्द्रायुध चय श्यामाक पीयूक्षा ॥ इति तालादिः ॥ ८२ ॥

प्राणिरजतादिभ्योऽञ् । ४ । ३ । १५४ ॥ रजत सीस लोह उदुम्बर

नीप दारु रोहितक विभीतक पीतदारु तीव्रदारु त्रिकण्टक त्रिकण्टकार ॥ इति रजतादिः ॥ ८३ ॥

प्लक्षादिभ्योऽण् । ४ । ३ । १६४ ॥ प्लक्ष न्यग्रोध अश्वत्थ इङ्गुदी शिग्रु रुरु कक्षतु वृहती ॥ इति प्लक्षादिः ॥ ८४ ॥

हरीतक्यादिभ्यश्च । ४ । ३ । १६७ ॥ हरीतकी कोशातकी नखरञ्जनी शष्कण्डी दाडी दोडी श्वेतपाकी अर्जुनपाकी द्राक्षा काला ध्वाक्षा गभीका कण्टकारिका पिप्पली चिम्पा (चिञ्चा) शेफालिका ॥ इति हरीतक्यादिः ॥ ८५ ॥

[माशब्दादिभ्य उपसंख्यानाम् । ४ । ४ । १ ॥ माशब्दः नित्यशब्दः कार्यशब्दः ॥ इति माशब्दादिः ॥ ८६ ॥]

[आहौ प्रभूतादिभ्यः । ४ । ४ । १ ॥ प्रभूत पर्याप्त ॥ इति प्रभूतादिः ॥ ८७ ॥]

[पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः । ४ । ४ । १ ॥ सुस्नात सुखरात्रि सुखशयन । इति सुस्नातादिः ॥ ८८ ॥]

[गच्छतौ परदारादिभ्यः । ४ । ४ । १ ॥ परदार गुरुतल्प । इति परदारादिः ॥ ८९ ॥]

पर्पादिभ्यः ष्ठन् । ४ । ४ । १० ॥ पर्प अश्व अश्वत्थ रथ जाल न्यास व्याल । पादः पच्च ॥ इति पर्पादिः ॥ ९० ॥

वेतनादिभ्यो जीवति । ४ । ४ । १२ ॥ वेतन वाहन अर्धवाहन (अर्धवाह) धनुर्दण्ड जालवेश उपवेश प्रेषण उपवस्ति सुख शय्या शक्ति उपनिषद् उपदेश स्फिज् (स्फिज) पाद उपस्थ उपस्थान उपहस्त ॥ इति वेतनादिः ॥ ९१ ॥

हरत्युत्सङ्गादिभ्यः । ४ । ४ । १५ । उत्सङ्ग उडुप उत्पुत उत्पन्न उत्पुट पिटक पिटाक ॥ इत्युत्सङ्गादिः ॥ ९२ ॥

भस्त्रादिभ्यः ष्ठन् । ४ । ४ । १६ । भस्त्रा भरट भरण शीर्षभार शीर्षेभार अंसभार अंसेभार ॥ इति भस्त्रादिः ॥ ९३ ॥

निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः । ४ । ४ । १९ । अक्षद्यूत (जानुप्रहृत) जङ्घाप्रहृत जङ्घाप्रहत पादस्वेदन कण्टकमर्दन गतानुगत गतागत यातोपयात अनुगत ॥ इत्यक्षद्यूतादिः ॥ ९४ ॥

अण्महिष्यादिभ्यः । ४ । ४ । ४८ । महिषी प्रजापति प्रजावती प्रलेपिका विलेपिका अनुलेपिका पुरोहित मणिपाली अनुवारक (अनुचारक) होतृ यजमान ॥ इति महिष्यादिः ॥ ९५ ॥

किसरादिभ्यः ष्ठन् । ४ । ४ । ५३ । किसर नरद नलद स्थागल तगर गुग्गुलु उशीर हरिद्रा हरिद्रु पर्णी (पर्णी) ॥ इति किसरादिः ॥ ९६ ॥

छत्रादिभ्यो णः । ४ । ४ । ६२ । छत्र शिक्षा प्ररोह स्था बुभुक्षा चुरा तितिक्षा उपस्थान कृषि कर्मन् विश्वधा तपस् सत्य अनृत विशिखा विशिका भक्षा उदस्थान पुरोडा विक्षा चुक्षा मन्द्र ॥ इति छत्रादिः ॥ ९७ ॥

प्रतिजनादिभ्यः खञ् । ४ । ४ । ९९ । प्रतिजन इदंयुग संयुग समयुग परयुग परकुल परस्यकुल अमुष्यकुल सर्वजन विश्वजन महाजन पञ्चजन ॥ इति प्रतिजनादिः ॥ ९८ ॥

कथादिभ्यष्ठक् । ४ । ४ । १०२ । कथा विकथा विश्वकथा संकथा वितण्डा कुष्ठ विद् (कुष्टविद्) जनवाद जनेवाद वृत्ति संग्रह गुण गण आयुर्वेद ॥ इति कथादिः ॥ ९९ ॥

गुडादिभ्यष्ठञ् । ४ । ४ । १०३ । गुड कुल्माष सक्तु अपूप मांसौदन इक्षु वेणु संग्राम संघात संक्राम संवाह प्रवास निवास उपवास ॥ इति गुडादिः ॥ १०० ॥

पञ्चमोऽध्यायः

उगवादिभ्यो यत् । ५ । १ । २ । गो हविस् अक्षर विष बर्हिस् अष्टका स्खदा युग मेधा स्रुच् । नाभि नभं च । शुनः संप्रसारणं वा च दीर्घत्वं तत्संनियोगेन चान्तोदात्तत्वम् । ऊधसोऽनङ् च । कूप खद दर खर असुर अध्वन् (अध्वन) क्षर वेद बीज दास (दीप्त) ॥ इति गवादिः ॥ १ ॥

विभाषा हविरपूपादिभ्यः । ५ । १ । ४ । अपूप तण्डुल अभ्युष (अभ्यूष) अभ्योष अवोष अभ्येष पृथुक ओदन सूप पूप किण्व प्रदीप मुसल कटक कर्ण वेष्टक ईर्गल अर्गल । अन्नविकारेभ्यश्च । यूप स्थूणा दीप अश्व पत्र । इत्यपूपादिः ॥ २ ॥

असमासे निष्कादिभ्यः । ५ । १ ।२० । निष्क पण पाद माष वाह द्रोण षष्टि ॥ इति निष्कादिः ॥ ३ ॥

गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् । ५ । १ । ३९ । अश्व अश्मन् ऊर्णा (उर्म) उमा भङ्गा क्षण (गङ्गा) वर्षा वसु ॥ इत्यश्वादिः ॥ ४ ॥

तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः । ५ । १ । ५० । वंश कुटज वल्वज मूल स्थूणा (स्थूण) अक्ष अश्मन् अश्व श्लक्ष्ण इक्षु खट्वा ॥ इति वंशादिः ॥ ५ ॥

छेदादिभ्यो नित्यम् । ५ । १ । ६४ । छेद भेद द्रोह दोह नर्ति (नर्त) कर्ष तीर्थ सम्प्रयोग विप्रयोग प्रयोग विप्रकर्ष प्रेपण सम्प्रश्न विप्रश्न विकर्ष प्रकर्ष । विराग विरङ्गं च ॥ इति छेदादिः ॥ ६ ॥

दण्डादिभ्यो यः । ५ । १ । ६६ । दण्ड मुसल मधुपर्क कशा अर्घ मेघ मेधा सुवर्ण दक वध युग गुहा भाग इभ भङ्ग ॥ इति दण्डादिः ॥ ७ ॥

[महानाम्न्यादिभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्य उपसंख्यानम् । ५ । १ । ९४ । महानाम्नी आदित्यव्रत गोदान ॥ इति महानाम्न्यादिः ॥ ८ ॥]

[अवान्तरदीक्षादिभ्यो डिनिर्वक्तव्यः ५ । १ । ९४ । अवान्तरदीक्षा तिलव्रत देवव्रत ॥ इत्यवान्तरदीक्षादिः ॥ ९ ॥]

व्युष्टादिभ्योऽण् । ५ । १ । ९७ । व्युष्ट नित्य निष्क्रमण प्रवेशन उपसंक्रमण तीर्थ आस्तरण सङ्ग्राम संघात ॥ इति व्युष्टादिः ॥ १० ॥

[अग्निपदादिभ्य उपसंख्यानम् । ५ । १ । ९७ । अग्निपद पीलुमूल (पीलु मूल) प्रवास उपवास । आकृतिगणः । इति अग्निपदादिः ॥ ११ ॥]

तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः । ५ । १ । १०१ । सन्ताप संनाह संग्राह संग्राम संयोग सम्पराय संवेशन संपेष निष्पेष सर्ग निसर्ग विसर्ग उपसर्ग प्रवास उपवास संघात संवेष संवास संमोदन सक्तु । मांसौदनाद्विगृहीतादपि ॥ इति सन्तापादिः ॥ १२ ॥

[तदस्य प्रकरणे उपवस्त्रादिभ्य उपसंख्यानम् । ५ । १ । १०५ । उपवस्त्र प्राशितृ चूडा श्रद्धा ॥ इत्युपवस्त्रादिः ॥ १३ ॥]

अनुप्रवचनादिभ्यश्छः । ५ । १ । १११ । अनुप्रवचन उत्थापन उपस्थापन संवेशन प्रवेशन अनुप्रवेशन अनुवासन अनुवचन अनुवचन अनुवाचन अन्वारोहण प्रारम्भण आरम्भण आरोहण ॥ इत्यनुप्रवचनादिः ॥ १४ ॥

[स्वर्गादिभ्यो यद्वक्तव्यः । ५ । १ । १११ । स्वर्ग यशस् आयुस् काम धन ॥ इति स्वर्गादिः ॥ १५ ॥]

[पुण्याहवाचनादिभ्यो लुग्वक्तव्यः । ५ । १ । १११ । पुण्याहवाचन स्वस्तिवाचन शान्तिवाचन ॥ इति पुण्याहवाचनादिः ॥ १६ ॥]

पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा । ५ । १ । १२२ । पृथु मृदु महत् पटु तनु लघु वहु साधु आशु उरु गुरु बहुल खण्ड दण्ड चण्ण अकिंचन वाल होड पाक वत्स मन्द स्वादु ह्रस्व दीर्घ प्रिय वृद ऋजु क्षिप क्षुद्र अणु ॥ इति पृथ्वादिः ॥ १७ ॥

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च । ५ । १ । १२३ । दृढवृढ परिवृढ भृश कृश वक्र शुक्र आम्र कष्ट लवण ताम्र शीत उष्ण जड वधिर पण्डित मधुर मूर्ख मूक स्थिर । वेर्यातलाभमतिर्मनः शारदानाम् । समो मतिमनसोः । जवन । इति दृढादिः ॥ १९ ॥

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च । ५ । १ । १२४ । ब्राह्मण वाडव माणव । अर्हतो नुम् च । चोर धूर्त आराधय विराधय अपराधय उपराधय एकभाव द्विभाव त्रिभाव अन्यभाव अक्षेत्रज्ञ संवादिन् संवेशिन् संभाषिन् वहुभाषिन् शीर्षघातिन् विघातिन समस्थ विषमस्थ परमस्थ अनीश्वर कुशल चपल निपुण पिशुन कुतूहल क्षेत्रज्ञ निश्न वालिस अलस दुष्पुरुष कापुरुष राजन् गणपति अधिपति गडुल दायाद विशस्ति विषम विपात निपात । सर्ववेदादिभ्यः स्वार्थे । चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च । शौटीर ॥ आकृतिगणोऽयम् ॥ इति ब्राह्मणादिः ॥ १६ ॥

[चतुर्वेदादिभ्य उभयपदवृद्धिश्च । ५ । १ । १२४ ॥ चतुर्वेद चतुर्वर्ण चतुराश्रम सर्वविद्य त्रिलोक त्रिस्वर षड्गुण सेना अन्तर संनिधि समीप उपमा सुख तदर्थ इतिमहणिक ॥ इति चतुर्वेदादिः ॥ २० ॥]

पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् । ५ । १ । १२८ ॥ पुरोहित । राजासे । ग्रामिक पिण्डित सुहित वालमन्द (वाल मन्द) खण्डिक दण्डिक वर्मिक कर्मिक धर्मिक शीलिक सूतिक मूलिक तिलक अञ्जलिक (अन्तलिक) रूपिक ऋषिक पुत्रिक अविक छत्रिक पर्षिक पथिक चर्मिक प्रतिक सारथि आस्तिक सूचिक संरक्ष सूचक (संरक्षसूचक) नास्तिक अजानिक शाक्वर नागर चूडिक ॥ इति पुरोहितादिः ॥ २१ ॥

प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् ।५।१।१२९॥ उद्गातृ उन्नेतृ प्रतिहर्तृ प्रशास्तृ होतृ पोतृ हर्तृ रथगणक पत्तिगणक सुष्टु दुष्ठु अध्वर्यु वधू सुभग मन्त्र ॥ **इत्युदगात्रादिः ॥ २२ ॥**

हायनान्तयुवादिभ्योऽण् ।५।१।१३०॥ युवन् स्थविर होतृ यजमान । पुरुपासे । भ्रातृ कुतुक श्रमण (श्रवण) कटुक कमण्डलु कुस्त्री सुस्त्री दुःस्त्री सुहृदय दुर्हृदय सुहृद् दुर्हृद् सुभ्रातृ दुभ्रातृ वृषल परिव्राजक सब्रह्मचारिन् अनृशंस । हृदयासे । कुशल चपल निपुण पिशुन कुतूहल क्षेत्रज्ञ । श्रोत्रियस्य यलोपश्च ॥ **इति युवादिः ॥ २३ ॥**

द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च ।५।१।१३३॥ मनोज्ञ प्रियरूप अभिरूप कल्याण मेधाविन् आढ्य कुलपुत्र छान्दस छात्र श्रोत्रिय चोर धूर्त विश्वदेव युवन् कुपुत्र ग्रामपुत्र ग्रामकुलाल ग्रामड (ग्रामषण्ड) ग्रामकुमार सुकुमार बहुल अवश्यपुत्र अमुष्यपुत्र आमुष्यकुल सारपुत्र शतपुत्र ॥ **इति मनोज्ञादिः ॥ २४ ॥**

तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ ।५।२।२४॥

१—पीलु कर्कन्धू (कर्कन्धु) शमी करीर बल (कुवल) बदर अश्वत्थ खदिर ॥ **इति पील्वादिः ॥ २५ ॥**

२—कर्ण अक्षि नख मुख केश पाद गुल्फ भ्रु शृङ्ग दन्त ओष्ठ पृष्ट ॥ **इति कर्णादिः ॥ २६ ॥**

तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् ।५।२।३६॥ तारका पुष्प कर्णक मञ्जरी ऋजीप क्षण सूच सूत्र मूत्र निष्क्रमण पुरीष उच्चार प्रचार विचार कुड्मल कण्टक मुसल मुकुल कुसुम कुतूहल (स्तवक) किसलय पल्लव खण्ड वेग निद्रा मुद्रा बुभुक्षा धेनुष्या पिपासा श्रद्धा अभ्र पुलक अङ्गारक वर्णक द्रोह दोह सुख दुःख उत्कण्ठ भर व्याधि वर्मन् व्रण गौरव शास्त्र तरङ्ग तिलक चन्द्रक अन्धकार गर्व कुमुर (मुकुर) हर्ष उत्कर्ष रण कुवलय गर्ध क्षुध् सीमन्त ज्वर गर रोग रोमाञ्च पण्डा कज्जल तृष् कोरक कल्लोल स्थपुट फल कञ्चुक शृङ्गार अङ्कुर शैवल बकुल श्वभ्र अराल कलङ्क कर्दम कन्दल मूर्च्छा अङ्गार हस्तक प्रतिबिम्ब विघ्नतन्त्र प्रत्यय दीक्षा गर्ज । गर्भादप्राणिनि ॥ **इति तारकादिः ॥ आकृतिगणः ॥ २७ ॥**

विमुक्तादिभ्योऽण् ।५।२।६१॥ विमुक्त देवासुर रक्षोसुर उपसद

सुवर्ण परिसारक सदसत् वस मरुत् पत्नीवत् वसुमत् महीयत्त्व सत्त्वत् बर्हवत् दशार्ण दशार्ह वयस् हविर्धान पतत्रिन् महित्री अस्यहत्य सोमापूषन् इडा अग्नाविष्णु उर्वशी वृत्रहन् ।। इति विमुक्तादिः ।। २८ ।।

गोषदादिभ्यो वुन् । ५ । २ । ६२ ।। गोपद इषत्वा मातरिश्वन् देवस्यत्वा देवी रापः कृष्णोस्याखरेष्टः देवीधिया (देवीधियम्) रक्षोहण युञ्जान अञ्जन प्रभूति प्रतूर्न कृशानु (कृशाकु) ।। **इति गोषदादिः ।। २९ ।।**

आकर्षादिभ्यः कन् । ५ । २ । ६४ ।। आकर्ष (आकष) त्सरु पिशाच पिचण्ड अशनि अश्मन् निचय जय चय विजय आचय नय पाद दीप ह्रद ह्लाद ह्राद गद्गद शकुनि ।। **इत्याकर्षादिः ।। ३० ।।**

इष्टादिभ्यश्च । ५ । २ । ८८ ।। इष्ट पूर्त उपासादित परिगदित परिवादित निकथित निषादित निपठित संकलित परिकलित संरक्षित परिरक्षित अर्चि गणित अवकीर्ण आयुक्त गृहीत आम्नात श्रुत अधीत अवधान आसेवित अवधारित अवकल्पित निराकृत उपाकृत अनुयुक्त अनुगणित अनुपठित व्याकुलित ।। **इतीष्टादिः ।। ३१ ।।**

रसादिभ्यश्च । ५ । २ । ९५ ।। रस रूप वर्ण गन्ध स्पर्श शब्द स्नेह भाव । गुणादेकाचः ।। **इति रसादिः ।। ३२ ।।**

सिध्मादिभ्यश्च । ५ । २ । ९७ ।। सिध्म गडु मणि नाभि बीज वीणा कृष्ण निष्पाव पांसु पार्श्व पर्शु हनुसक्तु मास (मांस) । पार्ष्णिधमन्योर्दीर्घश्च । वातदन्तबलललाटानामूङ् च । जटाघटाकटाकालाः क्षेपे । पर्ण उदक प्रज्ञा सक्थि कर्ण स्नेह शीत श्याम पिंग पित्त पुष्क पृथु मृदु मञ्जु मण्डप पत्र चटु कपि गण्डु ग्रन्थि श्री कुश धारा वर्ष्मन् पक्ष्मन् श्लेष्मन् पेश निष्पाद् कुण्ड । क्षुद्रजन्तूपतापयोश्च ।। **इति सिध्मादिः ।। ३३ ।।**

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः । ५ । २ । १०० ।।

१—लोमन् रोमन् बभ्रू हरि गिरि कर्क कपि मुनि तरु ।। **इति लोमादिः ।। ३४ ।।**

२—पामन् वामन् वेमन् हेमन् श्लेष्मन् कद्रु (कद्रू) बलि सामन् ऊष्मन् कृमि । अङ्गारकल्याणे । शाकीपलालीदद्रूणां ह्रस्वत्वं च । विष्वगित्युत्तरपद-लोपश्चाकृतसन्धेः । लक्ष्म्या अच्च ।। **इति पामादिः ।। ३५ ।।**

३—पिच्छा उरस धुवक ध्रुवक । जटाघटाकलाः क्षेपे । वर्ण उदक पङ्क प्रज्ञा ॥ इति पिच्छादिः ॥ ३६ ॥

[ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम् । ५ । २ । १०३ ॥ ज्योत्स्ना तमिस्रा कुण्डल कुतप विसर्प विपादिका ॥ इति ज्योत्स्नादिः ॥ ३७ ॥]

व्रीह्यादिभ्यश्च । ५ । २ । ११६ ॥ व्रीहि माया शाला शिखा माला मेखला केका अष्टका पताका चर्मन् कर्मन् वर्मन् दंष्ट्रा संज्ञा वडवा कुमारी नौ वीणा बलाका यव खदनौ कुमारी । शीर्षान्नञः ॥ इति व्रीह्यादिः ॥ ३८ ॥

तुन्दादिभ्य इलच्च । ५ । २ । ११७ । तुन्द उदर पिचण्ड यव व्रीहि । स्वाङ्गाद्विवृद्धौ ॥ इति तुन्दादिः ॥ ३९ ॥

अर्श आदिभ्योऽच् । ५ । २ । १२७ ॥ अर्शस् उरस् तुन्द चतुर पलित जटा घटा घाटा अभ्र अघ कर्दम अम्ल लवण । स्वाङ्गाद्धीनात् वर्णात् । इत्यर्शआदिः आकृतिगणः ॥ ४० ॥

सुखादिभ्यश्च । ५ । २ । १३१ ॥ सुख दुःख तृप्त कृच्छ्र अस्र (आश्र) आस्र अलीक कठिन सोढ प्रतीप शील हल । माला क्षेपे । कृपण प्रणाय (प्रणय) दलकक्ष । इति सुखादिः ॥ ४१ ॥

पुष्करादिभ्यो देशे । ५ । २ । १३७ ॥ पुष्कर पद्म उत्पल तमाल कुमुद नड कपित्थ बिस मृणाल कर्दम शालूक विगर्ह्य करीष शिरीष यवास प्रवाह हिरण्य कैर कल्लोल तट तरङ्ग पङ्कज सरोज राजीव नालीक सरोरुह पुटक अरविन्द अम्भोज अब्ज कमल पयस् ॥ इति पुष्करादिः ॥ ४२ ॥

बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् । ५ । २ । १३६ ॥ बल उत्साह उद्भास उद्वास शिखा कुल चूडा सुल कूल आयाम व्यायाम उपयाम आरोह अवरोह परिणाह युद्ध ॥ इति बलादिः ॥ ४३ ॥

[दृशिग्रहणाद्भवदादियोग एव । ५ । ३ । १४ ॥ भवान् दीर्घायुः देवानांप्रियः आयुष्मान् ॥ इति भवदादिः ॥ ४४ ॥]

देवपथादिभ्यश्च । ५ । ३ । २०० ॥ देवपथ हंसपथ वारिपथ रथपथ स्थलपथ करिपथ अजपथ राजपथ शतपथ शङ्कुपथ सिन्धुपथ सिद्धगति उष्ट्रग्रीव वामरज्जु हस्त इन्द्र दण्ड पुष्प मत्स्य ॥ इति देवपथादिः ॥ आकृतिगणः ॥ ४५ ॥

शाखादिभ्यो यः । ५ । ३ । १०३ ॥ शाखा मुख जघन शृङ्ग मेघ अभ्र चरण स्कन्ध स्कन्द (स्कन्द) उरस् अग्र शण ॥ इति शाखादि ॥ ४६ ॥

शर्करादिभ्योऽण् ॥ ५ । २ । १०७ ॥ शर्करा कपालिका कपाटिका कपिष्ठिका (कनिष्ठिका) पुण्डरीक शतपत्र गोलोमन् लोमन् गोपुच्छनराची नकुन सिकता ॥ इति शर्करादिः ॥ ४७ ॥

अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक् । ५ । ३ । १०८ ॥ अङ्गुली भरुज बभ्रु वल्गु पण्डर मण्डल शष्कुली हरि कपि मुनि रुह खल उदश्वित् गोणी उरस कुलिश ॥ इत्यङ्गुल्यादिः ॥ ४८ ॥

दामन्यादित्रिगर्तषष्ठाच्छः । ५ । ३ । ११६ ॥ दामनि औलपि बैजवापि औदकि औदङ्कि अच्युतन्ति (आच्युतन्ति) अच्युतदन्ति (आच्युतदन्ति) शाकुन्तकि आकिदन्ति औडवि काकदन्तकि शात्रतपि सर्वसेनि बिन्दु बैन्दवि तुलभ मौञ्जायनि काकन्दि सावित्रीपुत्र ॥ इति दामन्यादिः ॥ ४९ ॥

पर्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ । ५ । ३ । ११७ ।

१—पर्शु असुर रक्षस् बाह्लीक वयस् वसु मरुत् सत्वत् दशार्ह पिशाच अशनि कर्षापण: ॥ इति पर्श्वादिः ॥ ५० ॥

२—यौधेय कौशेय शौक्रेय शौभ्रेय धौर्तेय धार्तेय ज्यावाणेय त्रिगर्त भरत उशीनर ॥ इति यौधेयादिः ॥ ५१ ॥

स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् । ५ । ४ । ३ ॥ स्थूल अणु माषपु (माष इषु) कृष्ण तिलेषु । यव व्रीहिषु । यव व्रीहिषु । इक्षु तिल । पाद्य कालावदात सुरायाम् । गोमूत्र आच्छादने । सुरा अहौ जीर्ण शालियु । पत्रमूल समस्तौ व्यस्तश्च । कुमारीपुत्र कुमारीश्वशुर मणि ॥ इति स्थूलादिः ॥ ५२ ॥

यावादिभ्यः कन् । ५ । ४ । २९ ॥ याव मणि अस्थि तालु जानु सान्द्र पीत स्तम्ब । ऋतावुष्णशीते । पशौ लूनविपाते । अणु निपुणे । पुत्र कृत्रिमे । स्नात वेदसमाप्तौ । शून्य रिक्ते । दान कुत्सिते । तनु सूत्रे । ईयसश्च । ईयसश्च । ज्ञात अज्ञात । कुमारीक्रीडनकानि च (कुमारक्रीडनकानि च) इति यावादिः ॥ ५३ ॥

विनयादिभ्यष्ठक् । ५ । ४ ३४ ॥ विनय समय । उपायो ह्रस्वत्वं च ।

संप्रति सङ्गति कथञ्चित् अकस्मात् समाचार उपचार समाय (समयाचार) व्यवहार संप्रदान समुत्कर्ष सहमू विशेष अत्यय । इति विनयादिः ॥ ५४ ॥

प्रज्ञादिभ्यश्च । ५ । ४ । ३८ ॥ प्रज्ञ वणिज् उशिज् उष्णिज् प्रत्यक्ष विद्वस् वेदन् पोडन् विद्या मनस् । श्रोत्र शरीरे । जुह्वत् । कृष्ण मृगे । चिकीर्षत् । चोर शत्रु योध चक्षुस् वसु एनस् मरुत् क्रुञ्च सत्वत् दशार्ह वयस् व्याकृत असुर रक्षस् पिशाच अशनि कर्षापण देवता बन्धु ॥ इति **प्रज्ञादिः** ॥ ५५ ॥

[**आद्यादिभ्यः उपसंख्यानम्** । ५ । ४ । ४४ ॥ आदि मध्य अन्त पृष्ठ पार्श्व ॥ **इत्याद्यादिः** ॥ **आकृतिगणः** ॥ ५५ ॥

अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः । ५ । ४ । १०७ ॥ शरद् विपाश् अनस् मनस् उपानह् अनडुह् दिव् हिमवत् हिरुक् विद् सद् दिश् दृश् विश् चतुर् त्यत् तद् यद् कियत् । जराया जरश्च । प्रतिपरिसमनुभ्योऽक्ष्णः । पथिन् ॥ **इति शरदादिः** ॥ ५७ ॥

द्विदण्ड्यादिभ्यश्च । ५ । ४ । १२८ ॥ द्विदण्डि द्विमुसलि उभाञ्जलि उभयाञ्जलि उभादन्ति उभयादन्ति उभाहस्ति उभयाहस्ति उभाकर्णि उभयाकर्णि उभापाणि उभयापाणि उभाबाहु उभयाबाहु एकपदि प्रोष्ठपदि आच्यपदि (आढ्यपदि) सपदि निकुच्य करणि संहतपुच्छि अन्तेवासि ॥ **इति द्विदण्ड्यादिः** ॥ ५८ ॥

पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः । ५ । ४ । १३८ ॥ हस्तिन् कुद्दल अश्व कशिक कुरुत कटोल कटोलक गण्डोल गण्डोलक अज कपोत जाल गण्ड महेला दासी गणिका कुसूल ॥ **इति हस्त्यादिः** ॥ ५९ ॥

कुम्भपदीषु च । ५ । ४ । १३९ ॥ कुम्भपदी एकपदी जालपदी शूलपदी मुनिपदी गुणपदी शतपदी सूत्रपदी गोधापदी कलशीपदी विपदी तृणपदी द्विपदी त्रिपदी षट्पदी दासीपदी शितपदी विष्णुपदी सुपदी निष्पदी आर्द्रपदी कुणिपदी कृष्णपदी शुचिपदी द्रोणीपदी (द्रोणपदी) द्रुपदी शूकरपदी शकृत्पदी अष्टापदी स्थूणापदी अपदी सूचीपदी ॥ **इति कुम्भपद्यादिः** ॥ ६० ॥

उरःप्रभृतिभ्यः कप् । ५ । ४ । १५१ ॥ उरस् सर्पिस् उपानह् पुमान् अनड्वान् पयः नौः लक्ष्मीः दधि मधु शाली शालिः । अर्थान्नञः ॥ **इत्युरःप्रभृतयः** ॥ ६१ ॥

षष्ठोऽध्यायः

[**शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्** । ६ । १ । ९४ ॥ शकन्धुः कर्कन्धुः कुलुटा । सीमन्तः केशवेशे । हलीषा मनीषा लाङ्गलीषा पतञ्जलिः । सारङ्गः पशुपक्षिणोः ॥ **इति शकन्ध्वादिः** ॥ १ ॥

पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम् । ६ । १ । १५७ ॥ पारस्करो देशः । कारस्करो वृक्षः । रथस्था नदी । किष्कुः प्रमाणम् । किष्किन्धा गुहा । तद्बृहतोः करपत्योरदेवतयोः सुट् तलोपश्च । प्रात्तुम्पतौ गवि कर्त्तरि ॥ **इति पारस्करादिः** ॥ २ ॥

उञ्छादीनां च । ६ । १ । १६० ॥ उञ्छ म्लेच्छ जञ्ज नल्प (जल्प) जप वध । युग कालविशेषे । रथाद्युपकरणे च । गरो दूष्ये । वेदवेगवेदेष्टबन्धाः करणे । स्तुयुद्रुवश्छन्दसि । वर्तनि स्तोत्रे । श्वभ्र दरः । साम्बतापौ भावगर्हायाम् । उत्तमशश्वत्तमौ सर्वत्र । भक्षमन्थभोगमन्थाः ॥ **इत्युञ्छादिः** ॥ ३ ॥

वृषादीनां च । ६ । १ । १२० ॥ वृषः जनः ज्वरः ग्रहः हयः गयाः नयः तायः वयः चयः श्रमः वेदः सूदः अंशुः गुहा । शमरणौ संज्ञायाम् । संमतौ भावकर्मणोः । मन्त्रः शान्तिः कामः आरा धारा कारा वहः कल्पः पादः ॥ **इति वृषादिः** ॥ **आकृतिगणः** ॥ अविहितलक्षणमाद्युदात्तत्वं वृषादिषु ज्ञेयम् ॥ ४ ॥

विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु । ६ । २ । २४ ॥ विस्पष्ट विचित्र विचित्ति व्यक्त संपन्न पटु पण्डित कुशल चपल तिपुर्ण ॥ **इति विस्पष्टादिः** ॥ ५ ॥

कार्तकौजपादयश्च । ६ । २ । ३७ ॥ कार्तकौजपौ सावर्णिमाण्डकेयौ (सावर्णिमाण्डूकेयौ) अवन्त्यश्मकाः पैलश्यापर्णेयाः कपिश्यापर्णेयाः शैतिकाक्षपाञ्चालेयाः कटुकवाधूलेयाः शाकलशुनकाः शाकल शणकाः बाभ्रवाः आर्चाभिमौद्गलाः कुन्तिसुराष्ट्राः तण्डवतण्डाः अविमत्तकामविद्धाः बाभ्रवशालङ्कायनाः बाभ्रवदानच्युताः कठकालापाः कठकौथुमाः कौथुमलौकाक्षाः स्त्रीकुमारम् मौदपैप्पलादाः वत्सजरन्तः सौश्रुतपार्थिवाः जरामृत्यू याज्यानुवाक्ये ॥ **इति कार्तकौजपादिः** ॥ ६ ॥

कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपा पारेवडवातैतिलकद्रूः पण्यकम्बलो दासीभाराणां च । ६ । २ । ४२ ॥ दासीभारः देवहूतिः देवभीतिः देवलातिः

वसुनीतिः (वसूनितिः) ओषधिः चन्द्रमाः ॥ इति दासीभारादिः ॥ आकृतिगणः ॥ ७ ॥

युक्तारोह्यादयश्च । ६ । ८१ ॥ युक्तरोही आगतरोही आगतयोधी आगतवञ्ची आगतनन्दी आगतप्रहारा आगतमत्स्यः क्षारहोता भगिनीभर्ता ग्रामगोधुक अश्वत्रिरात्रः गर्गत्रिरात्रः व्युष्टित्रिरात्रः गणपादः एकशीतिपाद् । पात्रेसमितादयश्च ॥ इति युक्तारोह्यादिः ॥ आकृतिगणः ॥ ८ ॥

घोषादिषु च । ६ । २ । ८५ ॥ घोष घट (कट) बल्लभ ह्रद बदरी पिङ्गल (पिङ्गली) पिशङ्ग माला रक्षा शाला (वृट्) कुट कूटशाल्मली अश्वत्थ तृण शिल्पी मुनि प्रीक्षाक्ष (प्रेक्षा) ॥ इति घोषादिः ॥ ९ ॥

छात्र्यादयः शालायाम् । ६ । ८६ ॥ छात्रि पेलि भाण्डि व्याडि आखण्डि आघाटि गोमि ॥ इति छात्र्यादिः ॥ १० ॥

प्रस्थेऽवृद्धमकर्क्यादीनाम् । ६ । २ ८७ ॥ कर्कि (कर्की) मघ्नी मकरी कर्कन्धु शमी करीरि (करीर) कन्दुक कुवल (कवल) बदरी ॥ इति कर्क्यादिः ॥ ११ ॥

मालादीनां च । ६ । २ । ८८ ॥ माला शाला शोणा (शोण) द्राक्षा स्राक्षा क्षामा काञ्ची एक काम दिवोदास वधयश्च ॥ इति मालादिः ॥ आकृतिगणः ॥ १२ ॥

क्रत्वादयश्च । ६ । २ । ११८ ॥ क्रतु दृशीक प्रतीक प्रतूर्ति हव्य भव्य भग ॥ इति क्रत्वादिः ॥ १३ ॥

आदिश्चिहणादीनाम् । ६ । २ । १२५॥ चिहण मदुर मद्रुमर वैतुल पटत्क वैडा लिकर्णक वैडालिकर्णिक कुक्कुट चिक्कण ॥ इति चिहणादिः ॥ १४ ॥

वर्ग्यादयश्च । ६ । २ । १३१ ॥ दिग/दिपु वर्ग्यादयस्त एव कृतयदन्ता वर्ग्यादयः ॥ १५ ॥

चूर्णादीन्यप्राणिषष्ठ्याः । ६ । २ । १३१ ॥ चूर्ण करिष करीष शाकिन शाकट द्राक्षा तूस्त कुन्दम दलप चमसी चक्कन चौल ॥ इति चूर्णादिः ॥ १६ ॥

उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् । ६ । २ । १४० ॥ वनस्पतिः बृहस्पतिः शचीपतिः तनूनपात् नराशंसः शुनःशेपः शण्डमर्कौ तृष्णावमत्री लम्बाविश्ववयसौ मर्मृत्युः । इति वनस्पत्यादिः ॥ १७ ॥

संज्ञायामनाचितादीनाम् । ६ । २ । १४६ ॥ आचित पर्याचित आस्थापित परिगृहीत निरुक्त प्रतिपन्न अपश्लिष्ट प्रश्लिष्ट उपहित उपस्थित संहितागवि ॥ इत्याचितादिः ॥ १८ ॥

प्रवृद्धादीनां च । ६ । २ । १४७ ॥ प्रवृद्धो यानम् । प्रवृद्धो वृषलः । प्रयुतासूष्णवः । आकर्षे अवहितः । अवहितो भोगेषु । खट्वारूढः । कविशस्तः ॥ इति प्रवृद्धादिः ॥ आकृतिगणोऽयम् ॥ तेन—प्रवृद्धं सानम् । अप्रवृद्धो वृषकृतो रथ इत्यादि ॥ १९ ॥

कृत्योकेष्णुच्चार्वादयश्च । ६ । २ । १६० ॥ चारु साधु यौधिक (यौधकि) अनङ्गमेजय वदान्य अकस्मात् । वर्तमानवर्धमानत्वरमाणध्रियमाणक्रियमाण-रोचमानशोभमानाः संज्ञायाम् । विकारसदृशे व्यस्तसमस्ते । गृहपति गृहपतिक । राजाह्नोश्छन्दसि ॥ इति चार्वादिः ॥ २० ॥

न गुणादयोऽवयवाः । ६ । २ । १७६ ॥ गुण अक्षर अध्याय सूक्त छन्दोमान ॥ इति गुणादिः ॥ आकृतिगणः ॥ २१ ॥

निरुदकादीनि च । ६ । २ । १८४ ॥ निरुदक निरुपल निर्मक्षिक निर्मशक निष्कालक निष्कलिक निष्पेष दुस्तरीप निस्तरीक निरजिन उदजिन उपाजिन । परेर्हस्तपादकेशकर्षाः ॥ इति निरुदकादिः ॥ आकृतिगणः ॥ २२ ॥

प्रतेरश्वादयस्तत्पुरुषे । ६ । २ । १९३ ॥ अशु जन राजन् उष्ट्र खेटक अजिर आर्द्रा श्रवण कृत्तिका अर्धपुर ॥ इत्यश्वादिः ॥ २३ ॥

उपाद् द्व्यजजिनमगौरादयः । ६ । २ । १९४ ॥ गौर तैष तैल लेट लोट जिह्वा कृष्ण कन्या गुध कल्प पादः ॥ इति गौरादिः ॥ २४ ॥

[त्रिचक्रादीनां छन्दस्युपसंख्यानम् । ६ । २ । १९९ ॥ त्रिचक्र त्रिवृत् । त्रिवङ्कुर ॥ इति त्रिचक्रादिः ॥ आकृतिगणः ॥ २५ ॥

स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ्समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु । ६ । ३ । ३४ ॥ प्रिया मनोज्ञा कल्याणी सुभगा दुर्भगा भक्तिः सचिवा स्वसा कान्ता क्षान्ता समा चपला दुहिता वाम अबला तनया ॥ इति प्रियादिः ॥ २६ ॥

तसिलादिष्वाकृत्वसुचः । ६ । ३ ॥ ३५ ॥ तसिल् त्रल् तरप् तमप् चरट् जातीयर् कल्पप् देशीयर् रूपप् पाशप् थल् थाल् दार्हिल् तिल थ्यन् ॥ इति तसिलादयः ॥ २७ ॥

[कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु ६ । ३ । ४२ ॥

१—कुक्कुटी मृगी काकी इति कुक्कुट्यादिः ॥ २८ ॥

२—अण्ड पद शाव भ्रकुंस भ्रकुटी ॥ इति अण्डादिः ॥ २९ ॥]

पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् ६ । ६ । ३ ॥ १०९ ॥ पृषोदर पृषोत्थान वलाहक जीमूत श्मशान उलूखल पिशाच वृसी मयूर ॥ इति वृषोदरादिः ॥ आकृतिगणः ॥ ३० ॥

वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलुकादीनाम् । ६ । ३ ॥ ११७ ॥

१—काटर मिश्रक सिधक पुरग सारिक (शारिक) · इति कोटरादिः ॥ ३१ ॥

२—किंशुलुक शाल्व नड अञ्जन भञ्जन लोहित कुक्कुट ॥ इति किंशुलुकादिः ॥ ३२ ॥

मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम् । ६ । ३ । ११९ ॥ अजिर खदिर पुलिन हंहक (हंस) कारण्ड (कारण्डव) चक्रवाक ॥ इत्यजिरादिः ॥ ३३ ॥

शरादीनां च । ६ । ३ । १२० ॥ शर वंश धूम अहि कपि मणि मुनि शुचि हनु ॥ इति शरादिः ॥ ३४ ॥

[**अपील्वादीनामिति वक्तव्यम्** ६ । ३ । १२१ ॥ पीलु दारु रुचि चारु गम् कम् ॥ इति पील्वादिः ॥ ३५ ॥]

बिल्वकादिभ्यश्छस्यलुक् । ६ । ४ ॥ १५३ ॥ छविधानार्थं ये नडादयस्ते यदा छसन्नियोगे कृतकुगागमास्ते बिल्वकादयः ॥ ३६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

स्नात्व्यादयश्च । ७ । १ । ४९ ॥ स्नात्वी पीत्वी ॥ इति स्नात्व्यादिः ॥ आकृतिगणः ॥ १ ॥

द्वारादीनां च । ७ । ३ । ४ ॥ द्वार स्वर स्वाध्याय व्यल्कश स्वस्ति स्वर स्फ्यकृत स्वादु मृदु श्वस् श्वन् स्व ॥ इति द्वारादिः ॥ २ ॥

स्वागतादीनां च । ७ । ३ । ७ ॥ स्वागत स्वध्वर स्वङ्ग व्यङ्ग व्यड व्यवहार स्वपति ॥ इति स्वागतादिः ॥ ३ ॥

अनुशतिकादीनां च । ७ । ३ । २० ॥ अनुशतिक अनुहोड अनुसंवरण (अनुसंचरण) अनुसंवत्सर अङ्गारवेणु असिहत्य अस्यहत्य अस्यहेति बध्योग

पुस्करसद् अनुहरत् कुरुकत कुरुपञ्चाल उदकशुद्ध इहलोक परलोक सर्वपुरुष सर्वभूमि प्रयोग परस्त्री । राजपुरुषात्व्यञि । सूत्रनड ॥ इत्यनुशतिकादिः ॥ आकृतिगणोऽयम् ॥ तेन—अभिगम अभिभूत अधिदेव चतुर्विद्या इत्यादि ॥ ४ ॥

[क्षिपकादीनां चोपसंख्यानम् ७ । ३ । ४५ ॥ क्षिपका ध्रुवका चरका सेकका करका चटका अदका हलका अलका कन्यका ध्रुवका एडका ॥ इति क्षिपकादिः । आकृतिगणः ॥ ५ ॥]

न्यङ्क्वादीनां च । ७ । ३ । ५३ ॥ न्यङ्कु मद्गु भृगु दूरेपाक फलेपाक क्षणपाक दूरेपाका फलेपाका दूरेपाकु फलेपाकु तक्र (तत्र) वक्र (चक्र) व्यतिषङ्ग अनुषङ्ग अवसर्ग उपसर्ग श्वपाक मांसपाक (मासपाक) मूलपाक कपोतपाक उलूकपाक । संज्ञायां मेघनिदाघावदाघार्घाः । न्यग्रोध वीरुत् ॥ इति न्यङ्क्वादिः ॥ ६ ॥

[क्ण्यानीनां चेति वक्तव्यम् । ७ । ४ । ३ ॥ कण रण भग श्रण लुप हेठ ह्वायि वाणि लोटि (लोठि) लोपि ॥ इति काण्यादिः ॥ ७ ॥]

अष्टमोऽध्यायः

तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः । ८ । १ । २७ ॥ गोत्र ब्रुव प्रवचन प्रहसन प्रकथन प्रत्ययन प्रपञ्च प्राय प्याय प्रचक्षण विचक्षण अवचक्षण स्वाध्याय भूयिष्ठ वानाम ॥ इति गोत्रादिः ॥ १ ॥

पूजनात्पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः । ८ । १ । ६७ ॥ काष्ट दारुण अज्ञात पुत्र अमातापुत्र वश अनाज्ञात अनुज्ञात अपुत्र अयुत अद्भुत अनुक्त भृश घोर सुख परम सु अति ॥ इति काष्ठादिः ॥ २ ॥

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः । ८ । २ । ९ । यव दल्मि ऊर्मि भूमि रुत् गरुत् इक्षु द्रु मधु ॥ इति यवादिः ॥ आकृतिगणः ॥ ३ ॥

[अहरादीनां पत्यादिषूपसंख्यानम् ८ । २ । ७० ॥

१—अहर गीर ॥ इत्यहरादिः ॥ ५ ॥

२—पति गण पुत्र । इति पत्यादिः ॥ ५ ॥]

कस्कादिषु च । ८ । ३ । ४८ ॥ कस्कः कौतस्कुतः भ्रातुष्पुत्रः शुनस्कर्णः सद्यस्कालः सद्यस्क्रीः साद्यस्कः कांस्कान् सर्पिष्कुण्डिका धनुष्कपालम् बर्हिष्पलम्

(बर्हिष्पलम्) यजुष्पात्रम् अयस्कान्तः तमस्काण्डः अयस्काण्डः मेदस्पिण्डः भास्करः अहस्करः ॥ इति कस्कादिः ॥ आकृतिगणः ॥ ६ ॥

सुषामादिषु च । ८ । ३ । ९८ ॥ सुषामा निःषामा दुःषामा सुषेधः निषेधः निःसेवः सुषंधिः निःसंधिः दुःसंधिः सुष्टु दुष्ठु । गौरिषक्थः संज्ञायाम् । प्रतिष्णिका जलाषाहत् (जलापाडम्) नौषेचनम् दुन्दुभिषेवणम् (दुन्दुभिषेचणम्) । एति संज्ञायामगात् । नक्षत्राद्वा । हरिषणः रोहिणीषेणः ॥ इति सुषमादिः ॥ आकृतिगणः ॥ ७ ॥

न रपरसृपिसृजिस्पृहिसवनादीनाम् । ८ । ३ । ११० ॥ सवने सवने । सूते सूते । सोमे सोने । सवनमुखे सवनमुखे । किंस किंसम् (किंसः किंमः) । अनुसवनमनुसवनम् । गोसनि गोसनिम् । अश्वसनिमश्वसनिम् ॥ पाठान्तरम् ॥ सवने सवने । सवनमुखे सवनमुखे । अनुसवनमनुसवनम् । संज्ञायां बृहस्पतिसवः । शकुनिसवनम् । सोमे सोमे । सुमे सुमे । संवत्सरे संवत्सरे । विसं विसम् । किसं किसम् । मुसलं मुसलम् । गोसनिम् अश्वसतिम् ॥ इति सवनादिः ॥ ८ ॥

[इरिकादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः ८ । ४ । ६ ॥ इरिका मिरिका तिमिरा ॥ इति इरिकादिः ॥ आकृतिगणः ॥ ९ ॥]

[गिरिनद्यादीनां च ८ । ४ । १० ॥ गिरिनदी गिरिनख गिरनद्ध गिरिनितम्ब चक्रनदी चकनितम्ब तूर्यनाव माषोन आर्गयन ॥ इति गिरिनद्यादिः ॥ आकृतिगणः ॥ १० ॥]

क्षुभ्नादिषु च । ८ । ४ । ३९ ॥ क्षुम्न नृनमन नन्दिम् नन्दन नगर । एतान्युत्तरपदानि संज्ञायां प्रयोजयन्ति । हरिनन्दी हरिनन्दनः गिरिनगरम् । नृतिर्यङि प्रयोजयन्ति । नरीनृत्यते । नर्तन गहन नन्दन निवेश निवास अग्नि अनूप । एतान्युत्तरपदानि प्रयोजयन्ति । परिनर्तनं परिगहनं परिनन्दनन् शरनिवेशः शरनिवासः शराग्निः दर्भानूपः । आचार्यादणत्वं च ॥ आकृतिगणोऽयम् । पाठान्तरम् ॥ क्षुम्ना पृप्नु नृपमन नरनगर नन्दन । यङ्नृती । गिरिनदी गृहगमन निवेश निवास अग्नि अनूप आचार्यभोगीन चतुर्हायन । इरिकादीनि वनोत्तरपदानि संज्ञायाम् । इरिका तिमिर समीर कुबेर हरि कर्मार ॥ इति क्षुभ्नादिः ॥ ११ ॥

इति श्रीपाणिनिमुनिप्रणीतो गणपाठः समाप्तः ॥

अथ लिङ्गानुशासनम्

१ लिङ्गम् ।

२ स्त्री ।

३ ऋकारान्ता मातृदुहितृस्वसृपोतृननान्दरः ।

४ अन्यूप्रत्ययान्तो धातुः ।

५ अशनिभरण्यरणयः पुंसि च ।

६ मिन्यन्तः ।

७ वह्निवृष्ण्यग्नयः पुंसि ।

८ श्रोणियोन्यूर्मयः पुंसि च ।

९ क्तिन्नन्तः ।

१० ईकारान्तश्च ।

११ ऊङाबन्तश्च ।

१२ य्वन्तमेकाक्षरम् ।

१३ विंशत्यादिरानवतेः ।

१४ दुन्दुभिरक्षेषु ।

१५ नाभिरक्षत्रिये ।

१६ उभावप्यन्यत्र पुंसि ।

१७ तलन्तः ।

१८ भूमिविद्युत्सरिल्लतावनिताभिधानानि ।

१९ यादो नपुंसकम् ।

२० भाःस्रुक्स्रग्दिगुष्णिगुपानहः ।

२१ स्थूणोर्णे नपुंसके च ।

२२ गृहशशाभ्यां क्लीबे ।

२३ प्रावृड्विप्रुड्रुट्तृड्विट्त्विषः ।

२४ दर्विविदिवेदिखनिशान्यश्रिवेशिकृष्योषधिकट्यङ्गुलयः ।

२५ तिथिनाडिरुचिवीचिनालिधूलिकेकिकेलिच्छविनीविरात्र्यादयः ।

२६ शष्कुलिराजिकुट्यशनिवर्तिभ्रुकुटि त्रुटिवलिपङ्क्तयः ।

२७ प्रतिपदापद्विपत्संपच्छरत्संसत्परिषदुषःसंवित्क्षुत्पुन्मुत्समिधः ।

२८ आशीर्धूःपूर्गीर्द्वारः ।

२९ अप्सुमनस्समासिकतावर्षाणां बहुत्वं च ।

३० स्रक्त्वग्ज्योग्वाग्यवागूनौस्फिचः ।

३१ तृटिसीमासम्बध्याः ।

३२ चुल्लिवेणिखार्यश्च ।

३३ ताराधाराज्योत्स्नादयश्च ।

३४ शलाका स्त्रियां नित्यम् ।

१ पुमान् ।

२ घञबन्तः ।

३ घाजन्तश्च ।

४ भयलिङ्गभगपदानि नपुंसके ।

५ नङन्तः ।

६ याच्ञा स्त्रियाम् ।

७ क्यन्तो घुः ।

८ इषुधिः स्त्री च ।

९ देवासुरात्मस्वर्गगिरिसमुद्रनखकेशदन्तस्तनभुजकण्ठखड्गशरपङ्काभिधानानि ।

१० त्रिविष्टपत्रिभुवने नपुंसके ।

११ द्यौः स्त्रियाम् ।

१२ इषुबाहू स्त्रियां च ।

१३ बाणकाण्डौ नपुंसके च ।

१४ नान्तः ।

१५ क्रतुपुरुषकपोलगुल्फमेघाभिधानानि ।

१६ अभ्रं नपुंसकम् ।

१७ उकारान्तः ।

१८ धेनुरज्जुकुहूसरयूतनुरेणुप्रियङ्गवः स्त्रियाम् ।

१९ समासे रज्जुः पुंसि च ।

२० श्मश्रुजानुवसुस्वाद्वश्रुजतुत्रपुतालूनि नपुंसके ।

२१ वसु चार्थवाचि ।

२२ मद्गुमधुसीधुशीधुसानुकमण्डलूनि नपुंसके च ।

२३ रुत्वन्तः ।

२४ दारुकसेरुजतुवस्तुमस्तूनि नपुंसके ।

२५ सक्तुर्नपुंसके च ।

२६ प्राग्रश्मेरकारान्तः ।

२७ कोपधः ।

२८ चिबुकशाल्कप्रातिपदिकांशुकोल्मुकानि नपुंसके ।

२९ कण्टकानीकसरकमोदकचषकमस्तकपुस्तकतडाकनिष्कशुष्कवर्चस्कपिनाकभाण्डकपिण्डककटकशण्डकपिटकतालकफलकपुलाकानि नपुंसके च ।

३० टोपधः ।

३१ किरीटमुकुटललाटवटविटश्रृङ्गाटकराटलोष्टानि नपुंसके ।

३२ कुटकूटकपटकवाटकर्पटनटनिकटकीटकटानि नपुंसके च ।

३३ णोपधः ।

३४ ऋणलवणपर्णतोरणरणोष्णानि नपुंसके ।

३५ कार्षापणस्वर्णसुवर्णव्रणचरणवृषणविषाणचूर्णतृणानि नपुंसके च ।

३६ थोपधः ।

३७ काष्ठपृष्ठसिक्थोक्थानि नपुंसके ।

३८ काष्ठा दिगर्थाः स्त्रियाम् ।

३९ तीर्थप्रोथयूथगाथानि नपुंसके च ।

४० नोपधः ।

४१ जघनाजिनतुहिनकाननवनवृजिनविपिनवेतनशासनसोपानमिथुनश्मशानरत्ननिम्नचिह्नानि नपुंसके ।

४२ मानयानाभिधाननलिनपुलिनोद्यानशयनासनस्थानचन्दनालानसम्मानभवनवसनसम्भावनविभावनविमानानि नपुंसके च ।

४३ पोपधः ।

४४ पापरूपोडुपतल्पशिल्पपुष्पशष्पसमीपान्तरीपाणि नपुंसके ।

४५ शूर्पकुतपकुणपद्वीपविटपानि नपुंसके च ।

४६ भोपधः ।

४७ तलभं नपुंसकम् ।

४८ जृम्भं नपुंसके च ।

४९ मोपधः ।

५० रुक्मसिध्मयुग्मेध्मगुल्माध्यात्मकुङ्कुमानि नपुंसके ।

५१ संग्रामदाडिमकुसुमाश्रमक्षेमक्षौमहोमोद्दामानि नपुंसके च ।

५२ योपधः ।

५३ किसलयहृदयेन्द्रियोत्तरीयाणि नपुंसके ।

५४ गोमयकषायमलयान्वयाव्ययानि नपुंसके च ।

५५ रोपधः ।

५६ द्वाराग्रस्फारतक्रवक्रवप्रक्षिप्रक्षुद्रनारतीरदूरकृच्छ्ररन्ध्राश्रश्वभ्रभीरगभीरक्रूरविचित्रकेयूरकेदारोदराजस्रशरीरकन्दरमन्दारपञ्जरजठराजिरवैरचामरपुष्करगह्वरकुहरकुटीरकुलीरचत्वरकाश्मीरनीराम्बरशिशिरतन्त्रयंत्रनक्षत्रक्षेत्रमित्रकलत्रचित्रमूत्रसूत्रवक्त्रनेत्रगोत्रांगुलित्रभलत्रास्त्रशस्त्रशास्त्रवस्त्रपत्रपात्रनक्षत्राणि नपुंसके ।

५७ शुक्रमदेवतायाम् ।

५८ चक्रवज्रान्धकारसारावारपारक्षीरतोमरश्रृङ्गारभृङ्गारमन्दारोशीरतिमिरशिशिराणि नपुंसके च ।

५९ षोपधः ।

६० शिरीषर्जीषाम्बरीषपीयूषपुरीषकिल्बिषकल्माषाणि नपुंसके ।

६१ यूपकरीषमिषविषवर्षाणि नपुंसके च ।

६२ सोपधः ।

६३ पनसबिसबुससाहसानि नपुंसके ।

६४ चमसांसरसनिर्यासोपवासकार्पासवासभासकासकांसमांसानि नपुंसके च ।

६५ कंसं चाप्राणिनि ।
६६ रश्मिदिवसाभिधानानि ।
६७ दीधितिः स्त्रियाम् ।
६८ दिनाहनी नपुंसके ।
६९ मानाभिधानानि ।
७० द्रोणाढकौ नपुंसके च ।
७१ खारीमानिके स्त्रियाम् ।
७२ दाराक्षतलाजासूनां बहुत्वं च ।
७३ नाड्यपजनोपपदानि व्रणाङ्गपदानि ।
७४ मरुद्गरुत्तरदृत्विजः ।
७५ ऋषिराशिदृतिग्रन्थिक्रिमिध्वनिबलिकौलिमौलिरविकविकपिमुनयः ।
७६ ध्वजगजमुञ्जपुञ्जाः ।
७७ हस्तकुन्तान्तव्रातवातदूतधूर्तसूतचूतमुहूर्ताः ।
७८ षण्डमण्डकरण्डभरण्डवरण्डतुण्डगण्डमुण्डपाषण्डशिखण्डाः ।
७९ वंशांशपुरोडाशाः ।
८० ह्रदकन्दकुन्दबुद्बुदशब्दाः ।
८१ अर्घपथिमथ्यृभुक्षिस्तम्बनितम्बपूगाः ।
८२ पल्लवपल्वलकफरेफकटाहनिर्व्यूहमठमणितरङ्गतुरङ्गगन्धस्कन्धमृदङ्गसङ्गसमुद्गपुङ्खाः ।
८३ सारथ्यतिथिकुक्षिबस्तिपाण्यञ्जलयः ।

१ नपुंसकम् ।

२ भावे ल्युडन्तः ।
३ निष्ठा च ।
४ त्वष्यञौ तद्धितौ ।
५ कर्मणि च ब्राह्मणादिगुणवचनेभ्यः ।
६ यद्यढग्यगञ्अण्वुञ्छाश्च भावकर्मणि ।
७ द्वन्द्वैकत्वम् ।
८ अभाषायां हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च ।
९ अनञ्कर्मधारयस्तत्पुरुषः ।
१० अनल्पे छाया ।
११ राजामनुष्यपूर्वा सभा ।
१२ सुरासेनाच्छायाशालानिशा स्त्रियां च ।
१३ शिष्टः परवत् ।
१४ अपथपुण्याहे नपुंसके ।
१५ संख्यापूर्वा रात्रिः ।
१६ द्विगुः स्त्रियां च ।
१७ इसुसन्तः ।
१८ अर्चिः स्त्रियां च ।
१९ छर्दिः स्त्रियामेव ।
२० मुखनयनलोहवनमांसरुधिरकार्मुकविवरजलहलधनान्नाभिधानानि ।
२१ सीरार्थौदनाः पुंसि ।
२२ वक्त्रनेत्रारण्यगाण्डीवानि पुंसि च ।
२३ अटवी स्त्रियाम् ।
२४ लोपधः ।
२५ तुलोपलतालकुसूलतरलकम्बलदेवलवृषलाः पुंसि ।
२६ शीलमूलमङ्गलसालकमलतलमुसलकुण्डलपललमृणालवालनिगलपलालबिडालखिलशूलाः पुंसि च ।
२७ शतादिः संख्या ।
२८ शतायुतप्रयुताः पुंसि च ।
२९ लक्षाकोटी स्त्रियाम् ।
३० शङ्कुः पुंसि च ।
३१ सहस्रः क्वचित् ।
३२ मन्व्यच्कोऽकर्तरि ।
३३ ब्रह्मन्पुंसि च ।
३४ नामरोमणी नपुंसके ।
३५ असन्तो द्व्यच्कः ।
३६ अप्सराः स्त्रियाम् ।
३७ त्रान्तः ।
३८ यात्रामात्राभस्त्रादंष्ट्रावरत्राः स्त्रियामेव ।
३९ भृत्रामित्रच्छात्रपुत्रमन्त्रवृत्रमेढ्रोष्ट्राः पुंसि ।
४० पत्रपात्रपवित्रसूत्रच्छत्राः पुंसि च ।
४१ बलकुसुमशुल्वयुद्धपत्तनरणाभिधानानि ।
४२ पद्मकमलोत्पलानि पुंसि च ।
४३ आहवसंग्रामौ पुंसि ।
४४ आजिः स्त्रियामेव ।
४५ फलजातिः ।
४६ वृक्षजातिः स्त्रियामेव ।

४७ वियज्जगत्सकृच्छक-न्पृषच्छकृद्यकृदुदश्वितः

४८ नवनीतावतानृतामृत-निमित्तवित्तचित्तपित्त-व्रतरजतवृत्तपलितानि

४९ श्राद्धकुलिशदैवपीठकु-ण्डाङ्कदधिसक्थ्यक्ष्य-स्यास्पदाकाशकण्व-बीजानि ।

५० दैवं पुंसि च ।

५१ धान्याज्यसस्यरूप्यप-ण्यवर्ण्यधृष्यहव्यकव्य-काव्यसत्यापत्यमूल्य-शिक्यकुड्यमद्यहर्म्य-तूर्यसैन्यानि ।

५२ द्वन्द्ववर्हदुःखबडिशपि-च्छबिम्बकुटुम्बकवच-वरशरवृन्दारकाणि ।

५३ अक्षमिन्द्रिये ।

१ स्त्रीपुंसयोः ।

२ गोमणियष्टिमुष्टिपाट-लिबस्तिशाल्मलित्रु-टिमसिमरीचयः ।

३ मृत्युसीधुकर्कन्धु-किष्कुकण्डुरेणवः ।

४ गुणवचनमुकारान्तं नपुंसकं च ।

५ अपत्यार्थतद्धिते ।

१ पुंनपुंसकयोः ।

२ घृतभूतमुस्तक्ष्वेलितैरा-वतपुस्तकबुस्तलोहिताः ।

३ श्रृङ्गार्घनिदाघोद्यम-शल्यदृढाः ।

४ व्रजकुञ्जकुथकूर्चप्रस्थद-र्पार्भार्धर्चदर्भपुच्छाः ।

५ कबन्धौषधायुधान्ताः ।

६ दण्डमण्डखण्डशवसै-न्धवपार्श्वाकाशकुश-काशाङ्कुशकुलिशाः ।

७ गृहमेहदेहपट्टपटहाष्टा-पदाम्बुदककुदाश्च ।

१ अविशिष्टलिङ्गम् ।

२ अव्ययं कतियुष्मद-स्मदः ।

३ ष्णान्ता संख्या ।

४ गुणवचनं च ।

५ कृत्याश्च ।

६ करणाधिकरणयोर्ल्युट् ।

७ सर्वादीनि सर्वनामानि ।

इति श्रीपाणिनिमुनिप्रणीतं लिङ्गानुशासनं समाप्तम् ।

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

1. **अथर्ववेद परिशिष्ट** (वेद) सम्पादक-जार्ज मेलवील बोलिंग तथा जूलियस वो.न नेजलिन। रामकुमार राय कृत हिन्दी नोट्स
2. **सरस्वतीकण्ठाभरणम्** (अलङ्कारशास्त्र)। भोजकृत। रत्नेश्व मिश्र कृत 'रत्नदर्पण' संस्कृत टीका-कामेश्वरनाथ मिश्र कृत स्वरूपानन्द हिन्दी टीका तथा परिशिष्टादि प्रथम भाग (1 से 2 परिच्छेद) द्वितीय भाग (3 से 5 परिच्छेद) सम्पूर्ण
3. **अर्थसंग्रहः**। (मीमांसा) लौगाक्षि भास्कर कृत। पट्टाभिराम शास्त्री कृत 'अर्थालोक' संस्कृत टीका। हिन्दी व्याख्याकार-वाचस्पति उपाध्याय। आशीर्वाद-गौरीनाथ शास्त्री
4. **परिभाषेन्दुशेखरः** (व्याकरण)। नागेशभट्ट विरचितः, श्रीनारायण मिश्र कृत हिन्दी व्याख्या सहित
5. **तैत्तिरीयोपनिषद्**। समूलशाङ्करभाष्य एवं 'ज्योति' हिन्दी टीका सहित। व्याख्याकार श्री कन्हैयालाल जोशी
6. **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** (व्याकरण)। भट्टोजिदीक्षित विरचित। पाणिनीय व्याकरणसूत्रवृत्ति, पाणिनीय शिक्षा, लिङ्गानुशासन तथा अकारादिक्रम से सूत्रों की सूची। सम्पादक श्री कृष्णवल्लभाचार्य
7. **सांख्यकारिका** (सांख्य)। गौडपादभाष्य सहित। संस्कृत-हिन्दी व्याख्या। डॉ. विमला कर्णाटक
8. **तर्कसंग्रहः** (न्याय)। 'पदकृत्य' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या। चन्द्रधर शुक्ल सम्पादित।
9. **बृहदवकहड़ाचक्रम् अर्थात् प्राथमिक ज्योतिषतम्**। (ज्योतिष)। 'हेमपुष्पिका' हिन्दी व्याख्या। व्याख्याकार श्यामदेव झा
10. **हितोपदेश-मित्रलाभ**। (नीति) 'रश्मिकला' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या। व्याख्याकार केशवदेव शास्त्री, सम्पादक-कपिलदेव गिरि
11. **पालि-प्राकृत-संग्रह**। (पालि-प्राकृत के श्रेष्ठ पदों का संग्रह) धम्मपद के चार पाठ और कर्पूरमञ्जरी का प्रथम तथा द्वितीय जवनिकान्तर। व्याख्याकार प्रभुनाथ द्विवेदी
12. **पञ्चतन्त्रम्** (अपरीक्षितकारक पञ्चमतन्त्रम्)। (नीति)। विष्णु शर्मा विरचित। 'वीणा' संस्कृत हिन्दी टीका। व्याख्याकार-कन्हैयालाल जोशी
13. **दुर्गापूजन-पद्धतिः** (कर्मकाण्ड)। वेणीराम शर्मा गौड़
14. **अष्टाध्यायी सूत्रपाठः** (व्याकरण)। पाणिनि प्रणीत। 'आभा' नामक भाषा वृत्ति तथा हिन्दी वृत्ति पाणिनियः शिक्षा, गणपाठ-लिङ्गानुशासन। वृत्तिकार श्रीनारायण मिश्र
15. **नीतिशतकम्**। (पद्यकाव्य), संस्कृत-हिन्दी टीका तथा आंग्लभाषानुवाद। टीकाकार गङ्गासागर राय
16. **संस्कृत साहित्येतिहास**। (इतिहास) विश्वनाथशास्त्री भारद्वाज विरचित सम्पादक बलिराम शास्त्री भारद्वाज
17. **दशकुमारचरित पूर्वपीठिका**। दण्डि कृत। ओमप्रकाश पाण्डेय कृत संस्कृत हिन्दी व्याख्या। प्रश्नोत्तर सहित
18. **अमरकोश, मूल** (कोश)। अमर सिंह कृत। सम्पूर्ण गुटका
19. **धातुरुपावली** (वैयाकरण)। सम्पादक गोपाल शास्त्री नेने
20. **स्वप्नवासवदत्तम्**। (नाटकम्) महाकवि भास। 'वेद' 'प्रकाश' सं. हिन्दी तथा आँग्लानुवाद व्याख्योपेतम्। व्याख्याकार डॉ. वेदप्रकाश शास्त्री
21. **लघुसिद्धान्तकौमुदी**। वरदराज प्रणीता। 'आशुबोधिनी' नामक विस्तृत हिन्दी व्याख्या तथा रूपसिद्धि सहित। व्याख्याकार आचार्य डॉ. सुरेन्द्रदेव स्नातक शास्त्री
22. **गायत्रीरहस्यम्**। सम्पादक पं. वेणीराम शर्मा गौड

प्राप्ति स्थान : **चौखम्भा ओरियन्टालिया, पो.बा. नं. 2206, दिल्ली-110007**

फोन : 2911617, 238790